International Trade and Finance

DECO503

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त

INTERNATIONAL TRADE AND FINANCE

Copyright © 2012
All rights reserved with publishers

Produced & Printed by
USI PUBLICATIONS
2/31, Nehru Enclave, Kalkaji Extn.,
New Delhi-110019
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त

(International Trade & Finance)

उद्देश्यः पाठ्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा निवेश सिद्धांतों की जानकारी उपलब्ध कराता है, इसे इस प्रकार नियोजित किया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रबंधन के सिद्धांतों को बेहतर ढंग से समझा जा सके। यह वैश्विक वातावरण द्वारा उत्पन्न किए गए अवसरों तथा चुनौतियों से विद्यार्थियों को अवगत कराने में सहायता करता है।

Objectives:

The course provides an understanding of international trade and investment theories. It is designed to better understand the implications of such theories as they relate to international trade management. It helps students deal with the opportunities and challenges created by the global environment.

Sr. No.	Content
1	Trade as an engine of growth, Measurement of gains from trade, Free Trade Theory- Absolute advantage, comparative advantage & opportunity cost, Modern theories of international trade: Theorem of factor price equalization, H-O Theory, Kravis & Linder theory of trade.
2	Role of dynamic factors : tastes, technology & factor endowments in trade, Rybszynski Theorem, Causes of emergence & measurement of intra industry trade and its impact on developing economies,
3	Tariff, Quotas & non-tariff barriers: Definitions & types, Economic effects of Tariff & Quotas on national income, output & employment, Political economy of non-tariff barriers and their implication.
4	Balance of Payments and Balance of Trade: Meaning & components, Equilibrium & Dis-equilibrium in BOP, BOP Adjustment: Monetary approach, Exchange Rate: meaning & components,
5	Theories of Determination of Exchange rate (PPP, Monetary), Theories of Determination of Exchange rate (Portfolio & Balance of Payment), Process of adjustments : Gold standard, Fixed Exchange Rates & Flexible Exchange Rates, Merits & demerits of Fixed & Flexible exchange rate.
6	Expenditure reducing & expenditure switching policies, Forms of Economic cooperation, Static & Dynamic effects of a custom union & free trade organization,
7	SAARC/SAPTA, ASEAN, Regionalism: EU & NAFTA,
8	Multilateralism & WTO, International Monetary System, East Asian crisis & lessons for developing countries,
9	FDI : types & issues, International Debt crisis, Functions of WTO/GATT, UNCTAD, IMF, World Bank & Asian Development Bank
10	India’s trade policy: recent developments, India’s Balance of Payment

विषय-सूची

इकाई (Units) | **(CONTENTS)** | **पृष्ठ संख्या (Page No.)**

1.	व्यापार विकास के इंजन के रूप में (Trade as an Engine of Growth)	1
2.	व्यापार से होने वाले लाभों का मापन (Measurement of Gains from Trade)	12
3.	स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत : निरपेक्ष लाभ, तुलनात्मक लाभ और अवसर लागत (Free Trade Theory : Absolute Advantage, Comparative Advantage and Opportunity Cost)	29
4.	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त: मूल्य घटक के समानीकरण का सिद्धांत, हेक्सचर ओहलिन का सिद्धांत, क्रेविस और लिंडर का व्यापर सिद्धांत (Modern theories of International Trade: Theorem of Factor Price Equalization, H-O Theory, Kravis and Linder Theory of Trade.)	44
5.	गत्यात्मक घटकों की भूमिका: रुचियां, तकनीकी एवं व्यापार में साधन संपन्नता (Role of Dynamic Factors: Taster, Technology and Factor Endowments in Trade)	66
6.	रिब्जिन्स्की प्रमेय (Rybszynski Theorem)	76
7.	आन्तर औद्योगिक व्यापार के उद्भव के कारण एवं मापन तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर उनका प्रभाव (Causes of Emergence and Measurement of Intra Industry Trade and Its Impact on Developing Economics)	84
8.	प्रशुल्क, अभ्यंश एवं गैर प्रशुल्क बाधाएँ : परिभाषा एवं प्रकार (Tariffs, Quotas and Non-Tariff Barriers : Definitions and types)	103
9.	राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर प्रशुल्क एवं अभ्यंश का आर्थिक प्रभाव (Economic Effects of Tariff and Quotas on National Income, Output and Employment)	117
10.	राजनैतिक अर्थव्यवस्था की गैर-प्रशुल्क बाधाएँ और उनके निहितार्थ (Political Economy of Non-Tariff Barriers and their Implication)	130
11.	व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन: अर्थ एवं घटक (Balance of Trade and Balance of Payments: Meaning and Components)	138
12.	भुगतान-शेष में संतुलन एवं असंतुलन (Equilibrium and Dis-Equilibrium in BOP)	148
13.	भुगतान-शेष समायोजन : मौद्रिक उपागम (BOP Adjustment : Monetary Approach)	161
14.	विनिमय दर : अर्थ एवं घटक (Exchange Rate : Meaning and Components)	167

15.	विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (Theories of Determination of Exchange Rate)	173
16.	विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (पत्राधान और भुगतान संतुलन) (Theories of Determination of Exchange Rate) (Portfolio and Balance of Payment)	181
17.	समायोजन की प्रक्रिया (Process of Adjustments)	189
18.	स्थिर एवं अस्थिर विनिमय दर के गुण एवं दोष (Merits and Demerits of Fixed and Flexible Exchange Rate)	200
19.	व्यय घटाने वाली एवं व्यय बदलावकारी नीतियाँ (Expenditure Reducing and Expenditure Switching Policies)	206
20.	सीमा शुल्क संघ एवं स्वतंत्र व्यापार संगठन के स्थैतिक एवं गत्यात्मक प्रभाव (Static and Dynamic Effects of a Custom Union and Free Trade Organization)	211
21.	सार्क/साप्टा, आसियान (SAARC/SAPTA, ASEAN)	220
22.	क्षेत्रवाद: यूरोपीय संघ एवं नाफ्टा (Regionalism: Eu and NAFTA)	229
23.	बहुपक्षवाद और विश्व व्यापार संगठन (Multilateralism and World Trade Organization)	239
24.	अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था (International Monetary System)	255
25.	विदेशी प्रत्यक्ष निवेश: प्रकार एवं मुद्दे (FDI : Types and Issues)	262
26.	अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट (International Debt Crises)	272
27.	विश्व व्यापार संगठन/गैट के कार्य (Functions of WTO/GATT)	278
28.	अंकटाड, आई.एम.एफ. विश्व बैंक तथा एशियाई विकास बैंक (UNCTAD, I.M.F. World Bank and Asian Development Bank)	296
29.	भारत की व्यापार नीति : तात्कालिक विकास (India's Trade Policy : Recent Development)	313
30.	भारत का भुगतान-सन्तुलन (India's Balance of Payment)	325

नोट

इकाई–1: व्यापार विकास के इंजन के रूप में (Trade as an Engine of Growth)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 विकास का इंजन: व्यापार (Trade as an Engine of Growth)

1.2 व्यापार विकास का इंजन है : क्यों? (Trade is an Engine of Economic Growth : Why?)

1.3 व्यापार आर्थिक विकास को अवरुद्ध करता है: क्यों? (International Trade Obstructs Economic Development : Why?)

1.4 अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की विदेशी व्यापार सम्बन्धी समस्याएँ (Problems of Under Developed Countries Related to Foreign Trade)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- यह जानने में कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों और कैसे विकास का इंजन है।
- यह व्याख्या में कि किस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विकास को अवरुद्ध करता है।
- अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की विदेशी व्यापार-संबंधी समस्याओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान समय में आवागमन के बढ़ते हुए साधनों ने पूरे विश्व को एक इकाई के रूप में बदल दिया है। अब वे दिन समाप्त हो गये जब प्रत्येक देश केवल अपने आप तक सीमित था तथा बाहर की दुनिया का उसे कोई ज्ञान नहीं था। उस समय एक देश के नागरिक केवल उन्हीं वस्तुओं का उपभोग कर सकते थे जो उस देश में पैदा की जाती थीं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विशिष्टीकरण नाम की कोई चीज नहीं थी तथा प्रत्येक देश अपनी आवश्यकता की प्राय: सभी वस्तुएं स्वयं उत्पन्न करने का प्रयत्न करता था किन्तु किसी भी वस्तु के उत्पादन में उसे विशिष्टता अथवा निपुणता प्राप्त नहीं थी। अब स्थिति सर्वथा भिन्न है। आज बढ़ते हुए श्रमविभाजन एवं विशिष्टीकरण ने प्रत्येक देश को किसी विशेष वस्तु के उत्पादन में निपुणता एवं विशिष्ट योग्यता प्रदान की है। यह इसलिए सम्भव हुआ कि अब विभिन्न देशों के बढ़ते हुए आर्थिक सम्बन्धों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को एक नयी दिशा दी है। जिस प्रकार एक व्यक्ति उसी वस्तु का उत्पादन करता है। जिसमें वह सर्वाधिक निपुण होता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र भी उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जो वह कम तुलनात्मक लागत पर उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार उत्पादन में आन्तरिक एवं

नोट

अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर विशिष्टीकरण महत्त्वपूर्ण हो गया है। विशिष्टीकरण के फलस्वरूप बढ़े हुए उत्पादन का उपभोग उत्पादक स्वयं नहीं करता वरन् उसका विनिमय करके ऐसी वस्तु प्राप्त करना चाहता है जिसे वह बनाने में निपुण नहीं है। अत: विशिष्टीकरण व्यापार को जन्म देता है और व्यापार से विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिलता है। जब यही व्यापार देश की सीमाओं को लांघ जाता है तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की नींव पड़ती है।

1.1 विकास का इंजन : अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (Trade as an Engine of Growth)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं आर्थिक विकास के संबंध को लेकर अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। प्रतिष्ठित एवं नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को **आर्थिक विकास का इन्जन** (Engine of Growth) मानते हैं। प्रतिष्ठित एवं नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि किसी देश के विकास में विदेशी व्यापार महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। **हैबरलर** एवं **केयरनक्रास** जैसे अर्थशास्त्रियों ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए विचार व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल उत्पादन को कुशलतम बनाने का ही उपाय नहीं वरन् विकास का इन्जन भी है। किसी भी देश के व्यापार की मात्रा एवं संरचना, व्यापार की शर्तें और अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान—ये तीनों मिलकर उसके विकास को प्रभावित करते हैं। प्रतिष्ठित विचारकों का विश्वास था कि इन तीनों का आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

किन्तु अर्थशास्त्रियों का दूसरा वर्ग **राउल प्रेबिश, मिण्ट, गुन्नार मिर्डल, सिंगर** जैसे अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक विकास का अवरोधक घटक मानते हैं। इन अर्थशास्त्रियों का मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का इन देशों के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। **फ्रेडरिक लिस्ट** ने प्रतिष्ठित विचारधारा की कटु आलोचना की है और विकास के विशिष्ट स्तर के बाद ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समर्थन किया है। इस विचारधारा के अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के निष्कर्षों के आधार पर विकास की समस्याओं का विवेचन नहीं किया जा सकता। उनका यहाँ तक कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से धनी और निर्धन राष्ट्रों के बीच असमानता की खाई बढ़ती है अत: इनका तर्क है कि निर्धन देशों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का परित्याग कर देश में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्रो. मिर्डल ने यह मत व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के बजाय उनमें **दोहरी अर्थव्यवस्था** (Dualility) उत्पन्न की है। अल्पविकसित देशों में दोहरी अर्थव्यवस्था उत्पन्न होने के दो प्रमुख कारण हैं—**प्रथम,** इन देशों की संरचना एवं परिस्थिति के कारण इन देशों में विकास प्रक्रिया का **प्रतिधावन प्रभाव** (Back wash Effect) उसके **प्रसरण प्रभाव** (Spread Effect) से अधिक शक्तिशाली होता है जिससे क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय असमानताएं बढ़ती हैं; दूसरे, इन देशों में भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

1.2 व्यापार आर्थिक विकास का इंजन है : क्यों? (Trade is an Engine of Economic Growth: Why?)

अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यापार ने सहायता पहुँचाई है, इसके समर्थन में निम्न तर्क दिये जाते हैं:

(1) **वास्तविक आय और पूँजी निर्माण में वृद्धि**—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत एक देश उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है जिसमें उसे तुलनात्मक लाभ होता है जिसके फलस्वरूप उसकी वास्तविक आय में वृद्धि होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव यह होता है कि देश में जो उत्पत्ति के साधन तथा उत्पादन तकनीक पहले से निश्चित रहती है उनमें परिवर्तन होकर साधनों का वितरण अनुकूलतम हो जाता है अर्थात् उत्पादन अधिक कुशलतापूर्वक होने लगता है। वास्तविक आय में होने वाली वृद्धि पूंजी निर्माण में सहायक होती है तथा पूंजी निर्माण आर्थिक विकास को गतिशील बना सकता है।

नोट

(2) **निर्यात क्षेत्र से होने वाला विकास**—किसी भी देश में उत्पत्ति के समस्त क्षेत्रों में समान विकास नहीं होता वरन् कुछ क्षेत्र महत्वपूर्ण होते हैं जिनमें पहले विकास होता है तथा ये क्षेत्र अन्य उद्योगों को गति प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से गति प्रदान करने में निर्यात क्षेत्र की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है जो निम्न तीन तत्वों से स्पष्ट है—

(*i*) **विस्तृत बाजार**—विदेशों में माँग-वृद्धि के कारण देश की विभिन्न वस्तुओं का **बाजार विस्तृत** होता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने स्पष्ट किया था कि जो देश विदेशों में अपना माल बेचने में सफल होता है वह द्रुत गति से विकास कर सकता है। इससे बड़े पैमाने पर बचत होती है तथा विभिन्न उद्योगों पर इसका विकासात्मक प्रभाव पड़ता है। **प्रो. मिल** के अनुसार, "विदेशी व्यापार बाजार के आकार का विस्तार करके अर्थव्यवस्था पर प्रावैगिक प्रभाव डालता है। विदेशी व्यापार से बड़े पैमाने पर श्रम-विभाजन तथा मशीनों का प्रयोग सम्भव होता है जिससे देश की उत्पादन करने की क्षमता बढ़ जाती है।"

(*ii*) **निर्यात उद्योगों का विकास**—देश के भीतर बिना सामाजिक पूंजी का विनियोग किये, निर्यातों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि विदेशी व्यापार एवं निर्यात नहीं किया जाता तो देश के भीतर ही बाजार को विकसित करने के लिए पर्याप्त परिवहन एवं वितरण की व्यवस्था आवश्यक है जिसमें काफी मात्रा में विनियोग आवश्यक होता है, किन्तु यदि देश अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रवेश कर लेता है तो उक्त कठिनाई का सामना किये बिना ही देश वस्तुओं का निर्यात कर लाभ उठा सकता है।

(*iii*) **मांग में वृद्धि**—निर्यातों के कारण अन्य क्षेत्रों में प्रभावपूर्ण मांग का जन्म होता है जिससे विभिन्न वस्तुओं की मांग बढ़ती है। **लुईस** (Lewis) का मत है कि उत्पत्ति के साधनों के लिए घरेलू और निर्यात उद्योगों में प्रतियोगिता होती है जिससे देश के अन्य उद्योग भी नव-प्रवर्तन (Innovation) अपनाते हैं। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है।

टास्क अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्टीकरण, औद्योगिक विविधीकरण, आदि को बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्थाओं को गतिशील बनाया है।

(3) **आयातों से देश का आर्थिक विकास**—अर्द्ध-विकसित देशों को उद्योगों की स्थापना एवं तकनीकी विकास के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, वे पर्याप्त मात्रा में इन देशों में उपलब्ध नहीं होते अत: विदेशों से इन्हें आयात किया जाता है। इन आयातों को हम निम्न तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं:

(*i*) **विकास-सम्बन्धित आयात**—पिछड़े देशों में आय में वृद्धि करने के लिए उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना आवश्यक है ताकि ये देश कम-से-कम अपने उत्पादन सम्भावना वक्र पर पहुंच सकें। वर्तमान स्थिति यह है कि बहुत-से पिछड़े देश अपने उत्पादन सम्भावना वक्र के भीतर ही उत्पादन करते हैं। इसे हम रेखाचित्र 1. 1 से स्पष्ट कर सकते हैं।

संलग्न रेखाचित्र में एक देश का उत्पादन सम्भावना वक्र MN है तथा यदि वह दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन कर रहा है तो MN वक्र बताता है कि वह इस वक्र के किसी बिन्दु (G) पर उत्पादन कर सकता है, किन्तु वास्तव में वह उत्पादन सम्भावना वक्र के भीतर P बिन्दु पर ही उत्पादन करता रहता है अर्थात् देश के समस्त साधनों का पूर्ण प्रयोग नहीं करता। इसका मुख्य कारण उत्पादन तकनीक का पिछड़ापन है। यदि विदेशों से मशीनों एवं अन्य उपकरणों का आयात किया जाता है तो उत्पादन क्षमता में विस्तार

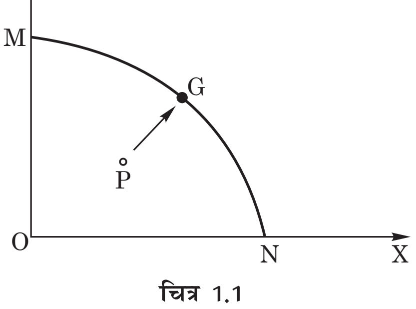

चित्र 1.1

नोट

होता है तथा देश न केवल उत्पादन सम्भावना वक्र पर पहुंच सकता है वरन् उसमें परिवर्तन कर उसे दायीं ओर विवर्तित भी कर सकता है। जो आयात देश में उत्पादन क्षमता का विस्तार कर, आर्थिक विकास की गति को बढ़ाते हैं उन्हें विकास सम्बन्धी आयात कहते हैं।

(*ii*) **निर्वाह अथवा अनुरक्षण आयात**–जब अर्द्ध-विकसित देशों में एक निश्चित उत्पादन क्षमता की स्थापना होती है तो उसका पूर्ण प्रयोग करने के लिए निरन्तर कच्चे माल एवं मध्यवर्ती वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो सदैव अर्द्ध-विकसित देशों में उपलब्ध नहीं हो पाती। अत: इनका विदेशों से आयात किया जाता है। ऐसे आयातों को, जो देश की उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग करने के लिए किये जाते हैं, निर्वाह-आयात कहते हैं। पिछड़े हुए देशों में उत्पादन बढ़ाने के लिए ऐसे आयातों का बहुत महत्व है।

(*iii*) **अस्फीतिकारी आयात**–जब अर्द्ध-विकसित देशों में मुद्रा-प्रसार के कारण स्फीतिक दशाएं फैल जाती हैं तो दीर्घकाल में इनका आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में देश में वस्तुओं का अभाव हो जाता है एवं अर्थव्यवस्था असन्तुलित हो जाती है। इसे दूर करने के लिए विदेशों से वस्तुओं का आयात किया जाता है जिससे अर्थव्यवस्था में स्थिरता आती है और आर्थिक विकास सम्भव होता है। अत: ऐसे आयात को अस्फीतिकारी आयात कहते हैं।

(4) **विदेशी तकनीक की जानकारी से विकास–जे. एस. मिल** के अनुसार, विदेशी व्यापार से निर्धन देशों को लाभ होता है क्योंकि इसके द्वारा उनकी जानकारी विदेशी तकनीक और कलाओं से होती है। इसके कारण वे अतिरिक्त पूंजी से अधिक दर पर लाभ उठाने लगते हैं तथा इस दृष्टि से विदेशी पूंजी का आयात बढ़ाते हैं जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। विदेशी कलाओं की जानकारी अर्द्ध-विकसित देशों के व्यक्तियों में नवीन विचारों को जाग्रत करके एवं उनकी परम्परागत आदतों को बदलकर उनमें नवीन इच्छाओं, बड़ी आकांक्षाओं तथा दूरदर्शिता को जन्म देती है।

(5) **भुगतान सन्तुलन का आर्थिक विकास पर प्रभाव**–भुगतान सन्तुलन की स्थिति आर्थिक विकास और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध को अच्छी तरह व्यक्त करती है। पिछड़े हुए देश प्रारम्भिक स्थिति में निर्यातों की तुलना में आयात अधिक करते हैं तथा उनका विनियोग, बचत की तुलना में अधिक होता है। बचत और विनियोग में जो अन्तर होता है, उसकी पूर्ति विदेशी पूंजी से की जाती है। अर्द्ध-विकसित देश विदेशों से दीर्घकालीन पूंजी उधार लेते हैं एवं उनका विनियोग बचत से अधिक होता है। विकसित देशों की स्थिति इसके विपरीत होती है। उनकी घरेलू बचत विनियोग से अधिक होती है जिससे वे पिछड़े हुए देशों को ऋण देते हैं।

(6) **समग्र आर्थिक विकास–एच. मिण्ट** के अनुसार, विदेशी व्यापार गतिशील उत्पादकता के सिद्धान्त पर आधारित है जो श्रम-विभाजन की सम्भावनाओं को बढ़ाता है। इससे मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलता है और नव-प्रवर्तन का प्रयोग सम्भव होकर गतिशील होता है। इससे श्रम की उत्पादकता बढ़ती है और व्यापार करने वाले समस्त देशों को अधिकतम लाभ मिलता है। इससे स्पष्ट है कि आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

(7) **पूंजी संचय एवं बचत क्षमता में वृद्धि**–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने विदेशी व्यापार के प्रभाव को स्पष्ट किया है जो देश के साधनों पर पड़ता है। उन्होंने बताया कि विदेशी व्यापार के फलस्वरूप साधनों का कुशलतम ढंग से प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि के साथ बचत करने की क्षमता भी बढ़ती है। विदेशी से व्यापार करने से बाजार का विस्तार होता है और विनियोग प्रोत्साहित होते हैं। **हिक्स** के अनुसार, "विदेशी व्यापार करने के लिए, किसी देश को बड़े पैमाने पर उत्पादन करना पड़ता है जिससे उसे पूंजीगहन उन्नत तकनीक से उत्पादन करने से लाभ होने लगता है।"

(8) **व्यापार की शर्तों का आर्थिक विकास पर प्रभाव**–अनुकूल व्यापार की शर्तों के फलस्वरूप औद्योगिक और गैर-औद्योगिक देशों, दोनों को लाभ हुआ है। अर्द्ध-विकसित देशों ने विकसित देशों को आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति की है जिससे वहां औद्योगीकरण बढ़ा है और इसके बदले औद्योगिक देशों ने अर्द्ध-विकसित देशों को उपभोग

नोट

और पूंजीगत वस्तुएं प्रदान की हैं। विकसित देशों की पूंजी एवं तकनीक ने अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में बड़ी सहायता की है। इस प्रकार आयातों और बढ़ती हुई उत्पादन सम्भावनाओं ने प्राथमिक उत्पादन करने वाले देशों में विस्तृत और गहन आर्थिक विकास को प्रोत्साहन दिया है।

(9) **गतिशील लाभ—हैबरलर** के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अर्द्ध-विकसित देशों को निम्न चार गतिशील लाभ प्राप्त होते हैं—

(*i*) मशीन, पूंजी, कच्चे माल, अर्द्ध-निर्मित वस्तुएं तथा अन्य भौतिक साधनों की उपलब्धि

(*ii*) देश में अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग से पूंजी की प्राप्ति

(*iii*) तकनीक एवं नव-प्रवर्तन के लाभ

(*iv*) विदेशी प्रतियोगिता से कुशल एवं अधिक उत्पादन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में काफी सहायता पहुंचायी है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को मानते हैं—

   (क) आर्थिक विकास का इंजन (ख) अवरोधक घटक

   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. प्रो. मिर्डल के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अल्पविकसित देश में विकास को प्रोत्साहित करने के बजाए उत्पन्न है—

   (क) अवरोधक घटक (ख) एकहरी अर्थव्यवस्था

   (ग) दोहरी अर्थव्यवस्था (घ) इनमें से कोई नहीं।

3. विदेशों में माँग वृद्धि के कारण होता है—

   (क) बाजार विस्तृत (ख) बाजार संकुचित

   (ग) बाजार सन्तुलन (घ) इनमें से कोई नहीं।

4. पिछड़े देशों में आय वृद्धि करने के लिए आवश्यक है—

   (क) उत्पादन क्षमता को कम करना (ख) उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना

   (ग) उत्पादन क्षमता को सन्तुलित करना (घ) इनमें से कोई नहीं।

5. विदेशी व्यापार गतिशील उत्पादकता के आधार पर आधारित है। य कथन किसका है—

   (क) एच. मिल का (ख) मिर्डल का

   (ग) प्रो. मिल का (घ) इनमें से कोई नहीं।

1.3 व्यापार आर्थिक विकास को अवरुद्ध करता है : क्यों? (Trade Obstructs Economic Development : Why?)

अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों **राउल प्रेबिश, सिंगर, मिर्डल, मिण्ट**, आदि ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में अवरोधक माना है और प्रतिष्ठित एवं नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों की आलोचना करते हुए उनके निष्कर्षों को निरर्थक माना है।

नोट

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक विकास में अवरोधक मानने वाला अर्थशास्त्रियों का वर्ग अपने पक्ष में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करता है :

(1) निर्यात क्षेत्र के अतिरिक्त शेष अर्थव्यवस्था की अवहेलना—इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप अर्द्ध-विकसित देशों के निर्यातों में तो वृद्धि हुई है परन्तु इससे केवल निर्यात क्षेत्र विकसित हुए हैं। शेष अर्थव्यवस्था को विकसित करने में इसने कोई योगदान नहीं दिया है जिसका परिणाम यह हुआ कि आज भी अर्द्ध-विकसित देश, असन्तुलित विकास के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मिर्डल का कहना है कि "पिछड़े देशों का उच्च विदेशी व्यापार का अनुपात इस बात का प्रमाण नहीं है कि उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन का लाभ उठाया है वरन् इस बात का सबूत है कि वे अर्द्ध-विकसित एवं निर्धन है।"[1] निर्यात क्षेत्र में जिस उत्पादन तकनीक का प्रयोग किया गया उसका शेष अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

(2) कीमतों में समानता नहीं—दूसरी आलोचना इस निष्कर्ष के विरुद्ध है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले देशों में उत्पत्ति के साधनों की कीमतें बराबर हो जाती हैं। आलोचक कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने साधनों की कीमतों में समानता स्थापित नहीं की वरन् इससे ऐसी संचयी प्रवृत्ति का जन्म हुआ है जिससे साधन अनुपातों में समानता और उनकी कीमतों में समानता से सन्तुलन का बिन्दु दूर हटता गया है। अन्तर्राष्ट्रीय समानता की बात तो दूर, इससे देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी साधनों और उनकी कीमतों में समानता स्थापित नहीं हो सकी है। वास्तविकता तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से आय के अन्तर्राष्ट्रीय वितरण में असमानता हो आयी है।

(3) दोहरी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण—आलोचकों का मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने के बाद बहुत पिछड़े देशों में दोहरी अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण हुआ है। जहां निर्यातक क्षेत्र "विकास का द्वीप" (Island of Development) बना है वहां शेष अर्थव्यवस्था प्रायः पिछड़ी हुई रही है अर्थात् निर्यात क्षेत्र के चारों ओर निर्वाह अर्थव्यवस्था (Subsistance Economy) का निर्माण हुआ है। निर्यात के उन्नत क्षेत्र में उत्पादन की विधियां पूंजीगहन होती हैं और उत्पादन गुणक निश्चित रहता है जबकि पिछड़े हुए क्षेत्र में उत्पादन तो श्रम गहन होता है एवं उत्पत्ति के साधन के बराबर अनुपातों में प्रयुक्त नहीं किये जाते। विदेशी पूंजी केवल निर्यात करने के लिए ही देश के प्राकृतिक साधनों के दोहन के लिए प्रयुक्त की जाती है जिसमें देश के लोगों को पर्याप्त रोजगार नहीं मिलता तथा लोगों को पिछड़े क्षेत्रों में ही रोजगार ढूंढ़ना पड़ता है।

टास्क अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल उत्पादन को कुशलतम बनाने का उपाय ही नहीं बल्कि विकास का इंजन भी है। स्पष्ट कीजिए।

(4) व्यापार की शर्तों का दीर्घकाल में प्रतिकूल रहना—यह कहा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों ने कुछ ऐसी असन्तुलनकारी दशाएं पैदा की हैं कि जिससे निर्धन देशों की व्यापार की शर्तें काफी समय तक प्रतिकूल रहने के कारण उनकी आय धनी देशों को जाती रही है। यदि औद्योगिक देश एवं प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन करने वाले अर्द्ध-विकसित देशों के बीच व्यापार होता है तो वस्तु व्यापार की शर्तें सदैव औद्योगिक देशों के पक्ष में हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि कच्चे माल और साधनों के बाजार में धनी देशों का एकाधिकार होता है एवं तकनीकी प्रगति के सहयोग के कारण उत्पत्ति के साधनों की आय बढ़ जाती है जबकि प्राथमिक उत्पादन करने वाले देशों में यदि उत्पादकता बढ़ती है तो वहां कीमतें घट जाती हैं।

जहां तक व्यापार की शर्तों में चक्रीय गतिविधियों (Cyclical movements) का प्रश्न है, इनका प्रभाव अर्द्ध-विकसित देशों के लिए प्रतिकूल एवं बाधक रहा है।

(5) प्रदर्शन-प्रभाव (Demonstration Effect)—आलोचकों का मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव के कारण

भी निर्धन देशों के विकास में बाधा उपस्थित होती है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव का अर्थ यह है कि अर्द्ध-विकसित देश, विकसित देशों की उपभोग की प्रवृत्ति को अपनाते हैं जिससे विदेशी आयातों में वृद्धि होती है अर्थात् पूंजी का बहिर्गमन होता है और निर्धन देशों में पूंजी का संचय कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रदर्शन प्रभाव के कारण अर्द्ध-विकसित देश के लोगों में विदेशी उपभोग एवं विलासिता की वस्तुओं के लिए लालसा जाग्रत होती है अत: विदेशी वस्तुओं के आयात में वृद्धि होती है और विदेशी दायित्व बढ़ते हैं जिनका आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(6) विकसित देशों से बढ़ती हुई प्रतियोगिता का विकास पर प्रतिकूल प्रभाव—जब अर्द्ध-विकसित देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रवेश करते हैं तो इनके सामने कई समस्याएं आती हैं जिनमें विदेशी प्रतियोगिता महत्वपूर्ण है। यदि ये देश अपना निर्यात बढ़ाना चाहते हैं तो इन्हें विदेशी माल से प्रतियोगिता करनी पड़ती है चूंकि विदेशी वस्तुएं उच्च तकनीक के कारण गुणों में उत्तम होती हैं तथा उनकी कीमतें भी कम होती हैं अत: अर्द्ध-विकसित देश उनके सामने ठहर नहीं पाते और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों पर उनका अधिकार नहीं हो पाता। यह समस्या इसलिए और भी विकट हो गयी कि आजकल विकसित देश भी प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने लगे हैं और यदि कभी ये निर्धन देश प्रतियोगिता करने में समर्थ भी हो जाते हैं तो इन्हें आवश्यक उपकरणों एवं मशीनों का निर्यात बन्द कर दिया जाता है। जैसे कुछ समय पूर्व अमरीका ने भारत को यूरेनियम का निर्यात बन्द करने की धमकी दी थी।

निष्कर्ष—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक विकास से सम्बन्धित दो विभिन्न विचारधाराओं का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सम्पूर्ण विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विकास हुआ है। विदेशी विनियोग, प्रवसन (Migration) और जनसंख्या वृद्धि का वास्तविक प्रभाव यह हुआ कि विभिन्न देशों में संसाधन अनुपात की विषमता कम हुई तथा तकनीकी कुशलता और ज्ञान का प्रकाश हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने औद्योगिकरण, परिवहन-संचार साधनों, आदि का विस्तार करके आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने नि:सन्देह सकारात्मक भूमिका निभाई है।

1.4 अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों की विदेशी व्यापार सम्बन्धी समस्याएँ (Problems of Under Developed Countries Related to Foreign Trade)

अर्द्ध-विकसित देशों में विदेशी व्यापार इन देशों की आन्तरिक आधारभूत समस्याओं के कारण असफल होता है। सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से विदेशी व्यापार को आर्थिक विकास में अवरोधक नहीं कहा जा सकता। अर्द्ध-विकसित देशों की अपनी कुछ मौलिक समस्याएं हैं जिनका निवारण किया जाना आवश्यक है।

(1) ऋण का बढ़ता हुआ भार—अर्द्ध-विकसित देशों की विदेशी व्यापार की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन पर विकसित देशों द्वारा प्रदत्त ऋण एवं ब्याज अदायगी का भारी बोझ है जो अधिकांश रूप से प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन का परिणाम है। इस ऋण के फलस्वरूप विकासशील देशों के प्रारम्भिक निवेश पर भारी आर्थिक दबाव पड़ता है तथा उन्हें अपनी विकास परियोजना में भारी मात्रा में कटौती करनी पड़ती है। इसके फलस्वरूप विकासशील देशों की उत्पादन क्षमता घटती है और वे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतियोगिता नहीं कर पाते।

(2) बाजारों का छोटा होना—अर्द्ध-विकसित देशों की विदेशी व्यापार की दूसरी समस्या यह है कि इनके बाजार काफी छोटे हैं जो बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले उद्योगों के विकास के लिए मांग बना पाने में असमर्थ हैं। यदि आर्थिक विकास त्वरित गति से नहीं किया जाता तथा बाजार की अपूर्णताओं को समाप्त नहीं किया जाता तो इन बाजारों के छोटे ही रहने की सम्भावना है। यह बात बहुत स्पष्ट है कि बाजार की अपूर्णता, श्रम-विभाजन एवं उत्पादन को सीमित कर देती है।

(3) उद्यमी वर्ग का अभाव—विदेशी व्यापार के प्रोत्साहन एवं निर्यात वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि देश में पर्याप्त मात्रा में उत्पादन हो। यह उसी समय सम्भव है जब देश में उद्यमी प्रतिभा विद्यमान हो ताकि वे पर्याप्त पूंजी का निवेश कर निर्यात बढ़ाने के लिए, उत्पादन में वृद्धि कर सकें। किन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में विकास के

नोट

लिए वांछित पूंजी निवेश करने वाले निजी पूंजीपतियों का पर्याप्त रूप से विकसित वर्ग नहीं है। ऐसे स्थिति में यह आवश्यक है कि जहां एक और निजी विनियोग को प्रोत्साहन दिया जाये, वहीं दूसरी ओर सरकार को भी पूंजी-निवेश करना चाहिए।

(4) निर्यात संवर्द्धन सम्बन्धी समस्याएं—किसी भी देश के आर्थिक विकास में निर्यातों की वृद्धि का महत्वपूर्ण स्थान होता है अत: अर्द्ध-विकसित देशों के लिए भी यह आवश्यक है कि निर्यातों में वृद्धि की जाये किन्तु वे निर्यातों को वांछनीय दिशा में नहीं बढ़ा पाते और निर्यातों से जो आय होती है उसे पूर्ण रूप से पूंजी निर्माण के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाता। इसका कारण यह है कि निर्यातों से प्राप्त आय का अधिकांश भाग आयातों, विदेशी ऋण एवं ब्याज के भुगतान में खप जाता है। इन देशों के निर्यात-संवर्द्धन में कई प्रकार की समस्याएं आती हैं जो इस प्रकार हैं–

(*i*) **निर्यात की तुलना में आयातों में अधिक वृद्धि**—जब अर्द्ध-विकसित देशों की आय बढ़ती है तो पूंजीगत वस्तुओं एवं उपभोग की वस्तुओं की मांग बढ़ने से उनका आयात किया जाता है और आयातों की वृद्धि, आय की वृद्धि से अधिक हो जाती है जबकि विकसित देशों में आयातों की वृद्धि, आय वृद्धि से कम होती है क्योंकि इन देशों में केवल खाद्यान्न एवं कच्चे माल का ही आयात किया जाता है। इस प्रकार आयातों की तीव्र गति से वृद्धि, निर्यातों को निरर्थक बना देती है।

(*ii*) **चक्रीय परिवर्तनों का प्रभाव**—अर्द्ध-विकसित देश कुछ गिनी-चुनी वस्तुओं का ही निर्यात करते हैं तथा वह भी कुछ विशिष्ट देशों को ही, अर्थात् इनके व्यापार में विविधता नहीं होती तथा इनका अन्तर्राष्ट्रीय बाजार भी सीमित होता है। ये राष्ट्र अपने निर्यातों के लिए कुछ देशों पर ही निर्भर हो जाते हैं और जब ये विकसित देश, अर्द्ध-विकसित देशों के माल का आयात अपने देशों में या तो पूर्ण रूप से रोक देते हैं अथवा प्रतिबन्धित कर देते हैं तो इसका प्रतिकूल प्रभाव अर्द्ध-विकसित देशों के निर्यातों और फलस्वरूप उनकी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। विकसित देशों की मांग में परिवर्तन का मुख्य कारण चक्रीय परिवर्तन अथवा उच्चावचन हैं अर्थात् जब इन देशों में मन्दी की स्थिति आती है तो चूंकि, अर्द्ध-विकसित देश इन पर निर्भर रहते हैं, वह मन्दी की स्थिति, अर्द्ध-विकसित देशों में भी प्रवेश करा दी जाती है। और इन देशों को मन्दी की सारी बुराइयों; जैसे बेरोजगारी, क्रयशक्ति की कमी, मांग का अभाव, इत्यादि का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार अर्द्ध-विकसित देश अपने आपको चक्रीय परिवर्तनों के प्रतिकूल प्रभावों से नहीं बचा पाते।

(*iii*) **विकसित देशों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन**—अर्द्ध-विकसित देशों द्वारा इसलिए भी निर्यात संवर्द्धन में बाधा आयी है कि पहले ये जिन प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात, विकसित देशों को करते थे, अब इसमें से अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन स्वयं विकसित देश करने लगे हैं और उन्होंने प्राथमिक वस्तुओं के नये विकल्पों अथवा स्थानापन्न वस्तुओं की खोज कर ली है। औद्योगिक देशों की संरक्षणात्मक नीतियों के फलस्वरूप विकासशील देशों के निर्यातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बहुत-से विकसित राष्ट्र आज उपभोक्ता वस्तुओं के स्थान पर रसायन और कच्चे माल के उत्पादन को महत्व दे रहे हैं, दूसरी ओर अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में भी, औद्योगीकरण के कारण, निर्मित वस्तुओं का उत्पादन बढ़ रहा है जिसमें अधिकांश प्राथमिक उत्पादन की खपत हो रही है अत: अब इन वस्तुओं का निर्यात भी नहीं बढ़ पा रहा है।

(*iv*) **प्रतियोगी शक्ति की कमी**—यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आज, अर्द्ध-विकसित देश केवल प्राथमिक वस्तुओं का ही उत्पादन नहीं करते वरन् उपभोग और पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन भी कर रहे हैं किन्तु इन वस्तुओं के निर्यात में उन्हें विकसित देशों में भारी प्रतियोगिता करनी पड़ रही है क्योंकि उन्नत तकनीक के कारण विकसित देशों का माल टिकाऊ और सस्ता होता है जिससे ये पिछड़े देश विश्व-बाजार के क्षेत्र से बाहर रहते हैं एवं निर्यातों को नहीं बढ़ा पाते।

(5) आयात सम्बन्धी समस्याएं—अर्द्ध-विकसित देशों को केवल निर्यातों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता वरन् वे आयातों के लिए भी विकसित देशों पर निर्भर रहते हैं। पिछड़े हुए देश मुख्य रूप से विनिर्मित वस्तुओं

नोट

(Manufactured Goods), सूती वस्त्र, मशीनों, हल्की उपभोग की वस्तुओं और खाद्यान्न का आयात करते हैं। चूंकि अर्द्ध-विकसित देशों में जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि होती है अत: खाद्यान्न की मांग बढ़ती है जिससे इसका आयात करना आवश्यक हो जाता है। भारत के उदाहरण से स्पष्ट है कि अभी तक हमें निरन्तर विदेशों से खाद्यान्न का आयात करना पड़ता है।

अर्द्ध-विकसित देशों में जब औद्योगीकरण प्रारम्भ होता है तो मशीनों और उच्च-तकनीक की भी आवश्यकता होती है जिसका विकसित देशों से आयात किया जाता है, किन्तु प्रमुख समस्या यह होती है कि पिछड़े देश अनुकूल शर्तों पर इन्हें आयात नहीं कर पाते। चूंकि यह देश प्रारम्भिक अवस्था में पर्याप्त मात्रा में निर्मित माल और उपभोग वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर पाते अत: इन वस्तुओं के आयात पर भी इन्हें निर्भर रहना पड़ता है। पिछड़े देशों की आयात प्रवृत्ति तो ऊंची रहती ही है साथ ही आंतरिक प्रदर्शन प्रभाव के कारण दीर्घकाल में औसत आयात प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है।

क्या आप जानते हैं बढ़ते आयातों का भुगतान करने के लिए, निर्यातों की वृद्धि करना आवश्यक है अन्यथा भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता है।

(6) विदेशी पूंजी पर अत्यधिक निर्भरता–अर्द्ध-विकसित देशों की विदेशी व्यापार की एक समस्या यह भी है कि वह अपने निर्यात क्षेत्र के विस्तार के लिए विदेशी पूंजी पर निर्भर रहते हैं जिसका परिणाम होता है प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग। यह विनियोग, घरेलू मांग की अवहेलना कर, प्राथमिक उत्पादन पर केन्द्रित होता है जिसका मुख्य उद्देश्य निर्यातों में वृद्धि करना होता है क्योंकि विदेशी निवेशकर्ताओं का मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा कमाना होता है। निर्यातों से होने वाली आय की तुलना में विदेशी पूंजी के प्रभाव से अधिक उच्चावचन होते हैं तथा यह देखने में आया है कि विदेशी पूंजी में कमी के साथ निर्यातों में भी कमी आयी है। विदेशी पूंजी में उच्चावचन के साथ घरेलू अर्थ-व्यवस्था में भी अस्थिरता आती है।

(7) विकसित राष्ट्रों की शोषण प्रवृत्ति–विकसित राष्ट्रों द्वारा शोषण की प्रवृत्ति ने भी, अर्द्ध-विकसित देशों के व्यापार को भारी धक्का पहुंचाया है। विकसित राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठनों के माध्यम से अर्द्ध-विकसित देशों पर अनुचित प्रभाव डालकर उनकी नियोजन उद्देश्य एवं प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

(8) व्यापार की शर्तों का प्रभाव–जब औद्योगिक रूप से विकसित एवं प्राथमिक उत्पादन करने वाले अर्द्ध-विकसित देशों के बीच व्यापार होता है तो व्यापार शर्तें हमेशा औद्योगिक राष्ट्रों के पक्ष में हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि प्राथमिक वस्तुओं के मूल्यों में काफी अस्थिरता होती है जबकि औद्योगिक वस्तुओं में तुलनात्मक रूप से अस्थिरता होती है। दूसरी बात यह है कि प्राथमिक उत्पादन की मांग एक निश्चित सीमा तक ही होती है जबकि निर्मित वस्तुओं की मांग सदैव बनी रहती है। तीसरी बात यह है कि प्राथमिक उत्पादन को, अर्द्ध-विकसित देश, सस्ती कीमतों पर भी बेच देते हैं क्योंकि टिकाऊ न होने के कारण इनका संग्रह नहीं किया जा सकता जबकि विकसित देश निर्मित वस्तुओं का संग्रह कर सकते हैं और उसके लिए वांछित मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। जिस कच्चे माल का निर्यात अविकसित देश कर रहे हैं, उसका मूल्य उनको विकसित देशों द्वारा निर्यात किये जा रहे तैयार माल की तुलना में बहुत कम मिल पा रहा है। वास्तव में कच्चा माल और उस माल से तैयार किये गये सामान के मूल्यों में कोई नाम मात्र का भी अनुपात नहीं रहता। अत: **अनुकूल व्यापार की शर्तों के कारण विकसित देश विदेशी व्यापार से अधिक लाभ उठाते हैं जबकि प्रतिकूल व्यापार शर्तों के कारण, अर्द्ध-विकसित देशों को घाटा पड़ता है।**

(9) विकसित देशों द्वारा संरक्षणवादी नीति–विकासशील देशों के विदेशी व्यापार में बहुत बड़ा धक्का इसलिए भी लगा कि विकसित देशों ने विकासशील देशों के आयातों पर कई तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। विकसित देशों

नोट

की इन सरंक्षणात्मक नीतियों का विरोध करने के लिए विकासशील देशों के पास न तो आर्थिक क्षमता है और न राजनीतिक शक्ति।

अर्द्ध-विकसित देशों की विदेशी व्यापार सम्बन्धी समस्याओं को देखते हुए, तेजी से एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जा रही है जिसमें समृद्ध राष्ट्र विकासशील देशों को ऋणों में छूट देंगे, अधिक आयात करेंगे तथा निर्यात की कीमतों में कमी करेंगे, एवं कच्चे माल का उचित दाम देंगे तथा आवश्यक वस्तुओं के भण्डारण की ऐसी व्यवस्था करेंगे कि उनकी कीमतों में अनावश्यक उतार-चढ़ाव न हो। किन्तु विकसित और अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के स्पष्ट मतभेद उभरकर सामने आ गये हैं तथा यह बात साफ हो गयी है कि विश्व में एक नयी अर्थ-व्यवस्था के निर्माण के इच्छुक देशों को काफी संघर्ष करना पड़ेगा क्योंकि सरलता से वे अपने आपको विदेशी व्यापार एवं अन्य प्रकार के शोषण से मुक्त नहीं कर सकते।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **निम्नलिखित कथनों में ✓ अथवा ✗ का निशान लगाइए (State whether the following statements are 'tru' or 'false')—**
   1. सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दृष्टियों से विदेशी व्यापार आर्थिक विकास में बाधक है। ☐
   2. किसी देश के आर्थिक विकास में निर्यातों की वृद्धि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ☐
   3. अर्द्ध-विकसित देश केवल प्राथमिक वस्तुओं का ही उत्पादन करते हैं। ☐
   4. अनुकूल व्यापार की शर्तों के कारण विकसित देश विदेशी व्यापार से अधिक लाभ उठाते हैं। ☐
   5. अर्द्ध-विकसित देश केवल गिनी-चुनी वस्तुओं का निर्यात करते हैं। इनके व्यापार में विविधता नहीं होती। ☐

1.5 सारांश (Summary)

- नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि किसी देश के विकास में विदेशी व्यापार महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। **हैबरलर** एवं **केयरनक्रास** जैसे अर्थशास्त्रियों ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए विचार व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल उत्पादन को कुशलतम बनाने का ही उपाय नहीं वरन् विकास का इन्जन भी है।
- **प्रो. मिर्डल** ने यह मत व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के बजाय उनमें **दोहरी अर्थव्यवस्था** (Duaility) उत्पन्न की है।
- विदेशी व्यापार बाजार के आकार का विस्तार करके अर्थव्यवस्था पर प्रावैगिक प्रभाव डालता है।
- **एच. मिण्ट** के अनुसार, विदेशी व्यापार गतिशील उत्पादकता के सिद्धान्त पर आधारित है जो श्रम-विभाजन की सम्भावनाओं को बढ़ाता है।
- अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों **राउल प्रेबिश, सिंगर, मिर्डल, मिण्ट,** आदि ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में अवरोधक माना है।
- सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से विदेशी व्यापार को आर्थिक विकास में अवरोधक नहीं कहा जा सकता।
- अर्द्ध-विकसित देशों में जब औद्योगीकरण प्रारम्भ होता है तो मशीनों और उच्च-तकनीक की भी आवश्यकता होती है।
- विकसित राष्ट्रों द्वारा शोषण की प्रवृत्ति ने भी, अर्द्ध-विकसित देशों के व्यापार को भारी धक्का पहुंचाया है।
- अनुकूल व्यापार की शर्तों के कारण विकसित देश विदेशी व्यापार से अधिक लाभ उठाते हैं जबकि प्रतिकूल व्यापार शर्तों के कारण, अर्द्ध-विकसित देशों को घाटा पड़ता है।

1.6 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रतिधावन**—आक्रमण।
- **विवर्तित**—लुढ़कना, चक्कर लगाना, विकास।
- **प्रसरण**—फैलना, आगे बढ़ना।
- **प्रवसन**—विदेश जाकर बसना, अन्य स्थान पर बसना।

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. किस प्रकार व्यापार आर्थिक विकास का इंजन है? विस्तार से समझाइए।
2. विकासशील देश की विदेशी व्यापार संबंधी समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
3. किसी अर्द्ध-विकसित देश के आर्थिक विकास पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्या प्रभाव पड़ता है? समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. (क) 2. (ग) 3. (क) 4. (ख) 5. (क)

2. 1. ✗ 2. ✓ 3. ✗ 4. ✓ 5. ✓

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र:* डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–2: व्यापार से होने वाले लाभों का मापन (Measurement of Gains from Trade)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 व्यापार से होने वाले लाभों का मापन (Measurement of Gains from Trade)

2.2 लाभ की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining the Quantity of Gain)

2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्भावित और वास्तविक लाभ (Potential and Actual Gains from International Trade)

2.4 व्यापार से लाभ और आय वितरण (Gains from Trade and Income Distribution)

2.5 मुक्त व्यापार बनाम व्यापार नहीं (Free Trade Vs. No Trade)

2.6 प्रतिबन्धित व्यापार बनाम व्यापार नहीं (Restricted Trade Vs. No Trade)

2.7 छोटे एवं बड़े देशों को व्यापार से लाभ (Gains From Trade in Case of Small and Large Country)

2.8 स्थैतिक एवं प्रावैगिक लाभ (Static and Dynamic Gains)

2.9 सारांश (Summary)

2.10 शब्दकोश (Keywords)

2.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ का विश्लेषण करने में।
- लाभ की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्वों को समझने में।
- मुक्त व्यापार बनाम व्यापार नहीं और प्रतिबंधित व्यापार बनाम व्यापार नहीं की व्याख्या करने में।
- स्थैतिक एवं प्रावैगिक लाभ का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश के कुल कल्याण में वृद्धि होती है। इसके पहले **वाणिज्यवादियों** ने यह मत प्रतिपादित किया था कि यदि एक देश सदैव अन्य देशों को निर्यात करने में सफल होता है तो वह समृद्ध हो सकता है। इसे भी उन्होंने व्यापार के लाभ से सम्बन्धित किया, किन्तु इसका विरोध करते हुए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से केवल एक देश को ही नहीं वरन् सब देशों को लाभ होता है जिसका आधार है विशिष्टीकरण और उसके कारण बढ़ा हुआ उत्पादन। इसके अतिरिक्त, अन्य

नोट

अर्थशास्त्रियों–**मिल, मार्शल** (Marshall), **सेम्युलसन, केम्प** (Kemp) और **हैबरलर,** आदि ने भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को स्पष्ट किया है। प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देश विशिष्टीकरण के आधार पर उत्पादन एवं विनिमय करके अपने आर्थिक लाभ को अधिकतम करते हैं। आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ विनिमय से होने वाले लाभों और सामान्य सन्तुलन विशेषण पर आधारित विशिष्टीकरण से प्राप्त लाभों से सम्बद्ध हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अनेक आर्थिक लाभों को जन्म देता है जिसमें प्रमुख हैं–

(*i*) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन से विश्व के संसाधनों का सर्वोत्तम वितरण होता है जिससे उनका कुशलतम प्रयोग किया जा सकता है।

(*ii*) व्यापार से प्रत्येक देश में विनिमय की जा सकने वाली वस्तुओं के उत्पादन और मूल्य में वृद्धि होती है।

(*iii*) विश्व के कुल उत्पादन में वृद्धि होती है।

(*iv*) व्यापार के कारण प्रत्येक देश उपभोग की विभिन्न वस्तुएँ अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकता है।

(*v*) प्रत्येक देश के कल्याण में वृद्धि होती है तथा विश्व की समृद्धि बढ़ती है।

2.1 व्यापार से होने वाले लाभों का मापन (Measurement of Gains from Trade)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार (1) तुलनात्मक लागत के लाभ पर आधारित विशिष्टीकरण ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ का प्रमुख स्रोत है। इसके अतिरिक्त, दूसरा प्रमुख स्रोत है (2) बाह्य और आन्तरिक बचतों को प्राप्त करना जो विशिष्टीकरण के फलस्वरूप बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त होती है। बाजार के विस्तार का भी बचतों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। **एडम स्मिथ** इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि श्रम-विभाजन, बाजार के विस्तार द्वारा सीमित होता है। (3) बाजार के विस्तार से जब उत्पत्ति का पैमाना बढ़ता है तो श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है जिससे उत्पादन लागत घटती है और वस्तु का मूल्य घट जाता है। यह भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ है।

रिकार्डो के अनुसार तुलनात्मक लागत सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि व्यापार से दोनों देशों को लाभ होता है भले ही उनमें से एक देश दोनों वस्तुओं को सस्ते में बना सकता है।

जैकब वाइनर के अनुसार, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभों की गणना करने के लिए तीन भिन्न विधियों का अनुसरण किया जो इस प्रकार हैं :

(1) **तुलनात्मक लागत** की विधि जिसके अन्तर्गत लाभ का मुख्य आधार है निश्चित वास्तविक आय प्राप्त करने के लिए कुल वास्तविक लागत में मितव्ययता।

(2) **व्यापार की शर्तें**–अन्तर्राष्ट्रीय वितरण और लाभ की प्रवृत्ति की सूचक।

(3) देश की **वास्तविक आय में वृद्धि** लाभ का आधार।

उल्लेखनीय है कि क्लासिकीय अर्थशास्त्री इन तरीकों को पूरी तरह स्पष्ट किए बिना ही इन्हें आपस में मिला दिया करते थे। परन्तु जब से मिल ने अपना पारस्परिक मांग का सिद्धान्त प्रस्तुत किया तब से व्यापार के लाभों को मापने के लिए व्यापार शर्तों का तरीका ही अपनाया जाता है।

(अ) रिकार्डो का दृष्टिकोण (Ricardo's Approach)

रिकार्डो के अनुसार कोई देश उन वस्तुओं को निर्यात करेगा जिनमें उसकी तुलनात्मक उत्पादन लागतें कम होंगी और उन वस्तुओं को आयात करेगा जिनमें उसकी उत्पादन लागतें ऊँची होंगी। "इस प्रकार देश अपने संसाधनों के प्रयोग में किफायत करता है जिससे साधनों की दी हुई मात्रा के बदले वह उसकी अपेक्षा अधिक आय प्राप्त करता है जो उसे तब प्राप्त होती है जब वह हर वस्तु का उत्पादन स्वयं करता है।

नोट

प्रोफेसर रोनाल्ड फिण्डले ने अपनी पुस्तक *Trade and Specialisation* (1970) में रिकार्डो के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ के सिद्धान्त को चित्र 2.1 की सहायता से स्पष्ट किया है। व्यापार से पहले की स्थिति में, AB उस देश का उत्पादन सम्भावना वक्र है जो श्रम आगत की मात्रा के दिए हुए होने पर, दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन करता है। AB वक्र पर, देश बिन्दु E पर सन्तुलन में है। व्यापार में शामिल होने के बाद CB रेखा की ढाल (slope) इस देश का अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात प्रदर्शित करती है। मान लीजिए कि यह देश CB रेखा के बिन्दु F पर सन्तुलन में है। यदि F पर संयोग द्वारा व्यक्त X तथा Y की मात्राओं का देश में ही उत्पादन करना है, तो श्रम आगत की मात्रा को इतना बढ़ाना पड़ेगा जो घरेलू उत्पादन सम्भावना वक्र को AB से सरकाकर A′B′ पर पहुँचा दे। इस प्रकार व्यापार से होने वाले लाभ को BB′/OB मापेगा।

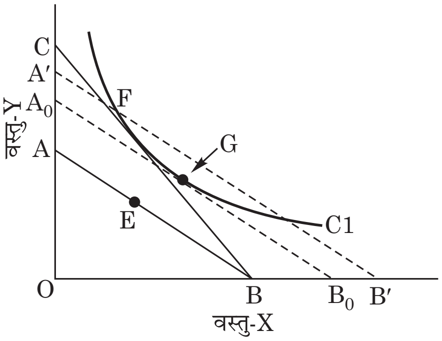

चित्र 2.1

> क्या आप जानते हैं प्रो. रोनाल्ड फिण्डले ने अपनी पुस्तक Trade and specialisation (1970) में रिकार्डो के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत पर स्पष्टीकरण दिया है।

माल्थस का दृष्टिकोण–माल्थस (Malthus) रिकार्डो के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। उनकी धारणा है कि रिकार्डो ने व्यापार से लाभों का बहुत ही अतिअनुमान किया है। माल्थस का मत है कि जब घरेलू उत्पादन सम्भावना वक्र सरक कर A′B′ पर चला जाएगा, तो सन्तुलन बिन्दु F नहीं होगा। CB पर सापेक्ष कीमतों की अपेक्षा A′B′ पर सापेक्ष कीमतें निर्यातित वस्तु X के अधिक अनुकूल होंगी, इसलिए उपभोक्ता F की बजाय A′B′ पर F के दाईं ओर किसी बिन्दु को अधिमान देगा। अत: CB पर व्यापार से लाभ को BB′/OB अनुपात में श्रम-आगत की वृद्धि द्वारा नहीं मापा जा सकता। इसका कारण यह है कि CB पर परिवर्तन की अपेक्षा A′B′ पर F के दाएं को परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होगा।

फिण्डले का दृष्टिकोण–प्रोफेसर रोनाल्ड फिण्डले ने समुदाय उदासीनता वक्र CI को प्रयोग करके व्यापार से लाभ के रिकार्डो-माप का संशोधन किया है। यदि श्रम-आगत को इतना बढ़ा दिया जाए कि वह उत्पादन सम्भावना वक्र को A′B′ की बजाय A_0B_0 तक धकेलने के लिए पर्याप्त हो तो CI वक्र पर G बिन्दु प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही श्रेष्ठ स्थिति में पहुँचा देगा जितना कि वह स्वतन्त्र व्यापार-बिन्दु F पर है। इसलिए व्यापार से जो लाभ होगा वह अपेक्षाकृत अधिक लाभ BB′/OB की बजाय BB_0/OB के बराबर होगा। इस माप से उस आलोचना का समाधान हो जाता है जो माल्थस ने रिकार्डो पर की है।

(ब) मिल का दृष्टिकोण (Mill's Approach)

जे. एस. मिल ने अपने पारस्परिक मांग के सिद्धान्त के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ का तथा उस लाभ के वितरण का भी विश्लेषण किया है। मिल का मत है कि पारस्परिक मांग व्यापार की शर्तों को निर्धारित करती है, जो कि आगे प्रत्येक देश के व्यापार से लाभों के वितरण को निर्धारित करती है। 'व्यापार की शर्तें' शब्दबन्ध दो देशों के बीच वस्तु विनिमय की शर्तों को बताता है, अर्थात् किसी देश के निर्यातों को दी हुई मात्रा के लिए आयातों की मात्रा के अनुपात को निर्दिष्ट करता है।

> नोट्स मिल का मत है कि पारस्परिक मांग व्यापार की शर्तों को निर्धारित करती है, जो कि आगे प्रत्येक देश के व्यापार से लाभों के वितरण को निर्धारित करती है।

नोट

एक उदाहरण लीजिए। देश A में श्रम की दो इकाइयाँ वस्तु X की 10 इकाइयों और वस्तु Y की 10 इकाइयों का उत्पादन करती हैं, जबकि देश B में वही श्रम 6X तथा 8Y का उत्पादन करता है। घरेलू विनिमय अनुपात (अथवा घरेलू व्यापार-शर्तें) देश A में 1X = 1Y है और देश B में 1X = 1.33Y है। इसका मतलब है कि X की एक इकाई को देश A में Y की एक इकाई से और देश B में Y की 1.33 इकाइयों से विनिमय किया जा सकता है। इस प्रकार दो देशों के बीच व्यापार की शर्तें 1X अथवा 1Y अथवा 1.33Y के बीच कहीं होंगी।

परन्तु वास्तविक विनिमय अनुपात पारस्परिक माँग पर निर्भर करेगा, अर्थात् "दो परस्पर व्यापार कर रहे देशों की उनके अपने उत्पादन के रूप में एक-दूसरे के उत्पादन की माँग की सापेक्ष शक्ति और लोच पर वास्तविक विनिमय अनुपात निर्भर करेगा। यदि वस्तु Y के लिए देश A की माँग अधिक गहन (बेलोच) है तो व्यापार की शर्तें 1X = 1Y के अधिक निकट होंगी। व्यापार की शर्तें B के अधिक अनुकूल और A के अधिक प्रतिकूल होंगी। B को अधिक लाभ होगा और A को कम। दूसरी ओर, यदि वस्तु Y के लिए देश A की माँग कम गहन (अधिक लोचदार) है तो व्यापार की शर्तें 1X = 1.33Y के अधिक निकट होंगी व्यापार की शर्तें A के पक्ष में और B के प्रतिकूल हो जाएँगी। A को अधिक लाभ होगा और B को कम।

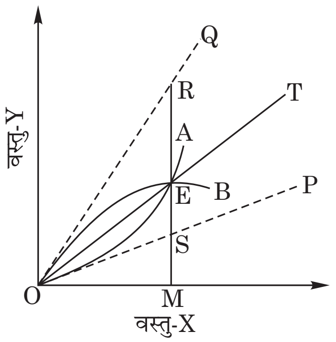

चित्र 2.2

व्यापार से लाभों के वितरण को चित्र 2.2 में **मार्शल एजवर्थ** प्रस्ताव वक्रों के रूप में स्पष्ट किया गया है। OA देश A का और OB देश B का प्रस्ताव वक्र है। OP तथा OQ क्रमश: देश A तथा B में वस्तु X तथा Y के उत्पादन के घरेलू स्थिर लागत अनुपात हैं। ये रेखाएँ वास्तव में वे सीमाएँ हैं जिनके बीच दोनों देशों की व्यापार शर्तें स्थित हैं, परन्तु व्यापार की वास्तविक शर्तें बिन्दु E पर तय होती हैं जहाँ OA तथा OB वक्र परस्पर काटते हैं। OT रेखा E बिन्दु पर व्यापार की सन्तुलन शर्तों को व्यक्त करती है।

देश A के भीतर लागत अनुपात Y की MS इकाइयाँ : X की OM इकाइयाँ हैं, परन्तु व्यापार से इसे Y की ME इकाइयाँ प्राप्त होती हैं। इसलिए इसे Y की SE इकाइयों का लाभ होता है। देश B के भीतर लागत अनुपात Y की MR इकाइयाँ : X की OM इकाइयाँ हैं, परन्तु यह Y की ME मात्र इकाइयों के बदले देश A से X की OM इकाइयाँ आयात करता है। इसे Y की ER इकाइयों का लाभ होता है। इस प्रकार व्यापार में प्रवेश करने से दोनों देशों को लाभ होता है।

(स) आधुनिक दृष्टिकोण (Modern Approach): आधुनिक व्यापार सिद्धान्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को स्पष्ट रूप से विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ में विभक्त किया गया है। माँग और पूर्ति के आधार पर इस विश्लेषण को बन्द अर्थव्यवस्था के सामान्य सन्तुलन के रूप में स्पष्ट किया जाता है। यह एक तो रूपान्तरण वक्र को समुदाय उदासीनता वक्र के स्पर्श द्वारा और दूसरे उपभोग एवं उत्पादन वस्तुओं की स्थानापन्नता की सीमान्त दरों की घरेलू व्यापार शर्तों अथवा वस्तु कीमत अनुपात के साथ समानता द्वारा होता है। "जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शुरू किया जाता है तो विनिमय से भी लाभ होता है और विशिष्टीकरण से भी लाभ होता है। जब सन्तुलन स्थापित हो जाता है और ये लाभ अधिकतम हो जाते हैं, तो उत्पादन में रूपान्तरण की नई सीमान्त दर और उपभोग में स्थानापन्नता की नई सीमान्त दर अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात अथवा व्यापार की शर्तों के बराबर होती है।" इस प्रकार व्यापार से पहले के स्तर की अपेक्षा अधिक उत्पादन तथा उपभोग करके उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ प्राप्त करते हैं।

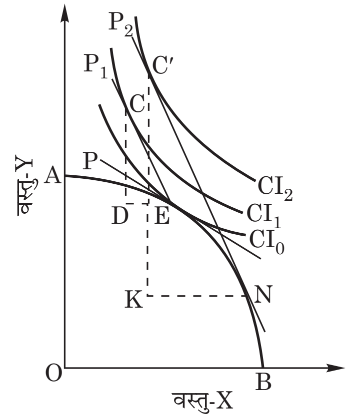

चित्र 2.3

चित्र 2.3 में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों की व्याख्या की

नोट

गई है। AB रूपान्तरण वक्र है जो अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष को प्रदर्शित करता है और CI_0 समुदाय उदासीनता वक्र है जो अर्थव्यवस्था के पक्ष को व्यक्त करता है। बन्द अर्थव्यवस्था (व्यापार न करने वाली अर्थव्यवस्था) के सन्तुलन को बिन्दु E प्रदर्शित करता है जहाँ AB तथा CI_0 वक्र एक दूसरे को स्पर्श करते हैं और दोनों ही व्यापार की घरेलू शर्तों अथवा वस्तु कीमत अनुपात रेखा P के बराबर हैं।

जब अन्तर्राष्ट्रीय (अथवा स्वतन्त्र) व्यापार शुरू होगा, तो अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात (व्यापार की शर्तें) घरेलू कीमत अनुपात (व्यापार की घरेलू शर्तों से भिन्न होंगी। इसे P_1 से दिखाया गया है जो घरेलू कीमत अनुपात P से अधिक तिरछा (Steeper) है। इसका मतलब है कि विश्व के बाजार में वस्तु Y के मुकाबले वस्तु X की कीमत बढ़ गई है। अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_1 पर, उपभोक्ता Cl_0 वक्र के बिन्दु E से अपेक्षाकृत अधिक ऊँचे समुदाय उदासीनता वक्र Cl_1 के बिन्दु C पर चले जाते हैं। बिन्दु E से C पर गति विनिमय से लाभ अथवा उपभोग लाभ को मापती है जो कि उत्पादन में किसी प्रकार का परिवर्तन हुए बिना ही होता है।

चूंकि विश्व के बाजार में X की कीमत बढ़ गई है, इसलिए उत्पादक इसका उत्पादन बढ़ाते हैं और Y का उत्पादन घटाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि रूपान्तरण वक्र पर बिन्दु E से N तक गति होती है जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_2 वक्र AB को स्पर्श करती है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन में रूपान्तरण की सीमान्त दर N बिन्दु पर अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात के बराबर हो जाती है। विश्व-व्यापार शर्तों का नया अनुपात P_2 वही है जो कि P_1 है, क्योंकि यह P_1 के समानान्तर है। बिन्दु N पर देश वस्तु Y के KC′ आयातों के बदले वस्तु X का NK निर्यात करता है।

X के उत्पादन में विशिष्टीकरण बढ़ने का परिणाम यह होता है कि उपभोग Cl_1 वक्र के बिन्दु C से सरक कर Cl_2 वक्र के बिन्दु C′ पर पहुँच जाता है, जहाँ पर उपभोक्ता X तथा Y दोनों ही अपेक्षाकृत अधिक मात्राओं का उपभोग करते हैं। C से C′ तक यह गति उत्पादन के विशिष्टीकरण से लाभ अथवा उत्पादन लाभ को मापती है। बिन्दु C′ पर स्थानापन्नता की सीमान्त दर और अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात बराबर है। इसलिए N तथा C′ बिन्दुओं पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ अधिकतम हो जाते हैं, क्योंकि उत्पादन में रूपान्तरण की सीमान्त दर और उपभोग में स्थानापन्नता की सीमान्त दर दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात P_2 के बराबर हैं। स्वतन्त्र व्यापार से जो कुछ लाभ होता है वह उपभोग तथा उत्पादन लाभों के योग के बराबर है जिसे दिखाने के लिए कल्याण में सुधार Cl_0 से Cl_2 दिखाया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ : सेम्युलसन के विचार

1939 में प्रकाशित अपने लेख *'The Gains From International Trade'* में प्रो. सेम्युलसन ने स्पष्ट किया कि आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की तुलना में कोई भी देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़कर लाभ प्राप्त कर सकता है।

सेम्युलसन की यह विचारधारा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

(1) अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित है।

(2) उत्पादन फलन विशेषकर तकनीकी स्तर पर अपरिवर्तनीय रहता है।

(3) स्थिर पैमाने के प्रतिफल लागू होते हैं।

(4) आगतों (Inputs) के मूल्य उनकी पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

(5) देश का आकार बहुत छोटा है और वह विश्व बाजार के मूल्यों को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता।

प्रो. सेम्युलसन ने 1962 में प्रकाशित अपने ही लेख *'The Gains From International Trade Once Again'* में अपनी पूर्व मान्यता (छोटे देश की मान्यता) का परित्याग करके बड़े देश को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाले लाभ का विवेचन किया और साथ ही यह स्पष्ट किया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश के कल्याण में वृद्धि होती है क्योंकि जब कोई बड़ा देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ता है तब उसकी व्यापारिक क्रियाओं का विस्तार होता है जिसके परिणामस्वरूप उसके आयात महँगे और निर्यात सस्ते हो जाते हैं।

केम्प ने अपनी पुस्तक में सेम्युलसन के सिद्धान्त की अधिक सामान्य एवं उत्कृष्ट व्याख्या की है। उन्होंने सेम्युलसन

नोट

के सिद्धान्त का विस्तार कर यह स्पष्ट किया है कि किसी भी आकार के देश के लिए न केवल क्षतिपूर्ति वाली स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति व्यापार न होने की तुलना में श्रेष्ठ है वरन् क्षतिपूर्ति वाला सीमित व्यापार (Compensated Restricted Trade) भी आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था से श्रेष्ठ है। **सेम्युलसन** के प्रमाण (Proof) का प्रयोग करते हुए **हैबरलर** ने रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया है कि स्वतन्त्र व्यापार से राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

व्यापार से लाभ के सम्बन्ध में हैबरलर का प्रमाण (Haberler's Proof of the Gain of Trade)–हैबरलर ने निम्न रेखाचित्र के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को स्पष्ट किया है–

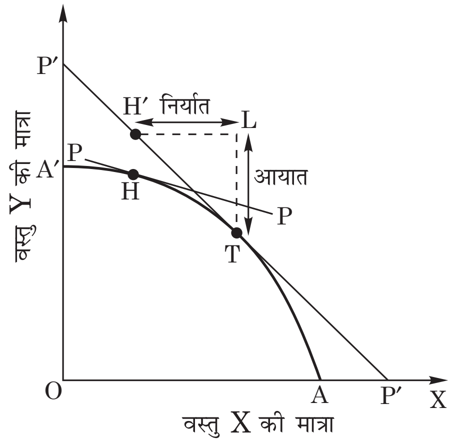

चित्र 2.4

रेखाचित्र में AA′ देश का उत्पादन सम्भावना वक्र है। व्यापार के पूर्व की स्थिति में H उत्पादन-उपभोग का सन्तुलन बिन्दु है तथा PH का ढाल व्यापार के पूर्व X और Y दोनों वस्तुओं के कीमत अनुपात को दर्शाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात P′P′ रेखा द्वारा दिखाया गया है। नयी कीमत रेखा पर उत्पादन सन्तुलन बिन्दु T है तथा उपभोग बिन्दु H′ है। H′ बिन्दु पर देश X की H′L मात्रा का निर्यात करता है और Y की LT मात्रा का आयात करता है।

अब तटस्थता वक्र द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि बिन्दु H′ बिन्दु H की तुलना में श्रेष्ठ है। चूंकि H′ को स्पर्श करती हुई तटस्थता वक्र H की तुलना में ऊँची होगी अत: कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ होता है। चूंकि बिन्दु H से उत्पादन हटकर जब T बिन्दु पर सन्तुलित होता है, इसमें आय के पुनर्वितरण का प्रश्न पैदा होता है अत: **हैबरलर** तटस्थता वक्र के प्रयोग के पक्ष में नहीं है, किन्तु दूसरे प्रकार से भी H′ बिन्दु की श्रेष्ठता सिद्ध की जा सकती है। यदि H′ बिन्दु H के ऊपर एवं दाईं ओर है, तो स्पष्ट है कि व्यापार के पूर्व की तुलना में अब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से X और Y दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है। यही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विश्व कल्याण (International Trade and World Welfare): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बद्ध देशों में उत्पत्ति साधनों का कुशल आवंटन सम्भव हो जाता है और दोनों देश उन्हीं संसाधनों द्वारा उत्पादन बढ़ाने में सफल हो जाते हैं जिससे दोनों देशों के कल्याण स्तर में वृद्धि होती है। देशों के बीच होने वाला अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्पूर्ण विश्व स्तर पर कल्याण में वृद्धि के लिए सहायक है।

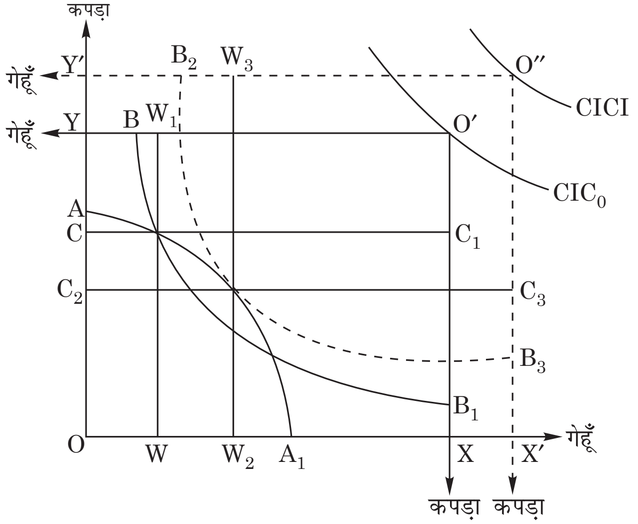

चित्र 2.5

चित्र 2.5 में विश्व के दो प्रतिनिधि देशों के रूप में देश A तथा B के बीच व्यापार से उत्पन्न कल्याण वृद्धि दर्शाई गई है। दोनों देश गेहूँ एवं कपड़े का उत्पादन करते हैं। चित्र में OX (एवं O′Y) अक्ष पर गेहूँ तथा OY (एवं O′X) अक्ष पर कपड़े को प्रदर्शित किया गया है। चित्र में AA_1 देश A का उत्पादन सम्भावना वक्र तथा BB_1 देश B का उत्पादन सम्भावना वक्र है। बिन्दु P पर देश A उत्पादन तथा उपभोग करता है–इस बिन्दु पर देश A गेहूँ की OW मात्रा तथा कपड़े की OC मात्रा का उत्पादन तथा

नोट

उपभोग कर रहा है। देश B का उत्पादन सम्भावना वक्र BB_1 है। एलवर्थ सन्दूक का प्रयोग करते हुए देश B के उत्पादन सम्भावना वक्र एवं अक्षों को उलट कर रखा गया है। देश B के लिए बिन्दु P पर गेहूँ के उत्पादन एवं उपभोग की मात्रा $O'W_1$ (अथवा WX) तथा कपड़े के उत्पादन एवं उपभोग की मात्रा $O'C_1$ (अथवा CX) है। इस पर दोनों देशों में गेहूँ का समग्र उत्पादन OX (= OW + WX) तथा कपड़े का समग्र उत्पादन OY (= OC + CY) है। इस समग्र उत्पादन के साथ दोनों देशों का समग्र कल्याण स्तर समुदाय उदासीनता वक्र CIC_0 द्वारा प्रदर्शित है।

बिन्दु पर दोनों देशों के लिए स्थायी सन्तुलन का बिन्दु नहीं है क्योंकि बिन्दु P पर दोनों देशों के रूपान्तरण की सीमान्त दर समान नहीं है जिसके कारण दोनों देशों में संसाधनों का आवंटन अनुकूलतम नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने की दशा में दोनों देश संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन करने में सफल हो जाते हैं जिससे दोनों देशों का समग्र उत्पादन गेहूँ एवं कपड़े के लिए क्रमशः OX' तथा OY' हो जाता है—इस उत्पादन स्तर पर दोनों देशों के उत्पादन सम्भावना वक्र एक-दूसरे को बिन्दु P_1 पर स्पर्श करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण वस्तुओं के समग्र उत्पादन में वृद्धि हो जाती है और समुदाय उदासीनता वक्र दाईं ओर खिसक कर CIC_1 हो जाता है। यह ऊँचा समुदाय उदासीनता वक्र कल्याण के ऊँचे स्तर का सूचक है।

इस पर, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व कल्याण में वृद्धि करने में सहायक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct option)

1. प्रो. सेम्युलसन अपने लेख 'The Gains from International Trade' में स्पष्ट किया कि, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की तुलना में कोई भी देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़कर लाभ प्राप्त कर सकता है। यह लेख प्रकाशित हुआ—

   (क) 1935 में (ख) 1936 में (ग) 1938 में (घ) 1939 में

2. अपनी पूर्व मान्यता (छोटे देश) का परित्याग कर बड़े देश को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाले लाभ का विवेचन अपने दूसरे लेख में प्रो. सेम्युलसन ने किया है। दूसरा लेख प्रकाशित हुआ—

   (क) 1959 (ख) 1960 (ग) 1962 (घ) 1963

3. सैम्युलसन की विचारधारा मान्यताओं पर आधारित है—

   (क) अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित है।

   (ख) स्थिर पैमाने के प्रतिफल लागू होते हैं।

   (ग) लागतों के मूल्य उनकी पूर्ति को प्रभावित नहीं करते।

   (घ) क और ख दोनों सही हैं।

4. सैम्युलसन के सिद्धांत की अपनी पुस्तक में अधिक सामान्य एवं उत्कृष्ट व्याख्या प्रस्तुत की—

   (क) रिकार्डो ने (ख) केम्प ने (ग) हैबरलर ने (घ) हैरड ने

2.2 लाभ की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining the Quantity of Gain)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ पर निम्न तत्वों का प्रभाव पड़ता है—

(1) (Difference in Cost Ratios)— के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाला लाभ इस बात पर निर्भर रहता है कि दो देशों में उत्पादन-लागत अनुपातों में क्या सम्बन्ध है। लाभ उसी समय सम्भव है जब दोनों देशों में लागत अनुपात भिन्न-भिन्न हों। दो देशों में

नोट

के अनुसार, "लाभ के कारण जब व्यापार का विस्तार किया जाता है तो एक ऐसी स्थिति आएगी जब एक देश की अनुपात लागत, दूसरे देश के बराबर हो जाएगी। एक देश को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में विस्तार और संकुचन उस समय तक करना चाहिए जब तक उस देश के लागत-अनुपात विदेश के लागत-अनुपात के बराबर नहीं हो जाते।"

(2) (Production Capacity of the Country)–अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ पर देश की उत्पादन क्षमता एवं उत्पादकीय कुशलता का प्रभाव भी पड़ता है। यदि एक देश की उत्पादन क्षमता एवं उत्पादकीय कुशलता बढ़ती है तो दूसरे देश को सस्ती वस्तुएँ आयात करके लाभ प्राप्त होगा फलस्वरूप इससे दूसरे देश के लिए व्यापार की शर्तें अधिक अनुकूल हो जायेंगी। उत्पादन क्षमता बढ़ने से दूसरे देश के लिए व्यापार की शर्तें इसलिए अनुकूल हो जाती हैं क्योंकि पहले देश में लागत और कीमतों में कमी होती है तथा व्यापार में विस्तार होता है जिससे दूसरे देश को लाभ होता है। इसके विपरीत, यदि एक देश की उत्पादन क्षमता एवं उत्पादकीय कुशलता घटती है तो दूसरे की हानि होगी क्योंकि इससे दूसरे देश की व्यापार शर्तें प्रतिकूल हो जाएँगी। तकनीकी प्रगति, प्रशिक्षित श्रम-शक्ति एवं नव-प्रवर्तन आदि कई कारणों से देश की उत्पादन क्षमता बढ़ सकती है।

(3) (Terms of Trade or Relative Elasticities of Demand and Supply)–व्यापार की शर्तों का आशय उस दर से है जिसके अनुसार एक देश की वस्तुओं का दूसरे देश की वस्तुओं से विनिमय होता है। व्यापार की शर्तें उन वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर रहती हैं जिनका व्यापार किया जाता है अत:

एक देश में दूसरे देश की वस्तु की माँग जितनी अधिक बेलोचदार होगी, पहले देश के लिए व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होंगी एवं माँग लोचदार होने पर व्यापार की शर्तें अनुकूल होंगी। के अनुसार, "व्यापार से उस देश को सबसे अधिक लाभ होता है जिसकी वस्तुओं की माँग विदेशों में अधिक होती है तथा स्वयं उसकी माँग विदेशी वस्तुओं के लिए कम होती है।" पूर्ति की लोच का भी व्यापार की शर्तों पर प्रभाव पड़ता है। यदि एक देश की निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की पूर्ति लोचदार है तो व्यापार की शर्तें उसके अनुकूल होंगी अन्यथा प्रतिकूल। उसी प्रकार देश जिन वस्तुओं का आयात करता है, यदि उनकी विदेशों में पूर्ति बेलोचदार है तो देश के लिए व्यापार की शर्तें अनुकूल होंगी अन्यथा प्रतिकूल।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यापार की शर्तें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ को प्रभावित करती हैं। व्यापार की शर्तों के अनुकूल होने की दशा में देश को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाला लाभ अधिक हो जाता है जबकि व्यापार शर्तों के प्रतिकूल होने पर मिलने वाले लाभ का आकार घट जाता है।

(4) (Level of Income)–किसी देश की मुद्रा आय का स्तर भी एक ऐसा कारक है जो व्यापार के लाभ और हिस्से को निर्धारित करता है। जिस देश की वस्तुओं की माँग अन्य देशों में स्थिर होगी उसका मौद्रिक आय का स्तर ऊँचा होगा। यदि उसके निर्यात अधिक होंगे, तो उसके निर्यात उद्योगों का विस्तार होगा। परिणामस्वरूप, इन उद्योगों में मुद्रा मजदूरी का स्तर बढ़ेगा। श्रम की प्रतियोगिता बढ़ेगी और अन्य उद्योगों को मजदूरी का स्तर बढ़ाकर निर्यात उद्योगों के मजदूरी स्तर तक लाना पड़ेगा। इस प्रकार, देश में मुद्रा आय का सामान्य स्तर बढ़ेगा, परन्तु देश में आयातित विदेशी वस्तुओं की कीमतें कम होंगी, जबकि लोगों की मौद्रिक आय का स्तर ऊँचा होगा। इसलिए देश के लोगों को लाभ होगा, क्योंकि वे सस्ती आयातित वस्तुओं का उपभोग करेंगे। इसके विपरीत जिस देश की विदेशी वस्तुओं के लिए माँग अधिक होगी, उसकी मौद्रिक आय कम होगी, क्योंकि विदेशी वस्तुओं के लिए उसकी माँग अधिक होगी, इसलिए विदेशी वस्तुओं की कीमतें अधिक होंगी। परिणाम यह होगा कि उस देश के लोगों को हानि होगी, क्योंकि वे महँगी आयातित वस्तुओं का उपभोग करेंगे।

(5) (Size of the Nation)–देश का आकार भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ को प्रभावित करता है। एक छोटे देश को बड़े देश की तुलना में अधिक लाभ मिलने की सम्भावना रहती है क्योंकि छोटा देश अपने विनिमय अनुपात में परिवर्तन किये बिना किसी एक वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण कर सकता है और उससे लाभ प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत बड़ा देश विशिष्टीकरण का लाभ नहीं उठा पाता क्योंकि विशिष्टीकरण के प्रयास में वस्तु की पूर्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है और विश्व बाजार में वस्तु का मूल्य घट जाता है जिसके

नोट

कारण व्यापार से बड़े देशों का लाभ भी कम हो जाता है।

(6) (Transport Cost)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाला लाभ परिवहन लागत से भी प्रभावित होता है। परिवहन लागत में कमी होने पर विदेशी व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाला लाभ भी अधिक हो जाता है। इसके विपरीत परिवहन लागत बढ़ जाने पर विदेशी व्यापार का क्षेत्र सीमित हो जाता है और विदेशी व्यापार से मिलने वाला लाभ भी घट जाता है।

(7) (Nature of Commodities Exported)—निर्यातित वस्तुओं की प्रकृति भी व्यापार के लाभ को निर्धारित करती है। एक देश जो मुख्यत: प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करता है उसके व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होती हैं। फलस्वरूप इस व्यापार से लाभ भी कम होता है। इसके विपरीत जो देश विनिर्मित वस्तुओं का निर्यात करते हैं उनकी व्यापार की शर्तें अनुकूल होती हैं और इसलिए उनके व्यापार से लाभ भी अधिक होते हैं।

(8) (Technological Conditions)—जो देश प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उन्नत और पूँजी प्रचुर होता है उसके व्यापार की मात्रा प्राय: बड़ी होती है और उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ भी अधिक होता है। इसके विपरीत यदि देश प्रौद्योगिकी की दृष्टि से पिछड़ा तथा श्रम प्रचुर रहे तो इसके व्यापार की मात्रा थोड़ी होगी तथा व्यापार से लाभ कम होगा।

2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्भावित और वास्तविक लाभ (Potential and Actual Gains from International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दो देशों में दो वस्तुओं को उत्पादित करने का

होता है। मान लीजिए X तथा Y दो वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है तथा दो देश A तथा B हैं, तब सम्भावित लाभ को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है–

$$G_P = \left[\frac{C_P}{C_Y}\right]_A - \left[\frac{C_X}{C_Y}\right]_B$$

जहाँ G_P = सम्भावित लाभ, C_X = वस्तु × की प्रति इकाई लागत, C_Y = वस्तु Y की प्रति इकाई लागत है तथा पद चिह्न A तथा B दोनों देशों से सम्बद्ध हैं।

इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दो व्यापार कर रहे देशों में

होता है। पुन: मान लीजिए दो देश A तथा B हैं जबकि दो वस्तुएँ X तथा Y हैं, तब वास्तविक लाभ को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है–

$$G_A = \left[\frac{P_X}{P_Y}\right]_A - \left[\frac{P_X}{P_Y}\right]_B$$

जहाँ G_A = वास्तविक लाभ, P_X = वस्तु X की प्रति इकाई कीमत तथा P_Y = वस्तु Y की प्रति इकाई कीमत।

जब दो देशों के बीच पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मुक्त व्यापार होता है तो प्रत्येक देश में दोनों वस्तुओं के लागत अनुपात और कीमत अनुपात बराबर होते हैं। इस स्थिति में सम्भावित लाभ और वास्तविक लाभ बराबर होते हैं। अर्थात्

$$\left[\frac{C_X}{C_Y}\right] = \left[\frac{P_X}{P_Y}\right] \quad \therefore \; G_A = G_P$$

परन्तु यदि प्रशुल्क एवं अन्य व्यापार प्रतिबन्ध उपस्थित होते हैं तथा वस्तु एवं साधन बाजारों में अपूर्णता विद्यमान रहती

नोट

है तो प्रत्येक देश में लागत और कीमत अनुपात बराबर नहीं होंगे। यदि कीमत अनुपात, लागत अनुपात से अधिक होता है तो वास्तविक लाभ सम्भावित लाभ से कम होगा–

$$\left[\frac{P_X}{P_Y}\right] > \left[\frac{C_X}{C_Y}\right] \therefore G_A > G_P$$

चूंकि विश्व बाजार में सदैव अपूर्ण प्रतियोगिता की दशा विद्यमान रहती है अत: अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वास्तविक लाभ, सम्भावित लाभ से सदैव कम बना रहता है।

2.4 व्यापार से लाभ और आय वितरण (Gains from Trade and Income Distribution)

जब एक देश अन्य देश के साथ व्यापार प्रारम्भ करता है तो उसे व्यापार से लाभ होता है। व्यापार से होने वाले लाभ के फलस्वरूप देश में आय-वितरण प्रभावित होता है।

ँ (Assumptions)

यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

1. A तथा B दो देश हैं। 2. एक देश छोटा है।
3. यह X तथा Y दो वस्तुओं का उत्पादन करता है।
4. सरकार एक परिभाषित कल्याण फलन के अनुरूप आय का वितरण करती है।

(Explanation)

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर व्यापार के लाभ से आय वितरण की व्याख्या को निम्न चित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है–

चित्र में वस्तु Y के उपभोग से देश A की उपयोगिता को क्षैतिज अक्ष पर तथा वस्तु X के उपभोग से देश B की उपयोगिता को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। व्यापार पूर्व दशा में, उनकी उपयोगिता सम्भावना सीमा BA है। यदि वे P संयोग का उपयोग करते हैं तो A की उपयोगिता B से अधिक होती है, क्योंकि देश A देश B की तुलना में Y वस्तु की अपेक्षा X वस्तु की अधिक मात्रा का उपभोग करता है, अर्थात् OX > OY यदि वे Q बिन्दु पर होते हैं तो दोनों वस्तुओं के उपभोग से उन्हें समान उपयोगिता प्राप्त होती है, अर्थात् $OX_1 = OY_1$ व्यापार पश्चात् जब देश को लाभ होता है तब उसकी उपयोगिता सम्भावना सीमा B_1A_1 है जो व्यापार से पूर्व की उपयोगिता सम्भावना सीमा BA को P बिन्दु पर स्पर्श करती है। वक्र B_1A_1 के बिन्दु P के ऊपर कोई अन्य बिन्दु जैसे त्रिभुज RQS पर बिन्दु E दोनों उपभोक्ताओं को पहले से अच्छी स्थिति में ला देगा, क्योंकि Q बिन्दु पर व्यापार पूर्व स्थिति (OX_1 तथा OY_1) की अपेक्षा वह X तथा Y की अधिक मात्राओं (OX_2 तथा OY_2) का उपभोग करता है।

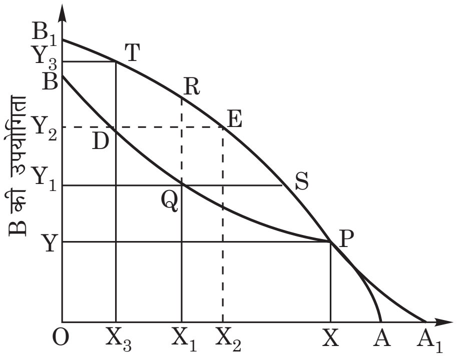

चित्र 2.6

व्यापार से लाभ के फलस्वरूप आय के वितरण में परिवर्तन होगा। मान लीजिए कि व्यापार पश्चात् स्थिति में उपभोक्ता B_1A_1 वक्र के T बिन्दु पर है जहाँ व्यापार-पूर्व स्थिति में बिन्दु D पर उपभोक्ता A की तुलना उपभोक्ता B अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में है। सरकार दोनों उपभोक्ताओं के बीच आय का पुनर्वितरण इस ढंग से करती है कि वे B_1A_1 वक्र के साथ बिन्दु E पर गति करते हैं। बिन्दु E इष्टतम है जहाँ कल्याण अधिकतम होता है, क्योंकि दोनों उपभोक्ता बिन्दु Q की अपेक्षा X तथा Y की अधिक मात्राओं (OX_2 तथा OY_2) का उपभोग करते हैं।

नोट

2.5 मुक्त व्यापार बनाम व्यापार नहीं (Free Trade *Vs.* No Trade)

सैम्युलसन ने दो लेख प्रस्तुत किए (*i*) *The Gains from International Trade* (1939) और (*ii*) *The Gains from International Trade Once Again* (1962), उसने इन लेखों में सिद्ध किया है कि 'व्यापार नहीं' की अपेक्षा 'मुक्त व्यापार' श्रेष्ठ है *(Free trade is superior to no trade)* ।

मुक्त व्यापार से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें वस्तुओं की घरेलू और विश्व-कीमतें बराबर हों। यह प्रस्थापना सिद्ध करने के लिए कि व्यापार नहीं की अपेक्षा मुक्त व्यापार श्रेष्ठ है, निम्नलिखित मान्यताएँ रखी गयी हैं–

1. कोई परिवहन लागतें नहीं हैं।
2. उत्पादन के साधनों की पूर्ति स्थिर है।
3. न तो कोई व्यापार उत्पादन और उपभोग करते हैं, और न ही कोई सहायिकी तथा कोटे (Quotas) हैं।
4. व्यापार में एकाधिकार शक्ति का अभाव है।
5. प्रौद्योगिकी ऐसी है जिससे नतोदर (concave) उत्पादन सम्भावना वक्र प्राप्त होता है।
6. पूर्ण प्रतियोगिता है।
7. देश छोटा है।

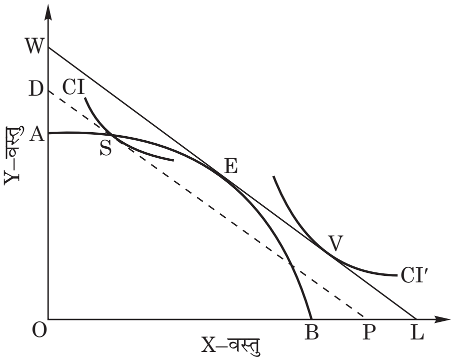

चित्र 2.7

इन मान्यताओं के दिए हुए होने पर, प्रस्थापना को चित्र 2.7 की सहायता से सिद्ध किया जा सकता है। चित्र में मान लिया गया है कि घरेलू देश केवल दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन करता है। जब व्यापार नहीं होता, तो घरेलू देश का उत्पादन सम्भावना वक्र ASEB है। DP रेखा घरेलू कीमत अनुपात प्रदान करती है, जो बताती है कि देश में उत्पादन और उपभोग बिन्दु S पर हो रहे हैं। जब व्यापार प्रारंभ होता है तो WL (DP के समानांतर) रेखा की ढलान विश्व-कीमत अनुपात दर्शाती है। WL वक्र अर्थव्यवस्था का उत्पादन सम्भावना वक्र है। इस वक्र पर कोई भी बिन्दु X तथा Y वस्तुओं के उस संयोग से प्राप्त होता है जिसे बिन्दु E निर्धारित करता है जहाँ उत्पादन सम्भावना वक्र AB वक्र WL को स्पर्श करता है। बिन्दु E अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिकतम दक्ष उत्पादन बिन्दु को व्यक्त करता है। अधिकतम उपभोग बिन्दु V पर होता है जहाँ WL वक्र CI′ वक्र को स्पर्श करता है जो सामाजिक कल्याण को प्रदर्शित करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मुक्त व्यापार के अन्तर्गत देश बिन्दु E पर X तथा Y दोनों वस्तुओं का उसकी अपेक्षा अधिक उत्पादन करता है जो वह व्यापार-नहीं के अन्तर्गत बिन्दु S पर करता है और फिर, मुक्त व्यापार के अन्तर्गत उपभोग सम्भावना सीमा WEL व्यापार-नहीं के अन्तर्गत उपभोग सम्भावना सीमा AEB के बाहर स्थिर रहती है, सिवाय बिन्दु E के जो दोनों सीमाओं का सामान्य स्पर्श-बिन्दु है। इन तथ्यों से यह प्रस्थापना सिद्ध होती है कि व्यापार-नहीं की अपेक्षा मुक्त व्यापार श्रेष्ठ है।

2.6 प्रतिबन्धित व्यापार बनाम व्यापार नहीं (Restricted Trade *Vs.* No Trade)

की धारणा है कि व्यापार-नहीं की अपेक्षा प्रतिबन्धित व्यापार श्रेष्ठ होता है बशर्ते कि प्रतिबन्ध निषेधकारी न हों और प्रशुल्कों, कोटा (quotas) अथवा विनिमय नियन्त्रणों के रूप में हों। इसे चित्र 2.8 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जहाँ अर्थव्यवस्था के व्यापार-नहीं सन्तुलन को बिन्दु E द्वारा दिखाया गया है, जहाँ उत्पादन सम्भावना वक्र AB तथा समुदाय उदासीनता वक्र CI_0 एक दूसरे को स्पर्श करते हैं और दोनों ही घरेलू कीमत रेखा

P की ढलान के बराबर हैं। मुक्त व्यापार के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_1 पर वक्र Cl_1 के E बिन्दु से वक्र Cl_1 तक गति द्वारा उपभोग लाभ को प्रदर्शित किया गया है, और विशिष्टीकरण से अतिरिक्त लाभ को C से C″ पर गति द्वारा दिखाया गया है, जब अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_3 उत्पादन सम्भावना वक्र AB को N पर तथा CL_3 वक्र को C″ पर स्पर्श करती है।

मान लीजिए कि अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात के दिए हुए होने पर देश अनिषेधकारी (non-prohibitive) प्रशुल्क लगाता है। परिणामस्वरूप PT रेखा की ढलान पर घरेलू उत्पादन को प्रदर्शित करती है और उत्पादन N बिन्दु से सरक कर N′ पर पहुँच जाता है। N′ पर नई घरेलू कीमत रेखा, जिसमें प्रशुल्क PT शामिल है, उत्पादन सम्भावना वक्र AB को स्पर्श करती है। प्रतिबन्धित व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_2 पर होगा जो कि P_3 के समानान्तर है। उपभोग Cl_2 वक्र पर सरक कर C′ पर चला जाता है। इससे पता चलता है कि नियन्त्रित व्यापार के अन्तर्गत कल्याण Cl_2 रह जाता है। यह Cl_2 कल्याण Cl_3 कल्याण से कम है जो मुक्त व्यापार के अन्तर्गत था, परन्तु उस Cl_0 कल्याण से अधिक है जो व्यापार-नहीं के अन्तर्गत था। इससे सिद्ध होता है कि प्रतिबंधित व्यापार से मुक्त व्यापार अच्छा है और व्यापार-नहीं की अपेक्षा प्रतिबंधित व्यापार श्रेष्ठ है।

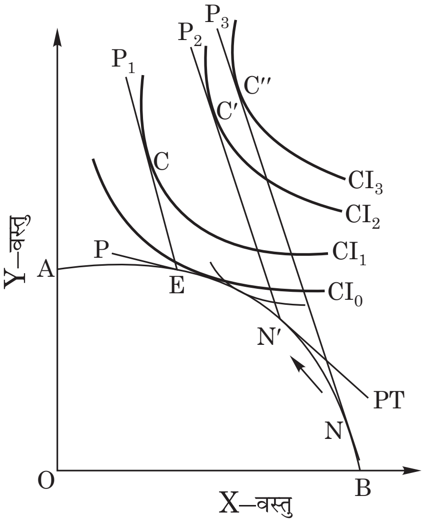

चित्र 2.8

टास्क 'व्यापार नहीं से प्रतिबंधित व्यापार श्रेष्ठ है।', इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

जगदीश भगवती ने अपने लेख *"The Gains from Trade Once Again"* (1968) में दिखाया है कि यह प्रस्थापना कि व्यापार-नहीं की अपेक्षा प्रतिबन्धित व्यापार श्रेष्ठ है तभी तक सही है जब कोटा प्रशुल्क अथवा विनिमय नियन्त्रणों के रूप में लगाए गए प्रतिबन्ध उन विदेशी कीमतों तथा घरेलू कीमतों में अन्तर उत्पन्न करें जिनका उपभोक्ताओं और उत्पादकों दोनों को सामना करना पड़ रहा है, परन्तु आयातों (अथवा विकल्पत: निर्यातों) पर उत्पादन सहायिकी (subsidy) (अथवा विकल्पत: कर) के द्वारा व्यापार को प्रतिबन्धित किया जाता है, तो का सिद्धान्त खरा नहीं उतरता। चित्र 2.9 में आयात वस्तु Y (अनुलम्ब अक्ष) पर उत्पादन सहायिकी की स्थिति स्पष्ट की गई है। जब व्यापार-नहीं की स्थिति है, तो Cl_0 वक्र कल्याण-स्तर को व्यक्त करता है। मुक्त व्यापार के अन्तर्गत P_1 रेखा की ढलान द्वारा मापे गए

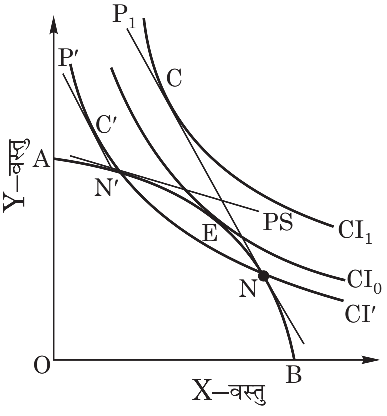

चित्र 2.9

अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात के दिए हुए होने पर, कल्याण Cl_0 से बढ़कर Cl_1 पर पहुँच जाता है। जब उत्पादन सहायिकी चालू की जाती है तो उत्पादन N से सरक कर N_1 पर चला जाता है और उपभोग C से कम होकर C′ हो जाता है। परिणामस्वरूप, कल्याण घट कर मुक्त व्यापार स्तर से नीचे तथा व्यापार-नहीं स्तर से नीचे आ जाता है, Cl′ वक्र Cl_0 से नीचे है। इससे सिद्ध होता है कि प्रतिबन्धित व्यापार की स्थिति व्यापार-नहीं से घटिया है।

नोट

मुक्त व्यापार से प्रतिबन्धित व्यापार श्रेष्ठ: देश बड़ा होने की दशा में (Restricted Trade Superior to Free Trade : Case of a Large Country)

ऊपर जो स्थितियाँ दी गई हैं वे एक छोटे देश से सम्बन्ध रखती हैं। छोटा देश विश्व की कीमतों को प्रभावित नहीं कर पाता। यदि हम यह मान लें कि देश बड़ा है तो जब यह कोई प्रशुल्क लगाएगा तो वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों को प्रभावित करेगा। प्रशुल्क के परिणामस्वरूप चित्र 2.10 में उत्पादन N से N′ पर चला जाता है जहाँ प्रशुल्क सहित घरेलू कीमत रेखा RT उत्पादन सम्भावना वक्र AB को स्पर्श करती है, चूंकि देश बड़ा है, इसलिए आयात योग्य वस्तु Y पर प्रशुल्क लगाने से विश्व के बाजारों में Y की कीमत कम हो जाएगी। इसे अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा P_4 प्रदर्शित करती है जो कि प्रशुल्क-पूर्व विश्व कीमत रेखा P_3 के मुकाबले अधिक तिरछी है। इससे स्पष्ट होता है कि कल्याण C″ से बढ़कर C‴ हो गया है और सिद्ध होता है कि मुक्त व्यापार से प्रतिबन्धित व्यापार श्रेष्ठ है, Cl_3 वक्र की अपेक्षा Cl_4 वक्र ऊँचा है।

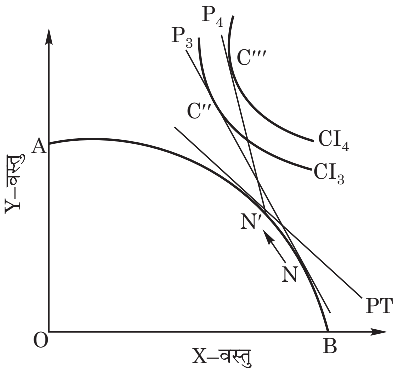

चित्र 2.10

2.7 छोटे एवं बड़े देशों को व्यापार से लाभ (Gains from Trade in Case of Small and Large Country)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से एक बड़े देश की अपेक्षा छोटे देश को अधिक लाभ होता है। छोटे देश में संसाधनों की कमी रहती है तथा उसके घरेलू बाजार का आकार भी प्राय: सीमित होता है। अत: यहाँ घरेलू विशिष्टीकरण और विनिमय के लाभ सीमित होते हैं। इसके विपरीत एक बड़े देश के पास संसाधनों की प्रचुरता रहती है तथा इसका घरेलू बाजार भी बड़ा होता है। अत: वह देश के अन्दर ही विशिष्टीकरण और विनिमय का लाभ प्राप्त कर लेता है।

जब दोनों देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार खुलता है तो छोटा देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करता है जिसमें उसे अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त होता है, और वह विश्व बाजार में अपने उत्पादनों का विनिमय करता है। विश्व बाजार की कीमतें, घरेलू बाजार की कीमतों से जितनी अधिक होंगी, छोटे देश को उतना ही अधिक लाभ प्राप्त होगा।   (Haller) के अनुसार यदि यह मान लिया जाए कि अवसर लागत स्थिर रहती है और बड़े देश को व्यापार शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं होता है, तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बड़े देश को कोई लाभ नहीं होता और छोटा देश ही सारे लाभ ले जाता है। इस स्थिति को चित्र 2.11-(A) तथा (B) द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

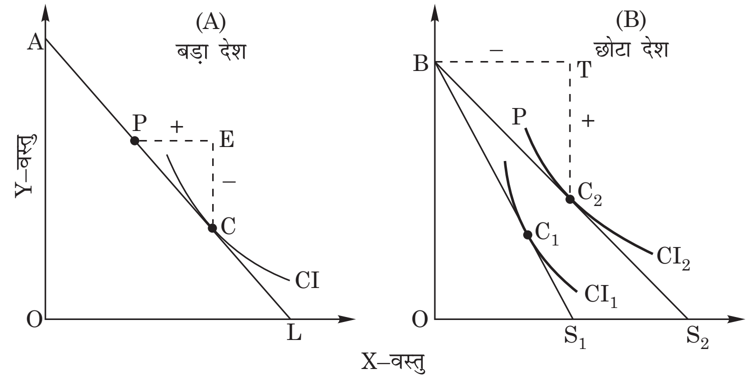

चित्र 2.11

नोट

चित्र–2.11 (A) में देश A (बड़ा देश) का उत्पादन सम्भावना वक्र AL है। व्यापार न होने की दशा में देश A बिन्दु C पर उत्पादन तथा उपभोग करता है, जहाँ समुदाय तटस्थता वक्र CI इस देश के उत्पादन सम्भावना वक्र AL को स्पर्श करता है। इसी तरह देश B (छोटा देश) बिन्दु C_1 पर उत्पादन तथा उपभोग करता है जहाँ समुदाय तटस्थता वक्र CI_1 इसके उत्पादन सम्भावना वक्र BS_1 को स्पर्श करता है जैसा कि चित्र 2.11 (B) में प्रदर्शित किया गया है। चूंकि A एक बड़ा देश है अत: AL वक्र द्वारा व्यक्त घरेलू कीमत अनुपात रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात रेखा माना जा सकता है। अब छोटे देश B के समक्ष एक सम्भावना यह प्रस्तुत होती है कि वह AL रेखा के समानान्तर BS_2 रेखा द्वारा व्यक्त अन्तर्राष्ट्रीय कीमत-अनुपात पर अपनी वस्तु का विनिमय करे। इस देश को तभी लाभ प्राप्त होगा जब यह केवल वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण करे और बिन्दु B पर उत्पादन करे। चित्र 2.11(B) में यह समुदाय तटस्थता वक्र Cl_2 के बिन्दु C_2 पर वस्तु X का उपभोग भी बढ़ा देता है। चूंकि बड़े देश के कीमत अनुपात (व्यापार शर्तों) में कोई परिवर्तन नहीं होता अत: यह केवल अपने उत्पादन ढांचे में परिवर्तन करता है ताकि छोटे देश के व्यापार आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। अत: यह बिन्दु P पर चला जाता है। छोटा देश बड़े देश को वस्तु Y की TC_2 मात्रा निर्यात करेगा जिसे चित्र 2.11 (A) में बड़े देश के EC आयात के रूप में प्रदर्शित किया गया है तथा बड़े देश से वस्तु X की TB मात्रा आयात करेगा जिसे बड़े देश के EP निर्यात के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस तरह, छोटे देश को बड़े देश से व्यापार करने से विशिष्टीकरण एवं विनिमय दोनों से लाभ हुआ है जबकि बड़े देश को किसी भी तरह का लाभ नहीं हुआ है।

2.8 स्थैतिक एवं प्रावैगिक लाभ (Static and Dynamic Gains)

व्यापार से होने वाले लाभों को स्थैतिक एवं प्रावैगिक लाभों में विभाजित किया जा सकता है।

(Static Gains)

व्यापार से होने वाले स्थैतिक लाभ इस प्रकार हैं–

1. (Maximisation of Production)–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की धारणा थी कि व्यापार से लाभ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण के लाभों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। एक देश में संसाधन और प्रौद्योगिकी दिए जाने पर व्यापार और तुलनात्मक लाभ के आधार पर उत्पादन में विशिष्टीकरण प्रत्येक देश को अपनी वस्तुएँ अन्य देश की वस्तुओं के साथ विनिमय करने की क्षमता प्रदान करता है। इस प्रकार यह व्यापार के बिना की तुलना में व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त करता है। प्रत्येक देश कम लागत से उत्पादित वस्तुओं को आयात करता है तथा अपनी अन्य सस्ती उत्पादित वस्तुओं का निर्यात करता है। इस तरह दोनों देश अपने उत्पादन को अधिकतम करते हैं।
2. (Vent for Surplus)–एक देश में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से पूर्व भूमि, श्रम तथा अन्य संसाधन निष्क्रिय पड़े रहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न होने के फलस्वरूप ये उत्पादन कार्य में प्रयुक्त होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संसाधन अभाव में यह अतिरेक बिना बिके रह जाएँगे। यह का व्यापार से अतिरेक का निर्गम कहलाता है।
3. (Increase in National Income)–व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण और वस्तुओं के विनिमय से जब एक देश लाभ प्राप्त करता है तो इसके फलस्वरूप उस देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। आगे चलकर देश के उत्पादन और अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर भी बढ़ती है।
4. (Increase in Welfare)–अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के फलस्वरूप व्यापार करने वाले देशों में वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होती है। इससे इन देशों में लोगों के उपभोग के स्तर में वृद्धि होती है और लोगों का कल्याण बढ़ता है।

(Dynamic Gains)

व्यापार से प्राप्त होने वाले प्रावैगिक लाभ निम्नवत् हैं–

1. (Efficient Utilisation of Resources)–विदेशी व्यापार का प्रत्यक्ष प्रावैगिक

नोट

लाभ यह होता है कि तुलनात्मक लाभ के फलस्वरूव विश्व के उत्पादन के संसाधनों का अधिक कुशल प्रयोग होने लगता है।

2. (Increase in Investment)—विदेशी व्यापार हेतु विभिन्न प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं एकत्रीकरण किया जाता है इससे नई-नई उत्पादक इकाइयों की स्थापना की जाती है। पूरक एवं सहायक इकाइयाँ भी स्थापित होती हैं। इसके साथ ही निर्यात एवं आयात को सुविधाजनक बनाने के लिए अन्य आर्थिक क्रियाओं का विकास भी होता है। इन सबके फलस्वरूप देश में स्वायत्त एवं प्रेरित निवेश में वृद्धि होती है।

3. (Wide Market)—विदेशी व्यापार का एक परोक्ष, परन्तु प्रमुख प्रावैगिक लाभ यह है कि इससे बाजार का विस्तार होता है। विशिष्टीकरण के क्षेत्र और बाजार के आकार का विस्तार करने से मशीनीकरण को बढ़ावा मिलता है, उत्पादन की नवीन विधियों का प्रयोग होता है, नव-प्रवर्तनों को प्रोत्साहन मिलता है, श्रम की उत्पादकता बढ़ती है, लागतें कम होती हैं तथा आर्थिक विकास की गति तेज होती है।

4. (Development of Other Activities)—जब एक देश निर्यात हेतु वस्तुओं का उत्पादन करता है तथा घरेलू उपभोग हेतु वस्तुओं का आयात करता है तो देश में अन्य आर्थिक क्रियाओं की भी प्रगति होती है। औद्योगिक केन्द्रों के साथ-साथ व्यापारिक केन्द्रों का विकास होता है। विद्युत, सड़क, पुल, आदि आधारभूत संरचना का निर्माण होता है। प्राथमिक क्षेत्र के विकास के साथ ही साथ बैंकिंग, बीमा, संचार जैसे सेवा क्षेत्र का भी विकास होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

(Fill in the blanks)

1. दो देशों में लागत अनुपात में जितना अधिक अंतर होगा .... से उन देशों को उतना ही अधिक लाभ प्राप्त होगा।
2. .... की शर्तें निर्यात कीमतों एवं आयात कीमतों के बीच संबंध को व्यक्त करती हैं।
3. .... से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें वस्तुओं की घरेलू और विश्व कीमतें बराबर हों।
4. .... की धारणा है कि व्यापार नहीं की अपेक्षा प्रतिबंधित व्यापार श्रेष्ठ है।
5. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से बड़े देश की अपेक्षा छोटे देश को अधिक .... होता है।

2.9 सारांश (Summary)

- प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देश विशिष्टीकरण के आधार पर उत्पादन एवं विनिमय करके अपने आर्थिक लाभ को अधिकतम करते हैं। आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ विनिमय से होने वाले लाभों और सामान्य सन्तुलन विशेषण पर आधारित विशिष्टीकरण से प्राप्त लाभों से सम्बद्ध हैं।
- रिकार्डो के अनुसार तुलनात्मक लागत सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि व्यापार से दोनों देशों को लाभ होता है भले ही उनमें से एक देश दोनों वस्तुओं को सस्ते में बना सकता है।
- आधुनिक व्यापार सिद्धान्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को स्पष्ट रूप से विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ में विभक्त किया गया है। माँग और पूर्ति के आधार पर इस विश्लेषण को बन्द अर्थव्यवस्था के सामान्य सन्तुलन के रूप में स्पष्ट किया जाता है।
- ने अपनी पुस्तक में सेम्युलसन के सिद्धान्त की अधिक सामान्य एवं उत्कृष्ट व्याख्या की है। उन्होंने सेम्युलसन के सिद्धान्त का विस्तार कर यह स्पष्ट किया है कि किसी भी आकार के देश के लिए न केवल क्षतिपूर्ति वाली स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति व्यापार न होने की तुलना में श्रेष्ठ है वरन् क्षतिपूर्ति वाला सीमित

नोट

व्यापार (Compensated Restricted Trade) भी आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था से श्रेष्ठ है। के प्रमाण (Proof) का प्रयोग करते हुए ने रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया है कि स्वतन्त्र व्यापार से राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बद्ध देशों में उत्पत्ति साधनों का कुशल आवंटन सम्भव हो जाता है और दोनों देश उन्हीं संसाधनों द्वारा उत्पादन बढ़ाने में सफल हो जाते हैं जिससे दोनों देशों के कल्याण स्तर में वृद्धि होती है। देशों के बीच होने वाला अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्पूर्ण विश्व स्तर पर कल्याण में वृद्धि के लिए सहायक है।
- सैम्युलसन ने दो लेख प्रस्तुत किए *(i) The Gains from International Trade* (1939) और *(ii) The Gains from International Trade Once Again* (1962), उसने इन लेखों में सिद्ध किया है कि 'व्यापार नहीं' की अपेक्षा 'मुक्त व्यापार' श्रेष्ठ है *(Free trade is superior to no trade)* ।
- मुक्त व्यापार से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें वस्तुओं की घरेलू और विश्व-कीमतें बराबर हों।
- की धारणा है कि व्यापार-नहीं की अपेक्षा प्रतिबन्धित व्यापार श्रेष्ठ होता है बशर्ते कि प्रतिबन्ध निषेधकारी न हों और प्रशुल्कों, कोटा (quotas) अथवा विनिमय नियन्त्रणों के रूप में हों।
- जगदीश भगवती ने अपने लेख *"The Gains from Trade Once Again"* (1968) में दिखाया है कि यह प्रस्थापना कि व्यापार-नहीं की अपेक्षा प्रतिबन्धित व्यापार श्रेष्ठ है तभी तक सही है जब कोटा प्रशुल्क अथवा विनिमय नियन्त्रणों के रूप में लगाए गए प्रतिबन्ध उन विदेशी कीमतों तथा घरेलू कीमतों में अन्तर उत्पन्न करें जिनका उपभोक्ताओं और उत्पादकों दोनों को सामना करना पड़ रहा है, परन्तु आयातों (अथवा विकल्पत: निर्यातों) पर उत्पादन सहायिकी (subsidy) (अथवा विकल्पत: कर) के द्वारा व्यापार को प्रतिबंधित किया जाता है, तो का सिद्धान्त खरा नहीं उतरता।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से एक बड़े देश की अपेक्षा छोटे देश को अधिक लाभ होता है। छोटे देश में संसाधनों की कमी रहती है तथा उसके घरेलू बाजार का आकार भी प्राय: सीमित होता है। अत: यहाँ घरेलू विशिष्टीकरण और विनिमय के लाभ सीमित होते हैं। इसके विपरीत एक बड़े देश के पास संसाधनों की प्रचुरता रहती है तथा इसका घरेलू बाजार भी बड़ा होता है। अत: वह देश के अन्दर ही विशिष्टीकरण और विनिमय का लाभ प्राप्त कर लेता है।

2.10 शब्दकोश (Keywords)

- गतिहीन, स्थिर।
- प्रवेग सम्बंधी।
- आवश्यकता से अधिक होना।

2.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ स्रोतों का वर्णन कीजिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्वों का विश्लेषण कीजिए।
3. व्यापार से लाभ और आय वितरण का विवेचन कीजिए।
4. मुक्त व्यापार बनाम व्यापार नहीं और प्रतिबंधित व्यापार बनाम व्यापार नहीं की व्याख्या करें।
5. छोटे एवं बड़े देशों को व्यापार से होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए।
6. स्थैतिक एवं प्रावैगिक लाभ का विवेचन करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1. (घ) 2. (ग) 3. (घ) 4. (ख)

2. 1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार 2. व्यापार 3. मुक्त व्यापार 4. ए.सी. कैम्प 5. लाभ

2.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई—3: स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत : निरपेक्ष लाभ, तुलनात्मक लाभ और अवसर लागत (Free Trade Theory : Absolute Advantage, Comparative Advantage and Opportunity Cost)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत (Free Trade Theory)

3.2 एडम स्मिथ का स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत (Free Trade Theory of Adam Smith)

3.3 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ का सिद्धांत (Smith's Theory of Absolute Advantage)

3.4 रिकार्डो का तुलनात्मक लाभ और अवसर लागत सिद्धांत (Ricardian Theory of Comparative Advantage and Opportunity Cost)

3.5 तुलनात्मक लागत सिद्धांत की व्याख्या (Explanation of Comparative Cost Theory)

3.6 तुलनात्मक लागत सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Comparative Cost Theory)

3.7 सारांश (Summary)

3.8 शब्दकोश (Keywords)

3.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

3.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- एडम स्मिथ के स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत एवं निरपेक्ष लाभ सिद्धांत को समझने में।
- रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ और अवसर लागत सिद्धांत को जानने में।
- तुलनात्मक लागत सिद्धांत की व्याख्या को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

वाणिज्यवादियों द्वारा लगाये गये आयात प्रतिबन्धों के विरोध में **एडम स्मिथ** ने मुक्त व्यवस्था का आह्वान किया तथा उनके अनुकूल व्यापार सन्तुलन की कटु आलोचना करते हुए **मुक्त व्यापार** का सिद्धांत प्रस्तुत किया।

1776 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations' में **एडम स्मिथ** ने वाणिज्यवादियों की राज्य शक्ति (State Power) की विचारधारा पर तीव्र प्रहार किया। **एडम स्मिथ** ने बताया कि प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति अपने हितों को अच्छी तरह जानता है वह अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बना सकता है तथा उसकी समृद्धि से सामाजिक कल्याण में भी वृद्धि होती है स्मिथ ने स्वतंत्र प्रतियोगिता का समर्थन

नोट

किया तथा इसमें सरकारी हस्तक्षेप की कटु आलोचना की। स्मिथ का अदृश्यशक्ति (Invisible Hand) में विश्वास था जो मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाती है।

3.1 स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत (Free Trade Theory)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत का सूत्रपात यद्यपि एडम स्मिथ ने किया, किन्तु एडम स्मिथ द्वारा स्थापित प्रतिष्ठित सम्प्रदाय से पूर्व भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विचार अस्तित्व में था। वणिकवादी युग (1500 से 1750 तक) में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को राष्ट्र की सम्पन्नता एवं शक्ति का आधार स्रोत माना गया। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांतों से पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की **वणिकवादी विचारधारा** का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की वणिकवादी विचारधारा (Mercantilistic Concept of International Trade)

इस विचारधारा का विकास पश्चिमी यूरोप में सन् 1500 से लेकर 1750 तक हुआ। इस युग में मध्ययुगीन परम्पराओं और सामंतवादी संस्थाओं के स्थान पर आधुनिक राष्ट्रवाद का विकास हुआ। इस विचारधारा ने अपने राष्ट्रवाद के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आर्थिक समृद्धि को एक आधार बनाया। इनका विश्वास था कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से ही किसी राष्ट्र को समृद्ध बनाया जा सकता है। अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए इन्होंने धन संचय पर जोर दिया। **इनका नारा था–अधिक स्वर्ण, अधिक सम्पत्ति, अधिक शक्ति। जोशिया चाइल्ड** के अनुसार, "विदेशी व्यापार धन उत्पन्न करता है, धन से शक्ति उत्पन्न होती है और शक्ति अपने व्यापार व धर्म का परीक्षण करती है।"

वाणिज्यवादी विचारक **टॉमस मन** का इस बात में अटूट विश्वास था कि वे सभी देश जिनके पास बहुमूल्य धातुओं की खानें नहीं हैं, व्यापार द्वारा विदेशों से स्वर्ण और चाँदी प्राप्त करके धनवान बन सकते हैं। देशों में मुद्रा और बहुमूल्य धातुओं को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक माना गया कि **व्यापार सन्तुलन अनुकूल** हो अर्थात् आयात की तुलना में अधिक निर्यात किया जाय। इसी विचारधारा के अन्य समर्थक **सर जोशिया चाइल्ड** ने बताया कि आयातों की अपेक्षा अधिक निर्यात करने से जो बचत सोना-चांदी के रूप में होती है, उससे खजाने में वृद्धि होती है–आयात कम करने के लिए विदेशी वस्तुओं का उपभोग न्यूनतम करना और निर्यात बढ़ाने के लिए निर्यात उद्योगों को संरक्षण, प्रोत्साहन देना आवश्यक है।

नियन्त्रण की अर्थव्यवस्था (Economy of Regulation)

वाणिज्यवादियों ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार को सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किये। उनका मत था कि मनुष्य की क्रियाओं को सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए तथा उन्हें राष्ट्रीय शक्ति के उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए। सरकारी नियन्त्रण के अतिरिक्त तत्कालीन अर्थव्यवस्था के लिए अन्य कोई विकल्प भी नहीं था क्योंकि उस समय विभिन्न शिल्प एवं उद्योग भी किसी न किसी रूप में नियन्त्रित थे। **एल्सबर्थ** के अनुसार, "वाणिज्यवादी दर्शन को एक रूप में परिभाषित किया जा सकता है–जिसने राष्ट्रीय शक्ति के उद्देश्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी एवं सम्पत्ति में वांछनीय वृद्धि करने के लिए आर्थिक जीवन के नियंत्रण को माध्यम बनाया।"

वणिकवादियों की अनुकूल व्यापार की विचारधारा (The Concept of Favourable Trade of Mercantilistic)

यहां वाणिज्यवादियों का अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपने उद्देश्यों के संदर्भ में एक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसका सार यह था–"विदेशी व्यापार से एक राष्ट्र उसी समय लाभ प्राप्त कर सकता है जब उसका व्यापार सन्तुलन अनुकूल है अथवा उसके निर्यातों का मूल्य आयात मूल्यों से अधिक है।" अनुकूल व्यापार सन्तुलन की विचारधारा वाणिज्यवादियों की इस भावना के अनुरूप है कि सोना

और चांदी सम्पत्ति के सबसे अधिक महत्वपूर्ण रूप हैं जिन्हें अनुकूल व्यापार सन्तुलन के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। वे निर्यात मूल्यों को अधिकतम करना चाहते थे। इसके लिए वे न केवल अधिक मात्रा में निर्यात करना चाहते थे वरन् कम मूल्यों के आयातों की तुलना में अधिक मूल्यों के निर्यात करना चाहते थे—इसके लिए उन्होंने कच्चे माल के निर्यात पर रोक लगा दी तथा उसे पक्के माल में निर्मित कर निर्यातों को प्रोत्साहन दिया। आयातों को वे न्यूनतम रखना चाहते थे एवं पक्के माल की तुलना में कच्चे माल के आयात को प्राथमिकता देते थे क्योंकि उसका मूल्य कम था।

वणिकवादी विचारक वान हार्निक (Mercantilistic Thinker Von Hornick) ने अनुकूल व्यापार सन्तुलन की व्याख्या इन शब्दों में की है, "देश में पायी जाने वाली वस्तुओं को, जिनका उपयोग प्राकृतिक रूप से नहीं किया जा सकता, देश में ही पक्के माल में परिवर्तित किया जाना चाहिए क्योंकि कच्चे माल की तुलना में निर्मित माल का मूल्य सौ गुना तक होता है। देश के निवासियों को अपना उपभोग देश में निर्मित वस्तुओं तक ही सीमित रखना चाहिए यहां तक कि विलासिताओं के लिए भी इन्हीं पर निर्भर रहना चाहिए और जहां तक सम्भव हो विदेशी वस्तुओं के बिना काम चलाना चाहिए। यदि आवश्यक ही हो तो विदेशी वस्तुओं को अनिर्मित रूप (Unfinished form) में ही आयात करना चाहिए तथा देश में उसे पक्के माल के रूप में बनाया जाना चाहिए ताकि उसके निर्माण की मजदूरी कमाई जा सके... बहुत आवश्यक स्थितियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी हालत में ऐसी वस्तुओं का आयात नहीं किया जाना चाहिए जिनकी कि देश में पर्याप्त पूर्ति है। एक वस्तु के लिए दो डॉलर देना बेहतर है यदि वे देश में ही रहते हैं अपेक्षाकृत एक डालर देने के लिए जो देश के बाहर चला जाता है।"

वणिकवादी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की विचारधारा का एक पहलू और महत्वपूर्ण है—वे न केवल व्यापार सन्तुलन से परिचित थे वरन् भुगतान सन्तुलन से भी अवगत थे। वे न केवल अपने माल के लिए विदेशियों से अधिक मूल्य लेते थे वरन् अदृश्य मदों (Invisible items) से भी अपने भुगतान को अधिकतम करना चाहते थे जैसे; माल-परिवहन का भाड़ा, बीमा भुगतान, यात्री-व्यय, विदेशों में कूटनीतिक और सैनिक व्यय, इत्यादि। अतः वाणिज्यवादियों का सन्तुलन केवल व्यापार सन्तुलन तक सीमित नहीं था वरन् उसमें समस्त प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय भुगतान का सन्तुलन शामिल था। इसलिए **वान हार्निक** कहते हैं कि "यदि निर्यात का माल हम अपने जहाजों से भेजते हैं तो हमारे निर्यात का मूल्य बढ़ सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में हमें न केवल अपने माल का मूल्य मिलता है, किन्तु माल को समुद्र पार ले जाने का किराया और बीमा-व्यय भी मिलता है।"

वणिकवादियों के व्यापार सिद्धांत की आलोचना (Criticism of Merchantistic Trade Theory)

वणिकवादियों ने मुद्रा और सम्पत्ति में कोई भेद नहीं किया तथा बहुमूल्य धातुओं को बहुत महत्व दिया एवं देश में सोने-चांदी की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने अनुकूल व्यापार सन्तुलन पर जोर दिया, परन्तु आगे चलकर इनके सिद्धांत की कटु आलोचना की गयी। अनुकूल व्यापार सन्तुलन की आलोचना इस आधार पर की गयी कि समस्त देशों के निर्यात अधिक हो तथा आयात कम हों, यह सम्भव नहीं है। कारण यह है कि जब एक देश अपने आयात को कम करने के लिए प्रतिबन्ध लगायेगा तो दूसरे देशों को नुकसान होगा क्योंकि वे कम माल निर्यात कर पायेंगे अतः दूसरे देश भी बदले अथवा देश हित की भावना से इसी नीति को अपनायेंगे जिसका प्रभाव यह होगा कि सभी देशों के निर्यात कम हो जायेंगे। वाणिज्यवादियों की यह बड़ी भूल थी कि वे आयात की तुलना में अधिक निर्यात करने की नीति को अपने व्यापार सिद्धांत का स्थायी पहलू बनाना चाहते थे।

आलोचकों का विचार था कि यदि प्रत्येक देश केवल निर्यात बढ़ाने की नीति अपनाएगा और आयातों को अपने संरक्षणवादी, उपायों द्वारा देश में आने से रोकेगा तो किये गये निर्यात किसी देश के आयात नहीं बन सकेंगे और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अवरुद्ध होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में एडम स्मिथ ने स्वतंत्र व्यापार नीति पर आधारित निरपेक्ष लाभ सिद्धांत प्रस्तुत किया।

नोट

3.2 एडम स्मिथ का स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत (Free Trade Theory of Adam Smith)

एडम स्मिथ ने एक व्यक्तिवादी आर्थिक प्रणाली का निर्माण किया जिसमें सरकारी नियन्त्रण को अनावश्यक बताया गया और प्रतिपादित किया गया कि **अहस्तक्षेप नीति** (Laissez faire) के अंतर्गत ही सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। **एडम स्मिथ** ने यह कहकर वाणिज्यवादी प्रणाली की आलोचना की कि उसमें उपभोक्ता के हितों को तिलांजलि देकर उत्पादक के हितों की रक्षा की जाती थी।

क्या आप जानते हैं **एडम स्मिथ** ने वाणिज्यवादियों के अनुकूल व्यापार सन्तुलन, आयातों पर प्रतिबन्ध तथा निर्यात प्रोत्साहन की तीव्र निन्दा की।

एडम स्मिथ ने स्वतन्त्र व्यापार को आर्थिक विकास के लिए आवश्यक शर्त स्वीकार किया क्योंकि स्वतंत्र व्यापार के कारण ही देश उन वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है जो न्यूनतम लागत पर तैयार की जा सकती है। **एडम स्मिथ** ने वाणिज्यवादियों के इस विचार को भी अस्वीकार कर दिया कि व्यापार से आपस में दोनों पक्षों को लाभ नहीं होता।

श्रम-विभाजन : एडम स्मिथ की विचारधारा का आधार (Division of Labour : Base of Adam Smith's Concept)

एडम स्मिथ ने श्रम विभाजन के महत्व को प्रतिपादित किया और बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के कारण ही विदेशी व्यापार से लाभ होता है। दो देशों के बीच व्यापार क्यों होता है, इसे समझाने के लिए उन्होंने निरपेक्ष लाभ के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। स्मिथ ने स्पष्ट किया कि यदि **श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण** (Division of Labour & Specialisation) का सहारा लिया जाए तो कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकती है और उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि इससे प्रत्येक राष्ट्र ऐसी वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है तो वह सबसे कम लागत पर बना सकता है। जब एक देश दूसरे देश की तुलना में एक वस्तु को सस्ता तैयार कर सकता है, तो दूसरे देश के लिए वह लाभदायक होगा कि उस वस्तु का निर्माण अपने देश में न करे वरन् पहले देश से खरीद ले। इसी प्रकार पहला देश, दूसरे देश से उस वस्तु को खरीद ले जो वह तुलनात्मक रूप से सस्ती बना सकता है। इस प्रकार स्मिथ के अनुसार देशों में होने वाले व्यापार से विश्व के उत्पादन के साधनों का कुशलतम वितरण सम्भव हो जाता है जिससे व्यापार करने वाले देशों की वास्तविक आय बढ़ती है।

एडम स्मिथ अपने स्वतन्त्र व्यापार की सीमाओं एवं अपवाद से भी अवगत थे। उन्होंने यह स्वीकार किया कि सुरक्षा उद्योगों को पूर्ण संरक्षण दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार ऊँची प्रशुल्क दरों का विरोध करने के लिए स्मिथ ने बदले की भावना का भी समर्थन किया। लेकिन इन अपवादों को छोड़कर स्मिथ ने स्वतन्त्र व्यापार में अन्य बन्धनों को स्वीकार नहीं किया। स्मिथ का विश्वास था कि विदेशी व्यापार से बाजार का विस्तार होता है जिससे उत्पादकता बढ़ती है। यह सब राष्ट्रों के हित में होता है कि वे साधनों को ऐसे उत्पादन में लगायें जिसमें उन्हें अन्य देशों की तुलना में लाभ हो तथा अपनी अन्य आवश्यकता की वस्तुओं को अन्य देशों से खरीद लें। विदेशी व्यापार के प्रमुख लाभ की चर्चा करते हुए **एडम स्मिथ** कहते हैं कि "इससे एक देश के उत्पादन का अतिरिक्त अंश जिसकी कि देश में मांग नहीं होती, विदेशों को भेजा जा सकता है तथा इसके बदले में उन वस्तुओं को खरीदा जा सकता है जिनकी देश में मांग होती है। इससे उनके अतिरिक्त उत्पादन का मूल्य प्राप्त होता है जिसका विनिमय उन वस्तुओं से किया जाता है जो उनकी आवश्यकताओं के एक अंश को पूर्ण करती है तथा आनन्द को बढ़ाती है।"

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. एडम स्मिथ ने एक ·········· आर्थिक प्रणाली का निर्माण किया।
2. स्मिथ ने .... के महत्त्व को प्रतिपादित किया।
3. स्मिथ ने स्पष्ट किया कि यदि .... का सहारा लिया जाय तो कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकती है और उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।
4. स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से अंतर्राष्ट्रीय .... को प्रोत्साहन मिलता है।
5. स्मिथ के अनुसार, विभिन्न देशों में होने वाले व्यापार से विश्व के उत्पादन के साधनों का कुशलतम .... सम्भव हो जाता है।

3.3 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ का सिद्धांत (Smith's Theory of Absolute Advantage)

एडम स्मिथ के अनुसार दो देशों में व्यापार उस स्थिति में होता है यदि उनमें से एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

तालिका 1 द्वारा एडम स्मिथ के निरपेक्ष लाभ सिद्धांत को समझाया गया है। दो देश भारत और बर्मा हैं जो जूट एवं चावल का उत्पादन करते हैं। दोनों देशों में प्रत्येक श्रमिक दस घण्टे कार्य करता है तथा जूट और चावल की क्रमश: 10 और 5 इकाइयाँ पैदा की जा सकती हैं तथा इतने ही श्रम से बर्मा मे जूट और चावल की क्रमश: 5 और 10 इकाइयाँ पैदा की जा सकती हैं। भारत में जूट और चावल की लागन का अनुपान 10 : 5 या 2 : 1 है जबकि बर्मा में जूट और चावल का अनुपात 5 : 10 या 1 : 2 है। इस लागत के आधार पर प्रत्येक देश में दोनों वस्तुओं का विनिमय अनुपात भी ज्ञात किया जा सकता है। भारत में एक इकाई चावल को जूट की दो इकाइयों के बदले प्राप्त किया जा सकता है तथा बर्मा में जूट की एक इकाई को चावल की दो इकाइयों के बदले प्राप्त किया जा सकता है। **दोनों देशों का विनिमय अनुपात इस प्रकार होगा—भारत में जूट की एक इकाई = चावल की दो इकाइयाँ।** तालिका 1 से स्पष्ट है कि भारत को बर्मा की तुलना में जूट के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है तथा बर्मा को भारत की तुलना में चावल के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है। यदि भारत केवल जूट के उत्पादन में विशिष्टीकरण करे तथा जूट की बदले बर्मा से चावल खरीदे एवं केवल चावल के उत्पादन में विशिष्टीकरण करे तथा चावल के बदले भारत से जूटे खरीदे तो दोनों देशों को लाभ होगा। यदि यह मानकर चलें कि परिवहन लागत नहीं लगती तो भारत से जूट खरीदे तो भानत से जूट की दो इकाइयों का निर्यात करके बर्मा से उसके बदले चावल की चार इकाइयाँ प्राप्त की जा सकती हैं जबकि भारत में जूट की 2 इकाइयों के बदले चावल की 1 इकाई ही प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार चावल की 2 इकाइयों का निर्यात करके भातर में जूट की 4 इकाइयाँ प्राप्त कर सकता है या जब तक बर्मा से चावल की 2 इकाइयों के बदले जूट की एक से अधिक इकाइयाँ प्राप्त कर सकता है, दोनों देशों के बीच व्यापार होगा तथा दोनों को लाभ होगा।

तालिका 1

10 घण्टे श्रम का उत्पादन

देश	उत्पादन इकाइयाँ	
	जूट	चावल
भारत	10	5
बर्मा	5	10

विशिष्टीकरण के पूर्व—जब दोनों देशों बिना विशिष्टीकरण अपनाये दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन करें तो कुल उत्पादन निम्नवत् होगा—

नोट

भारत = 10 इकाई जूट + 5 इकाई चावल

बर्मा = 5 इकाई जूट + 10 इकाई चावल

कुल उत्पादन = 15 इकाई जूट + 15 इकाई चावल

विशिष्टीकरण के बाद–भारत केवल जूट तथा बर्मा केवल चावल का उत्पादन करे तो कुल उत्पादन निम्नवत् होगा–

भारत = 20 इकाई जूट

बर्मा = 5 इकाई चावल

यहां स्पष्ट है कि विशिष्टीकरण होने के बाद जूट और चावल के उत्पादन करे तो कुल उत्पादन निम्नवत् होगा–

भारत = 20 इकाई जूट

बर्मा = 20 इकाई चावल

यहां स्पष्ट है कि विशिष्टीकरण होने के बाद जूट और चावल के उत्पादन में 5-5 इकाई की वृद्धि हो गयी है। यही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ है।

नोट्स निरपेक्ष लाभ का अभिप्राय है कि एक देश दो वस्तुओं में से एक वस्तु को दूसरे देश की तुलना में निरपेक्ष रूप से कम लागत पर उत्पादित कर सकता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

व्यावहारिक दृष्टि से एडम स्मिथ का व्यापार का सिद्धांत स्पष्ट और विश्वसनीय नहीं है। यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि एक देश को किसी न किसी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ होना चाहिए ताकि उसका निर्यात किया जा सके अर्थात् निर्यातक देश को दिये हुए श्रम और पूंजी की सहायता से अन्य देशों की तुलना में अधिक उत्पादन करने में सक्षम होना चाहिए, परन्तु ऐसा देश भी हो सकता है जो अन्य देशों की तुलना में किसी भी वस्तु के उत्पादन में श्रेष्ठ न हो अर्थात् उसे निरपेक्ष लाभ न हो। ऐसा उदाहरण किसी पिछड़े हुए देश का हो सकता है जो अकुशल है, जिसकी उत्पादन विधियाँ पिछड़ी हुई हैं। क्या ऐसे देश का विदेशी व्यापार से लाभ प्राप्त होगा? अथवा विदेशी प्रतियोगिता के कारण उसके उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा? **एडम स्मिथ** का सिद्धांत इस समस्या को हल नहीं कर सका। वास्तव में, **एडम स्मिथ** ने विदेशी व्यापार के कारणों तथा उसकी शर्तों को निर्धारित करने वाले तत्वों की कोई विस्तृत और सन्तोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं की। स्मिथ ने केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार को ही प्रस्तुत किया जो अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के कारण होने वाला लाभ था। बाद में **डेविड रिकार्डो** ने 1817 में प्रकाशित होने पर अपनी पुस्तक 'Principles of Political Economy' में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धांत को प्रस्तुत करके न केवल **एडम स्मिथ** के व्यापार के सिद्धांत के दोष को दूर किया वरन् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित किया।

टास्क एडम स्मिथ के स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

3.4 रिकार्डो का तुलनात्मक लाभ और अवसर लागत सिद्धांत (Ricardian Theory

नोट

of Comparative Advantage and Opportunity Cost)

एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित निरपेक्ष लागत लाभ सिद्धांत की अपूर्णता से असन्तुष्ट होकर डेविड रिकार्डो ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत (अथवा तुलनात्मक लाभ सिद्धांत) प्रतिपादित किया। एडम स्मिथ यह मानते थे कि दो देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तभी लाभप्रद हो सकता है जब दोनों देशों को एक-एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त हो, किन्तु यदि एक देश किसी भी वस्तु के उत्पादन में लागत लाभ नहीं रखता तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की क्या स्थिति होगी? इस प्रश्न का उत्तर एडम स्मिथ का निरपेक्ष लागत सिद्धांत देने में असफल रहा। इसी कमी को दूर करने का श्रेय डेविड रिकार्डो का है जिन्होंने तुलनात्मक लागत सिद्धांत द्वारा स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है।

श्रम का मूल्य सिद्धांत : रिकार्डो की विचारधारा का आधार (Value thoery of Labour : Base of Ricordian Concept): रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत श्रम के मूल्य सिद्धांत पर आधारित है। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि वस्तुओं का मूल्य उसमें निहित श्रम से आंका जाता है और वस्तुओं का परस्पर विनिमय उन वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुए श्रम के आधार पर होता है। जिन वस्तुओं का मूल्य समान होता है उनको बनाने में श्रम की समान मात्रा लगती है। इस प्रकार रिकार्डो ने वास्तविक लागत को श्रम के समय (labour time) के रूप में व्यक्त किया। दूसरे शब्दों में **किसी वस्तु का मूल्य उसकी श्रम लागत पर निर्भर रहता है।**

रिकार्डो की यह मान्यता है कि दो देशों में मूल्यों की प्रवृत्ति समान होने की नहीं होती क्योंकि इन देशों में उत्पत्ति के साधनों में स्तर पर गतिशीलता नहीं पायी जाती। ऐसी स्थिति में वस्तुओं का आयात-निर्याता किस आधार पर होगा? रिकार्डो के अनुसार यह तुलनात्मक लागत के आधार पर होता है तो प्रत्येक देश के लिए लाभदायक होगा कि वह उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करे जिनकी लागत सापेक्षिक रूप से न्यूनतम है।"

तुलनात्मक लागत सिद्धांत की मान्यताएँ (Assumptions of the Comparative Cost Theory)

रिकार्डो ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत की व्याख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निम्न मान्यताओं के आधार पर की है—

(1) व्यापार करने वाले केवल दो देश हैं जिनमें दो वस्तुओं का विनिमय होता है अर्थात् रिकार्डो का सिद्धांत दो देश और दो वस्तुओं के सरल मॉडल पर आधारित है।

(2) दोनों ही देशों में दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है।

(3) श्रम की उत्पत्ति का सबसे महत्वपूर्ण एवं उत्पादकृ साधन है तथा अन्य साधनों को श्रम में ही समाहित मान लिया गया है।

(4) दोनों देशों में वस्तु विनिमय होता है तथा विनिमय में मुद्रा का प्रयोग नहीं किया जाता।

(5) इस सिद्धांत में मूल्य के श्रम सिद्धांत को माना गया है जिसे वास्तविक लागत का सिद्धांत कहा जाता है। वस्तुओं का विनिमय इस आधार पर होता है कि उनके उत्पादन में कितने दिन का श्रम लगा है।

(6) यह भी इस सिद्धांत की मान्यता है कि दोनों देशों में उत्पत्ति के साधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त है। यह मान्यता प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के "पूर्ण रोजगार" के सिद्धांत के अनुरूप है।

(7) यह सिद्धांत मानकर चलता है कि दोनों देशों में स्थिर लागत अनुपात के अन्तर्गत (उत्पादन समता नियम) उत्पादन होता है।

(8) इस सिद्धांत की यह मान्यता है कि देश में उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता रहती है, किन्तु दो देशों के बीच इन उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का पूर्ण अभाव रहता है।

(9) दो देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई रोक-टोक या व्यवधान नहीं होता अत: वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय स्वतंत्रतापूर्वक होता है।

3.5 तुलनात्मक लागत सिद्धांत की व्याख्या (Explanation of Comparative Cost

नोट

Theory)

तुलनात्मक लागत सिद्धांत के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसलिए होता है कि विभिन्न देशों को भिन्न-भिन्न वस्तुओं के उत्पादन में अलग-अलग लाभ होता है। इन विभिन्न लाभों को निर्धारित करने में देश के आर्थिक साधनों का महत्वपूर्ण हाथ होता है, जैसे, अनुकूल जलवायु, अनुकूल भूमि, कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति एवं तकनीकी प्रगति के कारण अधिक कार्यकुशल श्रम शक्ति, इत्यादि।

इस सिद्धांत के प्रतिपादक **रिकार्डो** ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है, "दो व्यक्ति हैं और वे दोनों ही जूते तथा टोप बना सकते हैं तथा इनमें एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा दोनों ही कार्यों में श्रेष्ठ है परन्तु टोप बनाने में वह अपने प्रतियोगी से 20 प्रतिशत और जूते बनाने में 33 1/3 प्रतिशत अधिक कुशल है। क्या यह दोनों व्यक्तियों के हित में नहीं होगा कि कुशल व्यक्ति केवल जूता बनाये तथा दूसरा व्यक्ति केवल टोप बनाने का कार्य करे। **जेकब वाइनर** (Jacob Viner) के अनुसार, "यदि स्वतंत्र व्यापार होता है तो प्रत्येक देश दीर्घकाल में उन वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेता है जिनके उत्पादन में उसे वास्तविक लागतों के सन्दर्भ में तुलनात्मक लाभ होता है तथा उन वस्तुओं का आयात करता है जिनका देश में उत्पादन वास्तविक लागतों के सन्दर्भ में तुलनात्मक रूप से अलाभदायक होता है। इस प्रकार का विशिष्टीकरण आपस में व्यापार करने वाले देशों को लाभदायक होता है।"

बेस्टेबल ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत को इस प्रकार समझाया है–

"एक डॉक्टर बागवानी का कार्य माली से अधिक कुशलता से कर सकता है परन्तु वह डॉक्टरी में और भी अधिक कुशल हो सकता है। उसे सर्वाधिक लाभ उसी समय होगा जब वह केवल डॉक्टरी का ही कार्य करे। इसी प्रकार एक देश दूसरे देश की अपेक्षा कुछ वस्तुएँ सस्ती बना सकता है पर उस देश को सबसे अधिक लाभ उसी समय होगा जब वह केवल ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करे जिनमें उसे दूसरे की अपेक्षा सर्वाधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त हो।" **मार्शल** के अनुसार, "यदि ऐसी वस्तुओं को जिनका उत्पादन देश में किया जा सकता है, विदेशों से स्वतंत्र आयात किया जाता है तो वह इस बात का सूचक है कि इन वस्तुओं को देश में उत्पादन की जो लागत होती है उसकी अपेक्षा इन वस्तुओं को विदेशों से अन्य वस्तुओं के बदले में मंगाने में कम लागत लगती है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

जब एक देश को दूसरे देश की तुलना में दोनों वस्तुओं के उत्पादन में श्रेष्ठता प्राप्त होती है यद्यपि एक वस्तु के उत्पादन में यह श्रेष्ठता अधिक तथा दूसरी वस्तु में कम रहती है तो इसे लागतों में तुलनात्मक अन्तर कहते हैं। **एडम स्मिथ** ने निरपेक्ष लाभ को ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार माना था परन्तु **रिकार्डो** ने बताया कि लागतों में तुलनात्मक अन्तर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पर्याप्त कारण है। एक देश उन वस्तुओं का निर्यात करेगा जिनके उत्पादन में उसे तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ है तथा उन वस्तुओं का आयात करेगा जिनमें उसे कम लाभ है। एक देश दूसरे देश की तुलना में हर वस्तु के उत्पादन में पूर्णरूप से अधिक कुशल हो सकता है तथा दूसरा देश सब वस्तुओं के उत्पादन की सापेक्षिक कुशलता भिन्न-भिन्न है, तो भी दोनों देशों में व्यापार होगा। इसे हम उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे। माना भारत और बर्मा में प्रत्येक श्रमिक 10 घण्टे कार्य करता है तथा जूट और चावल की निम्न इकाइयों का उत्पादन करता है–

तालिका 2

10 घण्टे श्रम का उत्पादन (इकाइयों में)

देश	जूट	चावल
भारत	10	10
बर्मा	4	8

तालिका 2 से स्पष्ट है कि भारत को बर्मा की तुलना में जूट और चावल दोनों वस्तुओं के उत्पादन के निरपेक्ष लाभ हैं, किन्तु तुलनात्मक रूप से इसे चावल की तुलना में जूट के उत्पादन में अधिक लाभ है क्योंकि जहाँ जूट के उत्पादन में उसकी श्रेष्ठता ढाई गुनी है, वहीं चावल के उत्पादन में केवल सवा गुनी है। जहाँ तक बर्मा का प्रश्न है, उसे भारत की तुलना में दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष हानि है, किन्तु उसकी लागत की तुलनात्मक हानि जूट की तुलना में चावल से कम है। व्यापार न होने की स्थिति में दोनों देशों

नोट

में दोनों वस्तुओं का निम्न विनिमय अनुपात होगा–

भारत में ⟶ 1 इकाई जूट = 1 इकाई चावल

बर्मा में ⟶ 1 इकाई जूट = 2 इकाई चावल

परन्तु यदि दोनों देशों में व्यापार होता है तो उससे दोनों देश लाभान्वित होंगे। भारत जूट के उत्पादन में विशिष्टीकरण करे तथा बर्मा चावल के उत्पादन में विशिष्टीकरण करे तो दोनों देश व्यापार से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। हम यह मानकर चलें कि परिवहन लागत नहीं लगती तो भारत 1 इकाई जूट के बदले बर्मा से 2 इकाई चावल प्राप्त कर सकता है (क्योंकि बर्मा में जूट और चावल का विनिमय अनुपात 4.8 है) जबकि भारत अपने देश में एक इकाई जूट के बदले केवल 1 इकाई चावल ही प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार बर्मा एक इकाई चावल के बदले भारत से 1 इकाई जूट प्राप्त कर सकता है। (क्योंकि भारत में जूट और चावल का विनिमय अनुपात 10 : 10 है) जबकि बर्मा अपने देश में एक इकाई चावल के बदल केवल आधा इकाई जूट प्राप्त कर सकता है। परिवहन लागत होने पर भी जब तक भारत एक इकाई जूट के बदले चावल की एक से अधिक इकाई प्राप्त कर सकता है–एवं बर्मा एक इकाई चावल के बदले जूट की आधे से अधिक इकाई प्राप्त कर सकता है तो दोनों देशों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा एवं दोनों को लाभ होगा। यह दोनों के हित में होगा कि भारत केवल जूट का उत्पादन करे तथा उसके बदले बर्मा से चावल का आयात करे तथा बर्मा केवल चावल का उत्पादन करे तथा उसके बदले भारत से जूट का आयात करे।

उक्त विशिष्टीकरण से किस प्रकार कुल उत्पादन में वृद्धि होती है यह भी स्पष्ट किया जा सकता है।

(*i*) यदि दोनों देशों में विशिष्टीकरण और व्यापार न हो तो कुल उत्पादन इस प्रकार होगा–

भारत = 10 इकाई जूट + 10 इकाई चावल

बर्मा = 4 इकाई जूट + 8 इकाई चावल

कुल उत्पादन = 14 इकाई जूट + 18 इकाई चावल

(*ii*) यदि विशिष्टीकरण अपनाकर भारत केवल जूट एवं बर्मा केवल चावल का उत्पादन करे तो–

भारत = 20 इकाई जूट

बर्मा = 16 इकाई चावल

कुल उत्पादन = 20 इकाई जूट + 16 इकाई चावल

इस प्रकार विशिष्टीकरण से जूट की 6 इकाई अधिक का उत्पादन हुआ यद्यपि चावल में 2 इकाइयों की कमी हुई, किन्तु इस हानि की तुलना में जूट का उत्पादन बहुत अधिक है अत: कुल मिलाकर उत्पादन अधिक हुआ।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण–लागतों में तुलनात्मक अन्तर को अग्र रेखाचित्र 1 द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र 3.1 में AB भारत की सीमा रेखा है तथा AC बर्मा की उत्पादन सीमा रेखा है जो इस आधार पर खींची गयी है कि भारत में जूट और चावल का विनिमय अनुपात 1 : 1 है तथा बर्मा में यही विनिमय अनुपात 1 : 2 है। इन दोनों देशों में व्यापार होने से अतिरेक लाभ BC प्राप्त होगा तथा विनिमय दर B व C के बीच कहीं भी निर्धारित होगी। यह ध्यान रहे कि उत्पादन सीमा रेखा स्थिर लागत के अन्तर्गत खींची गयी है।

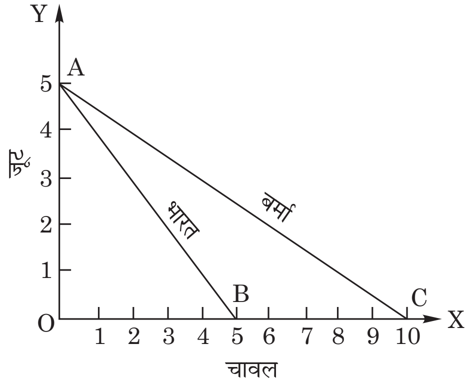

चित्र 3.1

किसी वस्तु का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने का आधार केवल इतना ही नहीं है कि उसकी उत्पादन लागत न्यूनतम है। एक देश भले ही सारी वस्तुओं को कम लागत पर पैदा कर सकता है किन्तु उसके लिए यह लाभदायक होगा कि वह केवल कुछ

नोट

ही वस्तुओं का उत्पादन करे एवं शेष को आयात करे। इस प्रकार **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में तुलनात्मक लागत का सिद्धांत बताता है कि एक देश आवश्यक रूप से उन सब वस्तुओं का उत्पादन नहीं करता जिन्हें वह अन्य देशों की तुलना में सस्ते में पैदा कर सकता है। वरन् उन वस्तुओं का उत्पादन करता है जिन्हें वह अधिकतम लाभ अर्थात न्यूनतम तुलनात्मक लागत पर तैयार कर सकता है।**

3.6 तुलनात्मक लागत सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Comparative Cost Theory)

तुलनात्मक लागत का सिद्धांत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र का बहुत लोकप्रिय सिद्धांत रहा है। प्रथम विश्व-युद्ध के समय तक इस सिद्धांत की प्राय: कोई आलोचना नहीं की गयी तथा इसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सन्तोषजनक स्पष्टीकरण स्वीकार किया गया, किन्तु इसके बाद भी इस सिद्धांत में जो विकास किये गये उन्होंने उक्त सिद्धांत के मूल स्वरूप को नष्ट नहीं किया, केवल उसके पूरक सिद्धांत ही विकसित किये। इस सिद्धांत को विकसित करने का श्रेय **ओहलिन, एल्सबर्थ** तथा **हेबरलर** की है यद्यपि इन्होंने इस सिद्धांत की कटु आलोचना भी की है।

सेम्युलसन के अनुसार, "तुलनात्मक लागत सिद्धांत में सत्य की बहुत महत्वपूर्ण झलक है...तुलनात्मक लाभ की अवहेलना करने वाले राष्ट्र को जीवन-स्तर एवं विकास की सम्भावित दर के रूप में एक भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। इसका निष्कर्ष यह नहीं है कि सिद्धांत में कोई दोष नहीं है। इस सिद्धांत का तार्किक ढांचा तो मजबूत है, किन्तु इसकी प्रमुख कमजोरी वे मान्यताएँ हैं जिन पर यह आधारित है। **इसके अतिरिक्त रिकार्डो का सिद्धांत यह तो स्पष्ट करता है कि किन वस्तुओं का निर्यात तथा किन वस्तुओं का आयात किया जायेगा, किन्तु रिकार्डो का सिद्धांत यह नहीं बतलाता कि दोनों देशों के बीच वस्तुओं की विनिमय दर क्या होगी?** यही कारण है कि **ओहलिन** एवं **ग्राहम** सरीखे अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत की कटु आलोचना की है। आलोचना की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं–

(1) मूल्य के श्रम सिद्धांत की मान्यता दोषपूर्ण है

इस सिद्धांत में श्रम को ही लागत का प्रमुख आधार माना गया है अर्थात् वस्तुओं का विनिमय श्रम लागत के अनुपात में ही किया जाता है, किन्तु कुल लागत में श्रम के अतिरिक्त अन्य साधनों को भी शामिल किया जाता है क्योंकि केवल श्रम की उत्पत्ति का अकेला साधन नहीं है। अत: विनिमय दर मौद्रिक लागत के आधार पर ही ज्ञात की जा सकती है और जहाँ तक मूल्य के श्रम-सिद्धांत का प्रश्न है, वह स्वयं अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। यही कारण है कि **आस्टियन सम्प्रदाय** के अर्थशास्त्रियों ने इसका परित्याग कर मूल्य के सीमान्त उपयोगिता सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

उक्त आलोचना का उत्तर **टाजिन** (Prof. Taussig) ने दिया। मूल्य के श्रम सिद्धांत का औचित्य बताते हुए वे कहते हैं कि यदि हम यह मानकर चलें कि व्यापार करने वाले देशों के तकनीकी विकास का स्तर समान है तो श्रम के साथ एकत्रित होने वाले उत्पत्ति के साधनों का अनुपात भी समान होगा। ऐसी स्थिति में हम उत्पत्ति के अन्य साधनों पर ध्यान दिये बिना विभिन्न देशों में श्रमिकों की सापेक्षिक कुशलता की तुलना कर सकते हैं। इस प्रकार **टाजिग** ने रिकार्डो के उत्पत्ति के एक साधन (श्रम) मॉडल को उचित ठहराया, किन्तु **टाजिग** का उक्त तर्क उचित नहीं है क्योंकि व्यापार करने वाले समस्त देश तकनीकी विकास की समान अवस्था में नहीं होते।

(2) श्रमिकों में समरूपता सम्भव नहीं

मूल्य के श्रम सिद्धांत की निहित मान्यता यह भी है कि व्यापार से जुड़े देशों के श्रमिक एकसमान होते हैं, किन्तु यह गलत है क्योंकि श्रमिकों में एकरूपता नहीं होती अत: श्रम के आधार पर लागत की तुलना नहीं की जा सकती। इस प्रकार तुलनात्मक लागत का आधार पर लागत की तुलना नहीं की जा सकती। इस प्रकार तुलनात्मक लागत का आधार ही गलत है।

नोट

टाजिग ने पुनः उक्त आलोचना का उत्तर देने का प्रयत्न किया है उनका कहना है कि यदि श्रमिकों को कुछ समूहों में बांट दिया जाए तो प्रत्येक समूह में एकसमान कार्यक्षमता वाले श्रमिक होंगे। इस श्रम-स्तरबद्धता (Stratification) कहते हैं। इसका आशय यह है कि व्यापार करने वाले दोनों देश आर्थिक विकास के समान स्तर पर है। परन्तु **टाजिग** का उक्त समर्थन कमजोर है क्योंकि व्यापार करने वाले देश आर्थिक और तकनीकी विकास के विभिन्न स्तर पर होते हैं।

(3) उत्पादन समता नियम की मान्यता अव्यावहारिक है

यदि व्यावहारिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ढाँचे को देखा जाये तो उत्पत्ति समता (स्थिर) नियम की मान्यता उचित प्रतीत नहीं होती, किन्तु यदि हम इस मान्यता को अलग कर दें तो रिकार्डो का सिद्धांत भी लागू नहीं होगा। रिकार्डो का कहना है कि यदि इंगलैण्ड तुलनात्मक लाभ के कारण कपड़े के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है तो उसे शराब का उत्पादन करने का कोई कारण नहीं है। इसी प्रकार यदि पुर्तगाल को शराब बनाने में तुलनात्मक लाभ है तो वह कपड़े का उत्पादन नहीं करेगा वरन् उसे इंगलैण्ड से आयात करेगा। यह विश्लेषण उत्पत्ति समता नियम पर आधारित है जो व्यावहारिक रूप में नहीं पाया जाता। एक ऐसी स्थिति आ सकती है जब पुर्तगाल इंगलैण्ड से कपड़े का आयात न करे क्योंकि इंगलैण्ड में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से पुर्तगाल को कपड़े का आयात महंगा पड़ सकता है।

इस सिद्धांत की यह मान्यता भी गलत है कि एक देश किसी वस्तु को पूर्णरूप से आयात करता है। वास्तविकता तो यह है कि एक देश एक वस्तु की कुछ मात्रा तो आयात करता है, शेष का उत्पादन देश में ही करता है। लेकिन तुलनात्मक लागत सिद्धांत में इसे स्पष्ट नहीं किया गया है।

(4) परिवहन व्यय की अवहेलना

तुलनात्मक लागत सिद्धांत में परिवहन लागत पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, किन्तु यदि परिवहन व्यय अधिक है तो कभी यह भी सम्भव हो सकता है कि तुलनात्मक लागत के कारण होने वाला अन्तर समाप्त हो जाय। ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होगा। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उस समय सम्भव होता है जब लागत में तुलनात्मक अंतर, परिवहन व्यय मिलाने पर भी अधिक हो।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने उक्त आलोचना को महत्वपूर्ण नहीं माना है क्योंकि उनका मानना है कि यदि परिवहन व्यय को भी शामिल कर लिया जाय तो उससे तुलनात्मक लागत सिद्धांत की मूल धारणा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(5) दो से अधिक देशों पर लागू नहीं

तुलनात्मक लागत सिद्धांत के निष्कर्ष उसी समय लागू होते हैं जब इसे केवल दो वस्तुओं और दो देशों पर लागू किया जाये। दो से अधिक देशों या दो से अधिक वस्तुओं पर लागू करने से इसका प्रयोग सीमित हो जाता है जब हम दो से अधिक वस्तुओं पर विचार करते हैं तो हमें न केवल व्यापार की शर्तों वरन् इसका भी निर्धारण करने के लिए कि एक देश किन वस्तुओं का निर्यात करेगा, मांग की दशाओं पर विचार करना होगा क्योंकि एक ही तुलनात्मक लागत के आधार पर विभिन्न वस्तुओं का निर्यात किया जाएगा। वास्तविक रूप में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न देशों में दो से अधिक वस्तुओं में किया जाता है। इस सीमा को स्पष्ट करते हुए **ओहलिन** कहते हैं कि "केवल तुलनात्मक लागत का तर्क अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में बहुत अपर्याप्त है। यह वास्तव में पूर्ति की दशाओं के संक्षिप्त विवरण से अधिक कुछ नहीं है।"

(6) साधनों की गतिशीलता की मान्यता अव्यावहारिक

तुलनात्मक लागत सिद्धांत की एक आलोचना यह भी है कि वह एक देश के भीतर उत्पत्ति के साधनों को पूर्णरूप से गतिशील मानता है एवं दो देशों के बीच इस गतिशीलता को स्वीकार नहीं करता, किन्तु **ओहलिन** ने उक्त मत का खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में, उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का अभाव अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का ही विशेष लक्षण नहीं है वरन् एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। **केयरन्स** ने भी यह मत प्रकट किया था कि श्रमिकों के अप्रतियोगी समूह न केवल विभिन्न देशों में पाये जाते हैं वरन् एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं।

नोट

(7) माँग की दशाओं की अवहेलना

आलोचकों का दृष्टिकोण है कि तुलनात्मक लागत का सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह केवल पूर्ति पक्ष पर विचार करता है तथा माँग पक्ष पर कोई ध्यान नहीं देता। यह सिद्धांत यह तो बताता है कि एक देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में किन वस्तुओं को बेचेगा एवं किन वस्तुओं को खरीदेगा, किन्तु यह दृष्टिकोण केवल पूर्तिपक्ष पर आधारित होने के कारण अपूर्ण है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने स्थिर लागत की कल्पना की है एवं पूर्ति की दशाओं के आधार पर ही कीमत-लागत का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्लेषण किया है। उनकी दृष्टि में मांग कीमत को प्रभावित नहीं करती जो उत्पत्ति के पैमाने में परिवर्तन के बावजूद भी स्थिर रहती है।

यह मान्यता उचित नहीं है क्योंकि उत्पादन में परिवर्तन के साथ लागत में भी परिवर्तन हो सकता है। ऐसी स्थिति में किसी वस्तु की लागत और कीमत केवल पूर्ति की दशाओं पर निर्भर न रहकर माँग की दशाओं द्वारा भी प्रभावित होती है।

(8) लोचपूर्ण बाजार एवं स्थिर कीमतों की तथ्यहीन कल्पना

आलोचकों के अनुसार यह इस सिद्धांत की कमजोरी है कि यह लोचपूर्ण बाजारों एवं स्थिर कीमतों को स्वीकार करके चलता है। एक देश तुलनात्मक लाभों की कल्पना उसी समय कर सकता है जबकि देश यह चुनाव करने के लिए स्वतंत्र हो कि वह अपना निर्यात बढ़ाये अथवा आयात प्रतिस्थापना करे, किन्तु निर्यातों के लिए माँग में लोच का अभाव होने से तुलनात्मक लाभों को पूर्णरूप से ज्ञात नहीं किया जा सकता एवं तुलनात्मक लाभ का विचार ही अव्यावहारिक हो जाता है। कीमतों में भी परिवर्तन होता है जिससे तुलनात्मक लाभ पर प्रभाव पड़ता है।

(9) सुरक्षात्मक अथवा सैनिक वस्तुओं के लिए तुलनात्मक लागत महत्वहीन

कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जहाँ तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत क्रियाशील नहीं होता। जैसे देश की सुरक्षा एवं सैनिक महत्व की वस्तुओं को देश में ही पैदा किया जा सकता है भले ही उसके उत्पादन में तुलनात्मक हानि हो एवं वे विदेशों से कम कीमत पर उपलब्ध हों। देश में सुरक्षा की दृष्टि से आत्मनिर्भरता लाने एवं राजनीतिक कारणों से यह एक देश के हित में होता है कि वह सैनिक महत्व की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करे क्योंकि संकटकाल में ऐसी वस्तुओं के लिए विदेशों पर निर्भर रहना खतरनाक हो सकता है। भारत को यह शिक्षा अच्छी तरह मिल चुकी है।

(10) पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं

प्रो. ग्राहम (Graham) तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले दो देश विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में पूर्णरूप से विशिष्टीकरण नहीं करते अत: ऐसी स्थिति में उक्त सिद्धान्त महत्वहीन हो जाता है। ऐसी स्थिति विशेष रूप से उस समय उपस्थित होती है जब व्यापार करने वाले दो देशों में एक बड़ा तथा दूसरा देश छोटा हो। छोटा देश तो पूर्णरूप से विशिष्टीकरण कर सकता है क्योंकि वह अपना पूर्ण अतिरेक उत्पादन बड़े देश को निर्यात कर सकता है, किन्तु बड़ा देश अग्र दो कारणों से पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं कर सकता।

(*i*) यदि यह देश एक विशेष वस्तु के उत्पादन में पूर्णरूप से विशिष्टीकरण करता है तो उसका अतिरेक उत्पादन इतना अधिक हो सकता है कि छोटा देश उसको आयात नहीं कर सकता।

(*ii*) वह अपनी पूर्ण आवश्यकता की पूर्ति दूसरे देश के आयात से नहीं कर सकता।

(11) पूर्ण रोजगार की मान्यता गलत

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की एक मुख्य कमजोरी यह है कि पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है अर्थात् व्यापार करने वाले दोनों देशों में पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान रहती है, किन्तु केन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की पूर्ण रोजगार की मान्यता को अवास्तविक सिद्ध कर खण्डित कर दिया है। **केन्स** का कहना है कि सदैव पूर्ण रोजगार से कम की स्थिति विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त भी अव्यावहारिक प्रतीत होता है।

(12) गतिशीलता का अभाव

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त आवश्यक रूप से कुछ स्थैतिक मान्यताओं पर आधारित है। यह व्यापार करने वाले देशों में उत्पत्ति के साधनों को स्थिर मानकर चलता है तथा दोनों के उत्पादन फलन (Production Function) को भी

नोट

समान मानता है, किन्तु वास्तविक जगत में इन सबसे परिवर्तन होता है अतः उक्त सिद्धान्त गतिशील अर्थव्यवस्था में लागू नहीं होता क्योंकि तकनीक, उत्पत्ति के साधन और उत्पादन फलन में परिवर्तन होने के कारण तुलनात्मक लागत की गणना करना आसान नहीं है। इस पर टिप्पणी करते हुए **ऐल्सबर्थ** कहते हैं कि "या तो पुराने सिद्धान्त के पूरक के रूप में, अधिक सारगर्भित और उपयुक्त नयी व्यवस्था को विकसित किया जाना चाहिए अथवा बड़े पैमाने पर (इस सिद्धान्त की) पूरक जांच की जानी चाहिए।"

(13) वस्तुओं के भेद को स्पष्ट नहीं करता

कुछ आलोचकों ने इस आधार पर भी इस सिद्धान्त की आलोचना की है कि तुलनात्मक लागत सिद्धान्त इस बात की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता कि एक देश किसी वस्तु की दूसरी किस्म का उत्पादन कर उसका निर्यात क्यों करता है तथा उस वस्तु की दूसरी किस्म का विदेशों से आयात क्यों करता है? जैसे भारत लोहे की कुछ वस्तुओं का निर्यात करता है एवं कुछ वस्तुओं का आयात करता है।

यह आलोचना उस समय महत्वहीन हो जाती है जब वस्तु की प्रत्येक किस्म को एक पृथक् उत्पादन मान लिया जाय।

(14) स्वतन्त्र व्यापार में बाधाएं

तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त केवल उन्हीं दशाओं में लागू हो सकता है जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार स्वतन्त्र रूप से हो रहा हो तथा उसके मार्ग में कोई बाधाएं न हों, किन्तु तथ्य एवं वास्तविकता तो यह है कि वर्तमान में अधिकांश देश संरक्षण की नीति अपना रहे हैं तथा प्रशुल्क, कोटा प्रणाली, विनिमय नियन्त्रण, आदि कई बाधाएं स्वतन्त्र व्यापार में रुकावट पैदा करती है।

(15) यह सिद्धान्त अर्द्ध-विकसित देशों में लागू नहीं होता

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की कमजोरी यह भी है कि यह पिछड़े और अर्द्ध-विकसित देशों में लागू नहीं होगा। यदि एक विकसित और पिछड़े देश में व्यापार हो तो पिछड़े देश को लाभ नहीं होगा बल्कि हानि होगी। इसकी विस्तृत व्याख्या पृथक् अध्याय में की गयी है।

(16) श्रम की कार्यक्षमता में भिन्नता क्यों?

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता कि उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में अन्य देशों की तुलना में एक देश के श्रमिक अधिक कुशल क्यों होते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि उस देश के प्राकृतिक साधन श्रेष्ठ हों, वहां अच्छी मशीनों का प्रयोग होता हो तथा वहां उद्यमी प्रतिभा अधिक हो अर्थात् श्रम की कार्यक्षमता अधिक होने के कारण अन्य साधनों की प्रचुरता है। यही कारण है कि **ओहलिन** ने उत्पत्ति के साधन के रूप में केवल श्रम को महत्व न देकर अन्य साधनों को भी महत्व दिया है।

निष्कर्ष—यद्यपि तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की काफी आलोचना की गयी है, किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि यह सिद्धान्त महत्वहीन है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति को स्पष्ट करने में इस सिद्धान्त ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। यही कारण है कि **सेमुअलसन** ने दोनों के बावजूद इस सिद्धान्त की प्रशंसा की है। उनके ही शब्दों में, "यदि लड़कियों की भांति, सिद्धान्त भी सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में विजयी हो सके तो तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त उच्च स्थान प्राप्त करेगा क्योंकि इसका सुन्दर और तर्कपूर्ण ढांचा है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. दो देश और दो वस्तुओं के मॉडल पर आधारित व्यापारिक सिद्धांत किसका है—

   (क) एडम स्मिथ (ख) रिकार्डो (ग) जोशिया चाइल्ड (घ) एक्सबर्थ

2. निरपेक्ष सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया—

   (क) एडम स्मिथ (ख) रिकार्डो (ग) जोशिया चाइल्ड (घ) एक्सबर्थ

नोट

3. मूल्य के श्रम सिद्धांत को मान्यता दी गयी है–
   (क) स्मिथ द्वारा (ख) रिकार्डो द्वारा
   (ग) जे. चाइल्ड द्वारा (घ) एक्सबर्थ द्वारा
4. "पूर्ण रोजगार" का सिद्धांत दिया है–
   (क) स्मिथ ने (ख) रिकार्डो ने
   (ग) जे. चाइल्ड ने (घ) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने।
5. "दो देशों में स्थिर लागत अनुपात के अंतर्गत उत्पादन होता है" यह किस सिद्धांत की मान्यता है–
   (क) रिकार्डो के सिद्धांत की (ख) स्मिथ के सिद्धांत की
   (ग) एक्सबर्ड के सिद्धांत की (घ) इनमें से कोई नहीं।

3.7 सारांश (Summary)

- वाणिज्यवादियों द्वारा लगाये गये आयात प्रतिबन्धों के विरोध में **एडम स्मिथ** ने मुक्त व्यवस्था का आह्वान किया तथा उनके अनुकूल व्यापार सन्तुलन की कटु आलोचना करते हुए **मुक्त व्यापार** का सिद्धांत प्रस्तुत किया।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत का सूत्रपात यद्यपि एडम स्मिथ ने किया, किन्तु एडम स्मिथ द्वारा स्थापित प्रतिष्ठित सम्प्रदाय से पूर्व भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विचार अस्तित्व में था। वणिकवादी युग (1500 से 1750 तक) में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को राष्ट्र की सम्पन्नता एवं शक्ति का आधार स्रोत माना गया।
- **एल्सबर्थ** के अनुसार, "वाणिज्यवादी दर्शन को एक रूप में परिभाषित किया जा सकता है–जिसने राष्ट्रीय शक्ति के उद्देश्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी एवं सम्पत्ति में वांछनीय वृद्धि करने के लिए आर्थिक जीवन के नियंत्रण को माध्यम बनाया।"
- **णिकवादी विचारक वान हार्निक** (Mercantilistic Thinker Von Hornick) ने अनुकूल व्यापार सन्तुलन की व्याख्या इन शब्दों में की है, "देश में पायी जाने वाली वस्तुओं को, जिनका उपयोग प्राकृतिक रूप से नहीं किया जा सकता, देश में ही पक्के माल में परिवर्तित किया जाना चाहिए क्योंकि कच्चे माल की तुलना में निर्मित माल का मूल्य सौ गुना तक होता है।
- इसलिए **वान हार्निक** कहते हैं कि "यदि निर्यात का माल हम अपने जहाजों से भेजते हैं तो हमारे निर्यात का मूल्य बढ़ सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में हमें न केवल अपने माल का मूल्य मिलता है, किन्तु माल को समुद्र पार ले जाने का किराया और बीमा-व्यय भी मिलता है।"
- आलोचकों का विचार था कि यदि प्रत्येक देश केवल निर्यात बढ़ाने की नीति अपनाएगा और आयातों को अपने संरक्षणवादी, उपायों द्वारा देश में आने से रोकेगा तो किये गये निर्यात किसी देश के आयात नहीं बन सकेंगे और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अवरुद्ध होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में एडम स्मिथ ने स्वतंत्र व्यापार नीति पर आधारित निरपेक्ष लाभ सिद्धांत प्रस्तुत किया।
- **एडम स्मिथ** ने स्वतन्त्र व्यापार को आर्थिक विकास के लिए आवश्यक शर्त स्वीकार किया क्योंकि स्वतंत्र व्यापार के कारण ही देश उन वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है जो न्यूनतम लागत पर तैयार की जा सकती है। **एडम स्मिथ** ने वाणिज्यवादियों के इस विचार को भी अस्वीकार कर दिया कि व्यापार से आपस में दोनों पक्षों को लाभ नहीं होता।
- एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित निरपेक्ष लागत लाभ सिद्धांत की अपूर्णता से असन्तुष्ट होकर डेविड रिकार्डो ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत (अथवा तुलनात्मक लाभ सिद्धांत) प्रतिपादित किया। एडम स्मिथ यह मानते थे कि दो देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तभी लाभप्रद हो सकता है जब दोनों देशों को एक-एक वस्तु के

नोट

उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त हो, किन्तु यदि एक देश किसी भी वस्तु के उत्पादन में लागत लाभ नहीं रखता तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की क्या स्थिति होगी? इस प्रश्न का उत्तर एडम स्मिथ का निरपेक्ष लागत सिद्धांत देने में असफल रहा।

- तुलनात्मक लागत सिद्धांत के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसलिए होता है कि विभिन्न देशों को भिन्न-भिन्न वस्तुओं के उत्पादन में अलग-अलग लाभ होता है। इन विभिन्न लाभों को निर्धारित करने में देश के आर्थिक साधनों का महत्वपूर्ण हाथ होता है, जैसे, अनुकूल जलवायु, अनुकूल भूमि, कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति एवं तकनीकी प्रगति के कारण अधिक कार्यकुशल श्रम शक्ति, इत्यादि।

3.8 शब्दकोश (Keywords)

- **व्यापार संतुलन–** जब आयात की तुलना में निर्यात अधिक होता है।
- **व्यापार असंतुलन–** जब निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक होता है।

3.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की वाणिकवादी विचारधारा का वर्णन कीजिए।
2. एडम स्थिम के स्वतंत्र व्यापार सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
3. एडम स्मिथ के निरपेक्ष लाभ के सिद्धांत का विवेचन कीजिए।
4. रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ और अवसर लागत सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
5. तुलनात्मक लागत सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. व्यक्तिवादी	2. श्रम विभाजन	3. श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण
	4. श्रम विभाजन	5. वितरण।	
2.	1. (ख)	2. (क)	3. (ख)
	4. (घ)	5. (क)	

3.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–4: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्तः मूल्य घटक के समानीकरण का सिद्धांत, हेक्सचर ओहलिन का सिद्धांत, क्रेविस और लिंडर का व्यापार सिद्धांत (Modern Theories of International Trade: Theorem of Factor Price Equalization, H-O Theory, Kravis and Linder Theory of Trade)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
4.1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांतः मूल्य घटक के समानीकरण का सिद्धांत, हेक्सचर ओहलिन का सिद्धांत, क्रेविस और लिंडर का व्यापार सिद्धांत (Modern Theories of International Trade: Thorem of factor Price Equalization, H-O Theory, Kravis and Linder Theory of Trade)
4.2 सारांश (Summary)
4.3 शब्दकोश (Keywords)
4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांतों की व्याख्याा करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हाल के वर्षों में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कतिपय नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिसमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या इस इकाई में प्रस्तुत की गई है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री **रिकार्डो** और **मिल** के अनुसार दो देशों में व्यापार तुलनात्मक लागतों में अन्तर अन्तर के कारण होता है। तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार, यदि दो देशों में आंतरिक लागत अनुपातों में अन्तर है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने तथा यह दोनों को लाभदायक होने का पर्याप्त आधार है, किन्तु यहां महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि दो देशों के लागत अनुपातों में अन्तर क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री नहीं दे सके। पर प्रथम विश्व-युद्ध के बाद स्वीडन के दो महान् अर्थशास्त्रियों–**एली हेक्सचर** (Eli Heckscher) एवं उनके शिष्य **बर्टिल ओहलिन** (Bertil Ohlin) ने इस प्रश्न का उत्तर दिया। सबसे पहले 1919 में **हेक्सचर** ने बताया कि **"दो देशों में व्यापार**

नोट

तुलनात्मक लाभ में अन्तर के कारण होता है तथा तुलनात्मक लाभ में अन्तर दोनों देशों में उत्पत्ति के साधनों की सापेक्षिक कीमतों में भिन्नता तथा विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में साधनों के विभिन्न अनुपातों के प्रयोग के कारण होता है। ओहलिन ने हेक्सचर के सिद्धान्त को स्वीकार कर उसकी विस्तृत व्याख्या की। ओहलिन का निष्कर्स हेक्सचर से भिन्न नहीं है। **ओहलिन** ने अपनी पुस्तक *'Inter-regional and International Trade'* में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की है। इन दोनों अर्थशास्त्रियों ने जिस सिद्धान्त को विकसित किया उसे हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धांत अथवा अन्तर्राष्ट्री व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Internationa Trade) कहते हैं। इसे **साधन अनुपातों** (Factor Proportions) का सिद्धान्त भी कहते हैं।

4.1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत: मूल्य घटक के समानीकरण का सिद्धांत, हेक्सचर ओहलिन का सिद्धांत, क्रेविस और लिंडर का व्यापार सिद्धांत (Modern Theories of International Trade: Theorem of Factor Price Equalization, H-O Theory, Kravis and Linder Theory of Trade)

अमेरिकी अर्थशास्त्री क्रेविस (I. B. Kravis) ने वर्ष 1956 में प्रकाशित अपने लेख '*Availability and other Influences on the Commodity Composition of Trade*' में क्लासिकी सिद्धान्त की इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया कि व्यापार करने वाले देशों में समान प्रौद्योगिकी होती है। साथ ही हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त का परीक्षण करते हुए उन्होंने यह जानना चाहा कि क्या श्रम गहन निर्यात सस्ते श्रम द्वारा उत्पादित होते हैं? व्यवहार में उन्होंने यह पाया कि प्राय: प्रत्येक देश में निर्यात करने वाले उद्योग उच्चतम मज़दूरी का भुगतान करते हैं। क्रेविस के अनुसार, एक देश उन वस्तुओं का उत्पादन व निर्यात करता है जो उसे प्राप्य अथवा उपलब्ध होती हैं, अर्थात् वे वस्तुएं जो इसके उद्यमियों एवं नवप्रवर्तकों द्वारा विकसित की गई होती हैं। इस प्रकार उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि व्यापार की वस्तु संरचना मुख्यत: 'प्राप्यता' द्वारा निर्धारित होती है।

यहां प्राप्यता से तात्पर्य वस्तु की लोचशील पूर्ति से है। व्यापार केवल उन्हीं वस्तुओं में होता है जो "देश के भीतर उपलब्ध नहीं होती हैं।" इस वाक्य से उसका तात्पर्य यह है कि (क) एक देश उन वस्तुओं का आयात करेगा, जो निरपेक्ष रूप से उसके यहां नहीं पाई जाती हैं, जैसे हीरे तथा (ख) उन वस्तुओं का निर्यात करेगा जो घरेलू मांग से अधिक मात्रा में देश में उपलब्ध रहती हैं।

क्या आप जानते हैं दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता किसी देश के व्यापार ढांचे को निर्धारित करती है।

क्रेविस के अनुसार किसी वस्तु की प्राप्यता अथवा उपलब्धता को चार कारक प्रभावित करते हैं: प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी परिवर्तन, वस्तु विभेदीकरण तथा सरकारी नीति। दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता किसी देश के व्यापार ढांचे को निर्धारित करती है। किसी वस्तु विशेष के उत्पादन के सम्बन्ध में प्राप्त तकनीकी ज्ञान से उस वस्तु विशेष का उत्पादन किया जाता है जिसे देश निर्यात करता है। वस्तु विभेदीकरण नव प्रवर्तन करने वाले देश के उत्पादन को अस्थायी एकाधिकार प्रदान करता है जिससे वह अपनी वस्तु का तब तक निर्यात करता रहता है, जब तक आयातकर्ता देश उसकी नकल नहीं कर लेता। सरकारी नीति व्यापार को ऋणात्मक रूप से प्रभावित करती है। प्रशुल्क नीतियां, परिवहन लागतें, उत्पादक संघ आदि व्यापार से वे वस्तुएं समाप्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं जो किसी देश को थोड़ी सी ऊंची लागत पर घरेलू उत्पादन द्वारा प्राप्त होती हैं। अत: किसी वस्तु की अनुपलब्धता अथवा अप्राप्यता प्राकृतिक संसाधनों, तकनीकी ज्ञान, वस्तु विभेदीकरण अथवा संरक्षणात्मक नीतियों की कमी के कारण होती है।

नोट

क्रेविस के प्राप्यता सिद्धान्त को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए चार देश अमेरिका (A), इंग्लैण्ड (B), कनाडा (C), तथा डेनमार्क (D) हैं। दो वस्तुएं खाद्यान्न (F) तथा विनिर्मित पदार्थ (M) हैं। दोनों वस्तुएं श्रम तथा पूंजी के द्वारा उत्पादित हैं। परन्तु खाद्यान्न के उत्पादन के लिए भूमि भी चाहिए तथा विनिर्मित वस्तुओं के उत्पादन के लिए तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। यह भी मान लीजिए कि देश A, B तथा C के पास भूमि है जबकि देश B, C तथा D के पास तकनीकी ज्ञान है। अत: देश A केवल वस्तु (F) का उत्पादन कर सकता है जबकि देश D केवल M वस्तु का उत्पादन कर सकता है, परन्तु अन्य दोनों देश B तथा C दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं।

मान लीजिए दोनों वस्तुओं F और M की रूपान्तरण की सीमान्त दर (Marginal Rate of Transformation) दोनों देशों B तथा C में स्थिर हैं तथा यह देश B में SF के लिए 1M (SF : 1M) है और देश C में 3F के लिए 1M (3F : 1M) है। F और M के बीच, एक सन्तुलित कीमत अनुपात विश्व मांग स्थितियों और उत्पादन सम्भावनाओं द्वारा निर्धारित होगा। प्राप्यता पर आधारित देश A सदैव वस्तु F का निर्यात करेगा तथा देश D वस्तु M का, परन्तु सन्तुलित कीमत अनुपात B और C देशों के व्यापार ढांचों को निर्धारित करता है। यदि कीमत अनुपात 5F के लिए 1M से अधिक हो तो वे वस्तु M का निर्यात करेंगे। यदि कीमत अनुपात 4F : 1M हो तो देश B वस्तु F तथा देश C वस्तु M का निर्यात करेगा।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि देश A देश D को F वस्तु का निर्यात करेगा तथा देश D वस्तु M का निर्यात प्राप्यता सिद्धान्त के आधार पर देश A को करेगा क्योंकि प्रत्येक देश आयातित वस्तु का घरेलू उत्पादन नहीं कर सकता। इसके बावजूद, देश B तथा C के बीच व्यापार तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के आधार पर किया जा सकता है, क्योंकि दोनों ही देश दोनों वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं।

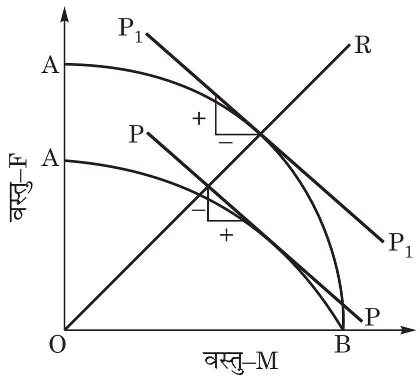

चित्र 4.1

प्रो. फिण्डले (Findlay) ने प्राप्यता सिद्धान्त को साधन-अनुपात (Factor Proportions) सिद्धान्त से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है। मान लीजिए दो देश A तथा B दो वस्तुएं F तथा M का उत्पादन करते हैं। दोनों श्रम तथा पूंजी से सम्पन्न हैं तथा दोनों देशों के पास दोनों वस्तुओं के उत्पादन के लिए समान तकनीकी ज्ञान है, परन्तु देश A के पास देश B की अपेक्षा भूमि अधिक है, परन्तु भूमि की आवश्यकता केवल वस्तु F का उत्पादन करने के लिए होती है जबकि तकनीकी ज्ञान केवल वस्तु M का उत्पादन करने के लिए होता है। इन मान्यताओं के आधार पर दोनों देश वस्तु M की समान मात्रा उत्पादित कर सकेंगे, यदि सभी साधन इसी उद्देश्य के लिए प्रयुक्त होते हैं, परन्तु देश B की अपेक्षा देश A वस्तु F की अधिक मात्रा का उत्पादन कर सकता है क्योंकि उसके पास अपेक्षाकृत अधिक भूमि है, यदि सभी साधन इसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होते हैं। चित्र 4.1 में BA देश B का उत्पादन सम्भावना वक्र है तथा वक्र BA_1 देश A का उत्पादन सम्भावना वक्र है। वस्तु M को क्षैतिज अक्ष पर तथा वस्तु F को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। PP तथा P_1P_1 रेखाओं के ढाल व्यापार शर्तों को तथा रेखा OR मांग समानुपातों को व्यक्त करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि देश A वस्तु F का निर्यात करेगा। देश A में भूमि, पूंजी और श्रम का ऊँचा अनुपात यह बताता है कि यह देश क्यों वस्तु F का निर्यात करता है जबकि देश B नहीं करता।

इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि प्राप्यता सिद्धान्त साधन अनुपात सिद्धान्त से श्रेष्ठ है। मान लीजिए वस्तु F की अपेक्षा वस्तु M का सदैव ऊँचा पूंजी-श्रम अनुपात रहता है तथा देश A का देश B की अपेक्षा ऊँचा पूँजी-श्रम अनुपात है। परन्तु दोनों देशों में तकनीकी ज्ञान का समान स्तर उपलब्ध है। वस्तु F के उत्पादन के लिए भूमि चाहिए जो केवल देश A में प्राप्त है जबकि वस्तु M के उत्पादन के लिए लोहा चाहिए जो केवल B देश में उपलब्ध होता है। ऐसी दशा में देश A वस्तु F का निर्यात करेगा जबकि देश B वस्तु M का। इसका अभिप्राय है कि पूँजी-प्रचुर

नोट

देश A श्रम-गहन वस्तु F का निर्यात करेगा और विलोमश साधन अनुपात तर्क के आधार पर उपरोक्त उत्तर गलत हो जाता है, परन्तु प्राप्यता सिद्धान्त के आधार पर यह उत्तर सही ठहरता है क्योंकि देश A में भूमि की प्राप्यता तथा देश B में लोहे की प्राप्यता है। यदि यह तर्क दिया जाता है कि देश A में भूमि की प्रचुरता है जबकि देश B में लोहे की, इस कारण देश A भूमि प्रचुर वस्तु F का निर्यात करता है तथा देश B लोहा प्रचुर वस्तु M का तो साधन अनुपात सिद्धान्त भी सही उत्तर देता है। फिण्डले के अनुसार, विशिष्ट प्रकार के प्राकृतिक साधनों की सूची बहुत लम्बी होने के कारण, साधन अनुपात सिद्धान्त के इस तरह के सामान्यीकरण से यह एक भद्दा उपकरण बनकर रह जाता है। प्राप्यता सिद्धान्त विशिष्ट उपभोक्ता अधिमानों की व्याख्या में भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

आलोचनाएं (Criticisms)-क्रेविस के प्राप्यता सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नवत हैं–

(1) प्राप्यता सिद्धान्त व्यापार ढांचे की व्याख्या के रूप में विशेष अवस्थाओं में ही लागू होता है। फिण्डले का तर्क है कि व्यापार ढांचे के मुख्य निर्धारक के रूप में प्राप्यता सिद्धान्त केवल बहुत विशेष अवस्थाओं में ही सत्य होता है। जहाँ जितने देश हों उतनी ही वस्तुएँ हों जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु को एक आगत (Input) की आवश्यकता होती है जिसकी अन्य किसी को भी आवश्यकता नहीं होती तथा प्रत्येक देश के पास इस तरह केवल एक ही आगत पाई जाती है। ऐसी वस्तुओं में व्यापार की व्याख्या करने के लिए, जिनको आसानी से प्राप्त आगतें चाहिए, परम्परागत सिद्धान्त नि:सन्देह श्रेष्ठ है।

(2) प्रो. जगदीश भगवती के अनुसार, प्राप्यता सिद्धान्त स्पष्टतया परीक्षण योग्य परिकल्पनाओं को बताने में सफल नहीं हो पाया है।

(3) प्राप्यता सिद्धान्त एक देश के व्यापार ढांचे की पर्याप्त व्याख्या नहीं है। यह सम्भव है कि एक देश एक वस्तु का थोड़ी मात्रा में निर्यात कर रहा हो चाहे विदेशी उपभोक्ताओं को उसके साथ कोई लगाव न हो अथवा यह सम्भव है कि देश किसी अन्य वस्तु का उत्पादन प्रारम्भ कर दे, जहां उसके साधनों को अधिक लाभदायकता के साथ प्रयोग किया जा सकता है, चाहे विदेशी उपभोक्ता इस वस्तु के प्रति किसी तरह का अधिमान न देते हों।

व्यापार की मात्रा तथा माँग ढाँचे का लिंडर का सिद्धान्त (Linder's Theory of the Volume of Trade and Demand Pattern)

स्वीडिश अर्थशास्त्री **एस. बी. लिंडर** (S. B. Linder) ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के एक ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो व्यापार कर रहे दो विभिन्न देशों के बीच विनिर्माण (Manufactures) में व्यापार की मात्रा को राष्ट्रीय आय के समानुपात के रूप में व्याख्या करता है। लिंडर का तर्क है कि जब एक देश की प्रति व्यक्ति आया में वृद्धि होती है तो उसका प्रतिनिधि माँग ढाँचा (Representative Demand Pattern) कुछ विनिर्माणों के घरेलू उत्पादन में प्रसार करता है। यह प्रसार इन विनिर्माणों की लागतों में ऐसी कटौतियां लाता है कि वे देश के नए तुलनात्मक लाभ वाले निर्यात बन जाते हैं। इस तरह, एक देश अपनी प्रतिनिधि मांग वस्तु का निर्यात करना प्रारम्भ कर देता है।

मान्यताएँ (Assumptions)–लिंडर का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(1) एक देश का सम्भावित व्यापार ऐसी वस्तुओं तक सीमित होता है जिनकी घरेलू मांग होती है।

(2) जिन वस्तुओं के लिए घरेलू मांग पाई जाती है वह प्रति व्यक्ति आय द्वारा निर्धारित होती है।

(3) दो देशों के बीच सम्भावित व्यापार ऐसी वस्तुओं तक सीमित होता है जिनके लिए मांग दोनों देशों में होती है।

(4) दो देशों के बीच सम्भावित व्यापार समान आय स्तरों पर निर्भर करता है।

सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation)–दी गई पूर्वधारणाओं के आधार पर लिंडर के सिद्धान्त के विश्लेषणात्मक ढांचे की विवेचना इस तरह की जा सकती है–विनिर्माणी वस्तुओं के निर्यात व्यापार की पूर्व शर्त है उसकी घरेलू मांग का विद्यमान होना। ऐसा अनेक कारणों से हो सकता है यथा–(*i*) विदेशी व्यापार घरेलू व्यापार का विस्तार मात्र है। (*ii*) वर्तमान उद्योगों पर नवप्रवर्तन का कारण घरेलू मांग में वृद्धि होना है। (*iii*) घरेलू मांग ही विनिर्मित वस्तुओं

नोट

के लिए निर्यात की सम्भावना तलाशती है। वास्तव में इसके पीछे मुख्य कारण यह है कि विदेशी बाजार जोखिमपूर्ण होते हैं जबकि घरेलू बाजार में जोखिम नहीं होती अत: उत्पादक केवल विदेशी बाजार पर निर्भर नहीं रहना चाहता। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि घरेलू मांग ढांचा सम्भावित निर्यात वस्तुओं की सीमा को निर्धारित करता है। एक देश केवल उन्हीं वस्तुओं का निर्यात करेगा जिनके लिए घरेलू मांग बड़ी और सक्रिय होती है। जब घरेलू बाजार की मांग को दृष्टिगत रखते हुए उत्पादन बढ़ाया जाता है तो पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं तथा लागतें कम आती हैं जिससे फर्म विदेशी बाजार में प्रवेश कर सकती है।

लिंडर के अनुसार, एक देश अपनी अधिक वस्तुओं को उन देशों को निर्यात करेगा जिनका आय स्तर तथा मांग ढांचा निर्यातक देश के समान है। इसे लिंडर ने **'अधिमान समानता'** (Preference Similarity) कहा है। यह अधिमान समानता (Overlapping) की ओर ले जाती है। लिंडर का तर्क है कि एक दिए हुए देश में, अन्य बातें समान रहने पर, उच्च आय वर्गों में उपभोक्ता उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं की मांग करते हैं और जो निम्न आय वर्गों में होते हैं वे निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुओं की मांग करते हैं। यही नियम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू होते हैं जहां औसतन निम्न आय देश निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुओं की मांग की प्रबृत्ति रखते हैं उच्च आय देश उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं की। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उच्च आय वाले देश निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुओं की मांग नहीं करतें तथा निम्न आय वाले देश उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं की मांग नहीं करते। वास्तविकता यह है कि आय वितरण किसी भी समाज में समान नहीं है। यही कारण है कि विभिन्न देशों में अधिमान समानता होती है तथा मांग ढांचे अतिव्याप्त होते हैं। इनसे देशों के बीच व्यापार सम्बन्ध पाए जाते हैं और प्रत्येक देश अपनी घरेलू मांग को पूरा करने के पश्चात् विभिन्न प्रकार की निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता है।

लिण्डर के अधिमान समानता अथवा अतिव्याप्ति मांग सिद्धान्त को रेखाचित्र 4.2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए दो देश A तथा B हैं। चित्र में क्षैतिज अक्ष पर प्रति व्यक्ति आय को तथा अनुलम्ब अक्ष पर वस्तुओं की गुणवत्ता को प्रदर्शित किया गया है। रेखा OR इस सम्बन्ध को दर्शाती है। उच्च प्रति व्यक्ति आय Oy_a वाला देश A उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं की OQ_a मात्रा की मांग करता है जबकि निम्न प्रति व्यक्ति आय OY_b वाला देश B निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुएं OQ_b की मांग करता है। यदि प्रत्येक देश में सभी व्यक्तियों के बीच आय का वितरण समान रहता है तो देशों के बीच कोई व्यापार नहीं होगा क्योंकि प्रत्येक देश निवासियों द्वारा मांगी गई केवल एक स्टैण्डर्ड गुणवत्ता वाली वस्तु का उत्पादन करेगा।

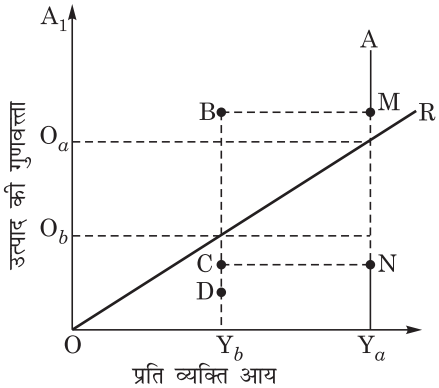

चित्र 4.2

वास्तविकता यह है कि आय वितरण असमान रहता है अत: प्रत्येक देश में दोनों गुणवत्ता वाली वस्तुएं मांगी जाती हैं। मान लीजिए देश A में आय वितरण से AS विस्तार (Range) में दोनों वस्तुओं के लिए मांग की जाती है जबकि देश B में विस्तार BD है। दोनों देशों में अतिव्याप्त मांग विस्तार BC = MN है। चूंकि मांगों की अतिव्याप्ति है, अत: दोनों देशों के बीच व्यापार सम्भव है। प्रति व्यक्ति ऊंची आय वाला देश A, उच्च गुणवत्ता वाली वस्तु OQ_a को प्रति व्यक्ति निम्न आय वाले देश B को उसके उच्च आय वर्ग के उपभोक्ताओं की मांग को पूरा करने के लिए निर्यात करेगा। दूसरी ओर, प्रति व्यक्ति निम्न आय वाला देश B निम्न गुणवत्ता वाली वस्तु OQ_b को प्रतिव्यक्ति उच्च आय वाले देश A को उसके निम्न आय वाले उपभोक्ताओं की मांग को पूरा करने के लिए निर्यात करेगा। एक व्यापार करने वाले देश के सम्भावित निर्यात विस्तार की वस्तु संरचना में जितनी अधिक अतिव्याप्ति होगी, उतनी ही अधिक व्यापार की मात्रा होगी। जितनी अधिक व्यापार की सम्भावित मात्रा होगी, उतना ही व्यापार करने वाले देशों में आय स्तर ऊँचा होगा। साथ ही जितनी अधिक व्यापार की सम्भावित मात्रा होगी, उतनी ही अधिक व्यापार की वास्तविक मात्रा होगी।

नोट

(Criticisms) लिंडर के व्यापार की प्रमुख आलोचनाएं निम्नवत् हैं–

(1) लिंडर का सिद्धान्त 'गुणवत्ता' शब्द को ठीक ढंग से परिभाषित नहीं करता तथा यह स्पष्ट नहीं करता कि गुणवत्ता की माप किस तरह की जाती है।

(2) यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता कि केवल गुणवत्ता युक्त वस्तुओं का प्रयोग ही क्यों प्रति व्यक्ति आय के साथ परिवर्तित होता है तथा व्यापार को प्रभावित करता है।

(3) लिण्डर का सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता कि किन कारणों से एक देश अपनी वस्तु जो वह निर्यात करता है, उसके लिए वह पहले घरेलू बाजार का विकास करेगा।

(4) लिण्डर ने प्रतिनिधि मांग की अवधारणा को भी ठीक से स्पष्ट नहीं किया है।

(5) यह सिद्धान्त इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डालता कि एक देश द्वारा कौन-कौन-सी वस्तुएं आयात की जाएँगी तथा कौन-कौन सी निर्यात की जाएँगी।

(6) लिण्डर का सिद्धान्त व्यापार की मात्रा पर पड़ने वाले प्रदर्शन प्रभाव की अपेक्षा करता है।

(7) लिण्डर उन शर्तों की विवेचना नहीं करता जिनके अन्तर्गत व्यापार कर रहे देश व्यापार की मात्रा को प्रभावित करने की सम्भावना रख सकते हैं।

(8) लिण्डर के सिद्धान्त में केवल आनुभविक प्रमाण की कमी है अत: यह सिद्धान्त केवल सुझाव मात्र ही है।

–उपरोक्त कमियों के बावजूद, लिण्डर का सिद्धान्त असाधारण है जो विकसित देशों के बीच विनिर्माणों में व्यापार की बड़ी मात्रा के कारणों की व्याख्या करता है।

यह सिद्धान्त हेक्सचर-ओहलिन के सिद्धान्त पर सुधार है। हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त इस परिकल्पना पर आधारित है कि साधन सम्पन्नताओं में भेदों से दो देशों के बीच व्यापार होता है, जबकि लिण्डर का सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि व्यापार तब होता है जब साधन सम्पन्नताएं समान होती हैं।

आन्तर-उद्योग व्यापार (Intra-Industry Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित, नव प्रतिष्ठित हेक्सचर-ओहलिन, सैम्युलसन तथा अन्य सिद्धान्त प्राय: दो देशों के मध्य अंतर-उद्योग व्यापार (Inter-Industry) की व्याख्या करते हैं। अंतर-उद्योग व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वह स्थिति है जहां एक उद्योग की वस्तु का एक भिन्न उद्योग की वस्तु के साथ विनिमय किया जाता है; जैसे भारतीय जूते का जापानी मशीनरी के साथ व्यापार का होना। अंतर-उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है। दूसरी ओर आंतर-उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत एक ही उद्योग में भेदीकृत वस्तुओं का व्यापार होता है जो समान (Similar) तो होती हैं, परन्तु समरूप (Identical) नहीं होती; जैसे जापानी कारों का अमेरिकी कारों के साथ व्यापार और इसी तरह साबुन, घड़ियां, जूते तथा अन्य वस्तुओं का देशों के बीच व्यापार है। जब देश वस्तु विभेदीकरण के साथ-साथ पर्याप्त लागत अंतरों के साथ उत्पादन करते हैं तथा सभी प्रकार की भिन्न वस्तुओं का विनिमय करते हैं, तब यह आंतर-उद्योग व्यापार होता है, परन्तु जब एक ही उद्योग में बिना पर्याप्त लागत अन्तरों के देश विशिष्टीकरण और व्यापार करते हैं तो यह आंतर-उद्योग व्यापार है।

आंतर-उद्योग व्यापार विशिष्टकरण और बढ़ रहे श्रम-विभाजन के कारण होता है जो बाजार के आकार पर निर्भर करता है। तीव्र आर्थिक विकास और विश्व अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण के साथ आंतर-उद्योग व्यापार मध्यवर्ती और अन्तिम वस्तुओं में फैल गया है। यह ऊंची परिवहन लागतों के कारण सीमा-व्यापार (Border Trade) के रूप में तथा फलों एवं सब्जियों की ऊंची भंडारण लागतों के कारण मौसमी व्यापार के रूप में देशों के बीच विस्तृत हुआ है।

आंतर-उद्योग व्यापार इसलिए होता है क्योंकि देशी एवं विदेशी फर्में समान वस्तु की समरूप किस्में बनाती हैं जो एक-दूसरे के राष्ट्रीय बाजार में आसानी से प्रवेश कर जाती हैं। जब दो देशों में दो फर्मों की एकसमान वस्तु के उत्पादन में एकाधिकार रहता है तो व्यापार होने से प्रतियोगिता होती है जिससे दोनों फर्मों के उत्पाद की कीमतें कम

नोट

हो जाती हैं और लाभ की सीमा घट जाती है। इसके फलस्वरूप एकाधिकारी फर्मों को हानि होती है, परन्तु दोनों देशों के उपभोक्ताओं को लाभ होता है।

आंतर-उद्योग व्यापार के निम्नलिखित लाभ हैं–

(1) ऐसा व्यापर दोनों देशों में बहुत किस्म की वस्तुएं उपलब्ध कराता है। व्यापार का विस्तार होने से उत्पादकों को बड़े पैमाने की मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होते हैं जिससे वस्तुओं की लागतें एवं कीमतें कम हो जाती हैं। दोनों देशों के उपभोक्ताओं को सस्ती और गुणवत्ता वाली वस्तुएं उपलब्ध होती हैं, परन्तु लाभ मार्जिन बहुत घट जाने से कुछ उत्पादन बन्द कर उद्योग को छोड़ जाते हैं।

(2) वस्तु विभेदीकरण से एक छोटा देश पैमाने की मितव्ययिताओं और विशिष्टीकरण द्वारा एक बड़े देश से कम कीमत पर वस्तुएं बेच सकता है और इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ प्राप्त कर सकता है।

(3) आंतर-उद्योग व्यापार समान साधन सम्पन्नताओं तथा समान आकार के दो देशों के बीच व्यापार की मात्रा में वृद्धि करता है।

(4) विभेदीकृत वस्तुओं पर आधारित व्यापार उत्पादन लागतों को कम करने के लिए विभिन्न देशों में पुर्जो के उत्पादन और उनके जुटाने में वृद्धि करता है। इससे बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा पुर्जो के व्यापार में वृद्धि हुई है।

आंतर-उद्योग व्यापार के सम्बन्ध में बो (Bo Sodersten) ने इंगित किया है कि, "

।"

अनुकरण अन्तराल अथवा प्रौद्योगिकीय अन्तराल सिद्धान्त (Imitation Gap or Technological Gap Theory)

रिकार्डो तथा हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न समस्त देशों में प्रोद्योगिकी का स्तर समान है। अत: वे व्यापार पर प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के प्रभाव की विवेचना नहीं करते।

(M. V. Posner) ने 1961 में प्रकाशित अपने लेख '*Technical Charge and International Trade*' में व्यापार पर तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव की विवेचना प्रस्तुत की है। पोसनर ने अपने लेख में स्पष्ट किया कि तकनीकी प्रगति अथवा प्रौद्योगिकीय परिवर्तन एक निरन्तर प्रक्रिया है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की संरचना को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। किसी देश में एक नई वस्तु के उत्पादन के रूप में प्रौद्योगिकीय नवप्रवर्तन दूसरे देश में अनुकरण अन्तराल और मांग अन्तराल उत्पन्न करता है। दो देशों के बीच किस सीमा तक व्यापार होगा यह अनुकरण अन्तराल और मांग अन्तराल के शुद्ध (net) प्रभाव पर निर्भर करता है।

(Assumptions)

अनुकरण अथवा प्रौद्योगिकी अन्तराल सिद्धान्त निम्नलिखित पूर्वधारणाओं पर आधारित है–

1. व्यापार करने वाले देश दो हैं।
2. दोनों देशों में साधन सम्पन्नताएँ समान हैं।
3. दोनों देशों में प्रौद्योगिकी का स्तर भिन्न-भिन्न है।
4. दोनों देशों में मांग स्थितियाँ समान हैं।
5. दोनों देशों में व्यापार-पूर्व साधन कीमत अनुपात समान है।

(Explanation)

उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर नवप्रवर्तन और अनुकरण का क्रम व्यापार की संरचना को किस तरह प्रवाहित करता है इसकी व्याख्या अनुकरण अन्तराल सिद्धान्त द्वारा की जा सकती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब एक फर्म नई वस्तु में नवप्रवर्तन करती है तब घरेलू बाजार में वह लाभदायक बन जाती है और अस्थायी रूप से एकाधिकार प्राप्त कर लेती है। जब वह फर्म अपने उत्पादन का विस्तार करती है और उसे विदेशी बाजार में बेचती है तब उसे

नोट

इस वस्तु में निरपेक्ष लाभ प्राप्त होता है। कुछ समय पश्चात्, नवप्रवर्तन कर रही फर्मों के लाभ अन्य देशों में अनुकरण को प्रोत्साहित करते हैं, परन्तु वह फर्म अपनी वस्तु का उस समय तक निर्यात करती रहेगी और उसके उत्पादन से तुलनात्मक लाभ प्राप्त करती रहेगी जब तक कि आयातक देश उस वस्तु के उत्पादन की तकनीक को सीखकर उस वस्तु का उत्पादन करना प्रारम्भ नहीं कर देता। इस तरह, दूसरे देश के साथ अनुकरण अन्तराल का सृजन हो जाता है। अनुकरण अन्तराल की अवधि में दूसरे देश में नई वस्तु के आयात होते रहते हैं।

के अनुसार अनुकरण अन्तराल की तीन कोटियां हैं। (Foreign Reaction Lag) है जो नवप्रवर्तन कर रही फर्म द्वारा नई वस्तु का उत्पादन प्रारम्भ करने में लगा समय है। (Domestic Reaction Lag) है जो अन्य घरेलू उत्पादकों द्वारा अनुकरण करने में तथा घरेलू बाजार में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में लगा समय है। (Learning Period) है जो घरेलू उत्पादकों द्वारा नई वस्तु को उत्पादित करने की तकनीक में निपुणता प्राप्त करने तथा उसे घरेलू बाजार में बेचने में लगा समय है। ये तीनों कोटियां अथवा अंश मिलकर अनुकरण अन्तराल का सृजन करते हैं।

इसके अतिरिक्त, पोसनर ने (Demand Lag) की भी कल्पना की है जो घरेलू उपभोक्ताओं द्वारा नई वस्तु के लिए रुचि विकसित होने में लगा समय होता है। मांग अन्तराल के कारण नई वस्तु के आयात अनुकरण अन्तराल की पूरी अवधि के लिए चालू नहीं रहेंगे। जिस अवधि के दौरान आयात चालू रहेंगे उसे जानने के लिए मांग अन्तराल को अनुकरण अन्तराल में से घटा देना चाहिए। यदि घरेलू उत्पादक नई वस्तु का शीघ्र उत्पादन करना प्रारम्भ कर देते हैं तथा घरेलू उपभोक्ता नई वस्तु को अपनाने में कुछ समय लेते हैं तो अनुकरण अन्तराल थोड़ा हो जाएगा तथा नई वस्तु को आयात करने की अवधि कम हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि घरेलू उपभोक्ता नई वस्तु को शीघ्रता से अपना लेते (अर्थात् उसकी मांग करने लगते हैं) हैं और घरेलू उत्पादक उसे शीघ्रता से उत्पादित नहीं कर पाते हैं तो अनुकरण अन्तराल लम्बा हो जाएगा तथा देश नई वस्तु का आयात लम्बी अवधि तक करता रहेगा। जब अनुकरण अन्तराल और मांग अन्तराल समान हो जाते हैं तब नई वस्तु का आयात समाप्त हो जाता है। इस तरह, दो देशों के बीच व्यापार की संरचना इन दोनों अन्तरालों की सापेक्ष शक्ति पर निर्भर करेगी।

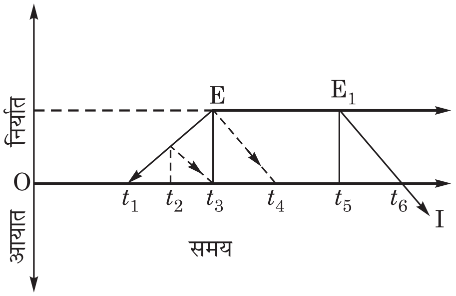

चित्र 4.3

पोसनर के सिद्धान्त की विवेचना चित्र 4.3 के द्वारा की जा सकती है। चित्र में समानान्तर अक्ष पर समय को तथा अनुलम्ब-अक्ष पर मान लीजिए वस्तु X के लिए नवप्रवर्तन कर रहे देश A का अनुकरण कर रहे देश B के विरुद्ध व्यापार शेष (Trade Balance) को प्रदर्शित किया गया है। चित्र में बिन्दु t_1 तक दोनों देशों के बीच वस्तु X में कोई व्यापार नहीं होता। समय t_1 पर देश A नई वस्तु का नवप्रवर्तन करता है। देश B में मांग अन्तराल देश A के निर्यातों की मात्रा को निर्धारित करेगा और इस तरह t_1B की ढलान (slope) को। अनुकरण अन्तराल यह निर्धारित करेगा कि समय की कितनी अवधि तक देश B देश A से वस्तु का आयात करेगा साथ ही यह देश A के निर्यातों की मात्रा भी निर्धारित करेगा। यदि देश B में वस्तु का कोई अनुकरण नहीं होता है तब देश A उसका निर्यात करता रहेगा जब तक कि अवधि t_3 तक निर्यात अधिकतम सीमा E तक नहीं पहुंच जाते हैं। t_1 से t_3 तक अवधि मांग अन्तराल को व्यक्त करती है। यदि देश B में उत्पादक नई वस्तु को t_3 समय तक उत्पादन करना प्रारम्भ कर देते हैं तो देश A के निर्यात कम हो जाएंगे तथा वे समय t_4 तक बन्द भी हो जाएंगे, जैसाकि E से नीचे की ओर t_4 तक तीर द्वारा प्रदर्शित किया गया है। ऐसी दशा में अनुकरण अन्तराल t_3t_4 मांग अन्तराल t_1t_3 से छोटा होगां

यदि अनुकरण अन्तराल लम्बा है और उत्पादक t_5 समय तक नई वस्तु के नवप्रवर्तन को अपना नहीं सकते तो देश A अपने अधिकतम स्तर E_1 तक निर्यात करता रहेगा। जब देश B वस्तु का उत्पादन करना प्रारम्भ कर देता है तो अनुकरण अन्तराल छोटा हो जाता है तथा देश A से निर्यात कम होने लगते हैं और t_6 तक समाप्त हो जाते हैं जब वस्तु का पूरी तरह से अनुकरण हो जाता है। यदि देश B में उत्पादक वस्तु में नवीन नवप्रवर्तन करते हैं और इस देश

नोट

की वस्तु देश A की अपेक्षा बेहतर हो जाती है तो देश B इस वस्तु के साथ देश A के बाजार में प्रवेश करेगा। ऐसी दशा में देश A इस वस्तु का देश B से आयात करना प्रारम्भ कर देगा जैसा कि चित्र में t_6 से नीचे I तक तीर द्वारा प्रदर्शित है।

पुन: पोसनर नवप्रवर्तन तथा अनुकरण की दोनों धारणाओं को एक एकल गतिशीलता (single dynamism) की अवधारणा में इकट्ठा कर देता है। पोसनर एक देश की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में गतिशीलता को, जिस दर पर वह देश नवप्रवर्तन करता है तथा जिस गति से वह विदेशी नवप्रवर्तनों का अनुकरण करता है उसके फलन के रूप में परिभाषित करता है। यदि व्यापार में संलग्न दोनों की गतिशीलता की अवस्था समान है तो उनमें व्यापार बिना भुगतान शेष की कठिनाइयों के होगा तथा एक देश से नवप्रवर्तन का दूसरे देश में शीघ्रता से अनुकरण होने के कारण व्यापार से दोनों में विकास होगा। यदि एक व्यापार कर रहे देश की गतिशीलता की अवस्था दूसरे देश की अपेक्षा ऊँची है, तो दूसरे देश में व्यापार शेष का घाटा होगा, क्योंकि वह नई वस्तु की अधिक मात्रा आयात करता है। वह अपने भुगतान शेष को सुधारने के लिए कम अनुकूल कीमतों पर अपनी परम्परागत वस्तुओं को पहले देश को निर्यात करेगा। पहले देश से नई वस्तु का आयात करने से नवप्रवर्तन और अनुकरण के गतिशील कारकों के कारण परम्परागत वस्तुओं में व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।

(Criticisms)

पोसनर का अनुकरण अन्तराल सिद्धान्त प्रतिष्ठित तथा हेक्श्चर-ओहलिन सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक वास्तविक है, क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की संरचना पर तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव का विश्लेषण करता है, परन्तु इस सिद्धान्त में कुछ महत्वपूर्ण कमियाँ भी हैं जो इस प्रकार हैं :

(*i*) यह सिद्धान्त इस तथ्य की समुचित व्याख्या नहीं करता कि एक निर्धारित एवं स्थिर समय अन्तराल को क्यों अंगीकार किया गया है। यह कम अथवा अधिक क्यों नहीं हो सकता है; तथा

(*ii*) दोनों देशों में नवप्रवर्तनों के प्रतियोगितात्मक ढाँचे क्या हैं?

इमैन्युअल का असमान विनिमय सिद्धान्त (Emmanuel's Theory of Unequal Exchange)

इमैन्युअल ने वर्ष 1970 में प्रकशित अपनी पुस्तक *Unequal Exchange : A Study in the Imperialism of Trade* में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के असमान विनिमय सिद्धान्त का विकास किया। यह सिद्धान्त उत्पादन में प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों के निर्धारण के लिए मार्क्स के उत्पादन की कीमतों के सिद्धान्त पर आधारित है। इमैन्युअल की धारणा है कि विकसित देशों (DCs) तथा कम विकसित देशों (LDCs) के बीच आर्थिक असमानता का मुख्य कारण उत्पादन की तकनीकों तथा मजदूरियों में अन्तर है जिनसे व्यापार में असमान विनिमय होता है। किसी विकसित देश में एक श्रम घण्टे के उत्पाद का विनिमय कम विकसित देश के अधिक श्रम घण्टे के उत्पाद के लिए होता है। इस असमान विनिमय से विकसित देशों को लाभ और कम विकसित देशों को हानि होती है।

(Assumptions)

इमैन्युअल का सिद्धान्त निम्नलिखित पूर्वधारणाओं पर आधारित है—

1. व्यापार दो देशों के बीच होता है—देश A विकसित है जबकि देश B अल्प-विकसित है।
2. वस्तुएँ X तथा Y हैं जिनका विनिमय होता है।
3. पूंजी में अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता है जबकि श्रम विभिन्न देशों के बीच गतिशील नहीं है।
4. कीमतें विकसित देश में अधिक और अल्प-विकसित देश में कम होती हैं।
5. मजदूरी विकसित देश में अधिक और अल्प-विकसित देश में कम होती है।
6. लाभ की दरें दोनों देशों में समान होती हैं।
7. मजदूरियाँ कीमतों में स्वतन्त्र हैं।
8. यातायात लागतें शून्य हैं।

नोट

9. वस्तुओं का व्यापार स्वतन्त्र रूप से होता है।
10. प्रत्येक देश किसी वस्तु विशेष में विशिष्टता रखता है।

(Explanation of the Theory)

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर इमैन्युअल ने इस धारणा को विकसित करने का प्रयास किया कि विकसित देशों ने प्रौद्योगिकीय प्रगति के फलस्वरूम श्रम बचतकारी तकनीक अपनाकर 'पूंजी की संगठित संरचना' (organic composition of capital) में वृद्धि की है जबकि अल्प-विकसित देश अपने विकास के लिए तकनीकी परिवर्तनों का लाभ प्राप्त करने में असफल रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप उनके बीच व्यापार में असमान विनिमय हुआ है। इमैन्युअल के अनुसार, असमान विनिमय का मुख्य कारण केन्द्र (विकसित देशों–DCs) और परिधि (अल्प-विकसित देशों–LDCs) की मजदूरी दरों के बीच अन्तर है। के शब्दों में,

इमैन्युअल के अनुसार, असमान विनिमय तब होता है जब दो असमान देश दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिसके कारण वे एक-दूसरे के साथ प्रत्यक्ष प्रतियोगिता में नहीं होते हैं। चूंकि अल्प-विकसित देशों में मजदूरियाँ कम होती हैं, अत: वस्तु के उत्पादन की लागत भी कम होती है और इसीलिए इसकी कीमतें कम होती हैं। इसके विपरीत विकसित देशों में मजदूरियाँ अधिक होने के कारण वस्तु के उत्पादन की लागत अधिक आती है, इसलिए उसकी कीमतें भी अधिक होती हैं। इस तरह, अल्प-विकसित देश की वस्तु के सस्ता होने और विकसित देश की वस्तु के महंगा होने के कारण दोनों के बीच व्यापार में असमान विनिमय होता है। इसका कारण यह है कि अल्प-विकसित देश से आयातों की एक दी हुई मात्रा पाने के लिए अपनी वस्तु की अधिक मात्रा निर्यात करता है।

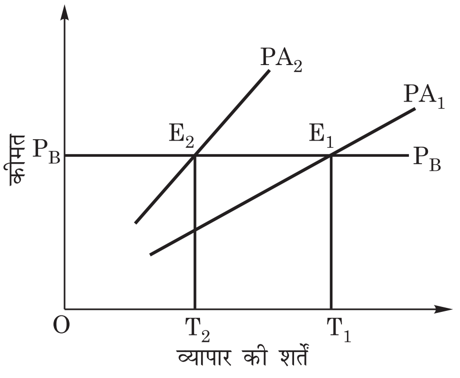

चित्र 4.4

असमान विनिमय सिद्धान्त की व्याख्या चित्र-4.4 के द्वारा की जा सकती है। चित्र में व्यापार करने वाले दोनों देशों A तथा B की कीमतों को अनुलम्ब अक्ष पर तथा व्यापार की शर्तों को क्षैतिज अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। मान लीजिए देश A वस्तु X का तथा देश B वस्तु Y का उत्पादन कर रहा है। देश A विकसित तथा देश B कम विकसित है। कम विकसित देश B में Y वस्तु की कीमत $P_B = 1$ के रूप में ली गई है जो क्षैतिज रेखा P_BP_B के रूप में प्रदर्शित की गई है। देश A में X वस्तु की कीमत P_{A1} वक्र द्वारा तथा व्यापार की सन्तुलन शर्तें OT_1 द्वारा प्रदर्शित हैं। मजदूरियों एवं लागतों में वृद्धि से देश A में कीमत में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप इसका कीमत वक्र बाईं तरफ सरक कर PA_2 हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप देश B की व्यापार शर्तें OT_2 तक कम हो जाती हैं। असमान विनिमय को वास्तविक व्यापार शर्तों OT_1 तथा व्यापार की परिवर्तित शर्तों OT_2 के बीच के अन्तर के रूप में मापा जाता है। इस प्रकार, देश B की व्यापार शर्तें T_1T_2 के बराबर विपरीत हो गई हैं। इस तरह, असमान विनिमय होता है जिससे विकसित देश A कम विकसित देश B की लागत पर लाभ प्राप्त करता है।

(Criticisms)

इमैन्युअल के असमान विनिमय सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं निम्नवत् हैं–

1. इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि असमान विनिमय विकसित एवं कम विकसित देशों के बीच मजदूरी में अन्तरों का परिणाम होता है, परन्तु वह उन घटकों की व्याख्या नहीं करता जो विकसित एवं अल्प-विकसित देशों के बीच मजदूरी अन्तरों को प्रभावित करते हैं।
2. इस सिद्धान्त में यह स्वीकार किया गया है कि अल्प-विकसित और विकसित देशों के बीच मजदूरी में अन्तर से ही असमान विनिमय होता है, परन्तु विकसित देशों के बीच भी असमान विनिमय हो सकता है, क्योंकि

नोट

इन देशों के बीच भी मजदूरी दरों में अन्तर पाए जाते हैं। इस तरह, यह सिद्धान्त कम विकसित देशों पर ही नहीं बल्कि विकसित देशों पर भी समान रूप से लागू होता है।

3. यह सिद्धान्त मानता है कि लाभ की दरें विकसित देशों तथा अल्प-विकसित देशों में समान होती हैं, परन्तु यह मान्यता वास्तविक नहीं है, क्योंकि विकसित देशों में उत्पादन की दक्ष तकनीक अपनाने के कारण लाभ की दर प्राय: अधिक रहती है। चूँकि असमान विनिमय होता है, अत: इस सिद्धान्त के अनुसार लाभ की दर विकसित देशों के शोषण के साथ निश्चय ही बढ़ती है।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार, व्यापार में असमान विनिमय से विकसित देशों द्वारा कम विकसित देशों का शोषण होता है, परन्तु अर्थशास्त्री इमैन्युअल के इस मत से सहमत नहीं हैं, क्योंकि असमान विनिमय ने कम विकसित देशों की वृद्धि को अवरुद्ध नहीं किया है।
5. इस सिद्धान्त में यह भी मान लिया गया है कि पूंजी विभिन्न देशों के बीच गतिशील होती है। यदि यह सत्य है तो मजदूरी अन्तरों को विकसित से अल्प-विकसित देश की ओर पूंजी की गति करने से दूर किया जा सकता है।

इस तरह यह सिद्धान्त वास्तविकता से दूर है।

हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धान्त (Heckscher-Ohlin Theory)

हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धान्त रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त का विरोध नहीं करता बल्कि पूरकता प्रदान करता है। रिकार्डो का तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त यह मत प्रस्तुत करता है कि दो देशों में तुलनात्मक लागत अन्तर के कारण विदेशी व्यापार होता है, किन्तु रिकार्डो का सिद्धान्त इस बिन्दु पर कोई प्रकाश नहीं डालता कि देशों में उत्पादन लागत में अन्तर क्यों उत्पन्न होता है? हेक्सचर-ओहलिन अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया।"

हेक्सचर-ओहलिन ने रिकार्डो के सिद्धान्त के कुछ बिन्दुओं से अपनी असहमति व्यक्त की और यह मत व्यक्त किया कि,

(*i*) तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त सब प्रकार के व्यापार पर लागू होता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसका अपवाद नहीं है।

(*ii*) जैसा कि प्रतिष्ठित सिद्धान्त में स्वीकार किया गया है, उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का अभाव केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का ही विशेष लक्षण नहीं है वरन् एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी साधनों की गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।

उपर्युक्त दूसरी बात से स्पष्ट है कि एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरी एवं ब्याज की दरों में भिन्नता पायी जाती है। ने बताया कि जिस प्रकार एक ही देश में श्रम और पूंजी में गतिशीलता पायी जाती है उसी प्रकार विभिन्न देशों में भी इन साधनों में गतिशीलता होती है, भले ही वह कुछ सीमित रूप में हो। इस आधार पर ने यह स्पष्ट किया कि गृह व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उतना व्यापक अन्तर नहीं है जितना कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बताया था। उनके अनुसार,

के अनुसार

विभिन्न राष्ट्र मात्र विभिन्न क्षेत्र हैं जिनमें राष्ट्रीय सीमाएं, प्रशुल्क बाधाएं एवं भाषा, रीति-रिवाजों की भिन्नता के कारण भेद स्थापित हो जाता है। परन्तु ये भिन्नताएं विभिन्न देशों में स्वतन्त्र व्यापार के लिए स्थायी बाधाएं समाप्त हो जाती हैं। इन्हीं बातों के आधार पर ने बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है वरन् जिस (General Theory of Value) को अन्तक्षेत्रीय व्यापार पर लागू किया जाता है, उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी लागू किया जा सकता है।

मूल्य के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार, एक वस्तु के मूल्य का निर्धारण बाजार में उसकी कुल मांग और कुल पूर्ति के द्वारा होता है। सन्तुलन के बिन्दु पर मांग और पूर्ति आपस में बराबर होते हैं तथा वस्तु का मूल्य उसकी औसत

नोट

लागत के बराबर होता है। उत्पत्ति के साधनों को मिलने वाला पुरस्कार, वस्तु की लागत को निर्धारित करता है तथा उक्त पुरस्कार उपभोक्ताओं की आय और मांग का स्वरूप निर्धारित करता है। इस प्रकार वस्तु के मूल्य, उत्पत्ति के साधनों के पारिश्रमिक, वस्तुओं की मांग तथा उत्पत्ति के साधनों की मांग एवं पूर्ति में पारस्परिक सम्बन्ध होता है। यही मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का प्रमुख तत्व है।

जहां तक मूल्य के सामान्य सन्तुलन का प्रश्न है, यह एक देश अथवा क्षेत्र के एक बाजार (Single Market) पर लागू होता है। का मत है कि उक्त सन्तुलन केवल समय तत्व पर विचार करता है एवं क्षेत्र (स्थान) तत्व (Space factor) की अवहेलना करता है परन्तु निम्न दो कारणों से आर्थिक जीवन में क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है–(*i*) कुछ सीमा तक उत्पत्ति के साधन किन्हीं न किन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रहते हैं, और (*ii*) परिवहन लागत तथा अन्य बाधाएं वस्तु के स्वतन्त्र प्रवाह को सीमित करती हैं।

ने स्पष्ट किया कि यदि सामान्य मूल्य के सिद्धान्त में क्षेत्र तत्व को भी शामिल कर लिया जाए तो उसे विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न देशों के बहुत-से बाजारों के मूल्य निर्धारित करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। अत: कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त एक बहु-बाजार (Multi-market) का सिद्धान्त है। चूंकि ओहलिन ने अपना सिद्धान्त सामान्य सन्तुलन सिद्धान्त पर आधारित किया है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त को भी कहते हैं।

के सिद्धान्त के सार को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया जा सकता है, "दो देशों में व्यापार वस्तुओं की लागतों में सापेक्षिक अन्तर के कारण होता है तथा यह अन्तर दो कारणों से होता– (*i*) प्रथम तो यह कि उत्पत्ति के साधनों की कीमत में सापेक्षिक अन्तर होता है; और (*ii*) द्वितीय यह कि विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में उत्पत्ति के साधनों की आवश्यकता में सापेक्षिक भिन्नता होती है। उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में सापेक्षिक अन्तर इसलिए होता है कि दो देशों में साधनों की सीमितता या स्वल्पता में सापेक्षिक अन्तर होता है अर्थात् एक देश में कुछ साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं जबकि दूसरे देश में वही स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होते हैं। के शब्दों में "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की पूर्व आवश्यकताएँ निष्कर्ष रूप में हैं–विभिन्न सापेक्षिक स्वल्पता (Relative scarcity) अर्थात्

इस आधार पर कहा जा सकता है कि एक देश उन वस्तुओं का विशिष्टीकरण और निर्यात करता है जिनके उत्पादन में सापेक्षिक रूप से उन साधनों की अधिक आवश्यकता होती है जो उस देश में सापेक्षिक रूप से प्रचुर मात्रा में और इसलिए सापेक्षिक रूप से सस्ते होते हैं।

(Assumptions of the Heckscher-Ohlin Theory)

हेक्सचर-ओहलिन का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा ऊपर प्रस्तुत की गयी है, निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

(*i*) व्यापार के लिए (Double model) को लिया गया है जिसमें दो देश, दो वस्तुएं और उत्पत्ति के दो साधन हैं–श्रम एवं पूंजी।

(*ii*) दोनों देशों में, वस्तुओं और उतपत्ति के साधनों-दोनों बाजारों में है।

(*iii*) दोनों देशों में न तो कोई व्यापार की बाधाएं हैं और न परिवहन व्यय होता है अर्थात् एवं है।

(*iv*) प्रत्येक देश में उत्पत्ति के साधन पूर्ण रूप से गतिशील हैं, किन्तु दोनों देशों के बीच उत्पत्ति के है।

(*v*) दोनों देशों में उत्पत्ति के दोनों साधनों (श्रम और पूंजी) के अनुपात में भिन्नता है अर्थात् (Quanititatively) (Qualitatively) अर्थात् वे समान (Homogenous) हैं।

नोट

(*vi*) दोनों देशों में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन-फलन (Production function) भिन्न-भिन्न है, किन्तु है।

> नोट्स प्रत्येक देश में उत्पादन, (Constant Return to scale) के अन्तर्गत होता है।

(*vii*) विभिन्न वस्तुओं के लिए उत्पादन-फलन इस प्रकार है कि (Factory intensity) के द्वारा पृथक् किया जा सकता है अर्थात् प्रत्येक वस्तु के उत्पादन के लिए कितने साधनों की आवश्यकता होती है, यह जाना जा सकता है अथवा अमुक वस्तु के उत्पादन में अधिक पूँजी लगती है अथवा अधिक श्रम।

(*viii*) दोनों देशों में उपभोक्ताओं का (Identical preference) है।

(*ix*) उत्पत्ति के दोनों साधनों को दोनों देशों में (Full Employment) प्राप्त है।

(*x*) प्रत्येक देश में (Fixed physical conditions) हैं।

सापेक्षिक साधन प्रचुरता का अर्थ (Meaning of Relative Factor Aboundance)

ने अपने सिद्धान्त में सापेक्षित साधन प्रचुरता शब्द प्रयोग किया है, इसके दो अर्थ हैं–(*i*) सापेक्षिक साधन प्रचुरता (Physical Criteria) अर्थात् साधनों के अनुपात के सम्बन्ध में सापेक्षिक प्रचुरता (*ii*) सापेक्षिक साधन प्रचुरता की (Price Criteria)।

(*i*) जहां तक साधनों के अनुपात के सम्बन्ध में सापेक्षिक प्रचुरता का प्रश्न है एक देश सापेक्षिक रूप से उस पूंजी-प्रचुर समझा जाता है यदि उस देश में दूसरे देश की तुलना में, श्रम की अपेक्षा पूंजी का अनुपात अधिक होता है भले ही इस देश में श्रम की तुलना में पूंजी की कीमतों का अनुपात दूसरे देश की अपेक्षा कम हो या न हो। इस निम्न सूत्र में व्यक्त किया जा सकता है–

$$\left(\frac{C}{L}\right)_A > \left(\frac{C}{L}\right)_B$$

(*ii*) कीमत कसौटी के आधार पर एक देश को, जिसें पूंजी सापेक्षिक रूप से सस्ती होती है और श्रम सापेक्षिक रूप से महंगा होता है, पमंजी-प्रचुर समझा जाता है भले ही इस देश में श्रम पे पूँजी की कुल इकाइयों का अनुपात दूसरे देश की तुलना में अधिक हो अथवा न हो।

यदि हम एक देश को A तथा दूसरे को B मानें, P का अर्थ साधन की कीमत से लें, C को पूंजी तथा L का श्रम मानें तो को निम्न सूत्र में व्यक्त किया जा सकता है–

$$\left(\frac{PC}{PL}\right)_A < \left(\frac{PC}{PL}\right)_B$$

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट होता है कि देश A में तुलनात्मक रूप में पूंजी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है इस देश B में तुलनात्मक रूप से श्रम प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

ऊपर सापेक्षिक साधन प्रचुरता के भौतिक कसौटी पर और कीमत कसौटी पर जो अर्थ दिये गये हैं, वे दोनों समान नहीं हैं। यदि हम कीमत कसौटी को लें तो उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर ही हेक्सचर-ओहलिन के सिद्धान्त को स्पष्ट किया जा सकता है एवं मांग की दशाओं के सम्बन्ध में किसी मान्यता की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यदि

नोट

हम भौतिक कसौटी को लेते हैं तो हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धान्त उसी समय सिद्ध किया जा सकता है जब हम मांग की दशाओं पर विचार करें। ऐसी स्थिति मांग की दशाओं के सम्बन्ध में मान्यताओं की आवश्यकता पड़ती है।

टास्क कीमत कसौटी पर साधन प्रचुरता से आप क्या समझते हैं?

हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Heckscher-Ohlin theory)

हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि

क्योंकि आधुनिक सिद्धान्त भी तुलनात्मक लाभ को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार मानता है। उन दोनों में प्रमुख अन्तर यह है कि जहां प्रतिष्ठित सिद्धान्त इस बात का उत्तर देने में असफल रहा कि दो देशों में तुलनात्मक लागत में अन्तर क्यों होता है, आधुनिक सिद्धान्त ने इसका संतोषजनक उत्तर दिया। ने अधिक मौलिकता के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मूल आधार को प्रस्तुत किया और उन कारणों को स्पष्ट किया जिनके कारण दो देशों की तुलनात्मक लागत के अनुपातों में भिन्नता होती है।

विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में साधनों की भिन्नता

ओहलिन ने स्पष्ट किया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशेष दशा है। अन्तर्क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई मौलिक अन्तर न होकर अन्तर केल मात्रा सम्बन्धी ही है। उन्होंने बताया कि विभिन्न क्षेत्रों में उत्पत्ति के साधनों में भिन्नता होती है तथा विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न साधन अनुपातों की आवश्यकता होती है। इसे ध्यान में रखते हुए एक क्षेत्र उन वस्तुओं के उत्पादन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है जिनमें उन साधनों का अधिक अनुपात में प्रयोग किया जाता है जो वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। अतः साधनों में भिन्नता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन की क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है।

साधन उपलब्धता : उत्पादन का आधार (Factor Endowment : The Basis of Production)

अब तक यह स्पष्ट किया जा चुका है कि विभिन्न क्षेत्रों में उत्पत्ति के साधनों की उपलब्धता में विभिन्नता के कारण, वहां उत्पादन में भिन्नता होती है। इसे हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे–मान लो दो क्षेत्र X और Y हैं। X क्षेत्र में पूँजी प्रचुर मात्रा में तथा श्रम स्वल्प मात्रा में उपलब्ध है। स्वाभाविक है कि X में पूंजी प्रचुर मात्रा में होने के कारण सस्ती होगी तथा श्रम महँगा होगा अतः X में मशीनों का निर्माण सस्ता होगा जिसमें अधि मात्रा में पूँजी की लगती है एवं गेहूँ महँगा होगा जिसमें श्रम अधिक लगता है। यदि क्षेत्र Y में श्रम का बाहुल्य है और पूँजी न्यूनता है तब Y क्षेत्र में मशीनें महँगी होंगी क्योंकि वहां पूंजी स्वल्प मात्रा में तथा गेहूँ सस्ता होगा क्योंकि इसके उत्पादन में श्रम अधिक लगता है तथा Y क्षेत्र में श्रम प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इस प्रकार दोनों क्षेत्रों में विभिन्न वस्तुओं की कीमतों में भिन्नता होगी। इस आधार पर कहा जा सकता है कि X को उस वस्तु (मशीनें) के उतपादन में तुलनात्मक लागत का लाभ होगा जिसके उत्पादन में उन साधनों की अधिक आवश्यकता होती है जो वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं अतः सस्ते हैं। इसी प्रकार Y को उस वस्तु (गेहूँ) के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ होगा जिससे उत्पादन में उन साधनों की अधिक आवश्यकता होती है जो वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण सस्ते हैं।

वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण मांग और पूर्ति दोनों से

ओहलिन की दृष्टि में व्यापार की पहली शर्त यह है कि वही वस्तु एक क्षेत्र में, दूसरे की तुलना में अधिक सस्ती दर पर पैदा की जा सके। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अर्न्क्षेत्रीय व्यापार का तात्कालिक कारण यह है कि मौद्रिक कीमतों में, अपने देश में उत्पादन करने की तुलना में, अन्य क्षेत्र या देश से वस्तुएं अधिक सस्ते में क्रय की

नोट

जा सकती हैं। ने स्पष्ट किया कि (Original Cost)

वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण केवल उत्पादन की लागत द्वारा नहीं वरन् मांग द्वारा भी होता है। अत: का सिद्धांत मांग और पूर्ति दोनों पक्षों पर विचार करता है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि दो क्षेत्रों में कीमतों में सापेक्षिक अन्तर इसलिए होता है क्योंकि दोनों क्षेत्रों में मांग और पूर्ति की दशाओं में अन्तर होता है। केवल निम्न दशाओं में दो क्षेत्रों में सब वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतें समान होंगी–

(*i*) जब दोनों में उपभोक्ताओं की आवश्यकताएं और अधिमान एकसमान हैं।

(*ii*) जब दोनों क्षेत्रों में उपलब्ध साधन समान अनुपात में हैं जिससे दोनों क्षेत्रों में पूर्ति की दशाएं समान हैं।

(*iii*) यदि उत्पत्ति के साधनों में कोई अन्तर होता है तो मांग की दशाओं में भी उतना ही अन्तर होकर क्षतिपूर्ति हो जाती है तथा सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

किन्तु उपर्युक्त मान्यताएं वास्तविक जगत में पूरी नहीं होती अत: उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में एवं उसके कारण वस्तुओं की कीमतों में दो क्षेत्रों में भिन्नता पायी जाती है।

ओहलिन द्वारा स्पष्टीकरण

ओहलिन ने अपने साधन अनुपात सिद्धान्त के समर्थन में अमेरिका और भारत में होनेवाले व्यापार का उदाहरण दिया है। भारत में गेहूं तथा ऊन का उत्पादन किया जाता है क्योंकि इसके उत्पादन के लिए जिस श्रेणी की भूमि की आवश्यकता होती है, वह भारत में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अमेरिका में निर्मित वस्तुओं (Manufactured Goods) का उत्पादन किया जाता है क्योंकि इनके उत्पादन में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है जो अमेरिका में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है तथा भारत में अल्प मात्रा में हैं। अत: इन दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में भिन्नता है अत: दोनों देशों में व्यापार होता है। भारत ऊन और गेहूं का निर्यात अमेरिका को करता है अर्थात् वह अप्रत्यक्ष रूप में उन साधनों का निर्यात करता है जो उस देश में प्रचुरता में उपलब्ध हैं और जब वह विनिर्माण वस्तुओं का आयात करता है तो वह अप्रत्यक्ष रूप से उन साधनों का आयात करता है जो उसके देश में स्वल्प मात्रा में उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि साधनों में विभिन्न अनुपातों के कारण एक क्षेत्र में कुछ वस्तुएं दूसरे क्षेत्र की तुलना में सस्ती होंगी किन्तु केवल इसके कारण ही इस बात का निर्धारण नहीं किया जा सकता कि दोनों क्षेत्रों के बीच किन वस्तुओं का व्यापार होगा। यह उसी समय सम्भव है जब एक क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं की कीमतों की तुलना, दूसरे क्षेत्र से की जा सके। यह तुलना उसी समय सम्भव है जब या तो दोनों क्षेत्रों में एकसमान मुद्रा चलती हो अथवा विभिन्न मुद्रा होने पर दोनों मुद्राओं में विनिमय दर स्थापित कर ली गयी हो। इन दोनों को अग्र उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे–

(1) (Same Currency in both Regions)–कल्पना करो कि दो क्षेत्र A और B हैं जिनमें एकसमान मुद्रा प्रणाली है। यदि इन दोनों में व्यापार नहीं होता तो प्रतयेक क्षेत्र में विभिन्न वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण आन्तरिक मांग के द्वारा होगा। अब यदि दोनों क्षेत्रों से व्यापार होता है तो एक क्षेत्र की कीमत पर दूसरे क्षेत्र की मांग का भी प्रभाव पड़ेगा। क्षेत्र A में ऐसी वस्तु का उत्पादन होगा जिनमें ऐसे साधनों की आवश्यकता होती है जो वहां प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। अब इस वस्तु की मांग न केवल A क्षेत्र में होगी वरन् B क्षेत्र में भी होगी। इसके विपरीत, क्षेत्र A में जो वस्तु स्वल्प साधनों के कारण महंगे में तैयार होती है, उसकी मांग B क्षेत्र में कम हो जाएगी। इस पारम्परिक मांग की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक सन्तुलन की स्थिति स्थापित हो जाती है जिसके अन्तर्गत दोनों क्षेत्रों में समान कीमतों की वस्तुओं का आयात तथा निर्यात होने लगता है।

नोट

(2) जब दो देशों व क्षेत्रों में विभिन्न मुद्रा प्रणाली प्रचलित रहती है तो यह जानने के लिए कि दूसरे क्षेत्र की तुलना में एक क्षेत्र में उत्पत्ति का कोई साधन सस्ता है या नहीं, दोनों क्षेत्रों की विभिन्न मुद्राओं में विनिमय दर स्थापित करना जरूरी है। के अनुसार, विनिमय दर निर्धारित होने के बा कीमतों के सापेक्षिक अन्तर निरपेक्ष अन्तर में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में किस प्रकार व्यापार होगा, इसे अग्र तालिका का उदाहरण देते हुए समझाया जा सकता है।

	(रुपयों में)	(रुपयों में)	= (रुपये में)	= (रुपये में)
1	2	3	4	5
A	2.00	0.10	4.00	5.00
B	4.00	0.30	12.00	15.00
C	5.00	0.50	20.00	25.00
D	8.00	0.80	32.00	40.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत और अमेरिका दोनों देशों में उत्पत्ति के चार साधन A, B, C, D हैं। कालम 2 और 3 में दोनों देशों की अपनी मुद्रा में साधनों की कीमतें दिखायी गयी हैं अर्थात् भारत की कीमतें रुपयों में व्यक्त की गयी है तथा अमरीका में डालर (सेंट) में। दोनों देशों में साधन A सस्ता है तथा D महंगा है। फिर भी तालिका के कालम 2 तथा 3 से यह नहीं जाना जा सकता कि दोनों देशों में सापेक्षिक रूप से कौन-से साधन सस्ते और कौन-से महंगे हैं। यह जानने के लिए यह जरूरी है कि दोनों देशों में कीमतों से निरपेक्ष अन्तर को ज्ञात किया जाए। यह विनिमय दर स्थापित करने पर ही जाना जा सकता है। यदि विनिमय दर 1 डालर = 40 रु. है तो हम तालिका के कालम 4 के अनुसार, भारत की तुलना में, अमेरिका में साधनों की कीमतें बता सकते हैं। यदि हम कालम 2 एवं 4 की तुलना करें तो स्पष्ट है कि अमेरिका में साधन A और B तुलनात्मक रूप से सस्ते हैं जबकि भारत में C और D तुलनात्मक रूप से सस्ते हैं। यदि विनिमय दर 1 डालर = 50 रु. मान ली जाए तो कालम 2 और 5 की तुलना करने पर हम देखते हैं कि अमेरिका में केवल A ही सस्ता है तो अमेरिका इन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा जिनमें A और B साधनों को अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है जबकि भारत उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा जिनमें C और D साधनों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है। जब विनिमय दर 1 डालर =50 रुपये हो जाती है तो अमेरिका केवल उन वस्तुओं को ही तुलनात्मक रूप से सस्ते में बना सकता है जिसके उतपादन में A साधन की अधिक आवश्यकता होती है, जबकि भारत उन वस्तुओं को सस्ते में तैयार कर सकता है जिसके उत्पादन में B, C और D साधनों की अधिक आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक क्षेत्र में सस्ते साधनों से प्रतिपादित किये हुए माल का निर्यात होगा और जो साधन उस देश में महंगे होंगे, उनसे तैयार होने वाली वस्तुओं का आयात किया जाएगा। विनिमय दर से हम यह जान सकते हैं कि दोनों क्षेत्रों में निरपेक्ष कीमतों में क्या अन्तर है तथा इससे यह जाना जा सकता है कि प्रत्येक क्षेत्र में कौन-से साधन सापेक्षिक रूपसे सस्ते एवं कौन-से महंगे हैं तथा प्रत्येक देश किन वस्तुओं के उतपादन में विशिष्टीकरण करेगा। यहां यह ध्यान में रखना चाहिए कि दोनों क्षेत्रों के बीच, साधनों का सापेक्षिक सस्ता

नोट

अथवा महंगा होना, विनिमय दर द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता, विनिमय दर से तो केवल वास्तविक स्थिति का बोध होता है। स्वयं विनिमय दर पारस्परिक मांग द्वारा निर्धारित होती है। यदि साधनों की पूर्ति एवं पारस्परिक मांग की दशाएं दी हुई हैं तो विनिमय दर ऐसी होनी चाहिए कि एक क्षेत्र के निर्यातों और आयातों में सन्तुलन स्थापित हो जाए।

कीमत कसौटी के आधार पर साधन प्रचुरता: ओहलिन के दृष्टिकोण का चित्रीय निरूपण

आरम्भ में हम स्पष्ट कर आये हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त "सापेक्षिक साधन प्रचुरता पर" आधारित है जिसके दो अर्थ बताये गये हैं, कीमत की कसौटी और भौतिक कसौटी। ने कीमत कसौटी का अर्थ लिया है जिसे इस सूत्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

$$\left(\frac{PC}{PL}\right)_A < \left(\frac{PC}{PL}\right)_B$$

जो बताता है कि देश A में तुलनात्मक रूप में प्रचुर मात्रा में पूंजी उपलब्ध है तथा देश B में तुलनात्मक रूप में श्रम प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। निम्न उदाहरण में हम इसी मान्यता को लेकर चल रहे हैं। दो वस्तुएं X और Y हैं। नीचे दिये हुए रेखाचित्र में दो समोत्पादक वक्र (Equal Product Curves) खींचे गये हैं–XX वस्तु X के लिए तथा YY वस्तु Y के लिए। ये दोनो वक्र एक-दूसरे को केवल एक ही स्थान पर M बिन्दु पर काटते हैं अत: X और Y दोनों वस्तुओं को इस आधार पर पृथक् किया जा सकता है कि किस वस्तु के उत्पादन में अधिक पूंजी लगती है तथा किस वस्तु के उत्पादन में अधिक श्रम लगता है। नीचे दिये हुए रेखाचित्र से यह स्पष्ट है।

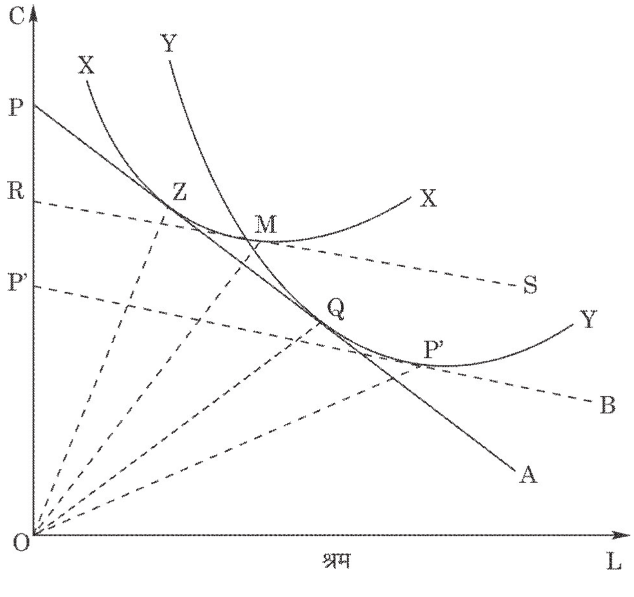

उपर्युक्त रेखाचित्र में दोनों समोत्पाद वक्र XX और YY से यह जाना जा सकता है कि इन दोनों वस्तुओं की किसी दी हुई मात्रा के उत्पादन के लिए कितनी मात्रा में पूंजी और श्रम की आवश्यकता होती है। मितव्ययता के दृष्टिकोण से साधनों का कौन-सा संयोग सर्वोत्तम होगा, यह उन साधनों की सापेक्षिक कीमतों पर निर्भर रहता है। देश A में साधनों की सापेक्षिक कीमत को कीमत रेखा PA द्वारा दर्शाया गया है जो इस देश के समोत्पादक वक्र XX को Z बिन्दु पर स्पर्श करती है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि कीमत रेखा PA समोत्पादक वक्र YY को भी O बिन्दु पर स्पर्श करती है।

चूंकि हम यह मान चुके हैं कि देश A में पूंजी तुलनात्मक रूप से सस्ती है, अत: B देश की कीमत रेखा का ढाल जो वहां साधनों के सापेक्षिक मूल्य को बताती है, A देश की कीमत रेखा PA से कम होना चाहिए। B देश की कीमत

नोट

रेखा P'B उस देश के समोत्पाद वक्र YY को T बिन्दु पर स्पर्श करती है। अब एक रेखा RS कीमत रेखा P'B के समान्तर खींची जाती है जो समोत्पाद वक्र XX को M बिन्दु पर स्पर्श करती है। चित्र से यह स्पष्ट है कि RS रेखा P'B रेखा के ऊपर है जिसका अर्थ यह है कि OC अक्ष पर पूंजी की मात्रा OR, उसी अक्ष OP' से अधिक के है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर देश A में, कीमत रेखा PA के आधार पर साधन अनुपात सन्तुलन (Equilibrium Factor Proportions) X वस्तु के लिए OZ है तथा Y वस्तु के लिए OQ है। अत: A देश में X वस्तु की निश्चित मात्रा का उत्पादन करने की लागत, श्रम और पूंजी दो साधनों की मात्राओं की लागत के बराबर है जो कीमत रेखा PA के Z बिन्दु से स्पष्ट है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि उक्त X वस्तु की लागत OP पूंजी की लागत के बराबर है। उसी प्रकार A देश में, वस्तु Y की निश्चित मात्रा का उत्पादन करने के लागत भी OP पूंजी की लागत के बराबर है क्योंकि कीमत रेखा PA, पूंजी अक्ष OC को P बिन्दु पर स्पर्श करती है। B देश में कीमत रेखा P'B (अथवा RS) के आधार पर साधन अनुपात सन्तुलन X वस्तु के लिए OM है तथा Y वस्तु के लिए OT है। अत: B देश में X वस्तु का उत्पादन करने की लागत OR पूंजी की लागत के बराबर है तथा Y वस्तु का उत्पादन करने की लागत OP' पूंजी के बराबर है। इससे स्पष्ट है कि B देश में वस्तु की निश्चित मात्रा का उत्पादन करने की लागत Y की तुलना में अधिक है।

अब यदि हम दोनों देशों में दोनों वस्तुओं की समान मात्रा की तुलनात्मक लागत की तुलना करें तो हम देखते हैं कि देश A में X वस्तु तुलनात्मक रूप से सस्ती है तथा B में वस्तु Y तुलनात्मक रूप से सस्ती है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है पूँजी-प्रचुर देश में उस वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ होता है जिसमें पूंजी की अधिक मात्रा लगती है तथा व्यापार होने पर उसे ऐसी वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए। उसी प्रकार जहां श्रम प्रचुरता से उपलब्ध है उस देश को ऐसी वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्यात करना चाहिए जिसके उत्पादन में अधिक श्रम की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार का सिद्धान्त इस बात की पुष्टि कर देता है कि

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त निष्कर्ष बिना मांग की दशाओं और साधन अनुपातों को ध्यान में रखकर निकाले गये हैं, किन्तु ऐसी बात नहीं है।

हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त तथा प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के व्यापार के सिद्धान्त में तुलना (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठता)

रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की तुलना में का सिद्धान्त कई अर्थों में भिन्न है तथा श्रेष्ठ भी है, किन्तु प्रारम्भ में ही यह समझ लेना चाहिए कि आधुनिक सिद्धान्त प्रतिष्ठित सिद्धान्त को नकारता नहीं है वरन् पूर्ण शक्ति के साथ प्रतिष्ठित सिद्धान्त के पूरक के रूप में कार्य करता है। नीचे हम कुछ बिन्दुओं को लेकर इन दोनों सिद्धान्तों की तुलना करेंगे तथा यह सिद्ध करेंगे कि आधुनिक सिद्धान्त कई अर्थों में श्रेष्ठ है–

(1) रिकार्डो ने तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का प्रतिपादन मूल्य के श्रम सिद्धान्त के आधार पर किया है, किन्तु आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या ओहलिन ने के आधार पर की जिसे (Cassel) ने विकसित किया।

(2) रिकार्डो ने स्थिर लागत एवं साधन-श्रम, को लेकर अपना सिद्धान्त विकसित किया तथा व्यापार के ढांचे में की अवहेलना की है, किन्तु ने श्रम और पूंजी दो साधनों को लेकर साधनों की पूर्ति पर तुलनात्मक अन्तर निर्धारित करने में महत्वपूर्ण बल दिया।

(3) क्लासिकल सिद्धान्त में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में साधनों के बाजार पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त में पहली बार सन्तोषजनक ढंग से साधनों के बाजारों एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समन्वय स्थापित किया।

नोट

(4) प्रतिष्ठित सिद्धान्त ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धान्त पर जोर दिया था, किन्तु ने बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की ही एक विशेष दशा है।

(5) प्रतिष्ठित सिद्धान्त ने श्रम लागत के आधार पर एवं संशोधित रूप से मौद्रिक लागतों के आधार पर वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की व्याख्या प्रस्तुत की किन्तु ने साधनों की सापेक्षिक कीमतों में भिन्नता के आधार पर, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की व्याख्या की।

(6) रिकार्डो इस बात को स्पष्ट नहीं कर सके कि तुलनात्मक लागतों में अन्तर क्यों होता है, किन्तु ओहलिन से (Factor Proportion Analysis) के द्वारा यह स्पष्ट किया कि तुलनात्मक लागतों में अन्तर क्यों होता है।

(7) ने बताया कि तुलनात्मक लाभों का मूल कारण उत्पादन-फलन में अन्तर्राष्ट्रीय भिन्नता है और इसके लिए इन्होंने श्रम के गुणात्मक स्तर की भिन्नता पर जोर दिया किन्तु के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कारण भिन्न क्षेत्रों में उत्पत्ति के साधनों में गुणात्मक (Qualitative) भिन्नता नहीं वरन् साधनों में (Quantitative) भिन्नता है जिसमें समान उत्पादन-फलन (Identical Production Function) के अन्तर्गत भी तुलनात्मक लाभ में भिन्नता रहती है।

(8) प्रतिष्ठित सिद्धान्त अपने व्यापार सिद्धान्त के प्रतिपादन में कल्याणकारी साध्यों (Welfare Propositions) को स्थापित करने का प्रयत्न करता है जबकि का सिद्धान्त वास्तविक अर्थशास्त्र (Positive Economics) के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि ओहलिन का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ढांचे एवं आधार की विवेचना करता है जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त व्यापार के लाभों (Gains from Trade) की व्याख्या करता है।

(9) (Kelvin Lancaster) के अनुसार, ओहलिन का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय के बारे में भी सन्तोषजनक उत्तर देता है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त बताता है कि दो देशों में तकनीकी ज्ञान एवं कुशलता आदि में भिन्नता के कारण तुलनात्मक लागतों में भिन्नता होती है। इसका तात्पर्य यह है कि जब देशों में तकनीकी ज्ञान और कुशलता, में समानता स्थापित हो जायेगी तो उनके बीच में कोई व्यापार नहीं होगा। परन्तु का सिद्धान्त बताता है कि उक्त स्थितियों के विद्यमान होने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा क्योंकि निम्न दो कारणों से वस्तुओं की कीमतों में अन्तर रहेगा–

(*i*) साधनों की कीमतों में सापेक्षिक अन्तर के कारण, एवं

(*ii*) विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में साधनों की आवश्यकता में सापेक्ष अन्तर के कारण।

(10) के सिद्धान्त में (Space-Factor) पर पूर्ण ध्यान दिया गया है जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त में इस तत्व की अवहेलना की गयी है अत: का सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त की तुलना में अधिक व्यावहारिक है। के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त कीमतों का बहु-बाजारों (Multiple Marks) का सिद्धान्त है।

अन्त में कहा जा सकता है कि यद्यपि ओहलिन का सिद्धान्त रिकार्डो की तुलना में श्रेष्ठ है, फिर भी दोनों में कोई वास्तविक संघर्ष नहीं है। ओहलिनका सिद्धान्त प्रतिष्ठित सिद्धान्त को स्थापित करता है तथा तुलनात्मक लागत के मूलाधार को और अधिक व्यापक साधनों की उपलब्धि में भिन्नता के कारण-रूप में स्पष्ट करता है।"

हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन Critical Evaluation of Heckscher-Ohlin Theory

उपर्युक्त विवेचन में व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठताओं को स्पष्ट किया गया है। परन्तु इसके बावजूद भी कई अर्थशास्त्रियों ने के सिद्धान्त की आलोचना की है जो इस प्रकार है–

(1) आलोचकों का कथन है कि का सिद्धान्त ऐसी मान्यताओं पर आधारित है जिन्हें आवश्यकता से अधिक सरल बना दिया गया है, किन्तु जो व्यावहारिक नहीं है। उदाहरण के लिए, पूर्ण प्रतियोगिता, उत्पत्ति के साधनों में गुणात्मक भिन्नता का अभाव, पूर्ण रोजगार, समान उत्पादन-फलन, इत्यादि। यदि वास्तविकता को अच्छे सिद्धान्त की कसौटी माना जाय तो निःसन्देह ओहलिन का सिद्धान्त इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

(2) के अनुसार, "यद्यपि ओहलिन का सिद्धान्त कम अमूर्त है तथा वास्तविकता के निकट है फिर भी वह पूर्ण सामान्य सन्तुलन प्रणाली को विकसित करने में असफल हो गया है। अधिकतम रूप से यह एक 'आंशिक सन्तुलन' व्याख्या है।"

(3) के अनुसार, साधनों में सापेक्षिक अन्तर होने के कारण उनकी कीमतों में भी सापेक्षिक अन्तर होता है अर्थात् साधनों के मूल्य निर्धारण में मांग की तुलना में पूर्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु आलोचकों का मत है कि यदि मांग की दशाएं पूर्ति की तुलना में अधिक शक्तिशाली हैं तो यह सम्भव है कि एक पूंजी-प्रचुर देश श्रम-प्रधान वस्तुओं (Labour-intensive goods) प्रायोगिक जांच (Empirical Testing) के रूप में व्यक्त किया है जिसे (Leontief's Paradox) के नाम से जाना जाता है।

(4) कुछ आलोचकों का मत है कि यदि उपभोक्ताओं के अधिमान और वस्तुओं की मांग पर पूर्ण ध्यान दिया जाय, तो वस्तुओं की कीमतों का अनुपात, उनकी लागत के अनुपात के समान नहीं होता अर्थात् मांग और रुचियों में परिवर्तन के कारण कीमतों में अधिक परिवर्तन हो सकता है और इस स्थिति में ओहलिन का सिद्धान्त लागू नहीं होता।

(5) कुछ आलोचकों का मत है कि साधनों में भिन्नता के अतिरिक्त और भी कई कारण हो सकते हैं, जिससे दो क्षेत्रों की सापेक्षिक कीमतों में भिन्नता हो सकती है जैसे साधनों में गुणात्मक भिन्नता, भिन्न उत्पादन तकनीक, उपभोक्ताओं कीमांग में भिन्नता, आदि कारणों से होने पर भी कीमतें भिन्न हो सकती हैं। ने उक्त तथ्य को स्वीकार किया है फिर भी उनका मत है कि उत्पत्ति के साधनों में भिन्नता, कीमतों में भिन्नता का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है।

(6) (Wijanholds) ने इस आधार पर ओहलिन के सिद्धान्त की आलोचना की है कि वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण साधनों की लागतों (कीमतों) द्वारा नहीं होता जैसा कि का मत है; वरन् इसमें विपरीत सम्बन्ध है। के अनुसार वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण उपभोक्ता को उनकी उपयोगिता द्वारा अथवा मांग की शक्तियों द्वारा तथा कच्चे माल की कीमतों द्वारा होता है। इस प्रकार श्रम की मजदूरी, अन्तिम रूप से वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती है। वे कहते हैं कि तुलनात्मक लागत सिद्धान्त और का सिद्धान्त दोनों दोषपूर्ण हैं क्योंकि वे अपनी व्याख्या उत्पादन की भिन्नता से शुरू करते हैं, किन्तु अधिक तर्कपूर्ण व्याख्या यह है कि विवेचन कीमतों में भिन्नता से प्रारम्भ किया जाए, किन्तु यह आलोचना अधिक सही प्रतीत नहीं होती क्योंकि जब तक वस्तुओं का उत्पादन नहीं किया जाता, उसमें भिन्नता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

अन्त में कहा जा सकता है कि यद्यपि का सिद्धान्त भी तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के समान, कुछ मान्यताओं पर आधारित है फिर भी का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार और कारणों को स्पष्ट करने में अधिक समीचीन एवं तर्कपूर्ण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

(Fill in the blanks)

1. एक देश का सम्भावित व्यापार ऐसी वस्तुओं तक सीमित होता है जिनकी .... होती है।
2. जिन वस्तुओं के लिए घरेलू माँग पायी जाती है वह .... द्वारा निर्धारित होती हैं।

नोट

3. दो देशों के बीच .... ऐसी वस्तुओं तक सीमित होता है जिनके लिए माँग दोनों देशों में होती है।
4. दो देशों के बीच सम्भावित व्यापार समान .... पर निर्भर करता है।
5. विनिर्माणी वस्तुओं के निर्यात व्यापार की पूर्व शर्त है उसकी .... का विद्यमान होना।
6. .... व्यापार की वह स्थिति है जहाँ एक उद्योग की वस्तु का एक भिन्न वस्तु के उद्योग के साथ विनिमय किया जाता है।
7. दो देशों के बीच किस सीमा तक व्यापार होगा यह .... और मांग अंतराल के शुद्ध प्रभाव पर निर्भर करता है।
8. हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धांत .... के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का विरोध नहीं करता बल्कि पूरकता प्रदान करता है।

4.2 सारांश (Summary)

- क्रेविस के अनुसार, एक देश उन वस्तुओं का उत्पादन व निर्यात करता है जो उसे प्राप्य अथवा उपलब्ध होती हैं, अर्थात् वे वस्तुएं जो इसके उद्यमियों एवं नवप्रवर्तकों द्वारा विकसित की गई होती हैं। इस प्रकार उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि व्यापार की वस्तु संरचना मुख्यत: 'प्राप्यता' द्वारा निर्धारित होती है।
- सरकारी नीति व्यापार को ऋणात्मक रूप से प्रभावित करती है। प्रशुल्क नीतियां, परिवहन लागतें, उत्पादक संघ आदि व्यापार से वे वस्तुएं समाप्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं जो किसी देश को थोड़ी सी ऊंची लागत पर घरेलू उत्पादन द्वारा प्राप्त होती हैं। अत: किसी वस्तु की अनुपलब्धता अथवा अप्राप्यता प्राकृतिक संसाधनों, तकनीकी ज्ञान, वस्तु विभेदीकरण अथवा संरक्षणात्मक नीतियों की कमी के कारण होती है।
- वास्तव में इसके पीछे मुख्य कारण यह है कि विदेशी बाजार जोखिमपूर्ण होते हैं जबकि घरेलू बाजार में जोखिम नहीं होती अत: उत्पादक केवल विदेशी बाजार पर निर्भर नहीं रहना चाहता। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि घरेलू मांग ढांचा सम्भावित निर्यात वस्तुओं की सीमा को निर्धारित करता है।
- रिकार्डो तथा हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न समस्त देशों में प्रोद्योगिकी का स्तर समान है। अत: वे व्यापार पर प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के प्रभाव की विवेचना नहीं करते। (M. V. Posner) ने 1961 में प्रकाशित अपने लेख '*Technical Charge and International Trade*' में व्यापार पर तकनीकी परिवर्तन के प्रभाव की विवेचना प्रस्तुत की है।
- मूल्य के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार, एक वस्तु के मूल्य का निर्धारण बाजार में उसकी कुल मांग और कुल पूर्ति के द्वारा होता है। सन्तुलन के बिन्दु पर मांग और पूर्ति आपस में बराबर होते हैं तथा वस्तु का मूल्य उसकी औसत लागत के बराबर होता है।
- क्योंकि आधुनिक सिद्धान्त भी तुलनात्मक लाभ को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार मानता है। उन दोनों में प्रमुख अन्तर यह है कि जहां प्रतिष्ठित सिद्धान्त इस बात का उत्तर देने में असफल रहा कि दो देशों में तुलनात्मक लागत में अन्तर क्यों होता है, आधुनिक सिद्धान्त ने इसका संतोषजनक उत्तर दिया।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

- अन्त:, भीतरी
- गम्य, प्राप्त करने योग्य

नोट

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्रेविस के उपलब्धता सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. लिंडर के व्यापार सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
3. आंतर-उद्योग व्यापार से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।
4. इमैन्युअल के असमान वितरण सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए।
5. हेक्सचर-ओहलिन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की व्याख्या करें।
6. हेक्सचर-ओहलिन का व्यापार सिद्धांत रिकार्डो के सिद्धांत के निष्कर्षो को चुनौती नहीं देता बल्कि उसकी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. घरेलू माँग
2. प्रतिव्यक्ति आय
3. सम्भावित व्यापार
4. आय स्तरों
5. घरेलू मांग।
6. आन्तर-उद्योग व्यापार
7. अनुकरण अंतराल
8. रिकार्डो

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई–5: गत्यात्मक घटकों की भूमिका: रुचियाँ, तकनीकी एवं व्यापार में साधन संपन्नता (Role of Dynamic Factors: Taster, Technology and Factor Endowments in trade)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
5.1 व्यापार में साधन सम्पन्नता घटक (Factor Endowments in Trade)
5.2 रुचियों में परिवर्तन (Changes in Tastes)
5.3 पैमाने की मितव्ययिताएँ (Economic of Scale)
5.4 परिवहन लागतें (Transport Costs)
5.5 भिन्न-भिन्न माँग की दशाएँ (Different Demand Conditions)
5.6 सारांश (Summary)
5.7 शब्दकोश (Keywords)
5.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
5.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यापार में साधन संपन्नताओं एवं रुचियों में परिवर्तन की व्याख्या करने में।
- पैमाने की मितव्ययिताओं का विवेचन करने में।
- परिवहन लागतों और भिन्न-भिन्न माँग दशाओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त बहुत-सी प्रतिबन्धात्मक मान्यताओं पर आधारित है यथा–अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जिन दो देशों के बीच होता है वहाँ श्रम एवं पूँजी मात्राएँ अर्थात् साधन सम्पन्नताएँ स्थिर हैं, रुचियों एवं अधिमानों में परिवर्तन नहीं होता, प्रौद्योगिकी तथा पैमाने के प्रतिफल स्थिर हैं तथा परिवहन लागतें शून्य हैं। वास्तव में यह सभी घटक जो व्यापार को प्रभावित करते हैं उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अत: उचित होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इन गत्यात्मक घटकों की भूमिका का परीक्षण किया जाए।

5.1 व्यापार में साधन सम्पन्नता घटक (Factor Endowments in Trade)

जब किसी देश की साधन सम्पन्नताओं अर्थात् साधन की पूर्तियों में तो परिवर्तन होते हैं जबकि प्रौद्योगिकी अपरिवर्तित रहती है तब इससे उत्पादन एवं व्यापार करने वाले दोनों देशों के बीच व्यापार की शर्तों तथा व्यापार से होने वाले लाभ में परिवर्तन हो जाते हैं। इस स्थिति अर्थात् साधन सम्पन्नताओं में परिवर्तनों के विश्लेषण हेतु हम यहाँ यह मानकर चलेंगे कि एक देश में केवल एक साधन की पूर्ति बढ़ती है, जबकि दूसरे देश में साध न की पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता।

मान्यताएँ (Assumptions)—इसकी मान्यताएँ निम्नवत हैं—

(1) दो देश A तथा B हैं जो X तथा Y की वस्तुओं का व्यापार करते हैं।

(2) उत्पादन के दो साधन हैं—श्रम तथा पूँजी।

(3) पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान है।

(4) श्रम की पूर्ति बढ़ती है जबकि पूँजी की पूर्ति स्थिर रहती है।

(5) वस्तु X श्रम-गहन तथा वस्तु Y पूँजी गहन है।

(6) वस्तुओं एवं साधनों की कीमतें स्थिर हैं।

(7) वस्तु X का निर्यात होता है जबकि Y का आयात किया जाता है।

(8) पैमाने के स्थिर प्रतिफल होते हैं।

उत्पादन पर प्रभाव (Impact of Output)—उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर यहाँ हम देश A की स्थिति पर विचार करेंगे।

जहाँ श्रम साधन की पूर्ति में वृद्धि होती है। वस्तुओं की कीमतों के यथा स्थिर रहने पर यदि श्रम की पूर्ति होती है तब श्रम-गहन वस्तु X, पूँजी-गहन वस्तु Y के उत्पादन को कम कर देती है। इसे चित्र 5.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में क्षैतिज अक्ष पर श्रम-गहन वस्तु X की मात्रा को तथा अनुलम्ब अक्ष पर देश A में पूँजी-गहन वस्तु Y की मात्रा को प्रदर्शित किया गया है। चित्र में प्रारम्भिक उत्पादन सम्भावना वक्र KL है तथा सन्तुलन बिन्दु E है जहाँ कीमत रेखा PP उत्पादन सम्भावना वक्र KL को स्पर्श करती है। इस तरह, यह देश X-वस्तु की OX मात्रा तथा Y-वस्तु की OY मात्रा का उत्पादन करता है। जब श्रम की पूर्ति में वृद्धि की जाती है तब उत्पादन सम्भावना वक्र KL ऊपर की ओर विवर्तित होकर K_1L_1 हो जाता है।

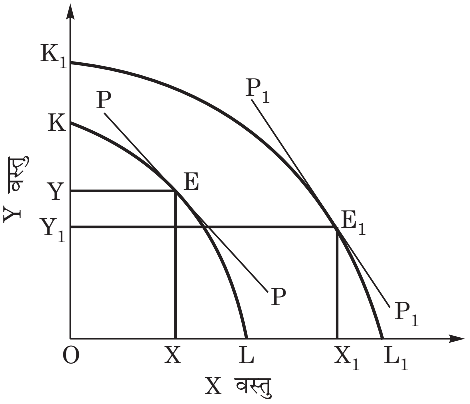

चित्र 5.1

ध्यान देने योग्य है कि यदि पूँजी की पूर्ति में वृद्धि नहीं भी होती है तब भी नया उत्पादन सम्भावना वक्र थोड़ा दाहिनी तरफ सरक कर K से K_1 पर चला जाता है। इसका कारण यह है कि Y वस्तु के उत्पादन में श्रम का भी प्रयोग हुआ है। यदि वस्तुओं की कीमतें यथास्थिर रहती हैं तथा कीमत रेखा P_1P_1 उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 को बिन्दु E_1 पर स्पर्श करती है। इस सन्तुलन बिन्दु के अनुरूप देश A वस्तु X की OX_1 मात्रा तथा वस्तु Y की O_1X_1 मात्रा का उत्पादन करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रम की पूर्ति में वृद्धि के बाद श्रम-गहन वस्तु X का उत्पादन OX से बढ़कर OX_1 हो गया है जबकि पूँजी-गहन वस्तु Y का उत्पादन OX से घटकर OY_1 हो गया है जबकि पूँजी की पूर्ति यथावत अर्थात् अपरिवर्तित रहती है।

नोट

व्यापार की मात्रा पर प्रभाव (Impact on Volume of Trade)—यदि देश A वस्तु X का निर्यात करता है तो इसकी सापेक्षिक प्रचुर श्रम सम्पन्नता (relatively abundant labour endowment) की पूर्ति में वृद्धि इसके निर्यातों की मात्रा में वृद्धि कर देती है। इस दशा को चित्र 5.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए श्रम की पूर्ति में वृद्धि से पूर्व देश A तथा देश B को वस्तु X की OX मात्रा का निर्यात कर रहा था। जब श्रम की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है तब A देश का उत्पादन सम्भावना वक्र KL ऊपर की ओर सरक कर K_1L_1 हो जाता है तथा उत्पादन का नया सन्तुलन बिन्दु P_1P_1 कीमत रेखा के स्पर्श बिन्दु E_1 पर स्थापित होता है, जो PP रेखा के समानान्तर है तथा व्यापार की स्थिर शर्तें प्रदर्शित कर रहा है। परिणामस्वरूप, श्रम-गहन वस्तु X के निर्यात की मात्रा OX से OX_1 तक बढ़ जाती है। इस तरह यह वस्तु X के निर्यातों को वस्तु Y में कमी के अनुपात से अधिक बढ़ाने में सक्षम है।

टास्क अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में गत्यात्मक साधनों के कार्यभाग को समझाइए।

राष्ट्रीय आय पर प्रभाव (Impact on National Income)—उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर, श्रम की पूर्ति में वृद्धि और इसके फलस्वरूप उत्पादन सम्भावना वक्र का दाहिनी ओर विस्थापन देश A की राष्ट्रीय आय में वृद्धि को प्रदर्शित करता है। इसे चित्र 5.2 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। राष्ट्रीय आय का स्तर दिया हुआ होने पर प्रारम्भिक उत्पादन सम्भावना वक्र KL है तथा सन्तुलन बिन्दु E है। जब श्रम की पूर्ति में वृद्धि होती है तब नया उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 हो जाता है। यह ऊँचा उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 राष्ट्रीय आय में वृद्धि को दर्शाता है। नया सन्तुलन बिन्दु E_1 है जहाँ कीमत रेखा P_1P_1 उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 को स्पर्श करती है तथा कीमत रेखा PP के समानान्तर है। E_1 बिन्दु ऊँचे राष्ट्रीय स्तर पर एक सन्तुलन बिन्दु सम्भवत: नहीं हो सकता, बशर्ते कि Y घटिया वस्तु न हो। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ X तथा Y दोनों वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होनी चाहिए परन्तु बिन्दु E_1 पर वस्तु X का उत्पादन बढ़ता है जबकि वस्तु Y का उत्पादन कम हो जाता है। अत: नया सन्तुलन बिन्दु K_1L_1 वक्र पर QER चतुर्थांश (quardrant) के भीतर अवश्य होना चाहिए। परन्तु यह Q तथा R नहीं हो सकता क्योंकि बिन्दु Q पर Y वस्तु की अधिक मात्रा तथा X वस्तु की समान मात्रा उत्पादित की जाती है जबकि बिन्दु R पर X वस्तु की अधिक मात्रा और Y वस्तु की समान मात्रा उत्पादित की जाती है। अब यदि सन्तुलन बिन्दु B होता है तो X तथा Y दोनों वस्तुएँ अधिक मात्रा में उत्पादित होंगी परन्तु यहाँ कीमत रेखा (जो दर्शाई नहीं गई है) PP कीमत रेखा के समान्तर नहीं होगी। यह बात दो वस्तुओं की स्थिर कीमतों की मान्यता के विपरीत है।

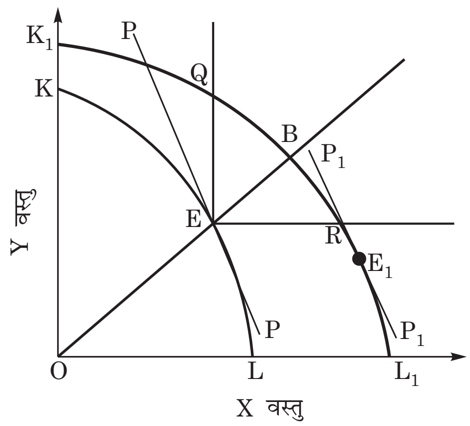

चित्र 5.2

रोजगार पर प्रभाव (Impact on Employment)—वस्तु और साधन की कीमतें दो होने पर, जब देश A में श्रम की पूर्ति बढ़ती है तो देश में पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान रहने के बावजूद श्रम का विस्थापन पूँजी गहन उद्योग से श्रम गहन उद्योग की ओर होगा। इसकी व्याख्या बॉक्स चित्र 5.3 में की गई है। चित्र में X-वस्तु का मूल बिन्दु O तथा Y-वस्तु का मूल बिन्दु O_1 है। देश की साधन सम्पन्नताएँ बॉक्स OLO_1C द्वारा मापी गई हैं। श्रम की पूर्ति में LL_1 की वृद्धि होने से नया बॉक्स OL_1O_2C हो जाता है। प्रारम्भ में देश A अपने संविदा वक्र (Contract Curve) OEO_1 के बिन्दु E पर उत्पादन करता है। यहाँ यह X वस्तु की OE मात्रा तथा Y वस्तु की O_1E मात्रा उत्पादित

करता है। श्रम पूर्ति में वृद्धि के साथ यह अपने संविदा वक्र OE_1O_2 के बिन्दु E_1 पर उत्पादन करता है जहाँ साधन और वस्तु कीमतों में परिवर्तन के बिना (O_1E समानान्तर O_2E_1), यह X वस्तु का उत्पादन OE से OE_1 तक बढ़ाता है तथा वस्तु Y का उत्पादन O_1E से O_2E_1 तक कम करता है। X वस्तु के उत्पादन में EE_1 तक की वृद्धि पूँजी गहन उद्योग Y से श्रम गहन उद्योग X की ओर कुछ श्रम के विस्थापन द्वारा ही सम्भव हुई है। यद्यपि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान है।

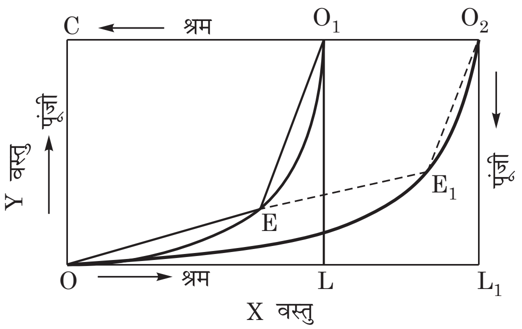

चित्र 5.3

व्यापार से लाभ तथा व्यापार की शर्तों पर प्रभाव (Impact on Gains from Trade and Terms of Trade)—देश A में व्यापार से लाभ एवं व्यापार की शर्तों पर श्रम पूर्ति में वृद्धि के प्रभाव की व्याख्या प्रस्ताव वक्रों (offer curves) द्वारा निम्नवत की जा सकती है। चित्र 5.4 में देश A का प्रारम्भिक प्रस्ताव वक्र है। वह OT व्यापार शर्तों के साथ सन्तुलन बिन्दु E पर वस्तु X की OX मात्रा का निर्यात करता है जबकि वस्तु Y की OY मात्रा आयात करता है। श्रम की पूर्ति में वृद्धि के फलस्वरूप इसका प्रस्ताव वक्र OT व्यापार की शर्तों पर OA से विवर्तित होकर OA_1 हो जाता है।

अब नया सन्तुलन बिन्दु E_1 है जहाँ देश A वस्तु X की XX_1 अधिक मात्रा का निर्यात करता है तथा Y वस्तु की YY_1 अधिक मात्रा आयात करता है। परन्तु व्यापार की स्थिर शर्तों पर यह व्यापार से लाभ नहीं प्राप्त करता क्योंकि यह पहले की अपेक्षा Y के लिए प्रति इकाई X की अधिक मात्रा देगा। ऐसी दशा में व्यापार की शर्तें देश A के विरुद्ध OT से OT_1 तक गति करती हैं। अब नया सन्तुलन OT_1 रेखा के बिन्दु E_2 पर होगा जहाँ प्रस्ताव वक्र OA_1 उसे काटता है। इस सन्तुलन बिन्दु के अनुरूप देश A वस्तु Y की YY_2 कम मात्रा में बदले में X वस्तु की XX_2 अधिक मात्रा का निर्यात कर व्यापार से लाभ प्राप्त करेगा। इस तरह श्रम की पूर्ति में वृद्धि से इसकी व्यापार की शर्तों में भी सुधार होता है।

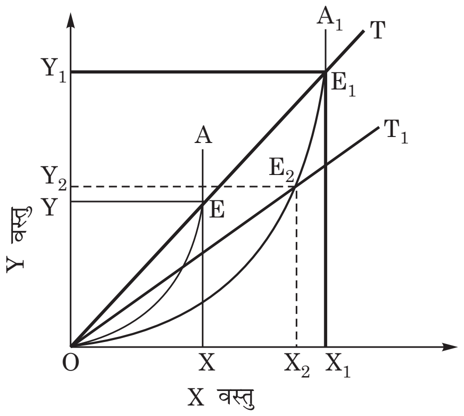

चित्र 5.4

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में घटकों की भूमिका का परीक्षण किया जाता है—
   (क) गत्यात्मक घटकों की (ख) साधन संपन्नताओं की
   (ग) साधन पूर्तियों की (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. चित्र 5.1 में प्रारंभिक उत्पादन संभावना वक्र है—
   (क) KL (ख) E
   (ग) OX (घ) OY।
3. चित्र 5.2 में P_1P_2 रेखा है—
   (क) कीमत रेखा (ख) संतुलन बिन्दु
   (ग) उत्पादन वक्र (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

4. उत्पादन का साधन हैं–
   (क) विदेशी व्यापार (ख) मशीनें
   (ख) श्रम और पूँजी (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. चित्र 5.3 में X वस्तु का मूल बिन्दु है–
   (क) Q (ख) O_1E
   (ग) E (घ) इनमें से कोई नहीं।
6. चित्र 5.4 में E_1 है–
   (क) श्रम की पूर्ति (ख) नया संतुलन बिंदु
   (ग) प्रस्ताव वक्र (घ) इनमें से कोई नहीं।

5.2 रुचियों में परिवर्तन (Changes in Tastes)

यदि किसी देश की प्रौद्योगिकी तथा साधन सम्पन्नताएँ दी हुई हों और उसकी रुचियों में परिवर्तन हो जाता है तो उसकी व्यापार की मात्रा और व्यापार की शर्तों में परिवर्तन हो जाता है। इसके विपरीत यदि रुचियों में परिवर्तन आयात योग्य वस्तुओं से निर्यात योग्य वस्तुओं की ओर होता है तो इससे व्यापार की मात्रा कम हो जाएगी और इससे व्यापार की शर्तों में सुधार होगा। इसे चित्र 5.5 में प्रस्ताव वक्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में देश A का प्रस्ताव वक्र OA है जबकि देश B का प्रस्ताव वक्र OB है। अपरिवर्तित रुचियों के साथ देश A वस्तु X की OX मात्रा निर्यात करता है और देश B वस्तु Y की XE मात्रा का आयात करता है। मान लीजिए देश A में रुचियों में परिवर्तन आयात योग्य वस्तु Y से निर्यात योग्य वस्तु X की ओर होता है जबकि उसकी प्रौद्योगिकी तथा साधन सम्पन्नताएँ यथावत रहती हैं। अब यह देश B को Y वस्तु के बदले वस्तु X की अधिक मात्रा देगा। इस तरह वह अपने नए सन्तुलन बिन्दु E_1 पर अपनी निर्यात योग्य वस्तु X की OX_1 मात्रा को वस्तु Y की X_1E_1 मात्रा के साथ विनिमय करेगा क्योंकि उसका प्रस्ताव वक्र OA_1 प्रस्ताव वक्र OB को अब बिन्दु E_1 पर काटता है। इस तरह, इस देश में रुचियों में परिवर्तन से इसकी व्यापार की मात्रा कम हो गयी : $OX_1 + X_1E_1 < OX + XE$ परन्तु इसकी व्यापार की शर्तों में सुधार हुआ है जैसा कि व्यापार शर्त की रेखा OT_1 से स्पष्ट है कि अब देश X वस्तु की कम मात्रा OX_1 के साथ वस्तु Y की अधिक मात्रा X_1E_1 का विनिमय करता है।

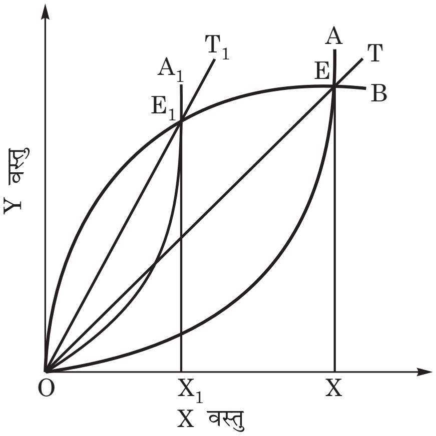

चित्र 5.5

> क्या आप जानते हैं यदि देश की रुचियों में परिवर्तन निर्यात योग्य वस्तुओं से आयात योग्य वस्तुओं की ओर होता है तो इससे व्यापार की मात्रा में वृद्धि होती है और व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होती हैं।

(Economic of Scale)

पैमाने के बढ़ते प्रतिफल आन्तरिक अथवा बाह्य मितव्ययिताओं के कारण हो सकते हैं परन्तु एक फर्म को जो आन्तरिक मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं वे पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता के साथ मेल नहीं खाती हैं क्योंकि वे अंतत:

फर्म को इतना बड़ा बना देती हैं कि वह एक एकाधिकार फर्म बन जाती है और अपने उत्पाद की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में रहती है। दूसरी ओर बाह्य मितव्ययिताएँ पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल खाती हैं क्योंकि वे उस समय प्राप्त होती हैं जब एक उद्योग में सभी फर्में अपने उत्पादन स्तर के फैलने पर अपनी औसत लागतों में कमी का अनुभव करती हैं।

नोट्स यदि दो देशों की साधन सम्पन्नताएँ समरूप हैं, प्रौद्योगिकी तथा रुचियाँ भी यथा स्थिर हैं तब पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है।

मान्यताएँ (Assumptions)—यह ज्ञात करने के लिए कि पैमाने की बाह्य मितव्ययिताएं व्यापार को बढ़ाती हैं, निम्नलिखित पूर्व धारणाओं को स्वीकार किया जाता है—

1. व्यापार करने वाले दो देश A तथा B हैं।
2. दोनों देशों की साधन सम्पन्नताएँ प्रौद्योगिकी तथा रुचियों में परिवर्तन नहीं होता तथा वे समान हैं।
3. प्रत्येक देश दोनों वस्तुओं X तथा Y को उत्पादित करने की क्षमता रखता है।
4. दोनों देशों में सापेक्ष साधन और Y वस्तु की कीमतें समरूप हैं।

व्याख्या (Explanation)—उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर, यदि X तथा Y दोनों वस्तुओं का उत्पादन पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (अथवा घटती लागतों) के अन्तर्गत हो रहा है तो व्यापार सम्भव है। देश A वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा तथा देश B वस्तु Y के सम्बन्ध में। देश A अपनी वस्तु X के उत्पादन का एक अंश देश B की Y वस्तु के उत्पादन के एक अंश के साथ विनिमय करेगा। इसके फलस्वरूप दोनों देशों में उपभोग का स्तर बढ़ता है। जब X तथा Y दोनों वस्तुओं के कुल उत्पादन में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के कारण वृद्धि होती है तो दोनों देश A तथा B व्यापार से लाभ प्राप्त करते हैं। चित्र 5.6 में BMA दोनों देशों A तथा B का उत्पादन सम्भावना वक्र है क्योंकि दोनों देश समरूप हैं।

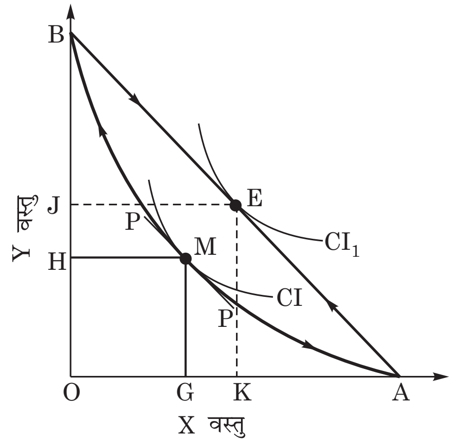

चित्र 5.6

चूंकि उन देशों में रुचियाँ भी समरूप हैं अत: उनका एक ही समुदाय अनधिमान वक्र CI है। व्यापार पूर्व की स्थिति में प्रत्येक देश M बिन्दु पर उत्पादन एवं उपभोग करता है। अब यदि दोनों देश व्यापार करते हैं तो देश A पूर्णतया वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है और बिन्दु M से A पर गति करता है जबकि देश B पूर्णतया वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है और बिन्दु M से बिन्दु B पर चला जाता है। दोनों देशों के बीच घटती लागतों के आधार पर व्यापार हो सकता है चाहे दोनों में बिन्दु M पर सापेक्ष वस्तु कीमतें समरूप हों। अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात रेखा (व्यापार की शर्तें) BEA दी होने पर उपयुक्त सन्तुलन बिन्दु E दो त्रिभुजों BEJ और EAK के साथ होगा। देश A वस्तु X की KA मात्रा को देश B की Y वस्तु की JB मात्रा के साथ विनिमय करेगा। बढ़े हुए विशिष्टीकरण के कारण दोनों देश ऊँचे अनधिमान वक्र CI_1 के बिन्दु E पर अधिक उपभोग करते हैं। इस तरह पैमाने के बढ़ते प्रतिफलों के फलस्वरूप दोनों देश X वस्तु की GK तथा Y वस्तु की JH मात्रा का लाभ प्राप्त करते हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **निम्नलिखित कथनों में ☑ अथवा ☒ का निशान लगाइए (State whether the following statements are 'true' or 'false')**—
   1. यदि देश की रुचियों में परिवर्तन निर्यात योग्य वस्तुओं से आयात योग्य वस्तुओं की ओर होता है तो व्यापार की मात्रा में वृद्धि होती है। ☐
   2. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण होते हैं। ☐
   3. बाह्य मितव्ययितायें पूर्ण प्रतियोगिता के साथ मेल नहीं खाती। ☐
   4. चित्र 5.6 में BMA दो देशों A तथा B का उत्पादन संभावना वक्र है। ☐

(Transport Costs)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त में परिवहन लागतों की उपस्थिति को नकार दिया गया है, परन्तु यह अवास्तविक है, क्योंकि परिवहन लागतें व्यापार कर रहे दो देशों के बीच व्यापार की गई वस्तुओं की कीमत पर, उसके उत्पादन एवं उपभोग पर तथा व्यापार की मात्रा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। परिवहन लागतों में वे समस्त व्यय सम्मिलित किए जाते हैं जो एक देश से दूसरे देश में वस्तु को भेजने पर व्यय किए जाते हैं। इसमें माल लादना, उतारना और भाड़ा, आदि पर किया गया व्यय, बीमा प्रीमियम, आदि को सम्मिलित किया जाता है। परिवहन लागतों को सम्मिलित करने पर एक वस्तु का व्यापार तभी होगा जब व्यापार से पहले दो देशों के बीच कीमत अन्तर उसकी परिवहन लागत से अधिक हों।

मान्यताएँ (Assumptions)

यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

1. व्यापार दो देशों A तथा B के बीच होता है।
2. दोनों देश केवल एक वस्तु मान लीजिए स्टील में व्यापार करते हैं।
3. देश A स्टील का निर्यात करता है, जबकि देश B आयात करता है।
4. दोनों देशों के बीच परिवहन लागतों का बंटवारा बराबर-बराबर होता है।

व्याख्या (Explanation)—उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर दोनों देशों पर परिवहन लागतों के प्रभावों को चित्र-5.7 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में स्टील की कीमत को अनुलम्ब-अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है, जबकि क्षैतिज अक्ष पर वस्तु की मात्रा को मापा गया है। देश A में स्टील की उत्पादित और मापी गई मात्रायें (X)

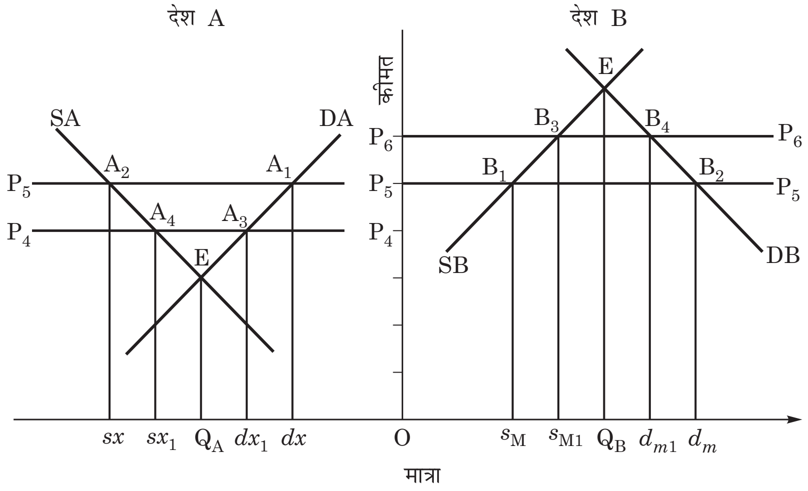

चित्र 5.7

नोट

इस निर्यातक देश के लिए बाईं ओर मापी गई हैं, जबकि स्टील आयातक देश B के लिए मात्राएँ (M) दाईं ओर। देश A के लिए माँग और पूर्ति वक्र क्रमशः D_A तथा S_A द्वारा, जबकि देश B के लिए D_B तथा D_S द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं।

व्यापार-पूर्व प्रत्येक देश अपनी वस्तु की मात्रा का उस कीमत पर उत्पादन करता है जो माँग एवं पूर्ति वक्रों के प्रतिच्छेद से निर्धारित होती है। देश में A में EQ_A कीमत पर QQ_A मात्रा तथा देश B में EQ_B कीमत पर OQ_B मात्रा का उत्पादन होता है। जब व्यापार प्रारम्भ होता है तब देश A स्टील का निर्यात देश B को करता है। फलस्वरूप इसकी देश A में कीमत बढ़ती है, जबकि देश B में घट जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत स्टील बाजार खाली (clear) हो जाने के लिए दोनों देशों में एक समान कीमत होनी चाहिए। चित्र में इसे समानान्तर रेखा P_5P_5 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह रेखा देश A के माँग एवं पूर्ति वक्रों को क्रमशः A_1 तथा A_2 पर तथा देश B के माँग एवं पूर्ति वक्रों को क्रमशः B_1 तथा B_2 बिन्दुओं पर काटती है। इस कीमत पर A देश O_{Sx} मात्रा का उत्पादन, O_{dx} मात्रा का उपयोग तथा d_xS_x मात्रा का निर्यात करता है, जबकि B देश Os_M मात्रा का उत्पादन, Od_M मात्रा का उपभोग और $s_Md_M(= d_xs_x)$ मात्रा का आयात करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जब परिवहन लागतों को शामिल किया जाता है तो निर्यातक देश परिवहन लागतों की राशि के बराबर स्टील की कीमत में कमी करता है, जबकि आयातक देश परिवहन लागतों के बराबर स्टील कीमतों में वृद्धि समझता है। स्टील की कीमत में यह कमी अथवा वृद्धि स्टील की पिछली कीमत (चित्र में P_5P_5) पर होती है ताकि दोनों देशों में व्यापार की मात्रा सन्तुलन में रहे। ऐसा P_4P_4 कीमत पर होता है जब यह रेखा देश A के D_A तथा S_A वक्रों को क्रमशः A_3 तथा A_4 बिन्दुओं पर काटती है। A देश, $Os_{x'}$ मात्रा का उत्पादन, $Od_{x'}$ मात्रा का उपभोग और $d_xs_{x'}$ मात्रा का निर्यात करता है। दूसरी ओर B देश में कीमत रेखा P_6P_6 है जो S_B और D_B वक्रों को क्रमशः B_3 तथा B_4 बिन्दुओं पर काटती है। B देश Os_{M1} मात्रा का उत्पादन, Od_{M1} मात्रा का उपभोग और $s_{M1}d_{M1}(= s_{x1}d_{x1})$ मात्रा का आयात करता है।

उपरोक्त विश्लेषण में दोनों देश परिवहन लागतों को बराबर-बराबर बाँटते हैं, क्योंकि दोनों देशों में D तथा S वक्रों के ढलान बराबर हैं। यदि एक देश के D तथा S वक्रों को दूसरे की सापेक्षता में अधिक तिरछा खींचा जाता है तो परिवहन लागतों का हिस्सा पहले देश पर अधिक आएगा।

(Different Demand Conditions)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित एवं हैक्सचर-ओहलिन दोनों ही सिद्धान्तों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर माँग के प्रभाव का विश्लेषण नहीं किया गया है, परन्तु पूर्ति की स्थितियों के दिए होने पर, भिन्न-भिन्न माँग दशाओं से दोनों देशों में कीमत अनुपातों में तथा विश्व कीमत अनुपात पर दोनों वस्तुओं के विनिमय के बीच अन्तर उत्पन्न हो जाएँगे। इस स्थिति को चित्र-5.8 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

मान लीजिए दो देश A तथा B हैं जिनका एक समान उत्पादन सम्भावना वक्र AB है। व्यापार-पूर्व स्थिति में X और Y वस्तुओं से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न माँग स्थितियों के भिन्न सापेक्ष कीमत अनुपात हैं, जैसा कि A देश में A तथा B देश में B प्रदर्शित किए गए हैं। देश A का उत्पादन एवं उपभोग बिन्दु E है जहाँ CI_1 वक्र उत्पादन सम्भावना वक्र AB को स्पर्श करता है। इसी तरह, देश B का उत्पादन एवं उपभोग बिन्दु K है। जहाँ उसका CI_2 वक्र, उत्पादन सम्भावना वक्र AB को स्पर्श करता है। देश A पूँजी गहन वस्तु Y में विशिष्टीकरण करता है और देश B

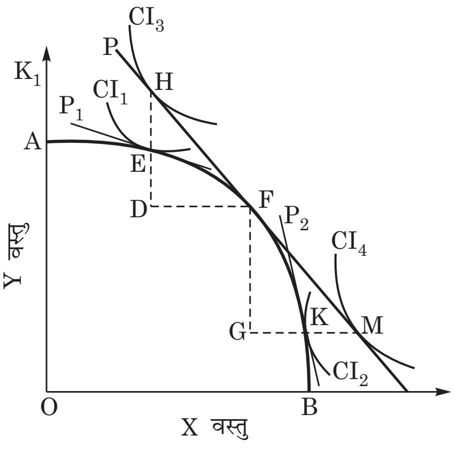

चित्र 5.8

नोट

श्रम-गहन वस्तु X में। अब अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात (रेखा) P पर व्यापार प्रारम्भ होता है तो दोनों देश दोनों वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेंगे और उनके सन्तुलन बिन्दु (बिन्दु E तथा K) बिन्दु F पर इकट्ठे हो जायेंगे। फलस्वरूप देश A का उपभोग स्तर कीमत रेखा P के साथ H बिन्दु पर ऊँचे CI_3 वक्र पर विवर्तित हो जाएगा। इसी तरह देश B का उपभोग स्तर M बिन्दु पर ऊँचे CI_4 वक्र पर विवर्तित हो जाएगा। H तथा M दोनों बिन्दु दोनों देशों में दोनों वस्तुओं के लिए ऊँची माँग का दबाव प्रदर्शित करते हैं। दोनों देशों के बीच व्यापार HFD और FMG त्रिभुजों के आध ार पर होगा। अब देश A वस्तु X की DF मात्रा निर्यात करता है और देश B वस्तु Y की GF मात्रा इसे निर्यात करता है। इस प्रकार, माँग में वृद्धि के साथ पूँजी-गहन देश A श्रम-गहन वस्तु X का निर्यात करता है और श्रम-गहन देश B पूँजी-गहन वस्तु Y का निर्यात करता है। यह माँग उलटाव (Demand Reversal) की दशा है जो लियोनतिफ विरोध ाभास की भी विवेचना करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो (Fill in the blanks)–

1. हेक्सचर-ओहलिन सिद्धांत में .... लागत की उपस्थिति को नकार दिया जाता है।
2. व्यापार .... देशों के बीच होता है।
3. चित्र 5.8 में AB एक समान उत्पादन .... है।
4. व्यापार करने वाले देशों के बीच .... का बँटवारा बराबर का होता है।

(Summary)

- सभी घटक जो व्यापार को प्रभावित करते हैं उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अत: उचित होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इन गत्यात्मक घटकों की भूमिका का परीक्षण किया जाए।
- वस्तु और साधन की कीमतें दो होने पर, जब देश A में श्रम की पूर्ति बढ़ती है तो देश में पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान रहने के बावजूद श्रम का विस्थापन पूँजी गहन उद्योग से श्रम गहन उद्योग की ओर होगा।
- यदि किसी देश की प्रौद्योगिकी तथा साधन सम्पन्नताएँ दी हुई हों और उसकी रुचियों में परिवर्तन हो जाता है तो उसकी व्यापार की मात्रा और व्यापार की शर्तों में परिवर्तन हो जाता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त में परिवहन लागतों की उपस्थिति को नकार दिया गया है, परन्तु यह अवास्तविक है
- व्यापार दो देशों A तथा B के बीच होता है।
- दोनों देशों के बीच परिवहन लागतों का बंटवारा बराबर-बराबर होता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जब परिवहन लागतों को शामिल किया जाता है तो निर्यातक देश परिवहन लागतों की राशि के बराबर स्टील की कीमत में कमी करता है, जबकि आयातक देश परिवहन लागतों के बराबर स्टील कीमतों में वृद्धि समझता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित एवं हैक्सचर-ओहलिन दोनों ही सिद्धान्तों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर माँग के प्रभाव का विश्लेषण नहीं किया गया है।

नोट

(Keywords)

- **संविदा–** इक़रार, समझौता, ठेका।
- **भाड़ा–** किराया, गाड़ी आदि का किराया।
- **प्रीमियम–** अधिमूल्य, बीमा किस्त।

(Review Questions)

1. व्यापारिक भागीदारों की आय, उत्पादन एवं रोजगार साधन संपन्नताओं में परिवर्तनों के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
2. व्यापारिक भागीदारों की मात्रा, व्यापार की शर्तों एवं व्यापार लाभों पर साधन सम्पन्नताओं में परिवर्तनों के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पैमाने की मितव्ययिताओं के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर रुचियों में परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
5. भिन्न-2 माँग स्थितियों में परिवहन लागतों में परिवर्तनों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (क)	3. (क)	4. (ग)
	5. (ख)			
2.	1. ✓	2. ✗	3. ✗	4. ✓
3.	1. परिवहन	2. दो	3. संभावना वक्र	4. परिवहन लागत

(Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई–6: रिब्जिन्स्की प्रमेय (Rybszynski Theorem)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 रिब्जिन्स्की की प्रमेय (Rybszynski Theorem)

6.2 रिब्जिन्स्की प्रमेय : साधन सम्पन्नता परिवर्तनों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव (The Rybszynski Theorem : The Effect of Factor Endowment Changes on International Trade)

6.3 सारांश (Summary)

6.4 शब्दकोश (Keywords)

6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रिब्जिन्स्की प्रमेय की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त तथा साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त दोनों ही स्थिर साधन सम्पन्नता की धारणा को स्वीकार करते हैं। **रिब्जिन्सकी** (T.M. Rybezynski) ने 1955 में प्रकाशित अपने लेख 'Factor Endowment and Relative Commodity Prices' में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि **"एक साधन को स्थिर रखकर दूसरे साधन में परिवर्तन करने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने वाली दो वस्तुओं के उत्पादनों पर क्या प्रभाव पड़ता है।"** इसे रिब्जिन्स्की प्रमेय के नाम से जाना जाता है।

6.1 रिब्जिन्स्की की प्रमेय (The Rybezynski Theorem)

हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि व्यापार करने वाले दो देशों में जिन दो वस्तुओं का व्यापार होता है उनका उत्पादन फलन भिन्न-भिन्न होता है, किन्तु दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उत्पादन फलन समान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि X वस्तु का उत्पादन फलन Y वस्तु से भिन्न है। परन्तु वस्तु X के उत्पादन में प्रयुक्त तकनीक दोनों देशों (मान लीजिए) A तथा B में समान है। इसी तरह वस्तु Y के उत्पादन में प्रयुक्त तकनीक दोनों देशों में समान है। यदि देश A पूँजी प्रचुर है और Y पूँजी-गहन वस्तु है तब देश A वस्तु Y का निर्यात करेगा। इसी तरह देश B श्रम-प्रचुर होने के कारण श्रम-गहन वस्तु X का निर्यात करेगा। साधन गहनता उलटाव की धारणा के अनुसार एक ही वस्तु Y, देश A में पूँजी-गहन होगी जबकि देश B में श्रम-गहन। ऐसी दशा में, हेक्सचर-ओहलिन प्रमेय के अनुसार, दोनों देश A तथा B एक-दूसरे को एक ही वस्तु Y का निर्यात करेंगे परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। अतः हेक्सचर-ओहलिन प्रमेय साधन गहनता उलटाव की दशा में अर्थहीन हो जाता है। इसका कारण यह है कि वह दोनों देशों के बीच व्यापार के ढाँचे की व्याख्या करने में असफल रहता है।

नोट्स साधन-गहनता उलटाव की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब एक समोत्पाद अथवा सममात्रा वक्र दूसरे सममात्रा वक्र पर स्थित हो अथवा जब एक सममात्रा वक्र दूसरे सममात्रा वक्र को अनेक बिन्दुओं पर काटे। इनमें से प्रथम को एकल साधन गहनता उलटाव तथा दूसरे को बहु साधन गहनता उलटाव कहा जाता है।

एकल साधन गहनता उलटाव (Single Factor Intensity Reversal)

एकल साधन गहनता उलटाव की दशा को चित्र 6.1 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में सममात्रा वक्र QQ सममात्रा वक्र PP को बिन्दु R पर स्पर्श करता है। चित्र में बिन्दु R से होकर जाने वाली रेखा दोनों सममात्रा वक्रों की स्पर्श रेखा अर्थात् कीमत रेखा है जो समान अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपातों को प्रदर्शित करती है। यह रेखा उस अनुपात को व्यक्त करती है जिसमें एक साधन कीमत अनुपात पर दोनों वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न गहनताओं में दोनों साधनों को मिलाया जाता है। **लर्नर** के अनुसार OR रेखा साधन गहनता उलटाव की प्रतीक है। दोनों सममात्रा वक्रों पर OR रेखा के बाएँ अथवा दाएँ को स्थित सन्तुलन बिन्दुओं से यह ज्ञात किया जा सकता है कि साधन गहनता की दशा में उत्पादन फलन विवर्तित (shift) हो गए हैं। साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त से हम जानते हैं कि (मान लीजिए) ब्रिटेन में खाद्यान्न सापेक्ष रूप से भूमि-गहन है और भारत में कपड़ा सापेक्ष रूप से श्रम-गहन है। चित्र 6.1 से स्पष्ट है कि OR रेखा के बायीं ओर स्थित OE तथा OD रेखाओं द्वारा प्रदर्शित साधन अनुपात विभिन्न साधन गहनताओं को व्यक्त करते हैं। OE रेखा OD रेखा की तुलना में यह व्यक्त करती है कि ब्रिटेन में कपड़े का उत्पादन खाद्यान्न के उत्पादन की अपेक्षा भूमि-गहन है। ब्रिटेन में दोनों वस्तुओं का साधन कीमत अनुपात एक समान है, जैसा कि PP तथा QQ सममात्रा वक्रों के क्रमशः E तथा D बिन्दुओं पर समानान्तर स्पर्श रेखाओं से व्यक्त होता है, अर्थात $A = A_1$।

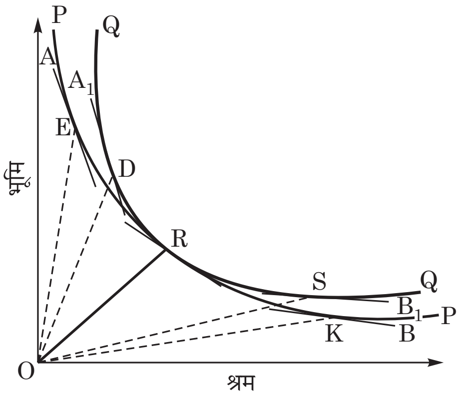

चित्र 6.1

इसके विपरीत, OR रेखा के दायीं तरफ स्थित OK तथा OS रेखाओं से यह ज्ञात होता है कि भारत में खाद्यान्न उत्पादन की अपेक्षा वस्त्र श्रम-गहन है, जबकि समानान्तर साधन कीमत रेखाएँ $B = B_1$ दी हुई हों।

इस तरह उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वस्त्र ब्रिटेन में सापेक्ष रूप से भूमि-गहन है और भारत में सापेक्ष रूप से श्रम-गहन है। अब ब्रिटेन खाद्यान्न के स्थान पर कपड़े का उत्पादन करता है और ऐसा करने में वह कपड़े के उत्पादन में, जो श्रम-गहन है, श्रम के स्थान पर भूमि को प्रतिस्थापित कर देता है। इससे साधन उलटाव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। दोनों देशों में कपड़े के उत्पादन की साधन कीमतें भी अलग-अलग हैं जैसा कि कीमत रेखाओं A तथा B के ढलानों से पता चलता है। साधन गहनताओं से यह बात स्पष्ट करना सम्भव नहीं है कि कौन-सा देश, किस वस्तु का निर्यात करेगा। वास्तव में दोनों ही देश कपड़े का उत्पादन व निर्यात करने तथा खाद्यानों के आयात करने का प्रयास करेंगे। इस तरह, साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त दोनों देशों के बीच व्यापार के ढाँचे की व्याख्या करने में असफल रहता है।

टास्क एकल साधन गहनता उलटाव का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

नोट

बहु साधन गहनता उलटाव (Multiple Factor Intensity Reversals)

बहु साधन गहनता उलटाव की स्थिति में एक सममात्रा वक्र दूसरे सममात्रा वक्र को अनेक बिन्दुओं पर काटता है। इस स्थिति को चित्र 6.2 में प्रदर्शित किया गया है जहाँ सममात्रा वक्र PP तथा QQ एक-दूसरे को M तथा N बिन्दुओं पर दो बार काटते हैं। इन दोनों स्पर्श बिन्दुओं के बीच दोनों सममात्रा वक्रों को मूल बिन्दु से आने वाली OR रेखा बिन्दु T तथा S पर काटती है। इन्हीं बिन्दुओं पर समान अन्तर्राष्ट्रीय साधन कीमत अनुपातों को व्यक्त करने वाली समानान्तर स्पर्श रेखाएँ खींची जा सकती हैं और इस तरह साधन कीमत समानीकरण व्यक्त होता है। सममात्रा वक्रों और साधन कीमत रेखाओं के बीच सन्तुलन बिन्दु जो रेखा OR के बायीं अथवा दायीं तरफ स्थित हैं साधन गहनता उलटाव को व्यक्त करते हैं।

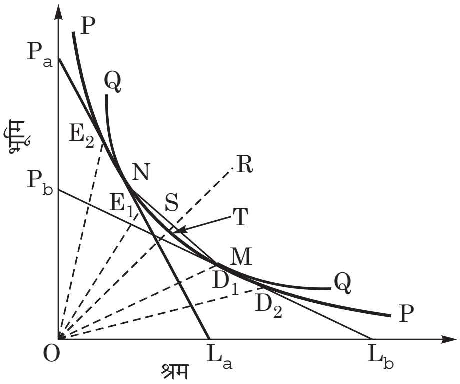

चित्र 6.2

साधन कीमत रेखा P_aL_a पर दो रेखाएँ OE_1 तथा OE_2 ब्रिटेन में खाद्यान्न तथा कपड़े के उत्पादन में भूमि/श्रम अनुपातों को व्यक्त करती हैं। OD_1 तथा OD_2 रेखाएँ भारत में P_bL_b साधन कीमत रेखा पर उसी तरह के अनुपातों को व्यक्त करती हैं। चित्र से स्पष्ट है कि कपड़ा ब्रिटेन में भूमि-गहन है (बिन्दु E_2) तथा भारत में श्रम-गहन है (बिन्दु D_2) जबकि खाद्यान्न ब्रिटेन में श्रम-गहन (बिन्दु E_1) तथा भारत में भूमि गहन (D_1) है। इस तरह भूमि-गहन वस्तु खाद्यान्न अधिक भूमि वाले देश ब्रिटेन में श्रम-गहन है जबकि अधिक श्रम वाले देश भारत में भूमि-गहन है। यह दशा साधन गहनता उलटावों की स्थिति को व्यक्त करती है। दोनों देशों में साधन कीमतें अलग-अलग हैं क्योंकि सममात्रा वक्र QQ के बिन्दु E_1 तथा D_1 दो भिन्न-भिन्न साधन कीमत रेखाओं P_aL_a तथा P_bL_b पर स्थित हैं। दोनों देश खाद्यान्न तथा कपड़े के साधनों को स्थानापन्न करके खाद्यान्नों का निर्यात तथा कपड़े के आयात का प्रयत्न करेंगे। इस तरह साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त असफल हो जाता है।

> *क्या आप जानते हैं* दो देशों के बीच व्यापार ढाँचे की व्याख्या प्रस्तुत करने में साधन कीमत समानीकरण सिद्धांत असफल सिद्ध होता है।

स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय (Stopler-Samuelson Theorems)

वस्तु कीमतों में परिवर्तन का वास्तविक साधन आय पर प्रभाव (The Stopler-Samuelson Theorem : The Effect of Changes in Commodity Prices on Real Factor Rewards)—स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि वस्तु की कीमतों में हुए परिवर्तन का साधनों की निरपेक्ष वास्तविक आय (Absolute Real Income) पर क्या प्रभाव पड़ता है। अन्य शब्दों में स्टोप्लर-सेम्युलसन सिद्धान्त साधन-आय पर वस्तु की कीमतों में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव की जाँच करता है। यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि यदि दो साधन दो-वस्तु अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है, तो जिस वस्तु की कीमत बढ़ती है उसके उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले प्रचुर साधन की कीमत बढ़ जाएगी और सीमित अथवा दुर्लभ साधन की कीमत गिर जाएगी और विलोमशः भी।

सरल शब्दों में हेक्सचर-ओहलिन की मान्यता को स्वीकार करते हुए स्टोप्लर-सेम्युलसन ने बताया कि यदि व्यापार के कारण किसी एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि होती है तो उस वस्तु के उत्पादन में जिस साधन को सापेक्षिक रूप से गहनता के साथ प्रयुक्त किया जाता है, उसकी आय का सापेक्षिक और निरपेक्ष अंश बढ़ जाएगा। अन्य शब्दों में, **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सापेक्षिक रूप से प्रचुर साधन को लाभ होगा तथा सापेक्षिक रूप से दुर्लभ साधन को हानि होगी।**

नोट

मान्यताएँ—प्रमेय की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं—

(1) हम एक ऐसे देश को लेते हैं जो उत्पत्ति के दो साधनों—श्रम और पूँजी की सहायता से केवल दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन कर रहा है।

(2) उत्पादन-फलन पूर्ण रूप से सामान हैं।

(3) उत्पत्ति के दोनों साधनों की मात्रा निश्चित है तथा उन्हें पूर्ण रोजगार प्राप्त है।

(4) देश में पूर्ण प्रतियोगिता है तथा उसे निश्चित व्यापार की शर्तों का सामना करना पड़ता है जिन्हें वह प्रभावित नहीं कर सकता।

(5) वस्तु X का उत्पादन सापेक्षिक रूप से पूँजी-प्रधान है तथा Y का श्रम-प्रधान है। जैसे ही मजदूरी की तुलना में ब्याज के अनुपात में वृद्धि होती है, दोनों वस्तुओं के उद्योगों में पूँजी-श्रम अनुपात में कमी होगी किन्तु Y की तुलना में X वस्तु के उत्पादन में पूँजी-श्रम का अनुपात सदैव ऊँचा रहेगा।

अब देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रारम्भ करता है तथा उसे पूँजी-प्रधान वस्तु X का निर्यात करने का प्रोत्साहन मिलता है अत: X के उत्पादन में अधिक मात्रा में पूँजी और श्रम का प्रयोग किया जाएगा। Y वस्तु के उत्पादन में संकुचन होने से अधिक मात्रा में श्रम एवं कम मात्रा में पूँजी अन्य उद्योगों के लिए उपलब्ध हो जायेंगे किन्तु X के उत्पादन के लिए पूँजी अधिक मात्रा में लगती है अत: पूँजी की दुर्लभता से उसकी सापेक्षिक कीमत बढ़ जाएगी तथा श्रम की प्रचुरता से उसकी कीमत घट जाएगी। अब श्रम इसलिए प्रचुर हो गया है क्योंकि जिस अनुपात में Y वस्तु के उत्पादन-संकुचन से वह हट गया है, उसी अनुपात में उसे X के उत्पादन में नहीं लगाया जा सकता क्योंकि X का उत्पादन पूँजी-प्रधान है। Y के उत्पादन में कमी होने से जो कम मात्रा में पूँजी बची रहती है, उसका सरलता से X वस्तु के उत्पादन में प्रयोग हो जाता है क्योंकि X का उत्पादन पूँजी-प्रधान है, किन्तु श्रम का प्रयोग नहीं हो पाता जिससे कुछ श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे एवं उनकी कीमत अर्थात् मजदूरी में कमी हो जाएगी। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि स्वतन्त्र व्यापार से देश के स्वल्प साधन-श्रम के सापेक्षिक अंश की हानि होगी।

ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि व्यापार से न केवल स्वल्प साधन के सापेक्षिक अंश की हानि होगी वरन् । जैसे ही देश उत्पादन की प्रथम स्थिति से आगे बढ़ता है अर्थात् Y की तुलना में X का उत्पादन बढ़ता है, पूँजी की सापेक्षिक कीमत में वृद्धि और श्रम की सापेक्षिक कीमत में ह्रास होता है। इसका प्रभाव यह होगा कि दोनों उद्योगों में कम पूँजी और अधिक मात्रा में श्रम को प्रतिस्थापित किया जाएगा अर्थात् दोनों उद्योगों में श्रम पूँजी का अनुपात बढ़ जाएगा। परिणामस्वरूप दोनों उद्योगों में श्रम की सीमान्त उत्पादकता (जिसे पूर्ण प्रतियोगिता के कारण दोनों उद्योगों को समान मान लिया गया है) घट जाएगी एवं पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाएगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्र व्यापार के परिणामस्वरूप सापेक्षिक रूप से स्वल्प साधन श्रम की वास्तविक (निरपेक्ष) आय कम हो जाती है और सापेक्षिक रूप से प्रचुर साधन-पूँजी की वास्तविक आय बढ़ जाती है। इसके विपरीत, यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रशुल्क (Tariff) के फलस्वरूप व्यापार की मात्रा कम हो जाएगी और उससे सापेक्षिक स्वल्प साधन-श्रम को लाभ होगा।

उक्त स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय का यह निष्कर्ष निकलता है कि

स्टोप्लर-सेम्युलसन के प्रमेय की निम्न आलोचनाएँ की गयी हैं—

(*i*) उन्होंने जो प्रशुल्क सम्बन्धी तर्क दिया है, उसके निष्कर्षों को उत्पादन के दो साधनों की ही स्थिति में लागू किया जा सकता है, किन्तु जब दो से अधिक साधनों का प्रयोग किया जा रहा हो तो उक्त विश्लेषण में कठिनाई उपस्थित होती है।

(*ii*) जिन मान्यताओं पर स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय आधारित है वे वास्तविक नहीं हैं। के अनुसार, "यह सिद्धान्त उत्पत्ति के तीन या अधिक साधनों वाले मॉडल पर लागू नहीं होता जो कि अधिक वास्तविक है।

नोट

उदाहरण के लिए, उस मॉडल में जहाँ तक साधन निर्यात उद्योगों के लिए विशिष्ट हो, तथा दूसरा आयात उद्योगों के लिए विशिष्ट हो और दो या अधिक स्थानान्तरणीय हों।"

(*iii*) कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार स्टोप्लर-सेम्युलसन के निष्कर्ष सही नहीं हैं। उनकी दृष्टि में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव आयात और निर्यात उद्योगों पर भिन्न-भिन्न होता है। व्यापार से निर्यात उद्योगों में लगे उत्पत्ति के साधनों पर अनुकूल तथा आयात उद्योगों में लगे साधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

(Fill in the blanks)

स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय की मान्यताएँ एवं आलोचनाएँ हैं–

(*i*) हम एक ऐसे देश को लेते हैं जो उत्पत्ति के दो साधनों ……… की सहायता से केवल दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन कर रहा है।

(*ii*) उत्पादन फलन पूर्ण रूप से ……… हैं।

(*iii*) उत्पत्ति के दोनों साधनों की मात्रा निश्चित है तथा उन्हें ……… प्राप्त है।

(*iv*) ……… यह सिद्धांत तीन या अधिक साधनों वाले मॉडल पर लागू नहीं होता।

(*v*) कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार ……… के निष्कर्ष सही नहीं हैं।

6.2 रिब्जिन्स्की प्रमेय : साधन सम्पन्नता परिवर्तनों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव (The Rybszynski Theorem : The Effect of Factor Endowment Changes on International Trade)

हेक्सचर-ओहलिन सिद्धान्त तथा साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त दोनों ही स्थिर साधन सम्पन्नता की धारणा को स्वीकार करते हैं। (T.M. Rybezynski) ने 1955 में प्रकाशित अपने लेख 'Factor Endowment and Relative Commodity Prices' में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि "

" इसे रिब्जिन्स्की प्रमेय के नाम से जाना जाता है। रिब्जिन्स्की सिद्धान्त इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि दो-साधन दो-वस्तु अर्थव्यवस्थाओं में जब एक साधन की पूर्ति को स्थिर रखते हुए दूसरे साधन की पूर्ति बढ़ा दी जाती है तो इसका परिणाम यह होगा कि उस वस्तु का उत्पादन बढ़ जाएगा जो बढ़ाए गए साधन का गहनता से प्रयोग करता है तथा दूसरी वस्तु का उत्पादन घट जाएगा। उदाहरणार्थ, यदि श्रम की पूर्ति में वृद्धि होती है तो श्रम-गहन वस्तु का उत्पादन बढ़ता है, जबकि पूँजी-गहन वस्तु का उत्पादन घट जाता है। इसके विपरीत यदि पूँजी की पूर्ति बढ़ती है तो श्रम-गहन वस्तु का उत्पादन घट जाता है।

(Assumptions) यह प्रमेय निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

(1) दो देश हैं जो परस्पर व्यापार करते हैं, परन्तु विश्लेषण ज्यामितीय रूप में एक देश तक ही सीमित है।

(2) यह देश केवल दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन करता है।

(3) उत्पादन के दो साधन हैं–श्रम तथा पूँजी। ये दोनों साधन पूर्णतया विभाज्य एवं गतिशील हैं तथा कुछ सीमा तक इन्हें परस्पर प्रतिस्थापित भी किया जा सकता है।

(4) दोनों वस्तुओं के उत्पादन फलन रेखीय समरूप हैं।

(5) वस्तु कीमतें तथा साधन कीमतें दोनों ही स्थिर हैं।

(6) प्रत्येक वस्तु की साधन गहनता भिन्न-भिन्न है। वस्तु X सापेक्ष रूप से श्रम-गहन जबकि वस्तु Y सापेक्ष रूप से पूँजी गहन है।

(7) केवल एक साधन की पूर्ति में परिवर्तन होता है जबकि दूसरे साधन की पूर्ति स्थिर रहती है।

(8) वस्तु तथा साधन बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता है।

(Explanation) उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर रिब्जिन्स्की प्रमेय को चित्र 6.3 में बाक्स रेखाचित्र (Box-diagram) द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र में वस्तु X के उत्पादन का मूल बिन्दु O है तथा वस्तु Y के उत्पादन का मूल बिन्दु O_1 है देश की मूल साधन उपलब्धता को बाक्स OLO_1C द्वारा मापा गया है। इस बाक्स में श्रम की क्षैतिज अक्ष पर तथा पूँजी को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। मान लीजिए प्रारम्भिक उत्पादन बिन्दु A है जो संविदा वक्र OAO_1 पर इस तरह स्थित है कि प्रत्येक वस्तु के पूँजी श्रम अनुपात को रेखाओं OA तथा O_1A की ढलानों द्वारा व्यक्त करता है। OA का ढाल यह व्यक्त करता है कि (क्षैतिज पक्ष में) वस्तु Y की अपेक्षा X श्रम गहन है। इसी तरह रेखा O_1A का ढाल यह स्पष्ट करता है कि वस्तु X की अपेक्षा वस्तु Y पूँजी-गहन है। रेखा OA वस्तु X के उत्पादन को तथा रेखा O_1A वस्तु Y के उत्पादन को भी प्रदर्शित करती है। चित्र में OL श्रम की आपूर्ति है जबकि OC पूँजी की आपूर्ति को व्यक्त करता है।

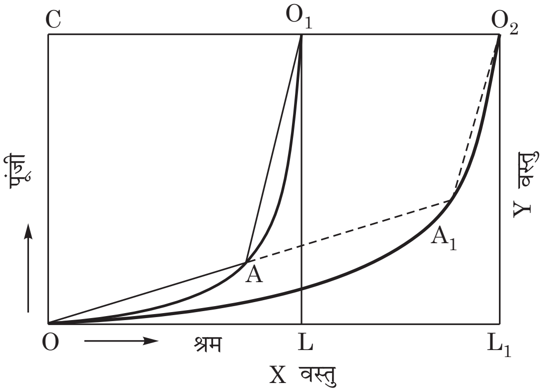

चित्र 6.3

मान लीजिए श्रम की पूर्ति OL से बढ़कर OL_1 हो जाती है। श्रम की मात्रा में LL_1 की वृद्धि होने से नया बाक्स OL_1O_2C बन जाता है। चूंकि स्थिर वस्तु कीमतों पर प्रत्येक वस्तु में पूँजी-श्रम अनुपात अपरिवर्तित रहता है अत: नया उत्पादन बिन्दु A_1 होगा जो बढ़ाई गयी OA रेखा पर तथा O_1A के समानान्तर खींची गई नई रेखा O_2A_1 पर स्थित है। इस तरह नया उत्पादन बिन्दु A_1 जो संविदा वक्र OA_1O_2 पर स्थित है, बताता है कि श्रम-गहन वस्तु X का उत्पादन OA से बढ़कर OA_1 हो जाता है जबकि पूँजी गहन वस्तु Y का उत्पादन O_1A से घटकर O_2A_1 पर आ जाता है।

रिब्जिन्स्की ने उक्त प्रमेय को ऐसे रेखाचित्र में प्रस्तुत किया है जो उत्पादन सम्भावना वक्रों को प्रदर्शित करता है। चित्र 6.4 में श्रम-गहन वस्तु X की मात्राओं को क्षैतिज अक्ष पर तथा पूँजी-गहन वस्तु Y की मात्राओं को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। चित्र 6.4 में उत्पादन सम्भावना वक्र KL चित्र 6.3 के बाक्स OLO_1C से व्युत्पन्न किया गया है। वस्तु X तथा Y में साम्य विनिमय दर मूल उत्पादन सम्भावना वक्र के बिन्दु A पर है। जब श्रम की पूर्ति में वृद्धि की जाती है तो एक नया उत्पादन सम्भावना वक्र बन जाता है जिसे चित्र 6.4 में K_1L_1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह उत्पादन सम्भावना वक्र चित्र 6.3 के बाक्स OL_1O_2C से व्युत्पन्न किया गया है। चित्र में नया साम्य बिन्दु A_1 पर स्थापित होता है जहाँ कीमत रेखा P_1P_1 मूल कीमत रेखा PP के समानान्तर है तथा उत्पादन सम्भावना वक्र को स्पर्श करती है। यदि वस्तु Y घटिया नहीं है, तो बिन्दु A_1 नए अधिक ऊँचे आय स्तर पर साम्य की स्थिति में नहीं हो सकता। श्रम की पूर्ति में वृद्धि के फलस्वरूप प्राप्त अधिक ऊँचे उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 का तात्पर्य है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है। इसके फलस्वरूप दोनों वस्तुओं की माँग बढ़ेगी। अत: नया साम्य बिन्दु अवश्य ही नए उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 के क्षेत्र MAN के भीतर स्थित होगा। उदाहरणार्थ, उत्पादन सम्भावना वक्र K_1L_1 के किसी भी बिन्दु M, B अथवा N पर स्पर्श करने वाली रेखा का ढाल A पर स्पर्श करने वाली रेखा की अपेक्षा अधिक चपटा होगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पूँजी गहन वस्तु Y की तुलना में श्रम गहन वस्तु X की व्यापार की शर्तें और खराब हो जाएँगी। यह इस प्रस्थापना को सिद्ध करता है कि जिस साधन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है उस

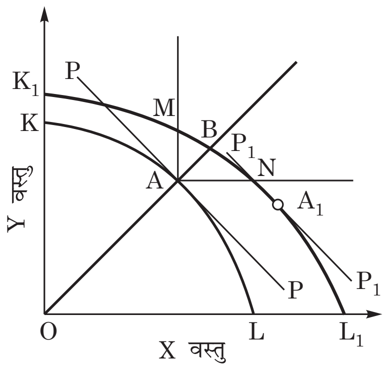

चित्र 6.4

नोट

साधन का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करने वाली वस्तु की व्यापार की शर्तें बिगड़ जाती हैं। इस तथ्य के आधार पर खुली अर्थव्यवस्था के सम्बंध में रिब्जिन्स्की ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "अब यदि माना जाए कि जिस साधन की मात्रा बढ़ी है उसका उपयोग करने वाली वस्तु निर्यात की मद है तो उसकी बाह्य व्यापार की शर्तें बिगड़ेंगी और इसके विपरीत यदि वह वस्तु आयात की मद है तो उसके व्यापार की शर्त में सुधार होगा।" यदि देश छोटा है और इस स्थिति में नहीं है कि अपने आंतरिक समायोजनों से विश्व के कीमत अनुपातों को प्रभावित कर सके तो स्पष्ट रूप से वस्तु X का उत्पादन बढ़ेगा और वस्तु X का उत्पादन घटेगा तथा वही कीमत अनुपात दिया होने पर उत्पादन संभावना वक्र K_1L_1 के बिन्दु A_1 पर साम्य स्थापित होगा।

प्रो. मिशन ने रिब्जिन्स्की प्रमेय की निम्नलिखित बातों के आधार पर आलोचना की है–

(*i*) यदि एक साधन के साथ ही साथ उत्पादन के दूसरे साधन की पूर्ति भी बढ़ा दी जाए तो ऐसे स्पष्ट मात्रात्मक परिणाम प्राप्त होते।

(*ii*) इसके अतिरिक्त रिब्जिन्स्की प्रमेय के परिणाम को बहु-साधन मॉडल पर लागू करना कठिन है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

(Choose the Correct Option)

1. रिब्जिन्स्की सिद्धांत के अनुसार, दो देश जो परस्पर व्यापार करते हैं वे एक देश तक सीमित रहते हैं–

   (क) ज्यामितीय रूप में (ख) वैज्ञानिक रूप से (ग) सामाजिक रूप से (घ) व्यापारिक रूप से।

2. रिब्जिन्स्की के अनुसार, उत्पादन के दो साधन हैं–श्रम तथा पूँजी। ये दोनों साधन पूर्णतया हैं–

   (क) अविभाज्य एवं गतिशील (ख) विभाज्य एवं स्थिर (ग) अविभाज्य एवं स्थिर (घ) विभाज्य एवं गतिशील।

3. रिब्जिन्स्की के अनुसार, वस्तु एवं साधन कीमतें दोनों है–

   (क) स्थिर होती हैं (ख) गतिशील होती हैं (ग) गतिशील नहीं होती (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

4. रिब्जिन्स्की सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार, वस्तु तथा साधन बाजारों में कैसी प्रतियोगिता होती है–

   (क) सामान्य प्रतियोगिता (ख) पूर्ण प्रतियोगिता (ग) अपूर्ण प्रतियोगिता (घ)क,ख, ग तीनों गलत हैं।

5. रिब्जिन्स्की मान्यता के अनुसार, दोनों वस्तुओं के उत्पादन फलन होते हैं–

   (क) रेखीय समरूप (ख) वक्रीय समरूप (ग) रेखीय एवं वक्रीय दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

6.3 सारांश (Summary)

- हेक्सचर-ओहलिन का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि व्यापार करने वाले दो देशों में जिन दो वस्तुओं का व्यापार होता है उनका उत्पादन फलन भिन्न-भिन्न होता है, किन्तु दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उत्पादन फलन समान है।
- साधन गहनताओं से यह बात स्पष्ट करना सम्भव नहीं है कि कौन-सा देश, किस वस्तु का निर्यात करेगा। वास्तव में दोनों ही देश कपड़े का उत्पादन व निर्यात करने तथा खाद्यानों के आयात करने का प्रयास करेंगे। इस तरह, साधन कीमत समानीकरण सिद्धान्त दोनों देशों के बीच व्यापार के ढाँचे की व्याख्या करने में असफल रहता है।
- स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि वस्तु की कीमतों में हुए परिवर्तन का साधनों की निरपेक्ष वास्तविक आय (Absolute Real Income) पर क्या प्रभाव पड़ता है। अन्य शब्दों में स्टोप्लर-सेम्युलसन सिद्धान्त साधन-आय पर वस्तु की कीमतों में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव की जाँच करता है।
- अन्य शब्दों में,
- ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि व्यापार से न केवल स्वल्प साधन के सापेक्षिक अंश

नोट

की हानि होगी वरन् । जैसे ही देश उत्पादन की प्रथम स्थिति से आगे बढ़ता है अर्थात् Y की तुलना में X का उत्पादन बढ़ता है, पूँजी की सापेक्षिक कीमत में वृद्धि और श्रम की सापेक्षिक कीमत में ह्रास होता है।

- उक्त स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय का यह निष्कर्ष निकलता है कि
- रिब्जिन्स्की सिद्धान्त इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि दो-साधन दो-वस्तु अर्थव्यवस्थाओं में जब एक साधन की पूर्ति को स्थिर रखते हुए दूसरे साधन की पूर्ति बढ़ा दी जाती है तो इसका परिणाम यह होगा कि उस वस्तु का उत्पादन बढ़ जाएगा जो बढ़ाए गए साधन का गहनता से प्रयोग करता है तथा दूसरी वस्तु का उत्पादन घट जाएगा।
- इस तथ्य के आधार पर खुली अर्थव्यवस्था के सम्बंध में रिब्जिन्स्की ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "अब यदि माना जाए कि जिस साधन की मात्रा बढ़ी है उसका उपयोग करने वाली वस्तु निर्यात की मद है तो उसकी बाह्य व्यापार की शर्तें बिगड़ेंगी और इसके विपरीत यदि वह वस्तु आयात की मद है तो उसके व्यापार की शर्त में सुधार होगा।"

6.4 शब्दकोश (Keywords)

- विपरीत स्थिति में आना, पलटना, घूमना।
- जिसे प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा सके।
- लगाव न रखने वाला, तटस्थ।

6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. साधन गहनता उलटाव से आप क्या समझते हैं? विवेचन कीजिए।
2. एकल साधन गहनता उलटाव और बहुसाधन गहनता उलटाव में अन्तर स्पष्ट करते हुए प्रत्येक की व्याख्या करें।
3. स्टोप्लर-सेम्युलसन प्रमेय का विश्लेषण करें।
4. रिब्जिन्स्की प्रमेय की व्याख्या करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर इसके प्रभाव का विवेचन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. श्रम और पूँजी 2. समान 3. पूर्ण रोजगार 4. हैबरलर के अनुसार 5. स्टोप्लर-सेम्युलसन।

2. 1. (क) 2. (घ) 3. (क) 4. (ख) 5. (क)

6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–7: आन्तर औद्योगिक व्यापार के उद्भव के कारण एवं मापन तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर उनका प्रभाव (Causes of Emergence and Measurement of Intra Industry Trade and Its Impact on Developing Economics)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 आन्तरिक व्यापार अथवा आन्तर औद्योगिक व्यापार के उद्भव के कारण एवं मापन (Cause of Emergence and Measurement of Intra Regional Trade or Intra Industry Trade)

7.2 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर आन्तर औद्योगिक व्यापार तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव (Impact on Developing Economics of Intra Trade and International Trade)

7.3 सारांश (Summary)

7.4 शब्दकोश (Keywords)

7.4 अभ्यास प्रश्न (Review Question)

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आन्तर औद्योगिक व्यापार के उद्भव के कारण एवं मापन की व्याख्या करने में।
- विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर आन्तर औद्योगिक व्यापार तथा अंतराष्ट्रीय व्यापार के प्रभाव की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन युग में मनुष्य की आवश्यकताएं इतनी सीमित थीं कि मनुष्य एक प्रकार से स्वावलम्बी था अर्थात् वह स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता था, किन्तु जैसे-जैसे मनुष्य की आवयश्यकताएं बढ़ती गयीं, उसके लिए यह कठिन हो गया कि वह स्वयं के उत्पादन से अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। अब उसका ध्यान विशिष्टीकरण की ओर गया और उसने अनुभव किया कि यदि वह किसी एक ही वस्तु का उत्पादन करे तो अधिक उत्पादन कर सकता है। लेकिन प्रश्न यह था कि फिर वह अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे करेगा? मनुष्य ने इसका हल भी खोज लिया कि वह स्वयं निर्मित वस्तु का अन्य आवश्यक वस्तुओं से विनिमय करेगा और इस प्रकार अदल-बदल (Barter) की प्रथा का सूत्रपात हुआ जो व्यापार का प्रारम्भिक चरण था। प्रारम्भ में केवल वस्तुओं का

नोट

ही विनिमय किया जाता था तथा मुद्रा का प्रयोग नहीं होता था, किन्तु जैसे ही मुद्रा का प्रयोग आरम्भ हुआ, वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय प्रत्यक्ष न होकर मुद्रा के माध्यम से होने लगा। यही कारण है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था को मौद्रिक अर्थव्यवस्था (Money Economy) कहते हैं। इस व्यवस्था ने व्यापार को बहुत सरल तथा सुविधाजनक बना दिया है। पहले व्यापार एक देश की सीमा के भीतर ही होता था जो कालान्तर में देश की सीमाओं को पार कर विदेशी व्यापार में परिवर्तित हो गया।

7.1 आन्तरिक व्यापार अथवा आन्तर औद्योगिक व्यापार के उद्भव के कारण एवं मापन (Causes of Emergence and Measurement of Intra Regional Trade or Intra Industry trade)

यदि विस्तृत अर्थ में देखा जाये तो व्यापार के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक क्रियाओं का समावेश हो जाता है जिनका सम्बन्ध उत्पादित वस्तुओं के वितरण से होता है। वस्तुओं का वितरण इसलिए किया जाता कि उपभोग के लिए इनकी मांग की जाती है।

व्यापार को निम्नलिखित दो भागों में बांटा जा सकता है—

(*i*) अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार (Intra Industry)

(*ii*) अंतर्राष्ट्रीय अथवा विदेशी व्यापार (International of Foregin Trade)

(*i*) आन्तरिक व्यापार—आन्तरिक व्यापार से तात्पर्य उस व्यापार से है जो किसी एक देश की सीमा के भीतर विभिन्न स्थानों अथवा क्षेत्रों के बीच किया जाता है। जैसे यदि कोई मध्य प्रदेश का व्यापारी गुजरात के व्यापारी के साथ व्यापार करता है अथवा इन्दौर का व्यापारी जबलपुर के व्यापारी के साथ व्यापार करता है तो इसे आन्तरिक व्यापार कहेंगे। इसे गृह व्यापार (Home Trade) अथवा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार (Inter-regional Trade) भी कहते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **हेबरलर** के अनुसार, “गृह-व्यापार अथवा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का अर्थ साधारण तौर पर उस क्षेत्र के भीतर व्यापार है जिसकी समृद्धि में सम्बन्धित सरकार की अभिरुचि रहती है अथवा वह उस सरकार की सीमा में आता है।”[1]

अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार अथवा **आन्तरिक व्यापार** का सम्बन्ध ऐसे व्यापार से है जो किसी एक देश की सीमा के अन्दर एक ही देश के दो क्षेत्रों के बीच किया जाता है। इसके विपरीत **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** का सम्बन्ध ऐसे व्यापार से है जो विश्व के दो या दो से अधिक स्वतन्त्र राष्ट्रों के बीच किया जाता है। इन दोनों में मुख्य अन्तर देश की सीमा का है अर्थात् देश की सीमा के भीतर होने वाले व्यापार को आन्तरिक व्यापार तथा सीमा के बाहर होने वाले व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। **हैबरलर** के शब्दों में, “गृह व्यापार एवं विदेशी व्यापार की विभाजक रेखा एक देश की सीमा होती है। इस सीमा के अन्दर होने वाला व्यापार गृह व्यापार कहलाता है जबकि इस सीमा के बाहर विभिन्न देशों के बीच होने वाला व्यापार विदेशी व्यापार कहलाता है।” इन दोनों में भेद के आधार पर प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे. एस. मिल, आदि) ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो तुलनात्मक लागत सिद्धान्त (Theory of Comparative Costs) के नाम से विख्यात है। प्रो. ओहलि ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस विचार को गलत बताया और कहा कि अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई मौलिक भेद नहीं है। उनकी दृष्टि में **“अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की एक विशिष्ट दशा है।”**[2] इस प्रकार ओहलिन के विचार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए किसी पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। इस विरोधी विचारधारा के विश्लेषण से पूर्व अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समानता एवं असमानता के बिन्दुओं का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

---

1. “Home trade means simple trade within that area, the prosperity of which interests the government in question or is subject to it’s Jurisdiction.”

   —*Haberler G.V., The Theory of International Trade, p. 6.*

2. International trade is but a special case of international trade.

नोट

अन्तर्क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समानताएं (Similarities Between Interregional And International Trade)

इन दोनों में निम्न बिन्दुओं पर समानताएं दिखायी देती हैं–

(1) **विशिष्टीकरण और श्रमविभाजन**–आन्तरिक व्यापार में दो क्षेत्रों में जो व्यापार होता है वह विशिष्टीकरण का परिणाम है; जैसे, महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश को कपास बेचता है क्योंकि महाराष्ट्र में कपास पैदा करने की अनुकूल दशाएं हैं तथा उत्तर प्रदेश महाराष्ट्र को शक्कर बेचता है क्योंकि उत्तर प्रदेश में शक्कर उद्योग को विकसित होने की अनुकूल दशाएं हैं। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी दो देशों के बीच होने वाले व्यापार का आधार क्षेत्रीय विशिष्टीकरण होता है।

(2) **वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय**–दोनों प्रकार के व्यापार–आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय–में वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है। मुद्रा के चलन ने इस विनिमय को सरल एवं सुविधाजनक बना दिया है।

(3) **व्यापार के लिए दो पक्ष**–जिस प्रकार आन्तरिक व्यापार के दो पक्ष होते हैं उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी दो पक्ष होते हैं जो या तो उन दोनों देशों की सरकारें अथवा निजी व्यक्ति हो सकते हैं। सरकार द्वारा किये गये व्यापार का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य ही होता है तथा सरकार भी व्यापार के अन्तर्गत व्यापारियों की तरह कार्य करती है।

(4) **ऐच्छिक सौदा**–दो पक्षों के बीच होने वाला व्यापार प्राय: ऐच्छिक होता है। जिस प्रकार आन्तरिक व्यापार के अन्तर्गत दो पक्षों को व्यापार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता उसी प्रकार दो देशों को भी व्यापार करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। ये दो पक्ष तो उसी समय व्यापार करते हैं जब इससे दोनों पक्षों को लाभ होता है।

(5) **सामाजिक सम्बन्ध**–जब एक ही देश दूरस्थ क्षेत्रों में व्यापार होता है तो दोनों में एक-दूसरे के सामाजिक रीति-रिवाज और परम्पराओं का आदान-प्रदान होता है, जैसे गुजरात और प. बंगाल के बीच व्यापार होगा तो दोनों एक-दूसरे की संस्कृतियों से परिचित होंगे। इसी प्रकार जब दो देशों के बीच व्यापार होता है तो उसमें भी सामाजिक और सांस्कृतिक विचारों का आदान-प्रदान होता है।

अन्तर्क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की विभेदक विशेषताएँ (Distinguishing Features of Inter Regional And International Trade)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके पीछे अनेक कारण है जो आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में असमानताओं को प्रकट करते हैं तथा जिनसे यह ज्ञात होता है कि आन्तरिक व्यापार की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों का व्यवहार बिल्कुल अलग होता है। ये विभेदक कारण इस प्रकार हैं–

(1) **साधनों में गतिशीलता का अभाव** (Immobility of Factors)–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मतानुसार एक देश के भीतर एक उत्पादन-क्षेत्र से दूसरे उत्पादन-क्षेत्र में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में श्रम और पूंजी में गतिशीलता पायी जाती है, किन्तु दो विभिन्न देशों में श्रम और पूंजी में गतिशीलता का अभाव रहता है। दो देशों में श्रमिकों में इसलिए गतिशीलता नहीं पायी जाती क्योंकि उनमें रहन-सहन, सामाजिक रीति-रिवाज, खाने-पीने की आदतें, भाषा इत्यादि में अन्तर रहता है तथा प्रवासन कानून (Immigraiton Laws) भी इससे बाधक होते हैं। पूंजी में गतिशीलता के अभाव का कारण यह है कि दोनों देशों के कानूनों में अन्तर होता है तथा विदेशी में पूंजी सुरक्षित नहीं रह जाती। इसका परिणाम यह होता है कि एक देश में श्रम और पूंजी की गतिशीलता उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता स्थापित कर देती है जो देशों के बीच नहीं हो पाती। जैसे अहमदाबाद और बम्बई में मजदूरी की दरें समान रह सकती हैं, किन्तु अहमदाबाद और न्यूयार्क में यह समानता सम्भव नहीं है।

नोट

इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि एक देश में किसी वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति उसकी लागत के बराबर होने की रहती है। क्योंकि यदि कीमत, लागत से ऊंची रहती है तो उस उद्योग में, अन्य उद्योगों से साधनों का प्रवाह होता है जिससे वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है और कीमत घटकर लागत के बराबर हो जाती है, किन्तु दो देशों में साधनों में गतिशीलता के अभाव के कारण वस्तु की लागत और कीमत में विभिन्निता रह सकती है।

(2) **बाजारों की पृथकता** (Separate Markets)—आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में दूसरा अन्तर यह है कि दोनों के बाजारों में पृथकता पायी जाती है। एक देश के विभिन्न बाजारों में भाषा, रीति-रिवाज, आदत, नाप-तौल और रुचियों में वह भेद नहीं पाया जाता जो दो विदेशी बाजारों में रहता है। इस कारण विदेशी बाजार, देश के बाजार से पृथक् हो जाता है।

> *नोट्स* बाजारों की पृथक्ता के विषय में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी अन्तर विद्यमान रहते हैं अतः इन दोनों में पूर्ण अन्तर न होकर केवल मात्रा का अन्तर है।

(3) **समूह की भिन्नता** (Different Groups)—आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में तीसरा भेद यह है कि देश के भीतर होने वाला व्यापार समान लोगों के समूह के बीच होता है जबकि विदेशों से होने वाला व्यापार विभिन्न समूहों के बीच होता है। एक देश में आर्थिक-सामाजिक वातावरण में समानता लोगों में समान समूहों का निर्माण करती है जबकि दो विभिन्न देशों में उक्त क्षेत्र में असमानता असमान समूह निर्मित करती है। इसीलिए **फ्रेडरिक लिस्ट** कहते हैं कि "**आन्तरिक व्यापार हमारे बीच होता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हमारे और उनके बीच होता है।**"[1]

(4) **राजनीतिक इकाइयों की भिन्नता** (Difference in Political Units)—राष्ट्रीय अथवा आन्तरिक व्यापार एक देश के भीतर होता है जो राजनीतिक रूप से एक स्वतन्त्र एवं प्रभुता वाली इकाई होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि एक परतन्त्र देश के भीतर होने वाले व्यापार को आन्तरिक व्यापार नहीं कहेंगे। कहने का तात्पर्य इतना भर है कि वह सम्पूर्ण क्षेत्र एक सरकार के अधीन रहता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दो ऐसे देशों के बीच होता है जिनकी सरकारें अलग-अलग होती हैं। एक देश की सरकार विदेशी नागरिकों की तुलना में, अपने देश के नागरिकों के हितों और कल्याण का प्रमुखता देती है। यही कारण है कि कभी-कभी राष्ट्रीय हितों और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संघर्ष होता है तथा राष्ट्रीय हितों की रक्षा की जाती है, भले ही उससे विदेशी हितों की क्षति पहुंचती हो।

(5) **भिन्न राष्ट्रीय नीतियां और हस्तक्षेप** (Different National Pollicies and Intervention)—एक देश के आन्तरिक व्यापार, उद्योग, वाणिज्य और कर-निर्धारण सम्बन्धी कानून और नीतियां समान रहती हैं, किन्तु विभिन्न देशों के बीच ऐसी व्यापारिक नीतियों और कानूनों में काफी भेद होता है। एक देश के आन्तरिक व्यापार में सरकार प्रायः हस्तक्षेप नहीं करती लेकिन विदेशी व्यापार करते समय सरकार तट-कर नीति, अभ्यंश प्रणाली और विनिमय आदि सम्बन्धी कई प्रकार के हस्तक्षेप करती है। इससे कई प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है तथा मुक्त अथवा स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत लागू होने वाले मूल्य सिद्धान्त को, हम हस्तक्षेप वाली व्यापारिक नीतियों पर लागू नहीं किया जा सकता। भिन्न राष्ट्रीय नीतियों को आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कारण बताते हुए **प्रो. हैरड** कहते हैं कि "एक देश के नागरिकों के लिए राष्ट्रीय और स्थानीय कर प्रणाली, स्वास्थ्य, फैक्टरी संगठन, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी नियम एकसमान होते हैं तथा व्यापारिक कार्य-प्रणाली भी एक होती है।"[1] इस प्रकार सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं और लाभों के आधार पर दो देशों में वास्तविक लागत में अन्तर रह सकता है।

---

1. "Domestic trade is among us, international trade is between us and them."
—Quoted by Kindleberger, International Economies, p. 14

नोट

(6) **चलन प्रणाली में भिन्नता** (Difference in Cuurency Systme)—आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रमुख अन्तर यह होता है। कि जहां आन्तरिक व्यापार में एकसमान मुद्रा प्रणाली होती है। वहीं दो भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न चलन प्रणाली होती है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय और विनिमय की दर का प्रश्न उपस्थित होता है। उदाहरण के लिए, जब तमिलनाडु और मध्य प्रदेश में व्यापार होता है। तो विनिमय की इकाई रुपया ही होती है, किन्तु जब भारत और इंगलैण्ड के बीच व्यापार होता है तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पौण्ड और रुपये के बीच विनिमय की क्या दर हो? विभिन्न देश विनिमय के सम्बन्ध में अलग-अलग नीतियां अपनाते हैं जो घरेलू व्यापार और विदेशी व्यापार में असमानता को जन्म देती है।

(7) **भौगोलिक दूरी** (Geographical Distance)—कुछ लोग इस आधार पर भी आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापर में भेद करते हैं कि आन्तरिक व्यापार की दूरी कम होती है। जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अधिक दूरी होती है, किन्तु दोनों प्रकार के व्यापार में भेद करने का यह कोई शक्तिशाली तर्क नहीं है। यह सम्भव है कि कम दूरी होने पर भी व्यापार की प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हो एवं अधिक दूरी होने पर भी व्यापर, आन्तरिक हो। जैसे कलकत्ता और ढाका में होने वाला व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय होगा तथा कलकत्ता और बम्बई के बीच होने वाला व्यापार आन्तरिक होगा जबकि पहले की तुलना में दूसरे की दूरी अधिक है।

(8) **परिवहन की समस्या** (Problem of Transportation)—आन्तरिक व्यापार में परिवहन की समस्या कठिन नहीं होती क्योंकि देश के भीतर सरकार द्वारा इसकी व्यवस्था की जाती है तथा इसमें कोई व्यवधान भी उपस्थित नहीं होता, किन्तु विदेशों में होने वाला व्यापार प्राय: जल अथवा वायु मार्ग से ही होता है जिसमें लागत और जोखिम दोनों समस्याएं पैदा होती हैं। फिर, माल के परिवहन में कई प्रकार की राजनीतिक समस्याएं भी पैदा होती हैं। परिवहन के लिए यदि एक देश द्वारा, दूसरे देश की सीमा का प्रयोग किया जाता है तो उसकी पूर्व-अनुमति लेना आवश्यक है।

(9) **अन्तर्राष्ट्रीय भौद्रिक सहयोग की समस्या** (Problem of International Monetary Co-operation)—आन्तरिक व्यापार में मौद्रिक सहयोग की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि एकसमान मुद्रा प्रणाली होने से कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती, किन्तु जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है तो यह आवश्यक होता है कि विभिन्न देशों के मौद्रिक व्यवहार में समानता हो। उसके लिए विभिन्न मौद्रिक संस्थाओं का होना आवश्यक हो जाता है, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, इत्यादि।

(10) **जीवन-स्तर में भिन्नता** (Difference in the Standard of Living)—आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भिन्नता का एक आधार यह है कि आन्तरिक व्यापार के अन्तर्गत ऐसे उत्पादकों के बीच में वस्तुओं का विनिमय किया जाता है जिनके जीवन-स्तर में समानता होती है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ऐसे उत्पादकों के बीच वस्तुओं का विनिमय किया जाता है जिनके जीवन-स्तर में भिन्नता होती है। आन्तरिक व्यापार के विश्लेषण में यह मान्यता है कि एकसमान कार्य करने वाले लोगों में समान जीवन-स्तर की प्रवृत्ति होती है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस प्रकार की मान्यता नहीं रहती। इसके आधार पर **प्रो. हैरड** का कथन है कि "यह स्पष्ट है कि उक्त दो प्रकार के विनिमयों के व्यवहार और प्रकृति को निर्धारित करने वाले सिद्धान्तों को कुछ अर्थों में भिन्न होना चाहिए।"[2]

(11) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कुछ विशिष्ट समस्याएं** (Some Specific Problems)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कुछ विशिष्ट समस्याएं होती हैं; जैसे अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की समस्याएं, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों; जैसे यूरोपियन साझा बाजार इत्यादि का उद्भव, अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी का आवागमन, इत्यादि

1. "The citizens of one country are subject to the same system of national and local taxation to the same regulation for health, factory organisation, education and social insurance, the same commercial code." *– Harrod, International Economics, p. 7.*
2. "It is clear that principles which determine the course and nature of these two kinds of interchange must be in some respects different" *– Harrod, op. cit., p. 6.*

जो आन्तरिक व्यापार में कभी पैदा हो नहीं होती। उक्त समस्याओं का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में करने की आवश्यकता है तथा इसी सन्दर्भ में इनका हल भी खोजा जाना चाहिए।

क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता है? (Is There Need For A Separate Theory of International Trade?)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता के प्रश्न को लेकर अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का वर्ग अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अलग-अलग मानता है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त की वकालत करता है। इसके विपरीत **प्रो. ओहलिन** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की विशिष्ट दशा मानते हैं और मत व्यक्त करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए किसी पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। निष्कर्ष पर आने से पहले दोनों विचारधाराओं का विस्तृत अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

(1) **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण** (The Classical View)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों प्रमुख रूप से **एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे. एस. मिल**, आदि अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में मौलिक अन्तर होता है। इन अर्थशास्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया कि एक देश के भीतर श्रम और पूंजी में पूर्ण गतिशीलता पायी जाती है, किन्तु विभिन्न देशों के बीच श्रम और पूंजी में इस प्रकार की गतिशीलता नहीं पायी जाती। इस गतिशीलता के अभाव को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य आधार स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त, विभिन्न राष्ट्रीय नीतियां, विभिन्न राजनीतिक इकाइयां, चलन-मान में भिन्नता तथा भिन्न व्यापारिक नीतियां, जैसे तटकर, विनिमय नियन्त्रण, कोटा प्रणाली, आदि ऐसे तत्व हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को राष्ट्रीय या गृह व्यापार से पृथक् कर देते हैं। इस आधार पर उक्त अर्थशास्त्रियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि एक देश में वस्तुओं के विनिमय के लिए दो दशाएं लागू हहोती हैं वे अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय में लागू नहीं होती अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता है।

(2) **ओहलिन का दृष्टिकोण** (Ohlin's View)—स्वीडन के अर्थशास्त्री **प्रो. बर्टिल ओहलिन** ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस मत को चुनौती दी है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता है तथा इस मत का प्रतिपादन किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की कोई आवश्यकता नहीं है। आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समानता बताते हुए **ओहलिन** कहते हैं कि **"अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की केवल एक विशिष्ट दशा है।"**[1] इस आधार पर वे कहते हैं कि तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ही लागू नहीं होता वरन् सभी प्रकार के व्यापारों पर लागू होता है चाहे वह एक देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच हो अथवा दो भिन्न राष्ट्रों के बीच हो। ओहलिन के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की विभेदक विशेषताएं एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी दिखाई दे सकती हैं।

क्या आप जानते हैं श्रम एवं पूंजी की गतिशीलता का अभाव केवल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं पाया जाता बल्कि यह अभाव एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में पाया जा सकता है।

अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लागू करते हुए **ओहलिन** कहते हैं कि यदि **मार्शल** के मूल्य सिद्धान्त के **'समय तत्व'** (Time Elements) को **'स्थान तत्व'** (Space Element) में परिवर्तित कर दिया जाये तो इसे मूल्य सिद्धान्त को सरलता से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लागू किया जा सकता है। उनके मत में, **"अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए स्थान-तत्व में महत्वपूर्ण है और मूल्य-सिद्धान्त में इस पर पूर्ण विचार किया जाना चाहिए तथा इसका विस्तार एक से अधिक सम्बन्धित बाजारों पर किया जाना चाहिए।"**

आर्थिक जीवन में 'स्थान-तत्व' के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं—

1. "International trade is but a special case of inter-regional trade." — *B. Ohlin.*

नोट

(i) उत्पत्ति के साधन सामान्य रूप से कुछ स्थानों तक सीमित रहते हैं।

(ii) वस्तुओं के स्वतन्त्र प्रवाह में परिवहन लागत एवं अन्य बाधक तत्वों से गतिरोध पैदा होता है।

इस प्रकार गतिशीलता अथवा अगतिशीलता का प्रश्न स्थान से सम्बन्धित है। **ओहलिन** का मत है कि उत्पत्ति के साधन विशेष स्थानों में सीमित न होकर जिलों में स्थित रहते हैं। जिला होने के लिए निम्न दो शर्तों का होना जरूरी है–

(अ) जिलों में पर्याप्त भिन्नता होनी चाहिए, और

(ब) एक जिले के भीतर कम भिन्नता होनी चाहिए।

ओहलिन ने इन दो शर्तों को पूरा करने वाले जिले को एक क्षेत्र (Region) कहा है जिसका उनकी व्याख्या में महत्वपूर्ण स्थान है। इस आधार पर यदि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं कि उत्पत्ति के साधन एक क्षेत्र के भीतर गतिशीलता होते हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों में उनमें गतिशीलता का अभाव होता है तो हम क्षेत्रीय व्यापार का रूपान्तर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कर सकते हैं अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार **ओहलिन** का निष्कर्ष है कि "एक बाजार के सिद्धान्त के विकास के अन्तर्गत, सामान्य मूल्य सिद्धान्त के एकीकृत अंग के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त का समावेश किया जा सकता है और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है।"[1]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक् सिद्धान्त के विरोध में ओहलिन के तर्क (Ohlin's Arguments Against a Separate Theory of International Trade)

प्रो. ओहलिन ने प्रतिष्ठित विचारधारा अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्तों की आवश्यकता को औचित्यहीन माना और इस विचारधारा के विरोध में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किये–

(1) **तुलनात्मक लागत का सम्बन्ध**–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार तुलनात्मक लागत का अन्तर है, किन्तु **ओहलिन** का कथन है कि तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर ही लागू नहीं होता वरन् आन्तरिक व्यापार में भी लागू होता है। जब एक देश के दो क्षेत्रों में आपस में दो वस्तुओं का व्यापार होता है तो दोनों क्षेत्रों इन दोनों विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन इसलिए करते हैं क्योंकि उनकी तुलनात्मक लागत कम होती है। इसी तथ्य को दो व्यक्तियों पर लागू करते हुए स्वयं **डेविड रिकार्डो** (David Ricardo) कहते हैं कि "दो व्यक्ति जूता और टोप बनाने में वह अपने प्रतियोगी की तुलना में 20 प्रतिशत अधिक कुशल है जबकि जूता बनाने में $33\frac{1}{3}$ प्रतिशत अधिक कुशल है। क्या यह दोनों के हित में नहीं होगा कि श्रेष्ठ व्यक्ति केवल जूतों का उत्पादन करें तथा अकुशल व्यक्ति टोप बनाये।"[2] इस सन्दर्भ में **ओहलिन** का मत है कि "क्षेत्र एवं राष्ट्र एक-दूसरे के साथ विशिष्टीकरण और व्यापार उन्हीं कारणों से करते हैं जिनके कारण व्यक्ति विशिष्टीकरण और व्यापार करते हैं। कुछ व्यक्ति अपने विशिष्ट स्वभाव के कारण किसी कार्य के लिए दूसरों की तुलना में अधिक उपयुक्त होते हैं। एक व्यक्ति अच्छा बागवान हो सकता है, दूसरा अच्छा शिक्षक तथा तीसरा श्रेष्ठ डॉक्टर हो सकता है। बागवान अकुशल शिक्षक सिद्ध होगा तथा शिक्षक अयोग्य डॉक्टर सिद्ध होगा। इस प्रकार विशिष्टीकरण का लाभ स्पष्ट है। यहां तक कि यदि प्रत्येक व्यक्ति योग्यता में समाना होता तो भी विशिष्टीकरण लाभदायक होता है।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अपने विशुद्ध रूप में तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार पर भी लागू होता है। तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त उस हर मामले में लागू होगा जहां अगतिशीलता पायी जाती है चाहे वह दो विभिन्न देशों में हो अथवा एक देश के दो विभिन्न क्षेत्रों में हो। **पेरेटो** (Pareto) के अनुसार,

1. "The Development of the concept of the one market theory can include the theory of international trade as an integral part of the general price theory and that therefore there is no need for a saparate theory of international trade."

   – Harrod, International Economics, p. 7.

2. David Ricardo, *Principles of Political Economy* (Every man's Edition), *p. 83.*

नोट

"तुलनात्मक लागत का विचार केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की ही विशेषता नहीं है बल्कि इसे एक आर्थिक इकाई के अन्तर्गत रहने वाले व्यक्तियों पर भी लागू किया जा सकता है।" एजवर्थ (Edgeworth) के सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है।

(2) **श्रम और पूंजी की गतिशीलता का सम्बन्ध—ओहलिन** का कहना है कि उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का अभाव विभिन्न देशों में ही नहीं, एक देश क विभिन्न क्षेत्रों में भी पाया जाता है। **हेबरलर** के अनुसार, "एक देश की सीमाओं के भीतर भी वास्तविक पूंजी को एक उत्पादन-क्षेत्र से दूसरे उत्पादन-क्षेत्र तक तत्परता से स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता और एक ही देश के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक पूंजीगत वस्तुओं के परिवहन की लागत कभी-कभी दो देशों के बीच ही परिवहन की लागत से अधिक होती है।"[1] **जे. ई. केयरन्स** (J. E. Cairnes) के अनुसार, **"यह कहना सत्य नहीं है कि उत्पत्ति के साधन देश में पूर्ण गतिशील तथा विभिन्न देशों में पूर्ण अगतिशील होते हैं।"** उन्होंने गैर-प्रतियोगी समूहों (Non-Competitive Group) की व्याख्या की और बताया कि जिस प्रकार दो देशों में गैर-प्रतियोगी समूह होते हैं अर्थात् इनमें आपस में कोई प्रतियोगिता नहीं होती उसी प्रकार एक देश में भी ऐसे गैर-प्रतियोगी समूह होते हैं जिनमें गतिशीलता नहीं होती। (उदाहरण के लिए, खेतिहर मजूदर अपने स्थानों को छोड़कर खानों अथवा कारखानों में काम करना पसन्द नहीं करते अर्थात् इन दोनों स्थानों में श्रमिकों के दो समूह रहते हैं जिनमें प्रतियोगिता नहीं होती। इसके अतिरिक्त, एक ही देशे में मजदूरी के अलग-अलग स्तर तथा ब्याज की दरों में भिन्नता का पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि एक ही देश में श्रम और पूंजी में गतिशीलता नहीं पायी जाती। यह भी कहा जा सकता है कि एक देश में भाषा, जाति, जलवायु और सामाजिक रीति-रिवाजों में इतनी भिन्नता रहती है कि उसके कारण श्रमिकों में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। मध्य प्रदेश का श्रमिक, दक्षिण भारत की और इन्हीं कारणों से गतिशील नहीं हो पाता क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों में भारी भिन्नता है।)

आगे चलकर **प्रो. ओहलिन** ने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि दो देशों में श्रम और पूंजी में गतिशीलता पायी जाती है अर्थात् उन्होंने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस मत का खण्डन किया कि दो देशों में श्रम और पूंजी अगतिशील होते हैं। **प्रो. विलियम्स** (J. H. Williams) के अनुसार, "कभी-कभी देश की सीमाओं के बाहर बड़े पैमाने पर उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता पायी जाती है।" प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी इस सत्य को स्वीकार किया। **एडम स्मिथ** ने जनसंख्या के उत्प्रवासन (Emigration) के महत्व को प्रतिपादित किया तथा **जे. एस. मिल** ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि देशों में पूंजी अधिक गतिशील और सार्वभौमिक हो रही है।

इस प्रकार जहां तक एक ही देश में श्रम और पूंजी गतिशील नहीं हो पाते, वहीं दो देशों में श्रम और पूंजी में अगतिशीलता पायी जाती है। **ओहलिन** के अनुसार, "देशों के बीच साधनों की गतिहीनता केवल सापेक्षिक है क्योंकि अनुकूल अवसरों पर यही साधन अन्य देशों को गतिशील हो जाते हैं" अतः प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित साधन गतिशीलता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है।

(3) **विभिन्न मुद्राओं के चलन का सम्बन्ध—**प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक् सिद्धान्त का औचित्य इसलिए प्रतिपादित किया क्योंकि दो देशों में विभिन्न चलन प्रणाली रहती है तथा जब उनमें व्यापार होता है तो विनिमय दर का प्रश्न उपस्थित होता है जो कि एक देश के भीतर नहीं होता। परन्तु **ओहलिन** ने इस मत को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार उक्त प्रश्न पृथक् सिद्धान्त के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि दो देशों के बीच विनिमय की दर स्वतन्त्र न होकर देश की आन्तरिक क्रय-शक्ति से प्रभावित होती है और

---

1. "Even within the bounds of a single country, real capital cannot readily be transferred from one line of production to another and further the cost of transportation of capital goods from one part of a country to another is sometimes much greater than from one country to another." *– Haberler, The Theory of International Trade, p. 5.*

नोट

फिर एक ही राष्ट्र में दो प्रकार की चलन मुद्रा पाये जाने के उदाहरण मौजूद हैं जैसे स्वतन्त्रता से पूर्व हैदराबाद रियासत की चलन प्रणाली शेष भारत से भिन्न थी तथा इन मुद्राओं में विनिमय भी होता था। यही कारण है कि बहुत-से अर्थशास्त्रियों ने विदेशी विनिमय की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय एवं आन्तरिक व्यापार के बीच भेद का पर्याप्त आधार नहीं माना। **ओहलिन** के अनुसार, "**सर्वाधिक महत्वपूर्ण भेद राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में करने का नहीं है वरन् एक बाजार के लिए मूल्य के सिद्धान्त एवं विभिन्न बाजारों के लिए मूल्य के सिद्धान्त का है।**"[1]

(4) **आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय दोनों अदल-बदल ही हैं**–वस्तु विनिमय के आधार पर भी आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भेद करना उचित नहीं है क्योंकि दोनों प्रकार के व्यापारों में वस्तु विनिमय का स्वरूप पाया जाता है। यह बात दूसरी है कि मुद्रा की उपस्थिति ने विनिमय को सुविधाजनक और सरल बना दिया है। **प्रो. केनन** (E. Canon) के अनुसार, "हमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में यह जोर देने की मूर्खता छोड़ देनी चाहिए कि वह वास्तव में वस्तु-विनिमय है। यदि मुद्रा को बाहर कर दिया जाये तो समस्त व्यापार वस्तु-विनिमय ही रह जाता है। मुद्रा का हस्तक्षेप वस्तु-विनिमय को क्रय-विक्रय में परिणत कर देता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हम एक मुद्रा के स्थान पर दो मुद्राओं का प्रयोग करते हैं।"

निष्कर्ष

प्रो. ओहलिन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक् सिद्धान्त के विरोध में जो तर्क दिये हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि जो सिद्धान्त आन्तरिक या अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार पर लागू होते हैं, वही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी लागू होते हैं अत: इसके लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। इसी आधार पर **ओहलिन** ने अपनी पुस्तक '*Inter-regional and International Trade*' के परिशिष्टांक 3 में प्रतिष्टित अर्थशास्त्रियों के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की कटु आलोचना की है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विभिन्न मुल्य सिद्धान्त का विरोध करते हुए **ओहलिन** कहते हैं कि जो मूल्य सम्बन्धी सिद्धान्त एक देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच व्यापार का विश्लेषण करता है वही सिद्धान्त विभिन्न देशों के बीच व्यापार की भी व्यवस्था करता है। अत: मूल्य का सामान्य सन्तुलन का सिद्धान्त (General Equilibrium Theory of Price) जो देश के भीतर व्यापार की व्याख्या करता है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को समझाने के लिए भी पर्याप्त है। **हैबरलर** के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त को सामान्य सन्तुलन सिद्धान्त का एक विशिष्ट प्रयोग समझना चाहिए।"

ओहलिन ने राजनीतिक सीमाओं को भी व्यापार का आधार स्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार विभिन्न देश वस्तुत: दो क्षेत्रों के समान हैं जो राजनीतिक सीमाओं, तटकर बाधाओं, भाषा, रीति-रिवाज, इत्यादि के आधार पर पृथक् किये जाते हैं, किन्तु ये बाधाएं स्थायी नहीं रहती इतिहास बताता है कि समय-समय पर देश की राजनीतिक सीमाओं में परिवर्तन हुआ है। भारत से बर्मा और पाकिस्तान के पृथक् हो जाने के बाद हमारे देश की सीमा बदल गयी है। देशों के बीच हटकर या प्रशुल्क बाधाएं भी हटा दी गयी हैं जैसे यूरोपियन साझा बाजार के देशों के बीच हटकर या प्रशुल्क बाधाएं नहीं हैं। इस व्याख्या के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, एक प्रकार से अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार ही है।

यद्यपि **ओहलिन** ने क्षेत्र और देश मे समानता स्थापित की है, किन्तु निम्न दो बातें में क्षेत्र और राष्ट्र में भिन्नता हो सकती है–

(*i*) आर्थिक दृष्टि से समान दो क्षेत्र, राजनीतिक दृष्टि से दो पृथक् देश हो सकते हैं। जैसे विभाजन के पश्चात पश्चिमी बंगाल भारत देश का अंग है जबकि पूर्वी बंगाल पाकिस्तान के अधीन हो गया जो अब बंगलादेश है। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि ने इन दोनों क्षेत्रों में काफी समानता है। **ओहलिन** ने यह स्पष्ट किया है कि ऐसे दो समान क्षेत्र वाले देशों में राजनीतिक सीमाओं की अपेक्षा, पारस्परिक-निर्भरता और आर्थिक हितों की अधिक समीपता होती है।

1. "The most important distinction to be made is not between the theory of international Commerce and that of national commerce but between a theory of prices for a single market and a theory.

(*ii*) दूसरी भिन्नता के आधार पर एक बड़े देश में कई क्षेत्र हो सकते हैं जिनमें उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति में भिन्नता रहती है। जैसे भारत सरीखे विशाल देश में पंजाब, महाराष्ट्र, बिहार, तमिलनाडु, आदि कई क्षेत्र हैं जिनमें बहुत असमानताएं हैं।

क्षेत्र और देश में उक्त भिन्नता को स्वीकार करते हुए ही ओहलिन ने कहा है कि "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की केवल एक विशिष्ट दशा है" इस प्रकार कार्यप्रणाली के आधार (Methodological ground) पर ओहलिन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता को अस्वीकार कर दिया लेकिन, चूंकि उन्होंने इसे एक विशिष्ट दशा माना है अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के रूप व्यापार का अध्ययन उसी तरह विशेष रूप में किया जाना चाहिए जिस प्रकार अर्थशास्त्र में अनेक शाखाओं का विशेष अध्ययन किया जाता है; जैसे मौद्रिक अर्थशास्त्र, राजस्व, औद्योगिक अर्थशास्त्र, इत्यादि।

(*ii*) अन्तार्ष्ट्रीय व्यापार—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ उस व्यापार से है जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक राष्ट्रों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि भारत का व्यापार ब्रिटेन अथवा अमरीका के साथ किया जाता है। उदारहण के लिए, यदि भारत का व्यापार ब्रिटेन अथवा अमरीका के साथ किया जाता है तो यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा। इसे बाह्य व्यापार (External Trade) अथवा विदेशी व्यापार (Foregin Trade) भी कहते हैं।

गृह व्यापार और विदेशी व्यापार की विभाजन रेखा एक देश की सीमा होती है। उस सीमा के भीतर होने वाला व्यापार गृह व्यापार होता है तथा सीमा के बाहर विभिन्न देशों के साथ किया जाने वाला व्यापार विदेशी व्यापार कहलाता है।"

वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के लिए आवश्यक हो गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राय: सब देशों ने भौगोलिक विशिष्टीकरण को अपना लिया है क्योंकि तकनीकी विकास और वैज्ञानिक आविष्कार के कारण विशिष्टकीरण का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है। इसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है जिनमें वह सर्वाधिक कुशल है और जिनकी तुलनात्मक लागत कम है अर्थात् वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है तो उसे अपनी वस्तुओं का निर्यात करना होगा तथा विदेशों से आवश्यक वस्तुओं का आयात करना होगा। **एल्सवर्थ** का तो यहां तक कहना है कि बहुत-से देशों के लिए तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जीवन अथवा मृत्यु का प्रश्न बन गया है। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं में प्रमुख हैं—

(1) **श्रम-विभाजन**—देशों में बढ़ते हुए श्रम-विभाजन के कारण विदेशी व्यापार आवश्यक हो गया है क्योंकि जो देश कुछ विशेष वस्तुओं का उत्पादन करता है, वह उनका निर्यात करना चाहता है तथा उसके बदले अपने लिए आवश्यक वस्तुओं को विदेशी से आयात करना चाहता है। यह विदेशी व्यापार के माध्यम से ही सम्भव है।

(2) **कच्चे माल की उपलब्धि**—कुछ देशों के पास मशीनें और तकनीकी ज्ञान तो उपलब्ध होता है, किन्तु औद्योगिक उत्पादन करने के लिए पर्याप्त कच्चा माल नहीं होता। यदि वे उत्पादन करना चाहते हैं तो विदेशों से कच्चा माल आयात करना आवश्यक है जो विदेशी व्यापार से ही सम्भव है। ब्रिटेन ने विदेशी व्यापार की सहायता से ही विदेशी से पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल आयात कर औद्योगिक उत्पादन का नेतृत्व किया है।

(3) **प्राकृतिक साधनों का पूर्ण प्रयोग**—विदेशी व्यापार इसलिए भी आवश्यक है कि देश के प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग किया जा सके। इन साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग तभी सम्भव है जब अधिकतम उत्पादन हो तथा अधिकतम उत्पादन का औचित्य उसी समय है जब अतिरिक्त माल का निर्यात किया जा सके। विदेशी व्यापार के माध्यम से प्रचुर प्राकृतिक साधनों का निर्यात करना सम्भव होता है तथा देश में सीमित पूर्ति वाले प्राकृतिक एवं अन्य उत्पत्ति साधनों का आयात करना आसाना हो जाता है।

(4) **विदेशी प्रतियोगिता के लिए**—विदेशी व्यापार इसलिए भी आवश्यक है कि देश के उद्योग विदेशी उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा कर सकें। प्रतियोगिता के अभाव में यह सम्भव है कि देश के उद्योगों में एकाधिकार की प्रवृत्ति पनपने लगे जो कि देश के लिए घातक है। यह विवादास्पद है कि आर्थिक विकास की किस अवस्था में देश के उद्योगों

नोट

को विदेशी उद्योगों से प्रतियोगिता करने देना चाहिए। **फ्रेडरिक लिस्ट** के अनुसार जब तक देश के उद्योग पूर्णरूप से विकसित नहीं हो जाते, उन्हें विदेशों से प्रतियोगिता नहीं करने देना चाहिए।

(5) **उपभोक्ताओं के लिए वस्तुओं की उपलब्धि**–अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसलिए भी आवश्यक है कि उपभोक्ताओं का विश्व के बाजार से आवश्यक वस्तुएं सस्ते दामों पर उपलब्ध हो सकें। विदेशी व्यापार ने उपभोक्ताओं की रुचियों को विविध एवं सम्पन्न बना दिया है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक कारण हैं जिससे विदेशी व्यापार आवश्यक हो गया है। इनकी विस्तार से चर्चा विदेशी व्यापार के लाभ के अन्तर्गत की जायेगी क्योंकि इनका सम्बन्ध लाभों से अधिक है। **हैरोड** के विचार में "जिस प्रकार श्रम-विभाजन के लिए विनिमय आवश्यक होता है, उसी प्रकार जब श्रम-विभाजन देश की सीमा को लांघ जाता है तो विदेशी व्यापार आवश्यक हो जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन को आवश्यक परिणाम है।"[1]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व (Importance of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है तथा इसी कारण देशों में आपसी सहयोग भी बढ़ रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समान महत्व होता है क्योंकि जिस देश में कुल उत्पादन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भाग अधिक होता है उसके लिए विदेशी व्यापार का महत्व अधिक होता है तथा जहां विदेशी व्यापार का भाग कम होता है, वहां उसका महत्व कम होता है। फिर भी कुछ न कुछ महत्व तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रत्येक देश के लिए होता ही है।

किसी देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आर्थिक महत्व, आन्तरिक व्यापार के समान ही है अर्थात् जीवन-स्तर में वृद्धि करना। सत्य तो यह है कि विदेशी व्यापार के अभाव में न तो अधिक लोग इतनी प्रसन्नता से जीवनयापन कर सकते थे, न इतनी अधिक विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते थे और न इतना उच्च जीवन-स्तर बिता सकते थे जितना कि आज सम्भव हो सका है। यदि विदेशी व्यापार न होता तो संयुक्त राज्य अमेरीका के लोगों को अनेक वस्तुओं; जैसे चाय. कॉफी, चाकलेट, केला, इत्यादि के उपभोग से वंचित रहना पड़ता। विदेशी व्यापार का स्पष्ट महत्व तो यह है कि इसके माध्यम से विदेशों से ऐसी वस्तुओं का आयाज किया जा सकता है जिन्हें देश में पैदा नहीं किया जा सकता अथवा जिन वस्तुओं का उत्पादन देश में ऊंची लागत पर किया जा सकता है, उन्हें कम लागत पर विदेशों से आयात कर सकते हैं। **प्रो. एल्सवर्थ** के शब्दों में, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक लोगों के रहने, अधिक विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं उच्च जीवन-स्तर को सम्भव बनाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अभाव में सम्भव नहीं होता।"[2]

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व केवल सस्ती और विविध वस्तुओं को उपलब्ध कराने तक ही सीमित नहीं है वरन् देश में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। बहुत-से अर्थशास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं कि बीसवीं सदी का आर्थिक विकास मुख्यत: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण सम्भव हो सका है। यदि यूरोप में विदेशी व्यापार के माध्यम से विदेशों से खाद्यान्न और कच्चे माल का आयात सम्भव न हुआ होता तो वहां जो औद्योगिक क्रांति हुई, वह या तो होती ही नहीं या बहुत ही सीमित रही होती। **प्रो. मियर** (Meier J. M.) के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने ऐसे अनेक देशों के विकास को आगे बढ़ाने का कार्य किया है जो आज विश्व के सर्वाधिक समृद्ध देश समझे जाते हैं। ब्रिटेन का आर्थिक विकास ऊनी तथा सूती कपड़ों के निर्यात के कारण, स्वीडन का लकड़ी के व्यापार से, डेनमार्क का डेयरी के निर्यात द्वारा तथा जापान का रेशम के व्यापार से हुआ है.......प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले

---

1 "As exchange in general is necessitated by the division of labour, so foreign trade appears when the division of Labour is pushed beyond national fornitiers. It is the necessary consequence of an International Division of Labour."

—Harrod, International Economics, p. 7.

2 "International trade permits more people to live, to gratify more varied tastes and to enjoy a higher standard of living than would be possible in it's absence."

—Ellsworth, The International Economy, New York, 1958, p. 3.

नोट

देशों में भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है।" इसी सन्दर्भ में पश्चिमी यूरोप का उदाहरण देते हुए **एल्सवर्थ** कहते हैं कि "मालाया के रबर तथा मध्यपूर्व के पेट्रोल के बिना, पश्चिमी यूरोप के देशों की कारें तथा यात्री बसें गतिहीन हो जातीं।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. किसने कहा है कि अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई मौलिक भेद नहीं है—
   (क) एडम स्मिथ (ख) रिकार्डो (ग) प्रो. ओहलिन (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. आन्तरिक व्यापार के कितने पक्ष होते हैं—
   (क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. "आन्तरिक व्यापार हमारे बीच होता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हमारे और उनके बीच होता है।" यह कथन है—
   (क) जे. एस. मिल (ख) फ्रेडरिक लिस्ट (ग) रिकार्डो (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य आधार है—
   (क) पूँजी की गतिशीलता (ख) अंतर्राष्ट्रीय तरलता
   (ग) अंतर्राष्ट्रीय सहयोग (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. तुलनात्मक लागत सिद्धांत लागू होता है—
   (क) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर (ख) अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार पर
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
6. वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है।
   (क) श्रम की गतिशीलता (ख) पूँजी की गतिशीलता
   (ग) श्रम-विभाजन (घ) इनमें से कोई नहीं।
7. उपभोक्ता की रूचियों को विविध और सम्पन्न बना दिया है—
   (क) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने (ख) अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार ने
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

7.2 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं पर अन्तर औद्योगिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव (Impact on Developing Economics of Intra Trade and International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित, नव प्रतिष्ठित हेक्सचर-ओहलिन, सैमुअलसन तथा अन्य सिद्धान्त प्रायः दो देशों के मध्य अंतर-उद्योग व्यापार (Inter-Industry) की व्याख्या करते हैं। अंतर-उद्योग व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वह स्थिति है जहां एक उद्योग की वस्तु का एक भिन्न उद्योग की वस्तु के साथ विनिमय किया जाता है; जैसे भारतीय जूते का जापानी मशीनरी के साथ व्यापार का होना। अंतर-उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है। दूसरी और आंतर-उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत एक ही उद्योग में भेदीकृत वस्तुओं का व्यापार होता है जो समान (Similar) तो होती हैं, परन्तु समरूप (Indentical) नहीं होती; जैसे जापानी कारों का अमेरिकी कारों के साथ व्यापार और इसी तरह साबुन, घड़ियां, जूते तथा अन्य वस्तुओं का देशों के बीच व्यापार है। जब वस्तु विभेदीकरण के साथ-साथ पर्याप्त लागत अंतरों के साथ उत्पादन करते हैं तथा सभी प्रकार की भिन्न वस्तुओं का विनिमय करते है, तब यह आंतर-उद्योग व्यापार होता है, परन्तु जब एक ही उद्योग में बिना पर्याप्त लागत अन्तरों के देश विशिष्टकरण और व्यापार करते हैं तो यह आंतर-उद्योग व्यापार है।

नोट

आंतर-उद्योग व्यापार विशिष्टीकरण और बढ़ रहे श्रम-विभाजन के कारण होता है जो बाजार के आकार पर निर्भर करता है। तीव्र आर्थिक विकास और विश्व अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीय के साथ आंतर-उद्योग व्यापार मध्यवर्ती और अन्तिम वस्तुओं में फैल गया हैं। यह ऊंची परिवहन लागतों के कारण सीमा-व्यापार (Border Trade) के रूप में तथा फलों एवं सब्जियों की ऊंची भंडारण लागतों के कारण मौसमी व्यापार के रूप में देशों के बीच विस्तृत हुआ है।

आंतर-उद्योग व्यापार इसलिए होता है क्योंकि देशी एवं विदेशी फर्मों की एकसमान वस्तु के उत्पादन मे एकाधिकार रहता है तो व्यापार होने से प्रतियोगिता होती है जिससे दोनों फर्मों के उत्पाद की कीमतें कम हो जाती हैं और लाभ की सीमा घट जाती हैं। इसके फलस्वरूप एकाधिकारी फर्मों को हानि होती है, परन्तु दोनों देशों के उपभोक्ताओं को लाभ होता है।

आंतर-उद्योग व्यापार के निम्नलिखित लाभ है–

(1) ऐसा व्यापार दोनों देशों में बहुत किस्म की वस्तुएं उपलब्ध कराता है। व्यापार का विस्तार होने से उत्पादकों को बड़े पैमाने की मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होते हैं जिसमें वस्तुओं की लागतें एवं कीमतें कम हो जाती है। दोनों देशों के उपभोक्ताओं को सस्ती और गुणवत्ता वाली वस्तुएं उपलब्ध होती हैं, परन्तु लाभ मार्जिन बहुत घट जाने से कुछ उत्पादक बन्द कर उद्योग को छोड़ जाते हैं।

(2) वस्तु विभेदीकरण से एक छोटा देश पैमाने की मितव्ययिताओं और विशिष्टीकरण द्वारा एक बड़े देश से कम कीमत पर वस्तुएं बेच सकता है और इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ प्राप्त कर सकता है।

(3) आंतर-उद्योग व्यापार समान साधन सम्पन्नताओं तथा समान आकार के दो देशों के बीच व्यापार की मात्रा मे वृद्धि करता है।

(4) विभेदीकृत वस्तुओं पर आधारित व्यापार उत्पादन लागतों को कम करने के लिए विभिन्न देशों में पुर्जो के उत्पादन और उनके जुटाने में वृद्धि करता है। इससे बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा पुर्जो के व्यापार में वृद्धि हुई है।

आंतर-उद्योग व्यापार के सम्बन्ध में **बो सोडर्स्टेन** (Bo Sodersten) ने इंगित किया है कि, "**आंतर-व्यापार की विवेचनाओं में विशेष रूप से समस्त आ आंशिक वस्तु विभेदीकरण, पैमाने की मितव्ययिताएं, एकाधिकारात्मक अथवा अल्पाधिकारात्मक व्यवहार, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कार्यकरण आदि सम्मिलित होते हैं।**

विश्व की अर्थव्यवस्था पर व्यापार के विभिन्न प्रभाव होते हैं। यद्यपि कुछ प्रभावों का अध्ययन हम विदेशी व्यापार के लाभों के अन्तर्गत कर चुके हैं, किन्तु इसके कुछ प्रभाव ऐसे हैं जिनका पृथक् रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए। मुख्य प्रभाव निम्न प्रकार है–

(1) उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता (Equalisation of Factor Prices)–जब विदेशी व्यापार होता है तब विभिन्न देशों में उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता की प्रवृत्ति को लेकर अर्थशास्त्रियों की विचारधारा में अन्तर है। कुछ अर्थशास्त्री उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में पूर्ण समानता की प्रवृत्ति को व्यक्त करते हैं तो कुद आंशिक समानता की प्रवृत्ति को। **प्रो. ओहलिन** का मत है कि स्वतन्त्र व्यापार से साधनों की कीमतों में पूर्ण समानता स्थापित नहीं होती। इसके विपरीत, **सेमुअलसन** का मत है कि कुछ विशेष मान्यताओं के अन्तर्गत व्यापार करने वाले दोनों देशों में वास्तविक साधनों की कीमत बिल्कुल समान होने की प्रवृत्ति रहती है। ये मान्यताएं इस प्रकार हैं–

(*i*) केवल दो देश हैं तथा प्रत्येक देश दो वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है।

(*ii*) प्रत्येक वस्तु का उत्पादन दो साधनों की सहायता से किया जा रहा है तथा प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत है।

(*iii*) यदि केवल किसी एक साधन में वृद्धि की जाती है, तो उसकी सीमानत उत्पादकता गिरती है।

(*iv*) दोनों देशों में दोनों साधन गुणों में समान हैं।

(*v*) दोनों देशों में वस्तुओं की पूर्ण गतिशीलता है, और

(*vi*) प्रत्येक देश दोनों वस्तुओं की कुछ न कुछ मात्रा का उत्पादन करता है।

नोट

इन मान्यताओं के आधार पर साधनों की कीमतों में समानता को एक उदाहरण से समझाया जा सकता है—दो देश हैं A और B तथा दो साधन हैं श्रम और भूमि। देश A के पास श्रम की मात्रा ज्यादा है तथा देश B के पास भूमि ज्यादा है। दानों देशों में व्यापार होने के पहले देश A में श्रम की कीमत तुलनात्मक रूप से कम होगी तथा भूमि की कीमत अधिक होगी। देश B में ठीक इसके विपरीत स्थिति होगी। अब दोनों देशों में व्यापार होने से देश A में उस वस्तु के उत्पादन का विशिष्टीकरण होगा जिसमें अधिक श्रम और कम भूमि की मांग होगी (जैसी कपड़ा) तथा देश B में उस वस्तु का उत्पादन होगा जिसमें अधिक भूमि तथा कम श्रम की मांग होगी (जैसे गेहूं)। देश A में कपड़ें के उत्पादन का विशिष्टीकरण होगा तथा गेहूं के उत्पादन मे लगे साधनों को कपड़े के उत्पादन की और प्रवाहित किया जायेगा। A में कम भूमि तथा अधिक श्रम की मांग होगी इसके अन्तर्गत देश देश A को उस अनुपात में सामंजस्य (Readjustment) करना होगा जिसमें दोनों उद्योगों में श्रम और भूमि विनियोजित है ताकि दोनों साधनों के उपयोग को अधिकतम किया जा सके। सन्तुलन की स्थिति में दोनों उद्योगों में श्रम और भूमि की सीमान्त उत्पादकता का अनुपात तथा उनकी कीमतें समान रहनी चाहिए तथा कपड़े और गेहूं की कीमतों के अनुपात के बराबर होनी चाहिए। विदेशी व्यापार की स्थिति दोनों उद्योगों में सन्तुलन की स्थिति पैदा कर देती है। यही प्रक्रिया देश B में भी होती है जिसके फलस्वरूप दोनों देशों में श्रम और भूमि की कीमतों का अनुपात एकसमान हो जाता है।

यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उक्त उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में दो देशों में समानता सदैव स्थापित नहीं हो पाती क्योंकि ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार ही समाप्त होने लगता है।

(2) वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में समानता (Equalisation of the Prices of Commodities and Services)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव यह भी होता है कि विभिन्न देशों में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों मे समानता स्थापित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह उसी समय सम्भव है जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे पूर्ण प्रतियोगिता हो तथा आयात-निर्यात मे कोई परिवहन लागत न लगती हो, किन्तु वास्तविक जगत में विभिन्न देशों के बीच मे वस्तुओं का आवागमन बिना लागत के सम्भव नहीं होता। परिवहन व्यय के साथ बीमा शुल्क और तट कर भी लगता है और फिर विभिन्न देशों में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाएं विद्यमान रहती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दो देशों के बीच स्थायी तौर पर वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में समानता स्थापित नहीं हो पाती। उनमें इतना अन्तर तो होता ही है जितना व्यय परिवहन लागत, सीमाकर और बीमा शुल्क, इत्यादि में होता है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का साधन मांग-पूर्ति पर प्रभाव (Effect of Trade on Factor's Demand & Supply)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश उन उद्योगों में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है जिसमें देश में उपलब्ध प्रचुर साधनों का प्रयोग किया जाता है। अत: जो साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, उनकी मांग बढ़ जाती है एवं सीमित साधनों की मांग घटने लगती है। फलस्वरूप प्रचुर साधनों की कीमतें बढ़ने लगती हैं और सीमित साधनों की कीमतें घटने लगती हैं। कीमतों में वृद्धि होने से प्रचुर साधनों की पूर्ति बढ़ने लगती है तथा कीमतें घटने से सीमित साधनों की पूर्ति घटती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव यह होता है कि प्रचुर साधनों की मांग बढ़ती है, और सीमित साधनों की मांग घटती है जिससे इन दोनों साधनों के बीच का अन्तर और बढ़ता है तथा इसी प्रकृति के व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति की लोच जितनी अधिक होती है, विभिन्न देशों में उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता की प्रवृत्ति का उतना ही अभाव रहता है। इससे व्यापार एवं उसकी मात्रा को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) श्रम और पूंजी में गुणात्मक सुधार (Qualitative Improvement In Labour and Capital)—विदेशी व्यापार में विशिष्टीकरण होता है तथा विशिष्टीकरण से श्रम और पूंजी में गुणात्मक सुधार होता है जो पुन: विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन देता है। **प्रो. ओहलिन** के अनुसार, "व्यापार लोगों के गुणों में परिवर्तन ला देता है, उन्हें नयी वस्तुओं के उपभोग और पुरानी वस्तुओं को नये तरीके से प्रयोग करने की शिक्षा देता है। तकनीकी ज्ञान मुख्य रूप से विशिष्टीकरण का परिणाम है जिसे व्यापार ने सम्भव बनाया है। व्यापार से न केवल तकनीकी श्रम का वरन् कुशल और अकुशल श्रम का स्तर भी बदलता है।"[1] इस प्रकार व्यापार से श्रम और पूंजी के प्रयोग के तरीकों में परिवर्तन होता है जिससे इनकी कुशलता में वृद्धि होती है।

नोट

(5) कुल उत्पादन में वृद्धि (Increase in The Total Production)—विदेशी व्यापार का यह प्रभाव भी होता है कि कुल उत्पादन में वृद्धि हो जाती है। एक निश्चित समय में उत्पत्ति के साधनों का कुल मूल्य उन वस्तुओं और सेवाओं के बराबर रहता है जो उन साधनों द्वारा पैदा की जाती हैं। जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रारम्भ होता है तो विशिष्टीकरण के कारण उपलब्ध साधनों का अधिक मितव्ययता के साथ प्रयोग किया जाता है जिससे उत्पादन में कुशलता की वृद्धि होती है अत: उन्हीं उत्पत्ति के साधनों द्वारा अब पहले से अधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता है। अन्य शब्दों में, अधिक उत्पादन के सन्दर्भ में अब साधनों का मूल्य बढ़ जाता है।

(6) विश्व मांग पर प्रभाव (Effect on World Demand)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का वस्तुओं और सेवाओं की मांग पर दो तरह से प्रभाव होता है। एक तो व्यापार के कारण लोगों की आय में वृद्धि होती है जिससे वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है। दूसरे, लोगों की मांग के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है तथा लोग नयी वस्तुओं की मांग करने लगते हैं क्योंकि उनकी रुचि तथा इच्छाओं में परिवर्तन होता है। कुल मिलाकर देश की वस्तुओं की मांग पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार विदेशी व्यापार विभिन्न देशों में वस्तुओं और सेवाओं की मांग को काफी प्रभावित करता है

(7) रोजगार पर प्रभाव (Effect on Employment)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत रोजगार की तात्कालिक प्रवृत्ति तो यह होती है कि उसकी मात्रा घटने लगती है क्योंकि व्यापार से केवल निर्यात उद्योगों को ही प्रोत्साहन मिलता है तथा देश के अन्य उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से वहां रोजगार की मात्रा घटने लगती है। यद्यपि निर्यात उद्योगों में रोजगार की मात्रा बढ़ती है, किन्तु उसकी तुलना में अन्य उद्योगों में बेरोजगारी अधिक फैलती है। किसी भी पिछड़े हुए देश में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रारम्भिक प्रभाव यही होता है, किन्तु जैसे-जैसे निर्यात उद्योगों का विकास होता है रोजगार की मात्रा में भी वृद्धि होने लगती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तुलनात्मक लागत पर आधारित है जिसके अनुसार एक राष्ट्र उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन मे विशिष्टीकरण करता है जिनमें उसे सापेक्षिक लाभ अधिकतम होता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश का उत्पादन-क्षेत्र अलग होगा। अत: विशिष्टीकरण के फलस्वरूप देशों मे सहयोग की भावना उत्पन्न होनी चाहिए, किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि देशों में प्रतियोगिता होती है एवं उनके हितों में संघर्ष होता है। इससे देशों के बीच कटु वैमनस्य की भावना फैलती है जिससे कभी-कभी युद्ध की स्थिति भी आ जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतियोगिता उत्पन्न होने के निम्न कारण हैं:

(1) **विशिष्टीकरण प्रक्रिया का अवरुद्ध होना**—अनेक देशों में ऐसे बहुत-से कारण उपस्थित होते हैं जिससे विशिष्टीकरण का सिद्धान्त पूर्णरूप से कार्यान्वित नहीं हो पाता। विशिष्टीकरण उसी समय सम्भव है जब पूर्णरूप से स्वतन्त्र व्यापार हो, किन्तु ऐसा नहीं हो पाता। आर्थिक राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित होकर बहुत-से राष्ट्र ऐसे उपायों का सहारा लेते हैं जिनमें स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय में कठिनाइयां एवं बाधाएं उपस्थित होती हैं, जैसे आयात कर, कोटा प्रणाली, विनिमय नियन्त्रण, इत्यादि। इस कारण व्यवहार में विशिष्टीकरण नहीं हो पाता तथा विभिन्न देशों में प्रतियोगिता होने लगती है।

(2) **समान वस्तुओं का उत्पादन**—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जो तुलनात्मक लाभ होता है, उसे सब देश महत्व नहीं देते और न ही कोई देश इस बात का दावा कर सकता है कि किसी विशेष वस्तु के उत्पादन में उसने अन्य सब देशों की तुलना में श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है। वास्तविक स्थिति तो यह है कि प्रत्येक देश ऐसे उपायों की खोज में लगा रहता है जिसमें उसके निर्यातों में अधिकतम वृद्धि हो सके। आज बहुत-से देश प्राय: समान वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं अत: अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में उनके कड़ी प्रतियोगिता बनी रहती है।

(3) **व्यापार में बाधाएं**—अनेक बार कुछेक देशों में ऐसी बाधाएं खड़ी कर दी जाती हैं जिनमें प्रतियोगिता का जन्म होता है, जैसे तट-कर की बाधाएं, परिवहन व्यय, आदि, ये भी सब देशों में समान भी नहीं होतीं जिससे

1. "Trade change the quality of the people, teaches them to consume new things and to use old things in new ways. Technical Knowledge is largely the result of specialisation which trade has made possible. The character, not only of so called technical labour but also of skilled and unskilled labour is affected." —*Bertil Ohlin*

नोट

प्रतियोगिता होती है। यदि एक देश तट-कर बढ़ाता है तो दूसरा भी प्रतिक्रिया में वैसा ही करता है। यदि उपर्युक्त बाधाएं नहीं होतीं तो प्रतियोगिता भी नहीं होती।

(4) **उत्पादन ह्रास नियम क्रियाशील होना**—उत्पादन में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने से तुलनात्मक लागत का क्षेत्र सीमित हो जाता है तथा उत्पादन में कमी होने लगती है अत: ऐसे देशों को आंशिक रूप से वस्तुओं का आयात करना होता है जिससे प्रतियोगिता को प्रोत्साहन मिलता है। इसके विपरीत यदि उत्पादन में वृद्धि नियम लागू होता तो उक्त प्रतियोगिता नहीं हो पाती।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राष्ट्रीय हितों में संघर्ष (International Trade & Conflicts in National Interests)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतियोगिता से जुड़ा हुआ दूसरा प्रश्न यह है कि जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इतना लाभदायक है तो उसके साथ राष्ट्रीय हितों का संघर्ष क्यों होता है अर्थात् राष्ट्रीय हितों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को तिलांजलि क्यों दे दी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का राष्ट्रीय हितों के साथ संघर्ष होने के प्रमुख कारण हैं:

(1) **रोजगार का प्रश्न**—प्रतिष्ठित अर्थशस्त्रियों की यह धारणा रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश में उत्पादन, रोजगार और आय के स्तर को अधिकतम किया जा सकता है। उनकी व्याख्या यह थी कि जिस प्रकार देश में घरेलू विनियोग से उत्पादन और रोजगार बढ़ता है, उसी प्रकार निर्यात से होने वाली आय का प्रभाव भी "विदेशी व्यापार गुणक" के माध्यम से देश के उत्पादन और रोजगार पर पड़ता है अर्थात् निर्यात में होने वाली वृद्धि का कई गुना प्रभाव देश में होता है।

> *टास्क* अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राष्ट्रीय हितों में संघर्ष क्यों होता है?

उपर्युक्त तर्क सही नहीं है क्योंकि उसका आधार यह है कि समस्त देशों के निर्यात में सतत् वृद्धि हो। यह तभी सम्भव है जब विभिन्न देश आयात भी करें, किन्तु जब प्रत्येक देश अपने निर्यात को बढ़ाना चाहता है तो आयात कौन करेगा? एक देश का निर्यात किसी-न-किसी देश का आयात होता है। एक देश के आयातों पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रभाव यह होगा कि अन्य देश भी ऐसा ही करेंगे जिससे निर्यातों में वृद्धि नहीं हो पायेगी। अत: रोजगार की मात्रा में वृद्धि करने के लिए विभिन्न देश अपने राष्ट्रीय साधनों एवं गृह उद्योगों को विकसित करने की अधिक चिन्ता करते हैं।

(2) **श्रमिकों का आवागमन**—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रभाव यह होता है कि उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में समानता आती है। आज विश्व के विभिन्न देशों में, मजदूरी की दरों में भिन्नता है अत: यह वांछनीय है कि स्वतन्त्रतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हो जिससे मजदूरी की दरों में समानता हो, किन्तु जिन देशों में ऊंची मजदूरी है, वहां के मजदूर ऐसे देशों से वस्तुओं के आयात को हतोत्साहित करते हैं अथवा श्रमिकों के आवागमन का विरोध करते हैं। जहां मजदूरी सस्ती है, क्योंकि ऊंची मजदूरी वाले देशों को यह भय रहता है कि इससे उनकी मजदूरी कम जो जाएगी। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों के विपरीत राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी जाती है।

उपर्युक्त तर्क भी दोषपूर्ण है क्योंकि मुख्य प्रश्न नकद मजदूरी की भिन्नता का नहीं बल्कि मजदूरों की कार्यक्षमता की भिन्नता का है।

(3) **एकाधिकार की स्थिति**—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सभी देश उसी समय लाभान्वित हो सकते हैं जब विश्व बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो, किन्तु कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है कि एक राष्ट्र वस्तुओं की पूर्ति को नियन्त्रित करके एकाधिकार की स्थिति बना लेता है। जिस प्रकार एक देश के भीतर एकाधिकार से अन्य उद्योगपतियों एवं उपभोक्ताओं को हानि होती है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एकाधिकार से अनेक देशों को हानि होती है अत: उस स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की तुलना में राष्ट्रीय हितों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

नोट

(4) **अर्द्ध-विकसित देशों की स्थिति**—जब दो समान रूप से विकसित राष्ट्रों में व्यापार होता है तो राष्ट्रीय हितों में कोई संघर्ष की स्थिति नहीं आती, किन्तु जब एक अद्ध-विकसित देश विकसित राष्ट्र के साथ व्यापार करता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को समानता के साथ प्राप्त नहीं कर सकता तथा उसके राष्ट्रीय हितों का शोषण होता है। अत: वह अर्द्ध-विकसित राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देता है।

(5) **युद्ध की स्थिति**—आर्थिक आधार पर विभिन्न आवश्यकताओं के लिए तो विभिन्न देशों में विदेशी व्यापार के अन्तर्गत सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं, किन्तु जहां युद्ध की स्थिति आती है तो प्रत्येक राष्ट्र आत्म-निर्भर होना चाहता है तथा राष्ट्रीय हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। यदि कोई राष्ट्र रक्षा सामग्री के लिए भी विदेशी व्यापार पर निर्भर रहता है तो वह अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को खतरे में डालता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. आंतर-उद्योग व्यापार विशिष्टीकरण और बढ़ रहे .... के कारण होता है जो बाजार के आकार पर निर्भर करता है।
2. .... व्यापार समान साधन सम्पन्नताओं तथा समान आकार के दो देशों के बीच व्यापार की मात्रा में वृद्धि करता है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश उन उद्योगों में .... प्राप्त करता है जिसमें देश में उपलब्ध प्रचुर साधनों का उपयोग किया जाता है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार .... पर आधारित है।
5. जब दो समान रूप से .... में व्यापार होता है तो राष्ट्रीय हितों में कोई संघर्ष की स्थिति नहीं आती।

7.3 सारांश (Summary)

- यदि विस्तृत अर्थ में देखा जाये तो व्यापार के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक क्रियाओं का समावेश हो जाता है जिनका सम्बन्ध उत्पादित वस्तुओं के वितरण से होता है। वस्तुओं का वितरण इसलिए किया जाता कि उपभोग के लिए इनकी मांग की जाती है।
- **अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार** अथवा **आन्तरिक व्यापार** का सम्बन्ध ऐसे व्यापार से है जो किसी एक देश की सीमा के अन्दर एक ही देश के दो क्षेत्रों के बीच किया जाता है। इसके विपरीत **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** का सम्बन्ध ऐसे व्यापार से है जो विश्व के दो या दो से अधिक स्वतन्त्र राष्ट्रों के बीच किया जाता है। इन दोनों में मुख्य अन्तर देश की सीमा का है
- जब एक ही देश दूरस्थ क्षेत्रों में व्यापार होता है तो दोनों में एक-दूसरे के सामाजिक रीति-रिवाज और परम्पराओं का आदान-प्रदान होता है, जैसे गुजरात और प. बंगाल के बीच व्यापार होगा तो दोनों एक-दूसरे की संस्कृतियों से परिचित होंगे। इसी प्रकार जब दो देशों के बीच व्यापार होता है तो उसमें भी सामाजिक और सांस्कृतिक विचारों का आदान-प्रदान होता है।
- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके पीछे अनेक कारण है जो आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में असमानताओं को प्रकट करते हैं तथा जिनसे यह ज्ञात होता है कि आन्तरिक व्यापार की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों का व्यवहार बिल्कुल अलग होता है।
- एक देश में किसी वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति उसकी लागत के बराबर होने की रहती है। क्योंकि यदि कीमत, लागत से ऊंची रहती है तो उस उद्योग में, अन्य उद्योगों से साधनों का प्रवाह होता है जिससे वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है और कीमत घटकर लागत के बराबर हो जाती है, किन्तु दो देशों में साधनों में गतिशीलता के

नोट

अभाव के कारण वस्तु की लागत और कीमत में विभिन्निता रह सकती है।

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता के प्रश्न को लेकर अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का वर्ग अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अलग-अलग मानता है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त की वकालत करता है। इसके विपरीत **प्रो. ओहलिन** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की विशिष्ट दशा मानते हैं और मत व्यक्त करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए किसी पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है।
- **ओहलिन** का कहना है कि उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता का अभाव विभिन्न देशों में ही नहीं, एक देश क विभिन्न क्षेत्रों में भी पाया जाता है। **हेबरलर** के अनुसार, "एक देश की सीमाओं के भीतर भी वास्तविक पूंजी को एक उत्पादन-क्षेत्र से दूसरे उत्पादन-क्षेत्र तक तत्परता से स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता और एक ही देश के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक पूंजीगत वस्तुओं के परिवहन की लागत कभी-कभी दो देशों के बीच ही परिवहन की लागत से अधिक होती है।"
- वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के लिए आवश्यक हो गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रायः सब देशों ने भौगोलिक विशिष्टीकरण को अपना लिया है क्योंकि तकनीकी विकास और वैज्ञानिक आविष्कार के कारण विशिष्टकीरण का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है। इसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन कर रहा है जिनमें वह सर्वाधिक कुशल है और जिनकी तुलनात्मक लागत कम है अर्थात् वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है तो उसे अपनी वस्तुओं का निर्यात करना होगा तथा विदेशों से आवश्यक वस्तुओं का आयात करना होगा।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है तथा इसी कारण देशों में आपसी सहयोग भी बढ़ रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का समान महत्व होता है क्योंकि जिस देश में कुल उत्पादन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भाग अधिक होता है उसके लिए विदेशी व्यापार का महत्व अधिक होता है तथा जहां विदेशी व्यापार का भाग कम होता है, वहां उसका महत्व कम होता है।

7.4 शब्दकोश (Keywords)

- **प्रवासन–** पर राष्ट्र में निवास करना।
- **निगम–** संस्था।
- **मार्जिन–** अंश, आंशिकता।

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशिष्ट दशा है, (**ओहलिन**) इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. "वास्तव में विदेशी व्यापार एक उच्च रूप में संगठित वस्तु-विनिमय प्रणाली के अलावा और कुछ नहीं है।" इस कथन को समझाइए।
3. क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता है? इस सम्बन्ध में ओहलिन के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, किन अर्थों में अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार से भिन्न है? क्या अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के आधार पर किया गया विशिष्टीकरण विश्व व्यापार को अधिकतम करने में सदा सहायक होगा? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
5. "गृह व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विशेष अन्तर नहीं है अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विशेष सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं है।" इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. (घ) 2. (क) 3. (ख) 4. (क)
5. (ख) 7. (ग)

2. 1. श्रम विभाजन 2. आंतर उद्योग 3. विशिष्टीकरण 4. तुलनात्मक लागत
5. विकसित राष्ट्रों

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—8: प्रशुल्क, अभ्यंश एवं गैर प्रशुल्क बाधाएँ : परिभाषा एवं प्रकार (Tariff, Quotas and Non-Tariff Barriers : Definitions and Types)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
8.1 प्रशुल्क का अर्थ एवं प्रकार (Meaning and Types of Tariff)
8.2 अभ्यंश की परिभाषा तथा प्रकार (Definition and Types of Quotas)
8.3 गैर-प्रशुल्क बाधाओं की परिभाषा एवं प्रकार (Definition and Types of Non-Tariff Barriers)
8.4 सारांश (Summary)
8.5 शब्दकोश (Keywords)
8.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रशुल्क एवं अभ्यंश के अर्थ एवं प्रकार की व्याख्या करने में।
- गैर-प्रशुल्क की बाधाओं तथा उनके प्रकार का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रशुल्क का आशय समस्त तटकरों से है जिनमें आयात कर, निर्यात कर एवं परिवहन कर शामिल होते हैं तथा आयात अभ्यंश में जिस निश्चित मात्रा का आयात किया जाता है उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती जबकि घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने तथा विदेशी वस्तुओं के आयात को सीमित करने के लिए सरकार गैर प्रशुल्क बाधाएँ लगाती है।

8.1. प्रशुल्क का अर्थ एवं प्रकार (Meaning and Types of Tariff)

संरक्षण की सबसे अधिक लोकप्रिय विधि प्रशुल्क है जो आयातित वस्तुओं पर लगाया जाता है। प्रशुल्क अथवा तटकर का प्रयोग केवल अर्द्ध-विकसित देशों में ही नहीं, वरन् विकसित देशों में भी किया जाता है। सीमित अर्थ में प्रशुल्क उन करों की सूची है जो किसी देश में विदेशों से आयातित वस्तुओं पर लगाये जाते हैं। इस प्रकार प्रशुल्क अथवा तटकर का आशय वस्तुओं पर लगाये गये आयात करों से है। **एल्सवर्थ** ने भी प्रशुल्क की परिभाषा

नोट

सीमित अर्थ में की है। उनके शब्दों में, "प्रशुल्क करों की वे मात्राएँ हैं जो एक राष्ट्र द्वारा विदेशी आयातों पर लगायी जाती हैं।"[1]

विस्तृत अर्थ में प्रशुल्क का आशय समस्त तटकरों से है जिनमें **आयात कर, निर्यात कर** एवं **परिवहन कर** (Transit Duty) शामिल होते हैं। परिवहन कर उस माल पर लगाया जाता है जब किसी देश से माल अपने गन्तव्य स्थान को जाते हुए किसी तीसरे देश से गुजरता है। यह कर अब लोकप्रिय नहीं है। निर्यात कर, प्राथमिक उत्पादन करने वाले देशों द्वारा या तो आय प्राप्त करने के लिए अथवा संरक्षण के लिए लगाये जाते हैं। पर इनमें आयात कर ही लोकप्रिय एवं प्रचलित है जो वस्तुओं के आयात पर लगाये जाते हैं।

प्रशुल्क के प्रकार (Types of Tariffs)

प्रशुल्क

- **I वसूली के आधार पर**
  1. विशिष्ट प्रशुल्क
  2. मूल्यानुसार प्रशुल्क
  3. मिश्रित प्रशुल्क
  4. शृंखलाबद्ध दरों वाला प्रशुल्क
- **II प्रयोग मानदण्ड के आधार पर**
  1. एकाकी स्तम्भ प्रशुल्क
  2. दोहरा या बहुस्तम्भी प्रशुल्क
  3. सामान्य एवं पारम्परिक प्रशुल्क
- **III उद्देश्य के आधार पर**
  1. आय के लिए प्रशुल्क
  2. संरक्षण के लिए प्रशुल्क

I. वसूली के आधार पर प्रशुल्क (Tariff on Levy Criterion)

वसूली के आधार पर प्रशुल्क को निम्न चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(1) **विशिष्ट प्रशुल्क** (Specific Tariff)–जो तटकर आयात की जाने वाली वस्तु की प्रत्येक इकाई के नाप, तौल या संख्या के आधार पर लगाया जाता है उसे विशिष्ट प्रशुल्क कहते हैं। उदाहरण के लिए, कपड़े पर 10 पैसे प्रति मीटर, स्टील पर 15 रुपये प्रति क्विण्टल, पैट्रोल पर 20 पैसे प्रति लीटर, आदि। इन तटकरों का भार आयात की जाने वाली वस्तुओं की कीमतों के उच्चावन पर निर्भर रहता है। मन्दी के समय विशिष्ट शुल्क संरक्षण को प्रोत्साहन देते हैं जबकि तेजी के समय इनका विपरीत प्रभाव होता है।

(2) **मूल्यानुसार प्रशुल्क** (Ad valorem Tariff)–जो शुल्क वस्तुओं के मूल्य के आधार पर लगाये जाते हैं मूल्य आधारित प्रशुल्क कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, जब प्रशुल्क वस्तु के मूल्य के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में लगाया जाता है, तब उसे मूल्यानुसार प्रशुल्क कहते हैं। उदाहरण के लिए, मोटरकार अथवा रेडियो के मूल्य पर 10 प्रतिशत तटकर इस श्रेणी में आते हैं। इस प्रशुल्क का सापेक्षिक भार आयात किये जाने वाले माल के मूल्य में उच्चावचन होने के साथ परिवर्तित नहीं होता। मूल्यानुसार प्रशुल्क न्यायपूर्ण होता है क्योंकि इस कर का अधिक भार धनी वर्ग पर पड़ता है जो विलासिता की वस्तुओं का अधिक आयात करते हैं।

(3) **मिश्रित प्रशुल्क (विशिष्ट एवं मूल्य पर आधारित प्रशुल्क)** (Combined-Specific and Ad valorem Tariff)–मिश्रित प्रशुल्क के अन्तर्गत आयातित वस्तुओं पर कर या तो विशिष्ट प्रशुल्क अथवा मूल्य पर आधारित प्रशुल्क की दर से जो भी क्रम हो, लगाया जाता है। जैसे रुई पर प्रशुल्क या तो 50 रुपये प्रति गांठ की दर से अथवा मूल्य के आधार पर 10 प्रतिशत की दर से लगाया जाए, जो भी कम हो।

1. "Tariff can be defined as a schedule of duties levied upon the importation of goods into a given country from abroad."

नोट

(4) **शृंखलाबद्ध दरों वाला प्रशुल्क** (Sliding Scale Duties)—जब कीमतों में परिवर्तन के साथ तटकरों में परिवर्तन होता है तो उसे शृंखलाबद्ध दरों वाला प्रशुल्क कहते हैं जो विशिष्ट अथवा मूल्य पर आधारित हो सकता है। बहुधा इसे विशिष्ट रूप में ही वसूल किया जाता है।

II. प्रयोग मानदण्ड के आधार पर प्रशुल्क (Tariff on Origin Critarion)

प्रयोग मानदण्डों के आधार पर प्रशुल्क को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(1) **एकाकी अनुसूची अथवा एकाकी स्तम्भ प्रशुल्क** (Single Schedule or Single Column Tariff)—एकाकी अनुसूची प्रशुल्क वह है जिसमें कानून के अनुसार, प्रत्येक वस्तु पर समान दर से प्रशुल्क लिया जाता है चाहे वस्तु का आयात किसी भी देश से क्यों न किया गया हो। दूसरे शब्दों में, एकाकी स्तम्भ प्रशुल्क के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं अथवा देशों के मध्य बिना किसी भेदभाव किये हुए प्रशुल्क की एक सूची तैयार की जाती है।

यह प्रशुल्क यद्यपि सरल है, किन्तु इस प्रकार के प्रशुल्क में लोच का अभाव (Lack of Elasticity) होता है।

(2) **दोहरा या बहुस्तम्भी प्रशुल्क** (Double or Multiple Column Tariff)—दोहरा या बहुस्तम्भी प्रशुल्क वह है जिसमें प्रत्येक वस्तु के लिए दो या अधिक दरों से तटकर वसूल किया जाता है जो इस पर निर्भर रहता है कि उन्हें किन देशों से आयात किया गया है। दूसरे शब्दों में बहु-स्तम्भी प्रशुल्क के अन्तर्गत एक ही वस्तु को दो या दो से अधिक देशों से आयात करने पर प्रशुल्क की दरें अलग-अलग रखी जाती हैं। इस प्रकार के प्रशुल्क एक देश की विभिन्न देशों से व्यापारिक सन्धियों पर आधारित होते हैं।

(3) **सामान्य एवं परम्परागत प्रशुल्क** (General and Conventional Tariff)—इसमें सामान्य एवं परम्परागत प्रशुल्कों को दो अलग-अलग अनुसूचियाँ तैयार की जाती हैं। सामान्य प्रशुल्क का निर्धारण राज्य के प्रशासन द्वारा होता है जिसमें यह घोषणा की जाती है कि इसमें समायोजन उसी समय होगा जबकि व्यापारिक सन्धियों के परिणामस्वरूप उसकी आवश्यकता होगी।

टास्क स्पष्ट कीजिए कि कुछ देश संरक्षण के लिए प्रशुल्क की अपेक्षा आयात अभ्यंशों को अधिक प्राथमिकता क्यों देते हैं?

परम्परागत प्रशुल्क अनुसूची व्यापारिक सन्धियों का परिणाम है। परम्परागत प्रशुल्क में घरेलू परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण समायोजन करना सम्भव नहीं होता। इस प्रकार परम्परागत प्रशुल्क वह है जब कानूनी रूप से प्रत्येक वर्ग की वस्तुओं के लिए प्रशुल्क इस प्रावधान के साथ निर्धारित किये जाते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के फलस्वरूप ऐसे प्रशुल्क को कम करना सम्भव हो सके। जब सामान्य रूप से प्रशुल्क कम हो जाता है तो उसे एकाकी स्तम्भ प्रशुल्क में परिवर्तित कर दिया जाता है।

III. उद्देश्य के आधार पर प्रशुल्क (Tariff on Objective Criterion)

उद्देश्य के आधार पर प्रशुल्क को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(*i*) **आय के लिए प्रशुल्क** (Tariff for Revenue)—आय अथवा राजस्व प्रशुल्क वह है जिसका मुख्य उद्देश्य सरकार को आय प्रदान करना है। अन्य शब्दों में, यह विशेष प्रकार का कर है। जब प्रशुल्क आय प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाये जाते हैं तो यह जरूरी होता है कि वस्तुओं का आयात होता रहे अत: इस प्रशुल्क की दर कम होती है।

(*ii*) **संरक्षण के लिए प्रशुल्क** (Tariff for Protection)—इन तटकरों का उद्देश्य घरेलू उद्योगों को संरक्षण देना होता है। सरकार इन करों से आय प्राप्त नहीं करना चाहती बल्कि सरकार का उद्देश्य यह होता है कि देश में आयात प्रतिस्थापित उद्योगों की स्थापना की जा सके। इस प्रकार लगाये गये करों की दर ऊँची होती है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में ✓ अथवा ✗ का निशान लगाइए** (State whether the following statements are 'tru' or 'false')—
   1. प्रशुल्क निर्यातित वस्तुओं पर लगाया जाता है। ☐
   2. प्रशुल्क में आयात कर, निर्यात कर तथा परिवहन कर शामिल होते हैं। ☐
   3. वासूली के आधार पर प्रशुल्क छः प्रकार के होते हैं। ☐
   4. वस्तुओं के मूल्य के आधार पर लगाए जाने वाले प्रशुल्क, मूल्य आधारित प्रशुल्क कहलाते हैं। ☐
   5. सरकारी स्तम्भ प्रशुल्क में लोच का अभाव होता है। ☐
   6. सरकार को राजस्व प्रशुल्क से कोई आय नहीं प्राप्त होती। ☐

8.2. अभ्यंश की परिभाषा एवं प्रकार (Definition and Types of Quotas)

परिभाषा—आयात अभ्यंश का आशय, वस्तु की उस निश्चित मात्रा अथवा मूल्य से है जिसका, समय की एक निश्चित अवधि में देश में आयात किया जा सकता है। इस प्रकार आयात की जा सकने वाली मात्रा को पहले से ही निर्धारित कर दिया जाता है। आयात अभ्यंश की अवधि भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रहती है। अधिकतम अवधि एक वर्ष की होती है तथा न्यूनतम अवधि एक माह की रहती है। जिस मात्रा के आयात की अनुमति दी जाती है, वह पिछले आधार वर्ष का कुछ प्रतिशत होती है।

हेबलर के अनुसार, "आयात अभ्यंश के अन्तर्गत, जिस निश्चित मात्रा का आयात किया जा सकता है उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती।"

व्यवहार में आयात अभ्यंश की या तो भौतिक मात्रा निश्चित कर दी जाती है अथवा आयातों का मौद्रिक मूल्य निश्चित कर दिया जाता है। कभी-कभी इन दोनों को मिला दिया जाता है। जब अभ्यंश की भौतिक मात्रा निश्चित कर दी जाती है तो उसे **प्रत्यक्ष अभ्यंश** (Direct Quotas) कहते हैं और जब उसकी मूल्य में मात्रा निश्चित कर दी जाती है तो उसे **अप्रत्यक्ष अभ्यंश** (Indirect Quotas) कहते हैं।

आयात अभ्यंश के उद्देश्य (Objectives of Import Quotas)

आयात अभ्यंश के प्रायः निम्न उद्देश्य होते हैं—

(*i*) विदेशों से आने वाली प्रतियोगी वस्तुओं के आयात को नियन्त्रित करके घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना।

(*ii*) आयातों का प्रभावशाली ढंग से नियमन करने के लिए।

(*iii*) भुगतान-शेष के असन्तुलन को दूर करने के लिए।

(*iv*) आयातों के अन्तर्प्रवाह को सीमित करके, घरेलू कीमतों में स्थायित्व लाने के लिए।

(*v*) जो देश व्यापार में प्रतिबन्धात्मक तरीके अपना रहे हैं उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप।

(*vi*) आयात अभ्यंशों के माध्यम से उन आयातों को सीमित करना जिससे सट्टे को प्रोत्साहन मिलता है।

इस प्रकार अभ्यंशों को संकटकालीन उपायों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा इनका त्वरित कार्यान्वयन आवश्यक होता है।

आयात अभ्यंशों के विभिन्न प्रकार (Types of Import Quotas)

आयात अभ्यंशों का वर्गीकरण निम्न पांच रूपों में किया जाता है—

(1) प्रशुल्क अभ्यंश (Tariff Quota),

नोट

(2) एकपक्षीय अभ्यंश (Unilateral Quota),

(3) द्विपक्षीय अभ्यंश (Bi-Lateral Quota),

(4) मिश्रित अभ्यंश (Mixed Quota),

(5) आयात लाइसेंस प्रणाली (Import Licensing System)।

अब इनका विस्तार से विवेचन किया जाएगा—

(1) प्रशुल्क अभ्यंश—इसके अन्तर्गत आयात की एक निश्चित मात्रा बिना करके अथवा कम करों पर देश में आने की अनुमति दी जाती है, परन्तु यदि इस मात्रा से अधिक आयात किया जाता है तो उसका आयात, करों की ऊँची दर पर ही किया जा सकता है। इस प्रकार प्रशुल्क अभ्यंश में, प्रशुल्क और आयात अभ्यंश दोनों का समावेश है। यह संरक्षण की एक पुरानी विधि है जिसका विस्तृत प्रयोग 1850 के बाद किया गया।

प्रशुल्क अभ्यंश का मुख्य लाभ यह है कि यह लोचदार होता है, परन्तु इसके मुख्य दो **दोष** भी हैं जो इस प्रकार हैं—

(*i*) जब कम दरों पर आयात की मात्रा समाप्त हो जाती है, तो कम दरों से सम्पूर्ण लाभ उन विदेशी फर्मों को होते हैं जो आयात अभ्यंश वाले देश को निर्यात करती हैं।

(*ii*) कोटा की न्यूनतम प्रारम्भिक दरों पर बहुत जल्दी आयात किये जाते हैं जिससे कीमतों में भारी उच्चावचन होते हैं।

उक्त दोषों के कारण प्रशुल्क-अभ्यंशों का प्रयोग नहीं किया जाता।

(2) एकपक्षीय अभ्यंश—एकपक्षीय आयात अभ्यंश के अन्तर्गत एक विशेष देश, एक निश्चित समय में आयात की जाने वाली वस्तुओं की निरपेक्ष मात्रा निश्चित कर देता है। इस सम्बन्ध में विदेशी सरकारों के साथ कोई पूर्व समझौता नहीं किया जाता। यह निश्चित अभ्यंश या तो **विश्वव्यापी** (Global) हो सकता है अथवा **आवंटित** (Allocated), जिसकी व्याख्या इस प्रकार है—

(I) **विश्वव्यापी आयात अभ्यंश** वह है जिसके अन्तर्गत निर्धारित मात्रा विश्व के किसी भी देश से आयात की जा सकती है।

आयात अभ्यंश के रूप में विश्वव्यापी अभ्यंश सफल नहीं हुआ है, इसके प्रमुख निम्नलिखित चार कारण हैं—

(*i*) इस प्रणाली में आयात करने वाली बड़ी फर्मों को प्राथमिकता दी जाती है जो अल्पसूचना पर बड़ी मात्रा में आयातों के आर्डर दे सकते हैं। इस प्रकार छोटे आयातकर्ताओं की अवहेलना की जाती है।

(*ii*) जैसे ही आयातों की अनुमति की घोषणा की जाती है, आस-पास के देशों से फौरन आयात कर लिया जाता है तथा दूर के देशों को अवसर नहीं मिलता।

(*iii*) विश्वव्यापी अभ्यंश का एक दोष यह भी है कि इसमें आयातकर्ताओं में आयात की होड़ लग जाती है जिससे घरेलू बाजार में भारी मात्रा में पूर्ति हो जाती है और कीमतों में उच्चावचन होता है।

(*iv*) आयातों की होड़ में कभी-कभी यह भी होता है कि निश्चित मात्रा से अधिक आयात हो जाता है। इससे कई समस्याओं का जन्म हुआ है; जैसे जुर्माने की व्यवस्था, वस्तु संग्रह की लागत एवं कभी-कभी आयातित वस्तुओं की निर्यातक देशों को वापसी।

नोट्स आयात अभ्यंश अकुशल घरेलू उत्पादकों को न केवल विदेशी उत्पादकों से संरक्षण देते हैं वरन् अपने ही देश के कुशल उत्पादकों से भी संरक्षण देते हैं।

नोट

(II) **आवंटित अभ्यंश** वह है जिसके अन्तर्गत कुल आयातों की मात्रा का आवंटन कुछ विशेष देशों में कर दिया जाता है।

विश्वव्यापी आयात अभ्यंश की असफलता के कारण आवंटित अभ्यंशों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु इस प्रणाली में भी दोष निहित हैं–

(*i*) इस प्रणाली में कठोरता के साथ यह निर्धारित कर दिया जाता है कि आयात किन देशों से किया जाएगा। इसमें लागत एवं पूर्ति की अन्य बातों पर विचार नहीं किया जाता।

(*ii*) जिन देशों को निर्यात करने की अनुमति मिलती है, कभी-कभी वे एकाधिकारी के समान व्यवहार करने लगते हैं।

(*iii*) आयात अभ्यंश निर्धारित करते समय किसी आधार वर्ष को ध्यान में रखा जाता है किन्तु आधार वर्ष के चयन में गलती हो सकती है।

(3) द्विपक्षीय अभ्यंश–द्विपक्षीय अभ्यंश वस्तुत: एकपक्षीय कोटा प्रणाली की शोषणात्मक प्रवृत्ति को दूर करने का माध्यम है। एकपक्षीय कोटा प्रणाली में निर्यातक देशों के उत्पादकों की स्थिति एकाधिकारों के समान हो जाती है। इस एकाधिकारी शोषक की प्रवृत्ति को समाप्त करने का एक उपाय यह है कि निर्यात करने वाले देशों के साथ ऐसा समझौता किया जाए कि वे निर्यात (आयात अभ्यंश वाले देशों को) की कार्यप्रणाली को लाइसेंस प्रणाली द्वारा नियन्त्रित करें। चूंकि ये आयात अभ्यंश, आयात एवं निर्यात करने वाले देशों के समझौते के फलस्वरूप निर्धारित होते हैं अत: इन्हें द्विपक्षीय आयात अभ्यंश कहते हैं।

लाभ–द्विपक्षीय आयात अभ्यंश के निम्नलिखित लाभ हैं–

(*i*) इस प्रणाली के अन्तर्गत, अभ्यंशों की निर्धारित अवधि में, अभ्यंशों का समान वितरण किया जा सकता है जिससे आयात करने वाले देश में कीमतों में उच्चावचन नहीं होता।

(*ii*) इससे निर्यातक देशों की शोषण की प्रवृत्ति समाप्त की जा सकती है।

(*iii*) चूंकि विदेशों में उत्पादकों के बीच निर्यात की मात्रा को लाइसेंस प्रणाली द्वारा निर्धारित कर दिया जाता है, उत्पादक इसका विरोध नहीं करते।

(*iv*) चूंकि इस प्रणाली में लाइसेंस की कार्यप्रणाली निर्यातक देश द्वारा की जाती है, आयात अभ्यंश निर्धारित करने वाले देश में आयातकों का दबाव एवं हस्तक्षेप समाप्त हो जाता है।

हानियाँ–उपर्युक्त लाभों के बावजूद द्विपक्षीय अभ्यंश प्रणाली में निम्न दोष हैं–

(*i*) इस प्रणाली में अभ्यंश का प्रशासन शक्तिशाली संघों (Cartels) को सौंप दिया जाता है जिससे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।

(*ii*) इस प्रणाली का एक दोष यह भी है कि निर्यातक देश में कीमतों में वृद्धि हो जाती है जिससे आयातक देश को हानि होती है।

(*iii*) नियन्त्रण के बावजूद भी निर्यातक देशों में एकाधिकारी भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) मिश्रित अभ्यंश–कई देश अपने उत्पादन में इस प्रकार का प्रावधान रखते हैं कि घरेलू उत्पादकों को पक्का माल तैयार करने की प्रक्रिया में, एक निश्चित मात्रा में घरेलू कच्चे माल का प्रयोग करना आवश्यक होता है। इन प्रावधानों का अभ्यंशों के समान ही प्रभाव होता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत विदेशी माल का आयात नियन्त्रित हो जाता है। उदाहरण के लिए, ऊन के साथ सिन्थेटिक धागे, गेसोलिन के साथ अल्कोहल, आयातित गन्ने की शक्कर के साथ चुकन्दर की शक्कर, विदेशी तम्बाकू के साथ घरेलू तम्बाकू, इत्यादि।

मिश्रित अभ्यंश का निम्न में से या तो एक अथवा दोनों उद्देश्य होते हैं–

(*i*) घरेलू उत्पादकों को सहायता देना।

(*ii*) आयातों को सीमित कर, दुर्लभ विदेशी मुद्रा की बचत करना।

नोट

मिश्रित अभ्यंशों का मुख्य दोष यह है कि इससे विश्व के साधनों एवं मानव शक्ति का कुशलतम प्रयोग नहीं हो पाता एवं घरेलू निम्न स्तर की वस्तुओं के लिए ऊँची कीमतें देनी पड़ती हैं।

(5) आयात लाइसेंस प्रणाली—इस प्रणाली के अन्तर्गत सम्भावित आयातकर्ताओं को उचित सरकारी अधिकारियों से आयात लाइसेंस प्राप्त करना पड़ता है। यह लाइसेंस या तो आयातकर्ताओं को, आयात का भुगतान करने के लिए विदेशी मुद्रा के प्रयोग की अनुमति प्रदान करता है अथवा उक्त भुगतान करने के लिए उन्हें विदेशी मुद्रा का क्रय करने के लिए अधिकृत करता है। यह आयातों को अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित करता है, क्योंकि यह आयातों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित न करके, उनके भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा के प्रयोग को प्रतिबन्धित करता है।

कार्य-प्रणाली—जब लाइसेंस प्रणाली का उद्देश्य दुर्लभ विदेशी मुद्रा के आवंटन को नियन्त्रित करना होता है तो निम्न में से किसी एक विधि का अनुसरण किया जाता है—

(1) पहले आयात की जाने वाली वस्तुओं की घटती हुई प्राथमिकता के क्रम में एक सूची तैयार कर ली जाती है और फिर उपलब्ध विदेशी मुद्रा को शुरू से लगाकर प्राथमिकता के प्रयोगों के अनुसार आवंटित किया जाता है।

(2) दूसरी प्रणाली यह है कि उन वस्तुओं की सूची तैयार कर ली जाती है जिनके लिए आयात लाइसेंस की आवश्यकता होती है, किन्तु प्राथमिकता के क्रम का निर्धारण नहीं किया जाता। फिर उपलब्ध विदेशी मुद्रा के आधार पर आयात की जाने वाली कुल मात्रा का निर्धारण किया जाता है। कुछ देशों में लाइसेंस प्रदान कर दिये जाते हैं जो उत्पादकों को आयात करने के लिए अधिकृत कर देते हैं।

गुण—विश्वव्यापी एवं आवंटित अभ्यंशों की तुलना में, आयात लाइसेंस प्रणाली निश्चित ही एक सुधार है, क्योंकि इससे आयात नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली ढंग से होता है तथा इससे अन्य विधियों के दोषों का निराकरण भी हो जाता है। आयात लाइसेंस प्रणाली के निम्नलिखित लाभ हैं—

(*i*) आयातों के नियन्त्रण के लिए लाइसेंस प्रणाली पर्याप्त लोचदार है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार लाइसेंस प्रणाली को भी बदला जा सकता है।

(*ii*) यह एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम से एक देश अपने निवासियों की दुर्लभ विदेशी मुद्रा की माँग को नियन्त्रित कर सकता है। उदाहरण के लिए, जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बहुत-से देशों को डालर की कमी महसूस हुई तो डालर क्षेत्र से आयातों को नियन्त्रित करने के लिए लाइसेंस प्रणाली का प्रयोग किया गया।

(*iii*) इस प्रणाली में आयात करने की होड़ समाप्त हो जाती है, जिससे कीमतों में उच्चावचन कम हो जाते हैं।

दोष—आयात प्रणाली के निम्न दोष हैं—

(*i*) चूंकि लाइसेंस आसानी से प्राप्त नहीं किये जा सकते, लोग इस बात का प्रयत्न करते हैं कि किसी तरह उन्हें लाइसेंस मिल जाएं तथा दूसरों को न मिलें। इसके लिए वे रिश्वत एवं भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं। अतः यह प्रणाली भेद-भाव करती है तथा कुशल आयातकर्ताओं के स्थान पर अकुशल लोगों को लाइसेंस मिल सकते हैं।

(*ii*) यदि उक्त दोष का निराकरण भी कर दिया जाए तो यह समस्या रहती है कि किन्हें लाइसेंस दिये जाएं। कुछ देशों में उत्पादकों को लाइसेंस, उनके पिछले रिकार्ड के आधार पर दिये जाते हैं, परन्तु यह विधि गतिहीन अथवा जड़ है और नये कुशल उत्पादकों की अवहेलना करती है।

(*iii*) आयातों पर नियन्त्रण होने से, जिन्हें लाइसेंस प्राप्त हो जाते हैं, वे एकाधिकारी लाभ प्राप्त करने लगते हैं।

इन दोषों को दूर करने के लिए **हैबरलर** ने यह सुझाव दिया है कि सरकार को नीलामी के माध्यम से उन्हें लाइसेंस देना चाहिए जो अधिकतम बोली लगाते हैं, किन्तु इसका परिणाम यह होगा कि आयात अभ्यंश का मुख्य उद्देश्य आय कमाना हो जाएगा, जबकि आय अर्जन आयात अभ्यंश का वस्तुतः गौण उद्देश्य है। यद्यपि **हैबरलर** के अनुसार यह आयात करने वाले देश की दृष्टि से चुनाव का विवेकपूर्ण तरीका है फिर भी स्वार्थी हितों के विरोध के कारण किसी भी सरकार द्वारा इसे अपनाया नहीं गया है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct options)—

1. आयात अभ्यंश का आशय है—
   (क) वस्तु की निश्चित मात्रा से (ख) वस्तु के निश्चित मूल्य से
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. प्रशुल्क अभ्यंश में शामिल होता है—
   (क) प्रशुल्क एवं आयात अभ्यंश (ख) प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क बाधाएँ
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. मिश्रित अभ्यंश का उद्देश्य है—
   (क) घरेलू उत्पादकों को सहायता देना
   (ख) आयातों को सीमित कर, दुर्लभ विदेशी मुद्रा की बचत करना
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. आवंटित अभ्यंश का प्रयोग किया जाता है—
   (क) विश्वव्यापी आयात अभ्यंश की असफलता के कारण
   (ख) बड़ी फर्मों को प्राथमिकता देने के लिए
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. आयात अभ्यंश का उद्देश्य है—
   (क) आय कमाना (ख) आय अर्जन करना
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

8.3. गैर-प्रशुल्क बाधाओं की परिभाषा एवं प्रकार (Defintions and Types of Non—Tariff Barriers)

घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने तथा विदेशी वस्तुओं के आयात को सीमित करने के लिए सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रशुल्क अथवा तट-करों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्रतिबन्धों का भी सहारा लेती हैं। सरकारों द्वारा आयात के लिए गैर-प्रशुल्क बाधाएँ (NTBs) खड़ी करना प्रशासनिक उपाय के रूप में होते हैं।

वर्गीकरण (Classification)—गैर प्रशुल्क बाधाओं को निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है :

मात्रात्मक व्यापार प्रतिबन्ध (Quantitative Trade Restrictions) के अन्तर्गत आयात अभ्यंश, प्रशुल्क अभ्यंश, स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें (Voluntary Export Restraints–VERs), सुव्यवस्थित विपणन व्यवस्था अथवा अनुबन्ध (Orderly Marketing Arrangement of Agreement–OMAs), बहु तन्तु व्यवस्था (Multi Fibre Arrange-ment–MFA), आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

राजकोषीय उपायों (Fiscal Measures) के अन्तर्गत निर्यात अथवा उत्पादन सब्सिडी, निर्यात ऋण सब्सिडी, निर्यात पर कर राहत, सरकारी वसूली, प्रति-राशिपातन शुल्क (Anti-Dumping Duty), प्रतिकर शुल्क (Countervailing Duties), आदि आते हैं।

प्रशासनिक, प्रामाणिक तथा विनियमनों (Administrative, Standards and Regulations) से तात्पर्य है स्वास्थ्य, आरोग्य तथा सुरक्षा विनिमय, पर्यावरण (प्रदूषण) नियन्त्रण, सीमा मूल्यांकन तथा वर्गीकरण, मार्किंग तथा पैकेजिंग आवश्यकताएँ, आयात लाइसेन्स कार्यवाही, सरकारी व्यापार एवं एकाधिकार, आयात की सीमाओं पर देरी, सरकारी कर्मचारियों को देश में बनी चीजें खरीदने के आदेश या स्वदेशी खरीद प्रचार अभियान, आदि।

अन्य बाधाओं में द्विपक्षीय व्यापार समझौते, राशिपातन, अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु समझौते, अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल, आदि आते हैं।

नोट

गैर-प्रशुल्क बाधाओं के प्रकार (Types of NTBs)

प्रमुख गैर-प्रशुल्क बाधाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है :

1. आयात अभ्यंश (Import Quotas)

यह एक प्रमुख एवं प्रचलित गैर-प्रशुल्क बाधा है। आयात अभ्यंश से तात्पर्य, वस्तु की उस निश्चित मात्रा अथवा मूल्य से है जिसका समय की एक निश्चित अवधि में देश में आयात किया जा सकता है। जब अभ्यंश की भौतिक मात्रा निश्चित कर दी जाती है तो उसे **प्रत्यक्ष अभ्यंश** कहते हैं और जब उसकी मूल्य में मात्रा निश्चित कर दी जाती है तब उसे **अप्रत्यक्ष अभ्यंश** कहते हैं। इसकी लोकप्रियता का कारण यह है कि यह प्रत्यक्ष, प्रभावी और लोचशील होता है।

2. निर्यात सब्सिडी (Export Subsidy)

निर्यात सब्सिडी किसी सरकार द्वारा एक निर्यातक फर्म (अथवा उत्पादक) को दी जाने वाली आर्थिक सहायता है ताकि निर्यात वस्तुओं की कीमत में कमी की जा सके। इससे किसी फर्म को घरेलू बाजार की बजाय निर्यात बाजार में अपनी वस्तु अधिक मात्रा तथा कम कीमत में बेचने में आसानी होती है। निर्यात सब्सिडी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से दी जा सकती है, परन्तु प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडी GATT समझौता के अन्तर्गत प्रतिबन्धित है। अतः सरकारें विभिन्न प्रकार की अप्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडियाँ देती हैं; जैसे रियायती दरों पर ऋण, उनके द्वारा दिए गए प्रशुल्कों में वापसी, कमी वाले कच्चे माल के आवण्टन में उन्हें प्राथमिकता, विदेशी मुद्रा आवण्टन में प्राथमिकता, व्यापार मेले जैसी गतिविधियों के प्रोत्साहन में वित्तीय सहायता, बाजार अनुसन्धान, विज्ञापन, कर-राहत आदि में वित्तीय सहायता।

निर्यात सब्सिडी के प्रभाव (Effects of Export Subsidy)—निम्न चित्र 8.1 में एक छोटे देश के सम्बन्ध में आंशिक सन्तुलन के अन्तर्गत निर्यात सब्सिडी के आर्थिक प्रभावों को दर्शाया गया है जिसकी निर्यात सब्सिडी का आयातक देश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मान लीजिए D और S निर्यात योग्य वस्तु के घरेलू माँग तथा पूर्ति वक्र हैं तथा घरेलू बाजार सन्तुलन E बिन्दु पर है। विश्व कीमत OP_w के साथ, जो घरेलू कीमत (E) से ऊपर है, घरेलू मांग OM_1 है तथा घरेलू पूर्ति OM_2 है। माँग से पूर्ति अधिक $OM_2 > OM_1$ होने के कारण देश M_1M_2 मात्रा निर्यात करता है। निर्यात के विस्तार को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार प्रत्येक निर्यातित इकाई P_w–P_s सब्सिडी देती है। इससे घरेलू कीमत OP_s घरेलू उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं दोनों के लिए बढ़ती है। इस कीमत पर वस्तुओं की माँग OM_3 पर गिर जाती है, परन्तु पूर्ति M_3M_4 तक बढ़ जाती है। विश्व कीमत OP_w होने के कारण OP_s तथा OP_w कीमतों में अन्तर की निर्यातकों को क्षतिपूर्ति सब्सिडी के रूप में मिल जाती है और निर्यात M_1M_2 से M_2M_4 तक बढ़ जाता है। चूंकि उपभोक्ता को सब्सिडी के बाद जो कीमत देनी पड़ती है वह बढ़ जाती है, इसलिए उपभोक्ता अतिरेक (Consumer's Surplus) चित्र में H + G क्षेत्र के बराबर कम हो जाता है, परन्तु उत्पादक अतिरेक में लाभ H + G + K क्षेत्र के बराबर होता है। सरकार को पड़ने वाली सब्सिडी की कुल लागत निर्यातित मात्रा की प्रति सब्सिडी इकाई गुना होती है जो G + K + L क्षेत्र के बराबर होती है। देश को होने वाली शुद्ध कल्याण हानि त्रिभुज G तथा L हैं। संक्षेप में,

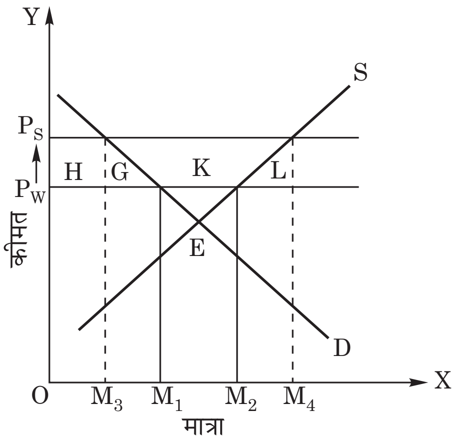

चित्र 8.1

उत्पादक अतिरेक में लाभ (Gain in Producer's Surplus)	= H + G + K

नोट

उपभोक्ता अतिरेक में हानि	
(Loss in Consumer's Surplus)	= – H – G
सब्सिडी की लागत	= – G – K – L
शुद्ध कल्याण हानि (Net Welfare Loss)	– G – L
	= – (G + L)

देश में होने वाली शुद्ध कल्याण हानि वस्तु पर दी जाने वाली सब्सिडी की लागत निर्यात से मिलने वाले राजस्व से अधिक होने के कारण होती है।

दूसरी ओर यदि देश अपनी वस्तु को बड़े पैमाने पर सब्सिडी दे रहा है तो उसकी सब्सिडी देने की लागत भी बढ़ जाती है। जैसे-जैसे उसके निर्यात में और विस्तार होता है विश्व कीमत कम हो जाती है, परिणामस्वरूप इसकी व्यापार की शर्तों में गिरावट आ जाती है, उसकी शुद्ध कल्याण हानि अधिक हो जाती है।

आयातक देशों पर सब्सिडी के प्रभाव (Effects of Subsidy on Import Countries):आयातक देश की व्यापार की शर्तों में तब सुधार होता है जब एक बड़ा देश अपने निर्यात को सब्सिडी प्रदान करता है। उसके लिए सब्सिडी वाली वस्तु की विश्व कीमत कम हो जाती है तथा वह अपने आयात की कम कीमत देता है, परन्तु कम कीमत का इसके आय वितरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब कीमतें कम कर दी जाती हैं तो उनका बुरा प्रभाव सब्सिडी युक्त आयात के साथ प्रतियोगिता करने वाले उद्योगों के श्रम तथा पूँजी पर पड़ता है यद्यपि सब्सिडीयुक्त वस्तुओं को कम कीमत का या वैसे ही वस्तु उपभोक्ताओं को लाभ होता है तथापि आयातक देशों के उत्पादकों को वही या वैसी ही वस्तु पर हानि होती है। अत: निर्यात को सब्सिडी देना अनुचित व्यापार व्यवहार समझा जाता है तथा आयातक देश ऐसी आयातित वस्तुओं पर प्रतिकारी शुल्क लगा देता है।

3. स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें (Voluntary Export Restraints–VERs): स्वैच्छिक निर्यात रुकावट (VER) एक ऐसा समझौता है जो निर्यातक देश के निर्यातकों अथवा सरकार द्वारा आयातक देश के साथ उसके निर्यातों को सीमित करने के लिए किया जाता है। यह आयातक देश द्वारा तब किया जाता है जब उसका घरेलू उद्योग बड़े पैमाने पर आयातों द्वारा पीड़ित होता है। आयात की सीमा मात्रा मूल्य अथवा बाजार के अंश के अनुसार निश्चित की जा सकती है। VERs कभी-कभार ही 'स्वैच्छिक' होता है। इन्हें निर्यातकों को विवशता में स्वीकार करना पड़ता है अन्यथा आयातक देश उन पर अधिक शक्तिशाली व्यापार बाधाओं द्वारा प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। फिर भी यदि निर्यातक देश ऊँची कीमतों पर कम निर्यात करके अधिक लाभ कमाने की आशा रखता है तो वह अपने निर्यात पर स्वैच्छिक रुकावटों को स्वीकार कर सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) तथा अन्य औद्योगिक देशों द्वारा VERs का प्रयोग जापान तथा विकासशील देशों से स्टील, टीवी, ऑटोमोबाइल्स, वस्त्र, आदि के आयात पर रोक लगाने के लिए किया गया है। GATT द्वारा प्रशुल्कों तथा कीटों पर रोक लगाने के बाद देशों ने VERs को अपनाया है, परन्तु GATT नियमों के अन्तर्गत VERs नहीं आतीं।

आयातक देश पर VER **के प्रभावों** को चित्र 8.2 में प्रदर्शित किया गया है जहाँ D_d वस्तुओं के लिए घरेलू माँग वक्र है तथा S_d वस्तुओं के लिए घरेलू पूर्ति वक्र है जो दूसरे देश को विश्व कीमत OP_w पर भेजी जाती हैं। इस कीमत पर OM घरेलू उत्पादकों द्वारा निर्यात तथा MM_3 आयात की जा रही है। अब यदि M_1M_2 के आयात कोटे की बजाय किसी निर्यातक देश द्वारा उसी मात्रा में VER अपनाई जाए तो उसके प्रभाव प्रशुल्क अथवा आयात कोटा के बराबर होंगे। VER तथा आयात कोटा के बीच एकमात्र अन्तर किराया अथवा अतिरिक्त लाभ है जो निर्यातक देश के पूर्तिकर्ताओं को जाता है। VER के मामले में घरेलू माँग वक्र D_d वहीं रहता है जबकि पूर्ति वक्र S_d बदलकर S_v हो जाता है ताकि उच्च कीमत OP_v पर सन्तुलन हो जाए। VER के साथ पूर्ति वक्र S_v यह दर्शाता है कि OP_v कीमत पर, मात्रा OM की पूर्ति आयातक देश द्वारा की जाती है तथा M_1M_2 इसके आयात पर VER है। यह मात्रा आयातक देश को बेचकर निर्यातक देश के पूर्तिकर्ता VER से किराया प्राप्त कर लेते हैं। यह क्षेत्र $a + R + b$ के बराबर होता है जो चित्र के अनुसार आयातक देश की राष्ट्रीय शुद्ध कल्याण हानि है। आयातक देश की उपभोक्ता

नोट

आर्थिक अतिरेक की कुल हानि क्षेत्र $Z+a+R+b$ है जो कि प्रशुल्क अथवा आयात कोटा के बराबर है क्षेत्र Z घरेलू उपभोक्ताओं से उत्पादकों को चला जाता है। क्षेत्र a तथा b प्रतिनिधित्व करने वाले दो त्रिभुज कुल राष्ट्रीय हानि है। क्षेत्र R उस राजस्व का प्रतीक है जो निर्यातक देश के पूर्तिकर्ताओं को VER से मिलता है जो आयातक देश की सरकार की हानि है तथा उसकी शुद्ध कल्याण हानि है। VER का आयातक देश पर एक अन्य प्रभाव यह पड़ता है कि उसकी व्यापार की शर्तें निर्यातक देश की तुलना में सुधार की बजाय उन्हें और खराब करती हैं। ऐसा इसलिए कि यह निर्यातक देश की वस्तु की कम विश्व कीमत की बजाय उसकी उच्च घरेलू कीमत देता है।

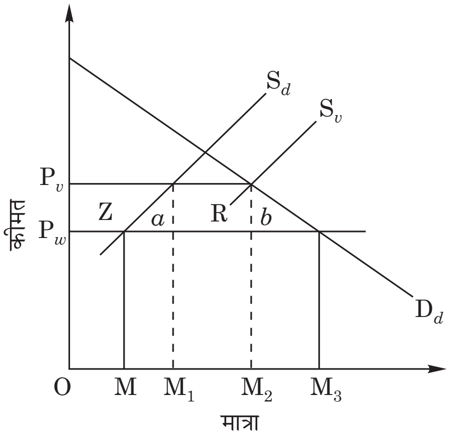

चित्र 8.2

यही नहीं VERs पक्षपाती होती हैं, क्योंकि ये समझौते न्यूनतम लागत निर्यातकों के साथ रखे जाते हैं, परन्तु वे उच्च लागत निर्यातकों से आयात की ओर ले जा सकते हैं जिससे आयातक देश का आयात बिल बढ़ा सकते हैं।

निर्यातक देश पर प्रभाव (Effects on Exporting Country)—जहाँ तक निर्यातक देश पर VER के प्रभावों का प्रश्न है उसे अतिरिक्त लाभ (किराया) का फायदा तथा व्यापार की शर्तों में सुधार मिलता है। अत: वह आयातक देश द्वारा बराबर का प्रशुल्क अथवा आयात कोटा लागू करवाने की जगह VER को प्राथमिकता देगा। चूँकि VERs स्थायी नहीं है, इसलिए निर्यातक देश बाद में इनमें छूट दिए जाने अथवा हटा लिए जाने के लिए आयातक देश पर दबाव डाल सकता है। इस प्रकार यह आयातक देशों को स्थायी प्रशुल्क अथवा कोटा के लिए मना कर सकता है।

जब तक VER निर्यातों को रोकती है जो निर्यातकों के पास अधिशेष (surplus) उत्पादन होता है। परिणामस्वरूप, निर्यात योग्य वस्तुओं की कीमत गिर जाती है और आय में कमी तथा हानि होती है। इसके कारण संसाधन अन्य उत्पादक उद्योगों की ओर जा सकते हैं। यदि किसी एक कार्टेल अथवा VER से बंधे निर्यातक किसी बड़े उद्योग से सम्बन्धित हैं तो भी VER किसी नए बाजार की खोज तक निर्यात को कम करेगी। उससे पुन: संसाधनों का पुन: आवण्टन तथा हानि हो सकती है। इस प्रकार VER से निर्यातक देश को कुल मिलाकर आर्थिक हानि का सामना करना पड़ सकता है।

4. तकनीकी बाधाएँ (Technical Barriers): आयातक देश कभी-कभी गैर-आर्थिक प्रकृति की तकनीकी व्यापार बाधाओं को अंगीकार कर अपने देश में आयात की मात्रा को घटाने का प्रयास करते हैं। तकनीकी बाधाएँ कई तरह की होती हैं जो आयात को प्रतिबन्धित करती हैं। तकनीकी बाधाओं में स्वास्थ्य एवं सुरक्षा विनियम, स्वच्छता विनियम, औद्योगिक मानक, लेबलिंग तथा पैकेजिंग विनियम, आदि आते हैं। ये विनियम विदेशी आपूर्तिकर्ताओं पर उनके माल का आयात बनाए रखने के लिए अतिरिक्त लागतों का भार डाल देते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका में विदेशी कार निर्माताओं को वहाँ उत्पादन के लिए अमेरिकी सुरक्षा एवं धुआं निकासी नियन्त्रण नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। यह बातें स्वास्थ्य स्टैण्डर्ड के सम्बन्ध में लागू की जा सकती हैं। खाद्य वस्तुओं के आयातकों को विशेष गुणवत्ता, पैकेजिंग तथा स्टैण्डर्ड की आवश्यकता होती है।

5. आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाएँ (Import Licensing Procedures): बहुत से देश अपने देश में आयात को प्रतिबन्धित करने के लिए जटिल तथा महँगी आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाओं को अपनाते हैं। आयात लाइसेन्स प्राय: ऊँची बोली लगाने वालों को दिए जाते हैं। अन्य मामलों में आयातकर्ताओं को आयात लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए एक भारी धनराशि सरकार के पास जमा करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, कुछ प्रशासनिक अड़चनों का सामना भी आयातकर्ताओं को करना पड़ता है, यथा—आयातकर्ताओं को परमिट प्राप्त करने के लिए लम्बे-लम्बे फार्म भरने पड़ते हैं, कार्यालयों का बार-बार चक्कर लगाना पड़ता है तथा सीमा शुल्क विभाग से माल छुड़ाने से तरह-तरह की अड़चनें सामने आती हैं। यह प्रक्रियाएँ प्रशुल्क की तरह ही आयात में रुकावट उत्पन्न करती हैं।

नोट

6. सीमा शुल्क मूल्यांकन तथा वर्गीकरण (Customs Valuation and Classification): सीमा शुल्क अधिकारी प्राय: आयात का मूल्यांकन वस्तुओं के लिए निर्धारित प्रशुल्क दर से अधिक करते हैं। सीमा शुल्क मूल्यांकन का एक अन्य तरीका जान बूझकर माल छोड़ने में देरी करना ताकि आयातित वस्तुओं की लागत बढ़ जाए जैसा कि आयात प्रशुल्क करता है। इसके अतिरिक्त सीमा शुल्क सूची में बहुत सी वस्तुओं का वर्णन होता है और प्रत्येक वर्ग के लिए प्रशुल्क दर का निर्धारण अलग-अलग होता है। सीमा शुल्क अधिकारी प्राय: वस्तुओं का अपना वर्गीकरण ऊँची दरों पर करके अधिक प्रशुल्क लगाते हैं। ऐसी प्रक्रियाएँ आयात को प्रतिबन्धित करती हैं, क्योंकि इससे वस्तुएँ प्राय: महँगी तथा घरेलू बाजार में गैर-प्रतिस्पर्द्धात्मक हो जाती हैं। इससे आयातकों में अनिश्चितता उत्पन्न हो जाती है।

क्या आप जानते हैं अप्रैल, 1999 तक अमेरिका में कुछ रसायनों के आयात का मूल्यांकन बीजक पर लिखी कीमत के अनुसार लगाने की बजाय अमेरिका में उत्पादित अमेरिकी रसायनों के थोक मूल्य अथवा जो अधिक हो, के अनुसार लगाते थे।

7. सरकारी वसूली (Government Procurement): सरकार अपने विभागों की आवश्यकता की वस्तुओं की पूर्ति घरेलू उत्पादों से करती है चाहे वे विदेशों से कम कीमतों पर ही क्यों न मिलें। उदाहरण के लिए अमेरिकी-खरीदी अधिनियम (Buy-Amercian Act) के अन्तर्गत अमेरिका के सरकारी विभागों अथवा एजेन्सियों को घरेलू निविदाएँ ही स्वीकार करनी होती हैं चाहे वे विदेशी निविदाओं से 12% तक अधिक मूल्य की ही क्यों न हों। रक्षा के सम्बन्ध में यह 50% अधिक होने पर भी मान्य होता है। इसी तरह, जापान सरकार विदेशी निविदाओं पर विचार नहीं करती। विदेशी आपूर्तिकर्ताओं की निविदाएँ स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने में सरकारें अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करती हैं। इसका उद्देश्य घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना होता है। इस तरह, सरकारें वांछित वस्तुओं एवं सेवाओं के सन्दर्भ में घरेलू तथा विदेशी आपूर्तिकर्ताओं के बीच भेद करती हैं।

8. प्रतिकारात्मक शुल्क (Countervailing Duty): प्रतिकारात्मक शुल्क एक तरह का आयात शुल्क अथवा आयातक देश द्वारा सब्सिडीयुक्त वस्तु की अपेक्षाकृत कम कीमत में वृद्धि हेतु लगाया गया प्रशुल्क है।

मान्यताएँ (Assumptions)

(अ) वस्तुओं की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है।

(ब) निर्यात वस्तु सब्सिडी युक्त होती है।

(स) आयातक देशों द्वारा इस वस्तु पर लगाया गया शुल्क निर्यात सब्सिडी के बराबर होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–

(*i*) आयात अभ्यंश से तात्पर्य वस्तु की निश्चित मात्रा अथवा .... से है।

(*ii*) अभ्यंश की निश्चित भौतिक मात्रा को .... अभ्यंश कहते हैं।

(*iii*) उत्पादक अतिरेक लाभ .... होता है।

(*iv*) तकनीकी बाधाएँ कई तरह की होती हैं जो आयात को .... करती है।

(*v*) सरकार अपने विभागों को आवश्यकता की वस्तुओं की पूर्ति .... से करती है।

नोट

8.4 सारांश (Summary)

- संरक्षण की सबसे अधिक लोकप्रिय विधि प्रशुल्क है जो आयातित वस्तुओं पर लगाया जाता है। प्रशुल्क अथवा तटकर का प्रयोग केवल अर्द्ध-विकसित देशों में ही नहीं, वरन् विकसित देशों में भी किया जाता है।
- परम्परागत प्रशुल्क अनुसूची व्यापारिक सन्धियों का परिणाम है। परम्परागत प्रशुल्क में घरेलू परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण समायोजन करना सम्भव नहीं होता।
- आयात अभ्यंश का आशय, वस्तु की उस निश्चित मात्रा अथवा मूल्य से है जिसका, समय की एक निश्चित अवधि में देश में आयात किया जा सकता है।
- "आयात अभ्यंश के अन्तर्गत, जिस निश्चित मात्रा का आयात किया जा सकता है उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती।"
- अभ्यंशों को संकटकालीन उपायों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा इनका त्वरित कार्यान्वयन आवश्यक होता है।
- **विश्वव्यापी आयात अभ्यंश** वह है जिसके अन्तर्गत निर्धारित मात्रा विश्व के किसी भी देश से आयात की जा सकती है।
- आयात अभ्यंश निर्धारित करते समय किसी आधार वर्ष को ध्यान में रखा जाता है किन्तु आधार वर्ष के चयन में गलती हो सकती है।
- विश्वव्यापी एवं आवंटित अभ्यंशों की तुलना में, आयात लाइसेंस प्रणाली निश्चित ही एक सुधार है, क्योंकि इससे आयात नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली ढंग से होता है।
- घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने तथा विदेशी वस्तुओं के आयात को सीमित करने के लिए सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रशुल्क अथवा तट-करों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्रतिबन्धों का भी सहारा लेती हैं।
- जब अभ्यंश की भौतिक मात्रा निश्चित कर दी जाती है तो उसे **प्रत्यक्ष अभ्यंश** कहते हैं और जब उसकी मूल्य में मात्रा निश्चित कर दी जाती है तब उसे **अप्रत्यक्ष अभ्यंश** कहते हैं।
- निर्यात सब्सिडी किसी सरकार द्वारा एक निर्यातक फर्म (अथवा उत्पादक) को दी जाने वाली आर्थिक सहायता है ताकि निर्यात वस्तुओं की कीमत में कमी की जा सके।
- स्वैच्छिक निर्यात रुकावट (VER) एक ऐसा समझौता है जो निर्यातक देश के निर्यातकों अथवा सरकार द्वारा आयातक देश के साथ उसके निर्यातों को सीमित करने के लिए किया जाता है।
- बहुत से देश अपने देश में आयात को प्रतिबिन्धित करने के लिए जटिल तथा महँगी आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाओं को अपनाते हैं।

8.5 शब्दकोश (Keywords)

- **परमिट–** अनुमति जो सरकार द्वारा अधिकारिक तौर पर लिखित रूप में दी जाती है।
- **निविदाएँ–** आवश्यक रकम लेकर वांछित वस्तुएँ जुटा देने या काम पूरा करने का लिखित वादा।
- **अधिनियम–** विधान के अंतर्गत बनाया गया नियम, ऐक्ट।

8.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रशुल्क से क्या तात्पर्य है। यह कितने प्रकार का होता है।
2. प्रशुल्क अथवा तटकर से आप क्या समझते हैं। वसूली के आधार पर प्रशुल्क कितने प्रकार के होते हैं।

नोट

3. आयात अभ्यंश से आप क्या समझते हैं। इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4. आयात अभ्यंश के उद्देश्य बताइये तथा एकपक्षीय एवं द्विपक्षीय अभ्यंश में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. गैर-प्रशुल्क बाधाओं से क्या अभिप्राय है? गैर-प्रशुल्क बाधाओं के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
6. स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें क्या हैं? निर्यातक तथा आयातक देशों पर इनके प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
7. निर्यात सब्सिडियाँ क्या हैं? आयातक तथा निर्यातक देशों पर निर्यात सब्सिडी के प्रभावों की विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. ✗	2. ✓	3. ✗	4. ✓
	5. ✓	6. ✗		
2.	1. (ग)	2. (क)	3. (ग)	4. (क)
	5. (ग)			
3.	1. मूल्य	2. प्रत्यक्ष	3. H + G + K	4. प्रतिबंधित
	4. घरेलू उत्पादों			

8.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई—9: राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर प्रशुल्क एवं अभ्यंश का आर्थिक प्रभाव (Economic Effects of Tariff and Quotas on National Income, Output and Employment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
9.1 प्रशुल्क के प्रभाव (Effects of Tariff)
9.2 प्रशुल्क के अन्य प्रमुख प्रभाव (Other Important Effects of Tariff)
9.3 अभ्यंश के प्रभाव (Effects of Quotas)
9.4 आयात अभ्यंश एवं प्रशुल्क: एक तुलनात्मक विवेचन (Quotas Compared with Tariff)
9.5 सारांश (Summary)
9.6 शब्दकोश (Keywords)
9.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
9.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- प्रशुल्क एवं अभ्यंश के प्रभाव को समझने में।
- आयात अभ्यंश एवं प्रशुल्क का तुलनात्मक विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जब कोई देश प्रशुल्क लगाता है तब अर्थव्यवस्था का प्रत्येक क्षेत्र किसी न किसी रूप में प्रभावित होता है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था किसी दूसरे साम्य दिशा की ओर स्थानान्तरित हो जाती है। इस प्रकार का प्रभाव भी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ता है। बहुत से मामलों में अभ्यंश एवं प्रशुल्क के समान प्रभाव होते हैं। यदि किसी वस्तु की मांग एवं पूर्ति के वक्र बेलोचदार हैं तो चाहे देश प्रशुल्क का प्रयोग करे अथवा आयात अभ्यंश का प्रभाव में कोई अंतर नहीं होता।

9.1 प्रशुल्क के प्रभाव (Effects of Tariff)

प्रशुल्क के प्रभावों का विश्लेषण दो सन्दर्भों में किया जा सकता है :

I. वस्तु विशेष के सन्दर्भ में प्रशुल्क के प्रभाव अर्थात् **आंशिक साम्य विश्लेषण** के अन्तर्गत प्रशुल्क के प्रभाव।

नोट

II. सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में प्रशुल्क के प्रभाव अर्थात् **सामान्य साम्य विश्लेषण** के अन्तर्गत प्रशुल्क के प्रभाव।

I. आंशिक साम्य विश्लेषण के अन्तर्गत प्रशुल्क के प्रभाव

(Effects of Tariff under Partial Equilibrium Analysis)

चार्ल्स पी. किण्डलबर्गर ने आंशिक साम्य के अन्तर्गत निम्न प्रशुल्क प्रभावों का उल्लेख किया है :

सामान्य रूप से प्रशुल्क के निम्न प्रभाव होते हैं :

(1) राजस्व प्रभाव (Revenue Effect),

(2) संरक्षण प्रभाव (Protection Effect),

(3) उपभोग प्रभाव (Consumption Effect),

(4) पुनर्वितरण प्रभाव (Redistribution or Transfer Effect),

(5) व्यापार की शर्तों पर प्रभाव (Terms of Trade Effect),

(6) प्रतिस्पर्धात्मक प्रभाव (Competitive Effect)

(7) आय प्रभाव (Income Effect),

(8) भुगतान-सन्तुलन प्रभाव (Balance of Payment Effect)।

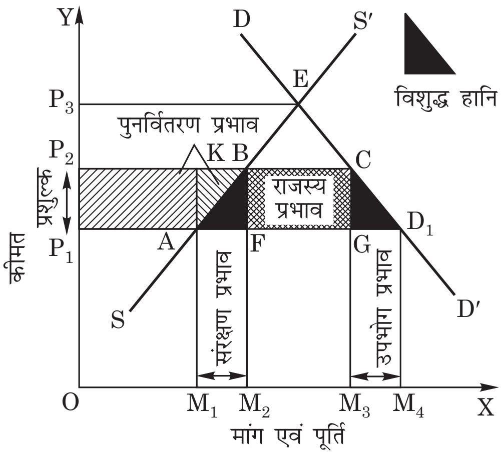

चित्र 9.1

1. राजस्व प्रभाव—यदि प्रशुल्क पूर्ण रूप से निषेधात्मक होते हैं तो उनसे आय नहीं मिलती, किन्तु यदि वे पूर्ण रूप से निषेधात्मक नहीं होते तो उनमें सरकार को कुछ आय प्राप्त होती है। निषेधात्मक प्रशुल्क का अर्थ है कि प्रशुल्क दर इतनी ऊँची रहती है कि आयात पूर्ण रूप से प्रतिबन्धित हो जाते हैं। यदि प्रशुल्क ऐसी वस्तुओं के आयात पर लगाया जाता है जिसका देश में बिल्कुल उत्पादन नहीं होता तो ऐसे प्रशुल्क का पूर्ण संरक्षण प्रभाव नहीं पड़ता और सरकार को राजस्व प्राप्त होता है, किन्तु इस स्थिति में कुछ न कुछ संरक्षणात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि अन्य उत्पादनों की माँग होने लगती है। प्रशुल्क का वास्तविक संरक्षण प्रभाव न हो, इसके लिए आवश्यक है कि जिस वस्तु पर प्रशुल्क लगाया जाए, उसके घरेलू उत्पादन पर भी आयात कर की मात्रा के अनुसार उत्पादन कर लगाया जाए। जो प्रशुल्क निषेधात्मक से कम होते हैं तथा उसी अनुपात में घरेलू उत्पादन पर उत्पादन शुल्क नहीं लगता तो ऐसे प्रशुल्क का आय एवं संरक्षण दोनों प्रकार का प्रभाव होता है। प्रस्तुत रेखाचित्र में SS′ वस्तु की घरेलू पूर्ति का वक्र है, जिसे दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी कहते हैं। DD′ घरेलू माँग वक्र है। व्यापार न होने की स्थिति में वस्तु की कीमत OP_3 पर निश्चित होती है जहाँ घरेलू माँग और पूर्ति में सन्तुलन है। स्वतन्त्र व्यापार होने की स्थिति में कीमत गिरकर OP_1 हो जाती है जहाँ घरेलू उत्पादन OM_1 है तथा आयात की मात्रा M_1M_4 है।

अब वस्तु के आयात पर P_1P_2 के बराबर प्रशुल्क लगा दिया जाता है जिससे घरेलू बाजार में कीमत बढ़कर OP_2 हो जाती है और घरेलू उत्पादन OM_4 से बढ़कर OM_2 हो जाता है तथा उपभोग OM_4 से घटकर OM_3 हो जाता है तथा आयात M_1M_4 से घटकर M_2M_3 हो जाता है। इस स्थिति में राजस्व प्रभाव निम्न होगा :

यदि प्रशुल्क P_1P_3 के बराबर होता तो वह निषेधात्मक होता तथा राजस्व प्रभाव शून्य होता, किन्तु प्रशुल्क केवल P_1P_2 है। P_1P_2 प्रति इकाई प्रशुल्क जब आयात मात्रा M_2M_3 (अथवा Xq) पर लगाया जाता है तब सरकार को प्रशुल्क से कुल आयात पर BFGC क्षेत्रफल के बराबर राजस्व मिलता है। यही प्रशुल्क का **राजस्व प्रभाव** है।

नोट

2. संरक्षण प्रभाव–सामान्य रूप से प्रशुल्क का संरक्षणात्मक प्रभाव यह होता है कि आयात की मात्रा नियन्त्रित हो जाने से देश के उद्योगों को संरक्षण प्राप्त होता है, क्योंकि इन उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता नहीं करनी पड़ती। इसके फलस्वरूप घरेलू उत्पादन में वृद्धि होती है। रेखाचित्र 8.1 से स्पष्ट है कि प्रशुल्क के फलस्वरूप घरेलू कीमत बढ़कर OP_2 हो जाती है जिससे घरेलू उत्पादन OM_1 से बढ़कर OM_2 हो जाता है। यह बढ़ा हुआ घरेलू उत्पादन **संरक्षण प्रभाव** को स्पष्ट करता है। उपर्युक्त रेखाचित्र में M_1M_2 **संरक्षण प्रभाव** है। एक दिये हुए प्रशुल्क के संरक्षण प्रभाव की सीमा पूर्ति की लोच पर निर्भर रहती है। यदि पूर्ति की लोच बहुत अधिक है तो संरक्षण प्रभाव अधिक होगा तथा बेलोचदार पूर्ति होने पर कम होगा।

टास्क सेमुअलसन प्रमेय क्या है?

3. उपभोग प्रभाव–सामान्य रूप से प्रशुल्क का उपभोग पर यह प्रभाव होता है कि प्रशुल्क से कीमतों में वृद्धि हो जाती है जिससे घरेलू उपभोग की मात्रा कम हो जाती है। रेखाचित्र 9.1 से स्पष्ट है कि प्रशुल्क के पूर्व OP_1 कीमत पर उपभोग की मात्रा OM_4 थी जो प्रशुल्क के बाद की कीमत OP_2 पर घटकर OM_3 रह गई है। प्रशुल्क के कारण उपभोग M_3M_4 घट जाती है। यही **उपभोग प्रभाव** है।

4. पुनर्वितरण प्रभाव–प्रशुल्क का घरेलू कीमतों पर यह प्रभाव पड़ता है कि कीमतों में वृद्धि हो जाती है इसके फलस्वरूप उत्पादकों की आय में वृद्धि होती है पर उपभोक्ताओं की आय एक सीमा तक कम हो जाती है अर्थात् पुनर्वितरण प्रभाव की प्रवृत्ति उत्पादकों के पक्ष में होने की होती है। रेखाचित्र 9.1 से स्पष्ट है कि प्रशुल्क लगने के बाद उत्पादक अपने पूर्ति वक्र के बिन्दु A से B तक पहुँच जाते हैं, जो उनके द्वारा की जा रही वस्तु की पूर्ति के विस्तार का सूचक है। उत्पादन के विस्तार के कारण उत्पादकों की आय में P_1ABP_2 वृद्धि हो जाती है।

P_1ABP_2 के दो भाग हैं : P_1AKP_2 तथा AKB क्षेत्रफल। P_1AKP_2 अतिरिक्त आय प्रशुल्क से पहले कार्य कर रहे उत्पादकों को प्राप्त होती है जबकि प्रशुल्क के कारण उत्पादन क्षेत्र में आये नये उत्पादकों को AKB क्षेत्रफल के बराबर आय प्राप्त होती है। इस प्रकार कुल क्षेत्रफल P_1ABP_2 $(= P_1AKP_2 + AKB)$ **पुनर्वितरण प्रभाव** है जो प्रशुल्क के कारण उपभोक्ताओं से उत्पादकों की ओर स्थानान्तरित होता है।

प्रशुल्क से उत्पन्न विशुद्ध हानि

जब प्रशुल्क लगाया जाता है तब उपभोक्ता की बचत की कुल हानि $P_1P_2CD_1$ क्षेत्रफल के बराबर होती है। उपभोक्ता की कुल हानि में से BFGC क्षेत्रफल के बराबर मात्रा सरकार को राजस्व के रूप में स्थानान्तरित हो जाती है तथा P_1ABP_2 क्षेत्रफल पुनर्वितरण प्रभाव के अन्तर्गत उत्पादकों को स्थान्तरित हो जाता है। चित्र में त्रिभुज AFB तथा CGD_1 समुदाय की विशुद्ध हानि को प्रदर्शित करते हैं क्योंकि उपभोक्ता हानि का यह भाग किसी को भी स्थानान्तरित नहीं होता और विलुप्त हो जाता है त्रिभुज AFB की विशुद्ध हानि उत्पादक पक्ष की हानि है जबकि त्रिभुज CGD_1 उपभोग पक्ष की हानि प्रदर्शित करता है।

5. व्यापार की शर्तों पर प्रभाव–सामान्य दशाओं में, प्रशुल्क लगाने वाले देश में प्रशुल्क का प्रभाव यह होगा कि उसे आयात सस्ते प्राप्त होंगे अर्थात् उसे व्यापार से लाभ होगा। प्रशुल्क लगाकर देश वस्तु का आयात सीमित करके, आयातित वस्तुओं की कीमत को कम कर सकता है जिस पर कि अन्य देश उसे बेचते हैं। इससे यह मान्यता है कि विदेश प्रशुल्क का पूर्ण अथवा आंशिक भुगतान करता है। व्यापार की शर्तों पर प्रशुल्क के प्रभाव को निम्न रेखाचित्र 9.2 से समझाया जा सकता है :

मान लो दो देश A और B हैं। देश A को कपड़े के उत्पादन में तुलनात्मक हानि है अत: A, देश B से कपड़े का आयात करता है जिसे कपड़े के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ है। पहले हम व्यापार के पूर्व की दशा पर विचार करेंगे।

रेखाचित्र में देश A का कपड़े का मांग वक्र DD है तथा SS उसका पूर्ति वक्र है। बिन्दु R व्यापार-पूर्व का सन्तुलन बिन्दु है। अब A और B दोनों में व्यापार होता है और A देश, B से कपड़े का आयात करता है रेखा Sf, देश A के लिए घरेलू

नोट

उत्पादन और आयात से उपलब्ध कपड़े की कुल मात्रा है तथा बिन्दु V स्वतन्त्र व्यापार का सन्तुलन बिन्दु है। यहां कपड़े की कीमत OP_1 होगी तथा A में इसका कुल उपभोग OQ_1 होगा। A देश कपड़े की OM_1 मात्रा का देश में उत्पादन करेगा तथा M_1Q_1 मात्रा का B से आयात करेगा।

अब यदि A कपड़े के आयात पर प्रशुल्क लगाता है तो A का पूर्ति वक्र Sf +t हो जाता है तथा अब नया सन्तुलन बिन्दु W है तथा A में कपड़े का मूल्य बढ़कर OP_2 हो जाता है। देश A में घरेलू उत्पादन की वृद्धि एवं कपड़े के उपभोग में कमी होने से, कपड़े का आयात M_1Q_1 से घटकर M_2Q_3 हो जाता है एवं साथ ही, विदेशी कपड़े की पूर्ति कीमत घटकर OP_3 हो जाती है। इस प्रकार **प्रशुल्क लगाने के फलस्वरूप व्यापार की शर्तें देश A के पक्ष में हो जाती हैं।**

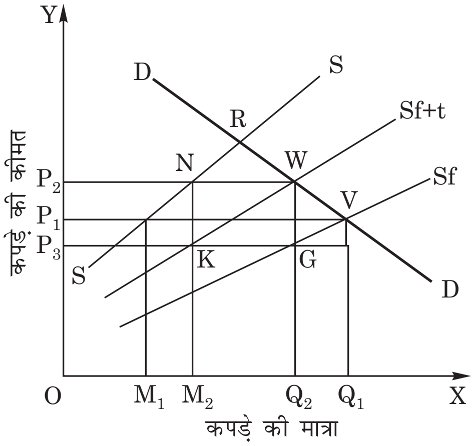

चित्र 9.2

A देश की सरकार आयातित कपड़े की प्रति इकाई पर P_2P_3 आयात कर वसूल करती है अथवा कुल कर WNKG के बराबर होता है। सरकार इस अतिरिक्त आय को या तो अन्य कार्यों में व्यय कर सकती है अथवा अन्य करों में कमी करके इसका लाभ लोगों को मिल सकता है। यद्यपि A देश के उपभोक्ता, प्रशुल्क के बाद कपड़े की अधिक कीमत देते हैं, किन्तु विदेशी उत्पादकों को कम भुगतान किया जा सकता है।

6. प्रतिस्पर्धात्मक प्रभाव–प्रशुल्क देश की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को क्षीण करता है। जब कोई देश घरेलू उद्योगों को संरक्षण देने की दृष्टि से प्रशुल्क लगाता है तब घरेलू उद्योग विदेशी प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा कवच प्राप्त कर लेते हैं और अपने विकास को आगे बढ़ाते हैं, किन्तु प्रशुल्क का सुरक्षा कवच घरेलू उद्योगों के लिए स्थाई नहीं होना चाहिए।

क्या आप जानते हैं यदि प्रशुल्क द्वारा विदेशी प्रतियोगिता को दूर रखा जाता है तो घरेलू उद्योगों में अकुशल, मोटा एवं सुस्त होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

इस प्रकार अधिक प्रशुल्क का प्रतिस्पर्धात्मक प्रभाव घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा के अयोग्य बनाता है जबकि प्रशुल्क को धीरे-धीरे हटाया जाना घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाता है।

7. आय प्रभाव–प्रशुल्क का प्रभाव यह होता है कि विदेशों में व्यय की जाने वाली राशि में कमी हो जाती है। जो आय विदेशों में व्यय नहीं की जाती उसकी पूरी की पूरी बचत नहीं होती वरन् उसमें से अधिकांश देश में ही व्यय कर दी जाती है। यदि पूर्ण रोजगार से कम की स्थिति विद्यमान है तो इससे मुद्रा, वास्तविक आय और रोजगार में वृद्धि होगी। इस आधार पर प्रशुल्क का समर्थन किया जाता है, किन्तु यदि देश में पहले ही पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान है तो प्रशुल्क लगाने से देश में मुद्रा प्रसार होगा तथा इसका वास्तविक आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अतः कहा जा सकता है कि जब देश में अप्रयुक्त संसाधन हो तो प्रशुल्क लगाने से घरेलू व्यय और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

जब कोई देश अपने आयातों पर प्रशुल्क लगाता है तब दूसरे देश का निर्यात हतोत्साहित होता है और उसके आय और रोजगार दोनों में कमी होती है अतः यह कहा जाता है कि प्रशुल्क वाले देश में आय में वृद्धि, निर्यातकों देश के बल पर होती है, इसलिए इस नीति को **'पड़ोसी को गरीब बनाने की नीति'** (Beggar my neighbour policy) कहा जाता है। यही कारण है कि आय प्रभाव को प्रशुल्क का अच्छा प्रभाव नहीं माना जाता।

8. भुगतान सन्तुलन प्रभाव–आय प्रभाव की तुलना में प्रशुल्क का भुगतान सन्तुलन प्रभाव कम निश्चित होता है। प्रशुल्क का प्रत्यक्ष प्रभाव यह होता है कि आयात की मात्रा कम हो जाती है, किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि आयातों का मूल्य कम हो जाता है। सम्भव है कि अब आयात करने वाला, पहले की तुलना में आयात पर अधिक

नोट

व्यय करे जो उसकी मांग पर निर्भर रहता है। यदि आयात की मांग बहुत लोचदार है तो प्रशुल्क से होने वाली कीमतों में वृद्धि आयात की भौतिक मात्रा कम कर देगी तथा कुल क्रय कम हो जाएगा। पर यदि मांग बेलोचदार है तो प्रशुल्क के बाद आयात व्यय बढ़ जाएगा जिसके कारण देश का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाएगा।

II. सामान्य साम्य विश्लेषण के अन्तर्गत प्रशुल्क के प्रभाव (Effects of Tariff under General Equilibrum Analysis): चार्ल्स पी. किण्डलबर्गर के अनुसार, जब कोइ देश प्रशुल्क लगाता है तब अर्थव्यवस्था का प्रत्येक क्षेत्र किसी-न-किसी रूप में प्रभावित होता है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था किसी दूसरी साम्य दशा की ओर स्थानान्तरित हो जाती है। **किण्डलबर्गर** के शब्दों में, "प्रशुल्क व्यापार, कीमत, उत्पादन और उपभोग को परिवर्तित करता है, संसाधनों का पुनर्आबंटन करता है, साधनों के प्रयोग अनुपात को बदल देता है, आय का पुनर्वितरण करता है, रोजगार सरंचना को बदलता है और भुगतान सन्तुलन को प्रभावित करता है।"

9.2 प्रशुल्क के अन्य प्रमुख प्रभाव (Other Important Effects of Tariff)

1. साधन गतिशीलता पर प्रभाव—मुण्डेल ने दो पारस्परिक सम्बन्धित तथ्य प्रकट किये हैं जो साधनों की गतिशीलता पर प्रशुल्क के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। **प्रथम**, व्यापार की रुकावटों के कारण साधनों की गतिशीलता प्रोत्साहित होती है और **द्वितीय**, साधनों की गतिशीलता में बढ़ी हुई रुकावटें व्यापार को प्रोत्साहित करती हैं।

अपने विश्लेषण के लिए मुण्डेल ने दो देश, दो वस्तुएँ एवं दो साधनों का एक मॉडल प्रस्तुत किया है जिसकी निम्न तीन विशेषताएँ हैं :

(*i*) दोनों देशों में उत्पाद-फलन समान है,

(*ii*) साधन गहनता का सेम्युलसन का विचार विद्यमान है, एवं

(*iii*) अपूर्ण विशिष्टीकरण है।

मुण्डेल का मत है कि स्वतन्त्र व्यापार से वस्तु कीमत समानीकरण के फलस्वरूप साधन कीमत समानीकरण हो जाएगा, भले ही साधनों में गतिशीलता न हो। उपर्युक्त ढांचे में मुण्डेल यह स्पष्ट करते हैं कि आयातों पर प्रशुल्क से साधन गतिशीलता प्रोत्साहित होगी।

हम दो देश A और B, दो वस्तुएं X और Y तथा दो साधन श्रम और पूंजी लेते हैं। देश A श्रम प्रचुर और पूंजी स्वल्प है अपेक्षाकृत B देश के। X वस्तु पूंजी-प्रधान तथा Y श्रम-प्रधान है। सेम्युलसन की साधन कीमत समानीकरण की सारी मान्यताएं विद्यमान हैं। **मुण्डेल** की व्याख्या रेखाचित्र 9.3 से स्पष्ट है।

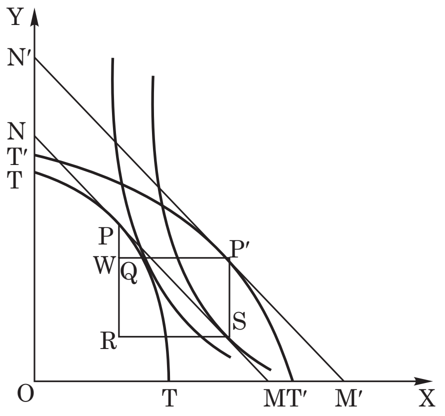

चित्र 9.3

प्रस्तुत रेखाचित्र में TT देश A का उत्पादन सम्भावना वक्र है। स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत देश A का सन्तुलन बिन्दु P उत्पादन बिन्दु पर है तथा उपभोग बिन्दु S है। NPM अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा है। देश A श्रम-प्रधान वस्तु Y का निर्यात करता है (PR) तथा B देश से पूंजी-प्रधान वस्तु X का आयात (PR) करता है। Y वस्तु के सन्दर्भ में देश A की आय ON है तथा X के सन्दर्भ में OM है। व्यापार प्रतिबन्ध का अभाव और साधनों की गतिशीलता न होने पर, देशों में वस्तु कीमत और साधन कीमत समानीकरण हो गया है।

यदि प्रशुल्क निषेधात्मक है तो व्यापार के बाद देश A के उत्पादन और उपभोग का सन्तुलन Q बिन्दु पर होगा जहां पूंजी की सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाती है और श्रम की घट जाती है। स्टाल्पर-सेम्युलसन के प्रमेय में भी यह सिद्ध किया गया है। इसका प्रभाव यह होगा कि B देश से A देश को पूंजी का प्रवाह प्रोत्साहित होगा, अत: देश A अब पूँजी प्रचुर हो जाएगा तथा उसका उत्पादन सम्भावना वक्र TT दायीं और बढ़कर T′T′ हो जाएगा और किसी भी कीमत अनुपात

नोट

पर यह पूंजी-प्रधान वस्तु X के पक्ष में होगा जिससे T′T′ उसी अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा पर (N′P′M′ और NPM दोनों समानान्तर है) P′ बिन्दु को स्पर्श करेगी।

B देश से पूंजी का प्रवाह A देश में उस समय तक होता रहेगा जब तक कि दोनों देशों में पूंजी और श्रम की सीमान्त उत्पादकता बराबर नहीं हो जाती। चूंकि A का प्रशुल्क अन्तर्राष्ट्रीय कीमत को प्रभावित नहीं कर पाता, B देश में सीमान्त उत्पादकता स्थिर रहती है।

मुण्डेल का निष्कर्ष इस प्रकार है–प्रशुल्क के फलस्वरूप उस साधन का प्रतिफल बढ़ जाता है जिसका गहनता से प्रयोग किया जाता है अत: उस साधन का प्रवाह दूसरे देश से प्रशुल्क लगाने वाले देश में होता है। अन्त में, साधनों की कीमतें समान हो जाती हैं, साधन का प्रवाह रुक जाता है तथा वस्तुओं की कीमतें समान हो जाती हैं। अब प्रशुल्क प्रभावहीन हो जाता है तथा नये सन्तुलन को प्रभावित किये बिना, प्रशुल्क को हटाया जा सकता है। नये सन्तुलन में व्यापार की शर्तें एवं साधनों की कीमतें, प्रशुल्क की पहले की स्थिति के समान होंगी।

2. घरेलू आय के वितरण पर प्रभाव–प्रशुल्क का घरेलू आय के वितरण पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका अध्ययन **सेम्युसलन, स्टाल्पर, मेजलर** और **लेकेस्टर** (Lancaster) ने किया है।

प्रतिष्ठित और नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने यह तो बताया कि विशिष्टीकरण और व्यापार से किस प्रकार एक देश लाभान्वित होता है, परन्तु वे यह स्पष्ट नहीं कर पाये कि वास्तविक आय का लाभ उत्पत्ति के साधनों में किस प्रकार वितरित होता है।

अब हम संक्षेप में प्रशुल्क का घरेलू आय के वितरण पर प्रभाव के सम्बन्ध में विभिन्न आधुनिक मतों का प्रतिपादन करेंगे।

हैक्सचर-ओहलिन के विचार–हैक्सचर-ओहलिन के अनुसार यदि व्यापार के फलस्वरूप साधनों का सापेक्षिक प्रतिफल समान हो जाता है तो जिस देश में जो साधन स्वल्प है, वहां व्यापार को सीमित करके साधन की स्वल्पता को बनाये रखा जाएगा। अत: जिस देश में श्रम स्वल्प और भूमि प्रचुर है, वह प्रशुल्क लगाकर, व्यापार की मात्रा को सीमित करेगा जिससे स्वल्प साधन-श्रम लाभान्वित होगा। इस प्रकार सेम्युलसन ने प्रशुल्क के सस्ते श्रम के तर्क (Pauper Labour Argument) का समर्थन किया है। अब प्रश्न यह है कि क्या प्रशुल्क से स्वल्प साधन के निरपेक्ष अंश में भी वृद्धि होगी? चूंकि प्रशुल्क से प्राय: वास्तविक राष्ट्रीय आय कम हो जाती है, इस बात की सम्भावना रहती है कि स्वल्प साधन का निरपेक्ष अथवा वास्तविक अंश कम हो जाएगा, भले ही प्रशुल्क से उसके सापेक्षिक अंश में वृद्धि हो जाए। उदाहरण के लिए, 75 की राष्ट्रीय आय का 50%, 100 की राष्ट्रीय आय के 40% से खराब है।

स्टॉप्लर-सेम्युलसन प्रमेय (Stopler-Samuelson Theorem)

स्टॉप्लर-सेम्युलसन ने हैक्सचर-ओहलिन के उक्त मत को स्वीकार नहीं किया और 1941 में अपने निबन्ध में यह मत प्रतिपादित किया कि प्रशुल्क के फलस्वरूप स्वल्प साधन के सापेक्षिक और निरपेक्ष–दोनों अशों में वृद्धि होती है। उन्होंने बताया कि दो साधनों वाली अर्थ-व्यवस्था में प्रशुल्क से स्वल्प साधन की निरपेक्ष मजदूरी में वृद्धि हो जाएगी। व्यापार की शर्तें एवं समग्र रूप से वास्तविक आय पर होने वाले प्रभाव का विचार किये बिना ही, यदि प्रशुल्क के फलस्वरूप दूसरे देश द्वारा बदले की भावना का कदम न उठाया जाये तो प्रशुल्क से उस साधन के सापेक्षिक अंश और वास्तविक आय में वृद्धि होगी जो संरक्षित उद्योग में सापेक्षिक रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार एक श्रम-स्वल्प देश संरक्षण अपनाकर श्रम की वास्तविक मजदूरी में वृद्धि कर सकता है, भले ही उससे, समग्र रूप से राष्ट्रीय आय कम हो जाए। प्रशुल्क का हानिकारक प्रभाव देश के प्रचुर साधन पर पड़ेगा अर्थात् सापेक्षिक रूप से प्रचुर साधन के सापेक्षिक और निरपेक्ष दोनों अंश कम हो जाएंगे।

मेजलर के विचार

स्टॉप्लर-सेम्युलसन के उपर्युक्त विवेचन में यह मान्यता निहित है कि संरक्षण का देश की बाह्य व्यापार शर्तों (आयात-निर्यात की बाह्य कीमतों) में कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु मेजलर ने 1949 में अपने एक लेख में बताया कि स्टॉप्लर-सेम्युलसन के निष्कर्ष में संशोधन की आवश्यकता है। प्रशुल्क के स्वल्प साधन की आय कैसे प्रभावित होती है यह प्रशुल्क के फलस्वरूप व्यापार की शर्तों में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर रहता है। यदि इन परिवर्तनों को

नोट

ध्यान में रखा जाए तो यह स्पष्ट किया जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय मांग की कुल दशाओं में, प्रशुल्क से लाभान्वित होने की अपेक्षा, स्वल्प साधन को हानि होती है।

स्टॉप्लर-सेम्युलसन प्रमेय के सम्बन्ध में लेंकेस्टर के विचार

लेंकेस्टर ने भी स्टॉप्लर-सेम्युलसन के प्रमेय में संशोधन किया है। सेम्युलसन ने बताया कि प्रशुल्क से किसी भी वस्तु के सन्दर्भ में स्वल्प साधन की वास्तविक आय बढ़ जाती है, किन्तु लेंकेस्टर कहते हैं कि दो वस्तु दो साधन मॉडल में भी यह सही नहीं है। स्टॉप्लर-सेम्युलसन की मान्यताओं में लेंकेस्टर ने यह मान्यता भी जोड़ दी है कि श्रम की आय एक वस्तु पर तथा पूंजीपति की आय पूर्ण रूप से दूसरी वस्तु पर व्यय की जाती है। इससे उस वस्तु की कुल मांग में परिवर्तन हो जाएगा जिस पर समस्त मजदूरी व्यय की जाती है। सम्भव है पूंजी प्रचुर देश पूंजी-प्रधान वस्तु को श्रम-वस्तु के रूप में प्रयुक्त करे। समग्र रूप से देश की मांग ऐसी हो कि पूंजी-प्रधान वस्तुओं का आयात करना पड़े। यदि देश आयातों पर प्रशुल्क लगाता है तो इससे श्रम को लाभ नहीं होगा वरन् पूँजी को लाभ होगा जिसका आयात प्रतिस्थापित उद्योग में गहनता से प्रयोग होता है। स्टॉल्पर-सेम्युलसन प्रमेय उसी समय लागू होता है जब देश श्रम-प्रधान वस्तुओं का आयात करे।

निष्कर्ष—जहां तक स्टॉप्लर-सेम्युलसन की मान्यता का प्रश्न है, वास्तविक जगत में, प्रशुल्क का व्यापार की शर्तों पर काफी प्रभाव पड़ता है तथा देश के उपभोग-स्तर का भी उत्पादन पर प्रभाव होता है। यदि इन सब बातों पर विचार किया जाये तो स्टॉप्लर-सेम्युलसन प्रमेय के बारे में सामान्य कथन सम्भव नहीं है।

9.3 अभ्यंश के प्रभाव (Effects of Quotas)

आयात अभ्यंशों के निम्न प्रभाव होते हैं—

(1) कीमत प्रभाव (Price Effect)—आयात-अभ्यंशों से देश में आयात की मात्रा सीमित हो जाती है, अत: सामान्य रूप से कीमतों की प्रवृत्ति बढ़ने की होती है। यद्यपि प्रशुल्क (Tariff) से भी कीमतें बढ़ती हैं, किन्तु इसमें एक मुख्य अन्तर होता है। प्रशुल्क से कीमतों में होने वाली वृद्धि उस मात्रा तक सीमित रहती है जितनी कि प्रशुल्क की मात्रा में से, विदेशों में कीमतों में होने वाली कमी को घटाने से होती है, परन्तु आयात अभ्यंश में आयात का नियन्त्रण निरपेक्ष रूप से होता है जिसमें विदेशी कीमतों के घटने का कोई प्रभाव नहीं होता, अत: कीमतें किसी भी सीमा तक बढ़ सकती हैं। आयात अभ्यंश के फलस्वरूप कीमतों में किस सीमा तक वृद्धि होगी, यह तीन बातों पर निर्भर रहता है—

(*i*) किस सीमा तक विदेशी पूर्ति को नियन्त्रित किया जाता है?

(*ii*) आयात करने वाले देश में मांग की लोच कितनी है? एवं

(*iii*) घरेलू और विदेशी पूर्ति की लोच कितनी है?

आयात अभ्यंशों के फलस्वरूप कीमत प्रभाव को **एल्सवर्थ** और **हेट**[1] (Haight) ने रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है—

संलग्न रेखाचित्र में DD घरेलू मांग वक्र है तथा S_2S पूर्ति वक्र है जिसमें विदेशी आयात भी शामिल है। स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत सन्तुलन कीमत OP अथवा EM है जहां मांग-पूर्ति बराबर हैं तथा व्यापार की जाने वाली मात्रा OM है। अब यदि आयात करने वाला देश OM_1 के बराबर आयात अभ्यंश निर्धारित कर देता है तो अब पूर्ति वक्र बदलकर S_2QS_1 हो जाता है। अब आयात पूर्ति वक्र का QS_1 अंश यह बताता है कि आयात अभ्यंश सीमा OM_1 के बाद पूर्ति वक्र पूर्ण रूप से बेलोचदार हो जाता है। अब नयी सन्तुलन कीमत E_1M_1 अथवा OP_1 पर निर्धारित होती है, अर्थात् कीमत में PP_1 वृद्धि हो जाती है।

मांग और पूर्ति की दशाओं में होने वाले परिवर्तन के अनुसार कीमतों में वृद्धि की सीमा भिन्न-भिन्न होगी।

1. F.A. Haight, *French Import Quotas*.

नोट

(2) व्यापार की शर्तों पर प्रभाव–आयात अभ्यंश का देश की व्यापार शर्तों पर भी प्रभाव पड़ता है और व्यापार शर्तें एक देश के लिए या तो कम अनुकूल अथवा अधिक अनुकूल हो जाती है। इसे संलग्न रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता है–

प्रस्तुत रेखाचित्र में OA देश A का प्रस्ताव वक्र है जो X वस्तु का निर्यात कर रहा है तथा OB देश B का प्रस्ताव वक्र है जो Y वस्तु का निर्यात कर रहा है। स्वतन्त्र व्यापार के अन्तर्गत OP व्यापार की शर्तें हैं। मान लो कि देश A अब अपने देश में Y वस्तु के आयातों को OD पर सीमित कर देता है। अब X और Y के बीच व्यापार की शर्तों में परिवर्तन हो जाता है तथा व्यापार की शर्तें OP′ अथवा OP″ अथवा इन दोनों के बीच कोई भी कीमत हो सकती हैं। नयी व्यापार की शर्तें आयात अभ्यंश लगाने वाले देश के अधिक अथवा कम अनुकूल हो सकती हैं। यदि आयातकर्ता अतिरिक्त लाभ प्राप्त करते हैं तो अभ्यंशों से व्यापार की शर्तों में उस सीमा तक सुधार होता है जिस सीमा तक विदेशी प्रस्ताव वक्र लोचदार होता है, किन्तु यदि वस्तु को निर्यात करने वाले विदेशी उत्पादक सुसंगठित हैं तो व्यापार की शर्तें A देश के विपक्ष में भी हो सकती हैं।

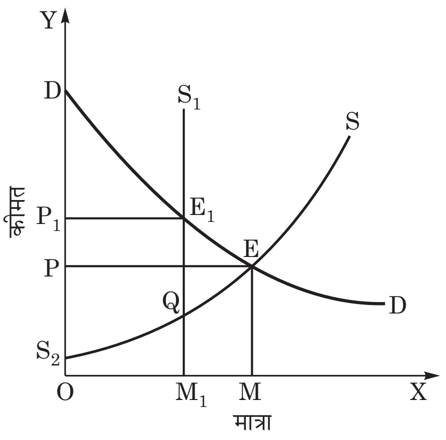

चित्र 9.4

(3) आय प्रभाव (Income Effect)–आयात अभ्यंश का जो आय प्रभाव होता है वह समान मात्रा के प्रशुल्क से अधिक होता है। इसका कारण स्पष्ट है। आयात अभ्यंश की सीमा के आयात की सीमान्त प्रवृत्ति शून्य हो जाती है। इससे आय का रिसाव (Leakage) कम हो जाता है एवं गुणक का मूल्य बढ़ जाता है एवं आय में वृद्धि होती है। प्रशुल्क की तुलना में, आयात अभ्यंश का यह विस्तारवादी प्रभाव विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है जिन्हें भुगतान-शेष की कठिनाइयों (मुद्रा प्रसार के कारण) का सामना करना पड़ता है।

(4) भुगतान-शेष प्रभाव (Effect on Balance of Payment)–आयात अभ्यंश का प्रयोग व्यापार शेष को अनुकूल बनाये रखने अथवा निर्यात की तुलना में आयातों की अधिकता को कम करने के लिए कई देशों द्वारा किया गया है। यह तर्क दिया जाता है कि आयातों को सीमित करके, आयात अभ्यंश से व्यापार में घाटे की स्थिति समाप्त हो जाती है तथा भुगतान-शेष की स्थिति में सुधार होता है। यह भी कहा जाता है कि मुद्रा संकुचन और अवमूल्यन की तुलना में, आयात अभ्यंश की विधि, आयातों को सीमित करने के लिए कम हानिकारक है।

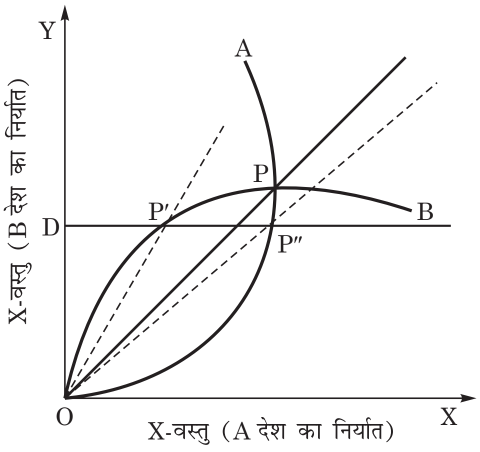

चित्र 9.5

किन्तु जो भुगतान-शेष में सुधार के लिए, अभ्यंशों का समर्थन करते हैं, वे अभ्यंश के निर्यात प्रभाव को भूल जाते हैं। वास्तव में, अभ्यंशों के निर्यात पर निम्न तीन प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव होता है–

(*i*) विदेशी निर्यातक, आयात अभ्यंश वाले देश में कम बेच पाते हैं अत: वे अभ्यंश वाले देश से अधिक आयात भी नहीं कर पाते।

(*ii*) चूंकि अभ्यंश के कारण, आयात अभ्यंश वाले देश में कीमतें बढ़ जाती हैं, अत: उसके निर्यात की कीमतों में भी वृद्धि हो जाती है जिससे निर्यात हतोत्साहित होते हैं।

नोट

(*iii*) आयात अभ्यंश के फलस्वरूप विदेशों में प्रतिशोध की भावना जाग्रत होती है और यह प्रतिशोध प्रशुल्क की तुलना में अधिक होता है।

उपर्युक्त दोषों के कारण इस बात में सन्देह प्रकट किया जाता है कि आयात अभ्यंश से भुगतान-शेष में सुधार किया जा सकता है।

(5) अन्य प्रभाव (संरक्षण, उपभोग, पुनर्वितरण एवं आगम प्रभाव)—बहुत-से मामलों में, प्रशुल्क एवं आयात अभ्यंश के प्रभाव प्रायः समान होते हैं। यदि किसी वस्तु की मांग और पूर्ति के वक्र बेलोचदार हैं, तो चाहे देश प्रशुल्क का प्रयोग करे अथवा आयात अभ्यंश का, प्रभाव में कोई अन्तर नहीं होता। इन सारे प्रभावों को निम्न रेखाचित्र में समझाया गया है—

संलग्न रेखाचित्र में वस्तु का घरेलू पूर्ति वक्र SS′ तथा मांग वक्र DD′ है। व्यापार के अभाव में कीमत P_3 बिन्दु पर OP_3 निर्धारित होगी जहां घरेलू पूर्ति वक्र, मांग वक्र के बराबर है। यदि स्वतन्त्र व्यापार होता है तो कीमत OP_1 बिन्दु पर निर्धारित होगी जहां घरेलू उत्पादन OM_1 के बराबर है तथा आयात M_1M_4 के बराबर है। हम यह मान लें कि आयात की विदेशी पूर्ति पूर्ण रूप से लोचदार है जिससे विदेशी पूर्ति, प्रशुल्क या अभ्यंश के फलस्वरूप अप्रभावित रहती है। ऐसी दशा में यदि सरकार देश में आयात का कोटा M_2M_3 (अर्थात् BC) निर्धारित कर देती है तब घरेलू पूर्ति OM_1 से बढ़कर OM_2 हो जाएगी। M_2M_3 आयात मात्रा के साथ देश में वस्तु की कुछ उपलब्ध मात्रा $OM_2 + M_2M_3 = OM_3$ होगी जबकि अभ्यंश निर्धारित होने से पहले यह मात्रा $OM_1 + M_1M_4 = OM_4$ थी। अभ्यंश के बाद वस्तु की मात्रा में कमी होने के कारण वस्तु का मूल्य OP_1 से बढ़कर OP_2 हो जाएगा।

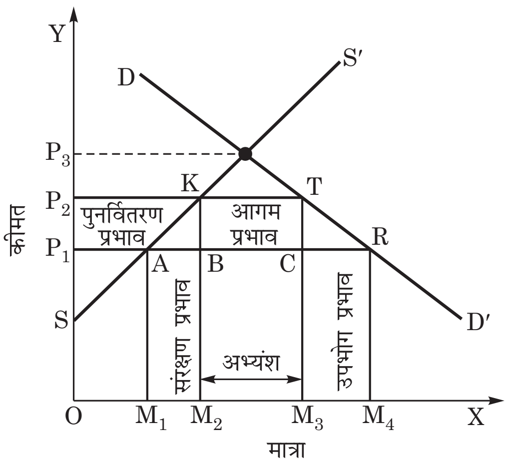

चित्र 9.6

अभ्यंश के निम्नांकित प्रभाव एक साथ उत्पन्न होते हैं—

(*i*) **संरक्षण प्रभाव**—अभ्यंश M_2M_3 निर्धारित हो जाने से घरेलू पूर्ति OM_1 से बढ़कर OM_2 हो जाती है—यह M_1M_2 संरक्षण प्रभाव है जो कि धनात्मक होता है।

(*ii*) **उपभोग प्रभाव**—अभ्यंश के कारण घरेलू उपभोग OM_4 से घटकर OM_3 हो जाता है। यह M_3M_4 उपभोग प्रभाव है जो ऋणात्मक होता है।

(*iii*) **पुनर्वितरण प्रभाव**—अभ्यंश के कारण वस्तु मूल्य की P_1P_2 वृद्धि प्रशुल्क की भांति P_1AKP_2 के बराबर पुनर्वितरण प्रभाव उत्पन्न करती है।

(*iv*) **आगम प्रभाव**—यदि प्रशुल्क के स्थान पर आयात अभ्यंश लगाया जाता जिससे M_2M_3 आयात सीमित हो जाता है तो विभिन्न प्रभाव वही होते हैं जो प्रशुल्क के होते हैं, किन्तु प्रशुल्क एवं आयात अभ्यंश के प्रभाव में एक अन्तर है—प्रशुल्क में, आयातक देश सरकार को KBCM के बराबर आगम प्राप्त होता है, किन्तु यदि M_2M_3 आयात अभ्यंश निर्धारित कर दिया जाता है, तो आयातों की कीमत बढ़कर OP_2 हो जाती है। अब प्रश्न है कि कीमतों में जो वृद्धि होती है उसका लाभ किसे प्राप्त होता है?

सामान्य रूप से यह कीमतों में वृद्धि आयातकों को प्राप्त होता है और जो घरेलू आयात करने वाला लाइसेंस प्राप्त करने में सफल हो जाता है, उसे ही बढ़ी हुई आय प्राप्त होती है। किन्तु यदि सरकार, आयात-लाइसेंस की नीलामी करती है तो फिर वह आय प्राप्त कर लेती है तथा फिर यह प्रभाव प्रशुल्क के समान ही होता है।

आयात अभ्यंशों की लोकप्रियता के कारण

सन् 1930 के बाद विश्व के कई देशों ने आयात अभ्यंशों का प्रयोग, प्रशुल्क के स्थान पर किया। धीरे-धीरे प्रशुल्क के स्थान पर अभ्यंश का प्रयोग बढ़ने लगा। इस प्रणाली की लोकप्रियता के अग्रलिखित तीन कारण हैं–

(1) **विदेशी पूर्ति की लोचहीनता** (Inelasticity of Foreign Supply)–यदि आयात की जाने वाली वस्तुओं की पूर्ति प्राय: बेलोचदार है तो प्रशुल्क से न तो आयात किये जाने वाले देशों में उसकी कीमत बढ़ायी जा सकती है और न ही आयातों की मात्रा को कम किया जा सकता है। इसमें केवल व्यापार की शर्तों में सुधार किया जा सकता है तथा विदेशियों पर कर लगाकर, सरकार अपनी आय बढ़ा सकती है, किन्तु यदि सरकार आयातित वस्तुओं की कीमतें बढ़ाकर आय का पुनर्वितरण करना चाहती है तो यह अभ्यंश प्रणाली से ही सम्भव है, क्योंकि बेलोचदार विदेशी पूर्ति (आयातों की) होने से, आयातों पर अभ्यंश द्वारा प्रतिबन्ध लगाकर ही घरेलू कीमतों में वृद्धि की जा सकती है।

(2) **आयातों के प्रतिबन्ध की निश्चितता** (Certainty of Control over Imports)–अभ्यंश प्रणाली से आयातों को प्रत्यक्ष एवं निश्चित रूप से नियन्त्रित किया जा सकता है। प्रशुल्क लगाकर यह पहले से नहीं जाना जा सकता कि निश्चित अवधि में कितनी मात्रा का आयात किया जाएगा, अत: इस तर्क पर निश्चित आयात अभ्यंश श्रेष्ठ है।

(3) **प्रशासन सम्बन्धी लोच** (Administrative Flexibility)–अभ्यंशों की लोकप्रियता का तीसरा कारण यह है कि इनका प्रशासन अधिक लोचपूर्ण एवं प्रभावशील है। इन्हें आसानी से लागू एवं परिवर्तित किया जा सकता है जबकि प्रशुल्क की दरों में परिवर्तन करने के लिए कानूनी अड़चनें होती हैं।

9.4 आयात अभ्यंश एवं प्रशुल्क : एक तुलनात्मक विवेचन (Quotas Compared With Tariff)

यद्यपि समग्र रूप से प्रशुल्क एवं आयात अभ्यंशों के प्रभावों में समानता होती है, फिर इन दोनों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के प्रभावों को देखते हुए कुछ महत्वपूर्ण अन्तर हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) किसी भी रूप में कोटा प्रणाली से जिन समस्याओं का जन्म होता है वे प्रशुल्क से पैदा नहीं होतीं। प्रशुल्क लगाकर विदेशी वस्तुओं की कीमतें बढ़ाकर व्यापार को सीमित किया जाता है, परन्तु प्रशुल्क का भुगतान कर असीमित मात्रा में आयात किया जा सकता है। आयात अभ्यंश लगाकर एक निश्चित मात्रा के बाद, आयातों को रोक दिया जाता है। **एल्सबर्थ**[1] के अनुसार, "वे (अभ्यंश) प्रत्यक्ष और परिमाणात्मक प्रतिबन्ध के उपाय हैं–व्यापार का पूर्ण निषेध करने हेतु आधी मंजिल।"

(2) प्रशुल्क के अन्तर्गत मांग और पूर्ति की बाजार शक्ति के द्वारा निर्धारित होता है कि कौन आयात करेगा तथा कितनी मात्रा में। उत्पादक, प्रशुल्क का भुगतान करने पर चाहे जितनी मात्रा में आयात कर सकता है, किन्तु अभ्यंश प्रणाली में केवल एक निश्चित मात्रा तक ही आयात किया जा सकता है और इसका निर्धारण बाजार की शक्तियों द्वारा नहीं होता। **हैबरलर** के अनुसार, "अधिकतम कीमत निश्चित करने के समान आयात अभ्यंशों की निश्चित करना भी कीमत संयन्त्र में हस्तक्षेप है जो कीमत प्रणाली के लिए अलग है।"[2]

(3) जहां तक संरक्षण और पुनर्वितरण के प्रभाव का प्रश्न है, अभ्यंश और प्रशुल्क में ज्यादा भिन्नता नहीं होती। व्यवहार में आयात अभ्यंश अधिक संरक्षणात्मक होते हैं, किन्तु जहां तक आय प्रभाव का प्रश्न है, इन दोनों में यह अन्तर है कि जहां प्रशुल्क से सरकार को आय प्राप्त होती है आयात अभ्यंशों से कोई आय प्राप्त नहीं होती। यह अन्तर आयात लाइसेन्सों की सरकार द्वारा नीलामी के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है।

---

1. Ellsworth, *International Economics*, p. 383.
2. "The fixing of import quotas, like the fixing of maximum prices, is an interference with the price machanism which is alien to the price system." —*Haberler*

नोट

(4) प्रशुल्कों के अन्तर्गत, इस बात का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि कितनी मात्रा में आयात किया जाएगा, किन्तु आयात अभ्यंश प्रणाली के अन्तर्गत यह पहले से ही जाना जा सकता है कि आयात कितनी मात्रा में किया जाएगा।

(5) प्रशुल्कों का यह प्रभाव होता है कि अकुशल विदेशी उत्पादकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे प्रशुल्क का भार नहीं सह पाते जबकि अभ्यंश प्रणाली में विदेशी कुशल और अकुशल उत्पादकों पर समान प्रभाव होता है।

(6) अभ्यंश प्रणाली में घरेलू कीमतों में जो वृद्धि होती है, वह प्रशुल्कों से होने वाली वृद्धि से अधिक होती है, क्योंकि अभ्यंशों के अन्तर्गत आयात की जाने वाली मात्रा निश्चित रहती है। अत: यदि देश या विदेश में मांग और पूर्ति में परिवर्तन होता है तो उससे आयातों में परिवर्तन नहीं होता वरन् कीमतों में परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से उपभोक्ताओं के लिए अभ्यंश प्रणाली अधिक खर्चीली है।

जहां तक प्रशुल्कों की कीमतों के प्रभाव से सम्बन्ध है, उनका कीमतों पर पड़ने वाला प्रभाव बहुत कुछ स्पष्ट होता है।

(7) प्रशुल्क की तुलना में, अभ्यंश प्रणाली, प्रत्यक्ष नियन्त्रण की एक आपत्तिजनक प्रणाली है। अभ्यंश प्रणाली में यदि एक घरेलू उत्पादक, भले ही वह अधिक कुशल है एवं सस्ते में उत्पादन कर सकता है, अभ्यंश पाने में असफल हो जाता है तो वह अपना उत्पादन नहीं बढ़ा पाता और यदि अकुशल उत्पादक लाइसेंस पा जाता है तो अकुशलता का प्रश्रय मिलता है।

नोट्स प्रशुल्क प्रणाली विदेशी प्रतियोगिता से घरेलू बाजार को संरक्षण देती है, किन्तु अभ्यंश प्रणाली इससे भी आगे जाकर अकुशल घरेलू उत्पादन को, न केवल विदेशी उत्पादकों से संरक्षण देती है वरन् अपने ही देश के कुशल उत्पादकों से भी संरक्षण देती है।

(8) अभ्यंश और प्रशुल्क में एक महत्वपूर्ण अन्तर और भी है। यदि देश में सम्भावित एकाधिकार को प्रशुल्क द्वारा संरक्षण मिलता है तो एकाधिकारी अन्तर्राष्ट्रीय कीमत में प्रशुल्क की मात्रा मिलाकर इतनी ही ऊंची कीमत वसूल कर सकता है। इससे अधिक कीमत देने को कोई उपभोक्ता तैयार नहीं होगा, क्योंकि उतनी ही कीमत में वह विदेशों से उस वस्तु को प्राप्त कर सकता है। किन्तु यदि प्रशुल्क को कोटा (अभ्यंश) में परिवर्तित कर दिया जाय तो सम्भावित घरेलू एकाधिकार, वास्तविक एकाधिकार में परिवर्तित हो जाएगा, क्योंकि अब सम्भावित एकाधिकारी वस्तुओं का मूल्य बढ़ा सकता है, इसके साथ ही उसे विदेशी आयातों से प्रतियोगिता का कोई खतरा नहीं रहता। इसीलिए कहा जाता है कि **आयात अभ्यंश, आयात करने वाले के एकाधिकार की स्थापना करते हैं जो उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक है। अभ्यंश प्रणाली को समाप्त कर, उसे प्रशुल्क में परिवर्तित करने का यह एक मजबूत तर्क है।**

(9) जहां तक भुगतान-शेष को प्रभावित करने का प्रश्न है, इस बिन्दु पर भी प्रशुल्क और आयात अभ्यंश इन दोनों में अन्तर है। प्रशुल्क लगाने के फलस्वरूप, सीमित अथवा अधिक मात्रा में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता रहता है जिसका भुगतान-शेष पर प्रभाव होता है, किन्तु आयात अभ्यंश में यह सम्भव नहीं है, क्योंकि इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार निरपेक्ष रूप से सीमित हो जाता है एवं देश का भुगतान-शेष को सन्तुलन में लाने का प्रयत्न भी बिल्कुल प्रतिबन्धित हो जाता है।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कुछ सीमा तक स्थिरता एवं वृद्धि बनाये रखने की दृष्टि से प्रशुल्क नीति को आयात अभ्यंश के स्थान पर प्राथमिकता दी जाती है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. आंशिक साम्य विश्लेषण के अंतर्गत प्रशुल्क के प्रभाव होते हैं–
   (क) राजस्व प्रभाव (ख) संरक्षण प्रभाव (ग) उपभोग प्रभाव (घ) उपरोक्त सभी।
2. प्रशुल्क के प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है–
   (क) दो संदर्भों में (ख) तीन संदर्भों में (ग) 4 संदर्भों में (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. यदि प्रशुल्क पूर्ण रूप से निषेधात्मक होते हैं तो उनसे–
   (क) आय नहीं मिलती (ख) लाभ नहीं मिलता (ग) हानि होती है (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. विशुद्ध हानि उत्पन्न होती है–
   (क) आयात से (ख) निर्यात से (ग) प्रशुल्क से (घ) अभ्यंश से।
5. देश की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को क्षीण करता है–
   (क) प्रशुल्क प्रभाव (ख) अभ्यंश प्रभाव (ग) गैर-प्रशुल्क प्रभाव (घ) इनमें से कोई नहीं।

9.5 सारांश (Summary)

- यदि प्रशुल्क पूर्ण रूप से निषेधात्मक होते हैं तो उनसे आय नहीं मिलती, किन्तु यदि वे पूर्ण रूप से निषेधात्मक नहीं होते तो उनमें सरकार को कुछ आय प्राप्त होती है। निषेधात्मक प्रशुल्क का अर्थ है कि प्रशुल्क दर इतनी ऊँची रहती है कि आयात पूर्ण रूप से प्रतिबन्धित हो जाते हैं।
- सामान्य रूप से प्रशुल्क का उपभोग पर यह प्रभाव होता है कि प्रशुल्क से कीमतों में वृद्धि हो जाती है जिससे घरेलू उपभोग की मात्रा कम हो जाती है।
- सामान्य दशाओं में, प्रशुल्क लगाने वाले देश में प्रशुल्क का प्रभाव यह होगा कि उसे आयात सस्ते प्राप्त होंगे अर्थात् उसे व्यापार से लाभ होगा। प्रशुल्क लगाकर देश वस्तु का आयात सीमित करके, आयातित वस्तुओं की कीमत को कम कर सकता है जिस पर कि अन्य देश उसे बेचते हैं।
- प्रशुल्क देश की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को क्षीण करता है। जब कोई देश घरेलू उद्योगों को संरक्षण देने की दृष्टि से प्रशुल्क लगाता है तब घरेलू उद्योग विदेशी प्रतिस्पर्धा से सुरक्षा कवच प्राप्त कर लेते हैं और अपने विकास को आगे बढ़ाते हैं, किन्तु प्रशुल्क का सुरक्षा कवच घरेलू उद्योगों के लिए स्थाई नहीं होना चाहिए।
- प्रशुल्क के फलस्वरूप उस साधन का प्रतिफल बढ़ जाता है जिसका गहनता से प्रयोग किया जाता है अत: उस साधन का प्रवाह दूसरे देश से प्रशुल्क लगाने वाले देश में होता है।
- आयात-अभ्यंशों से देश में आयात की मात्रा सीमित हो जाती है, अत: सामान्य रूप से कीमतों की प्रवृत्ति बढ़ने की होती है।
- आयात अभ्यंश का देश की व्यापार शर्तों पर भी प्रभाव पड़ता है और व्यापार शर्तें एक देश के लिए या तो कम अनुकूल अथवा अधिक अनुकूल हो जाती है।
- आयात अभ्यंश का प्रयोग व्यापार शेष को अनुकूल बनाये रखने अथवा निर्यात की तुलना में आयातों की अधिकता को कम करने के लिए कई देशों द्वारा किया गया है।
- आयात अभ्यंश, आयात करने वाले के एकाधिकार की स्थापना करते हैं जो उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक है। अभ्यंश प्रणाली को समाप्त कर, उसे प्रशुल्क में परिवर्तित करने का यह एक मजबूत तर्क है।

9.6 शब्दकोश (Keywords)

नोट

- **कवच–** भेदी, वर्म, छाल।
- **तटस्थता–** उदासीनता, निरपेक्ष।
- **गहनता–** गहराई।

9.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रशुल्क के प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
2. आंशिक साम्य विश्लेषण के अंतर्गत प्रशुल्क के प्रभागों की विवेचना कीजिए।
3. प्रशुल्क का व्यापार की शर्तों पर क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरण देकर समझाइए।
4. अभ्यंश के प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।
5. आयात अभ्यंश एवं प्रशुल्क का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (घ) 2. (क) 3. (क) 4. (ग)
5. (क)

9.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई–10: राजनैतिक अर्थव्यवस्था की गैर-प्रशुल्क बाधाएँ और उनके निहितार्थ (Political Economy of Non-Tariff Barriers and their Implication)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 राजनैतिक अर्थव्यवस्था की गैर प्रशुल्क बाधाएँ और उनके निहितार्थ (Political Economy of Non-Tariff Barriers and their Implication)

10.2 सारांश (Summary)

10.3 शब्दकोश (Keywords)

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- राजनैतिक अर्थव्यवस्था की गैर प्रशुल्क बाधाएँ एवं उनके निहितार्थ का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने तथा विदेशी वस्तुओं के आयात को सीमित करने के लिए सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रशुल्क अथवा तट-करों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्रतिबन्धों को भी सहारा लेती हैं। सरकारों द्वारा आयात के लिए गैर-प्रशुल्क बाधाएं (NTBs) खड़ी करना प्रशासनिक उपाय के रूप में होते हैं।

10.1 राजनैतिक अर्थव्यवस्था की गैर प्रशुल्क बाधाएं और उनके निहितार्थ (Political Economy of Non-Tariff Barriers and their Implication)

गैर प्रशुल्क बाधाओं को निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है–

मात्रात्मक व्यापार प्रतिबन्धों (Quantitative Trade Restrictions) के अन्तर्गत आयात अभ्यंश, प्रशुल्क अभ्यंश, स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें (Voluntary Export Restrains–VERs), सुव्यवस्थित विपणन व्यवस्था अथवा अनुबन्ध (Orderly Marketing Arrangement or Agreement–OMAs), बहु तन्तु व्यवस्था (Multi Fibre Arrange-ment–MFA), आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

राजकोषीय उपायों (Fiscal Measures) के अन्तर्गत निर्यात अथवा उत्पादन सब्सिडी, निर्यात ऋण सब्सिडी, निर्यात पर कर राहत, सरकारी वसूली, प्रति-राशिपातन शुल्क (Anti-Dumping Duty), प्रतिकार शुल्क (Countervailing Duties), आदि आते हैं।

नोट

प्रशासनिक, प्रामाणिक तथा विनियमनों (Administrative, Standards and Regulations) से तात्पर्य है स्वास्थ्य, आरोग्य तथा सुरक्षा विनिमय, पर्यावरण (प्रदूषण) नियन्त्रण, सीमा मूल्यांकन तथा वर्गीकरण, मार्किंग तथा पैकेजिंग आवश्यकता, आयात लाइसेन्स कार्यवाही, सरकारी व्यापार एवं एकाधिकार, आयात की सीमाओं पर देरी, सरकारी कर्मचारियों को देश में बनी चीजें खरीदने के आदेश या स्वदेशी खरीद प्रचार अभियान, आदि।

अन्य बाधाओं में द्विपक्षीय व्यापार समझौते, राशिपातन, अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु समझौते, अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल, आदि आते हैं।

प्रमुख गैर-प्रशुल्क बाधाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

1. आयात अभ्यंश (Import Quotas)

यह एक प्रमुख एवं प्रचलित गैर-प्रशुल्क बाधा है। आयात अभ्यंश से तात्पर्य, वस्तु की उस निश्चित मात्रा अथवा मूल्य से है जिसका समय की एक निश्चित अवधि में देश में आयात किया जा सकता है। जब अभ्यंश की भौतिक मात्रा निश्चित कर दी जाती है तो उसे **प्रत्यक्ष अभ्यंश** कहते हैं और जब उसकी मूल्य में मात्रा निश्चित कर दी जाती है तब उसे **अप्रत्यक्ष अभ्यंश** कहते हैं। इसकी लोकप्रियता का कारण यह है कि यह प्रत्यक्ष, प्रभावी और लोचशील होता है।

2. निर्यात सब्सिडी (Export Subsidy)

निर्यात सब्सिडी किसी सरकार द्वारा एक निर्यातक फर्म (अथवा उत्पादक) को दी जाने वाली आर्थिक सहायता है ताकि निर्यात वस्तुओं की कीमत में कमी की जा सके। इससे किसी फर्म को घरेलू बाजार की बजाय निर्यात बाजार में अपनी वस्तु अधिक मात्रा तथा कम कीमत में बेचने में आसानी होती है। निर्यात सब्सिडी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से दी जा सकती है, परन्तु प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडी GATT समझौता के अन्तर्गत प्रतिबन्धित है। अतः सरकारें विभिन्न प्रकार की अप्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडियां देती हैं; जैसे रियायती दरों पर ऋण, उनके द्वारा दिए गए प्रशुल्कों में वापसी, कमी वाले कच्चे माल के आबण्टन में उन्हें प्राथमिकता, विदेशी मुद्रा आबण्टन में प्राथमिकता, व्यापार मेले जैसी गतिविधियों के प्रोत्साहन में वित्तीय सहायता, बाजार अनुसन्धान, विज्ञापन, कर-राहत, आदि में वित्तीय सहायता।

निर्यात सब्सिडी के प्रभाव (Effects of Export Subsidy)— निम्न चित्र 10.1 में एक छोटे देश के सम्बन्ध में आर्थिक सन्तुलन के निर्यात सब्सिडी के आर्थिक प्रयासों को दर्शाया गया है जिसकी निर्यात सब्सिडी का आयातक देश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मान लीजिए D और S निर्यात योग्य वस्तु के घरेलू मांग तथा पूर्ति वक्र हैं तथा घरेलू बाजार सन्तुलन E बिन्दु पर है। विश्व कीमत OP_w के साथ, जो घरेलू कीमत (E) से ऊपर है, घरेलू मांग OM_1 है तथा घरेलू पूर्ति OM_2 है। मांग से पूर्ति अधिक $OM_2 > OM_1$ होने के कारण देश M_1M_2 मात्रा निर्यात करता है। निर्यात के विस्तार को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार प्रत्येक निर्यातक इकाई पर $P_w - P$, सब्सिडी देती है। इससे घरेलू कीमत OP, घरेलू उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं दोनों के लिए बढ़ती है। इस कीमत पर वस्तुओं की मांग OM_3 पर गिर जाती है, परन्तु पूर्ति M_3M_4 तक बढ़ जाती है। विश्व कीमत OP_w होने के कारण OP_s तथा OP_w कीमतों में अन्तर की निर्यातकों को क्षतिपूर्ति सब्सिडी के रूप में मिल जाती है और निर्यात M_1M_2 से M_2M_4 तक बढ़ जाता है। चूंकि उपभोक्ता को सब्सिडी के बाद जो कीमत देनी पड़ती है वह बढ़ जाती है, इसलिए उपभोक्ता अतिरेक (Consumer's Surplus) चित्र में H + G क्षेत्र के बराबर कम हो जाता है, परन्तु उत्पादक अतिरेक में लाभ H + G + K क्षेत्र के बराबर होता है। सरकार को पड़ने वाली सब्सिडी की कुल लागत निर्यातित मात्रा की प्रति सब्सिडी इकाई गुना होती है जो G + K + L क्षेत्र के बराबर होती है। देश को होने वाली शुद्ध कल्याण हानि त्रिभुज G तथा L हैं। संक्षेप में,

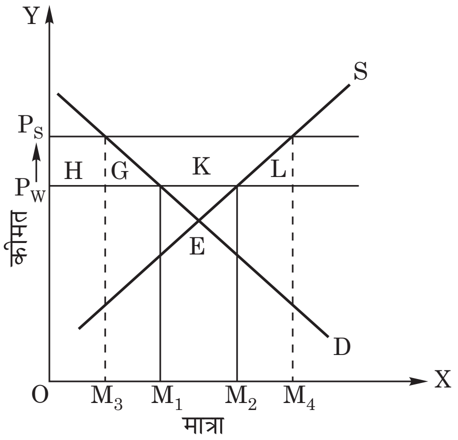

चित्र 10.1

नोट

उत्पादक अतिरेक में लाभ
(Gain in Producer's Surplus) = H + G + K

उत्पादक अतिरेक में हानि
(Loss in Producer's Surplus) = – H – G

सब्सिडी की लागत = H + G + K

शुद्ध कल्याण हानि (Net Welfare Loss) = – (G + L)

देश में होने वाली शुद्ध कल्याण हानि वस्तु पर दी जाने वाली सब्सिडी की लागत निर्यात से मिलने वाले राजस्व से अधिक होने के कारण होती है।

दूसरी ओर यदि देश अपनी वस्तु को बड़े पैमाने पर सब्सिडी दे रहा है तो उसकी सब्सिडी देने की लागत भी बढ़ जाती है। जैसे-जैसे उसके निर्यात में और विस्तार होता है। विश्व कीमत कम हो जाती है, परिणामस्वरूप इसकी व्यापार की शर्तों में गिरावट आ जाती है, उसकी शुद्ध कल्याण हानि अधिक हो जाती है।

आयातक देशों पर सब्सिडी के प्रभाव (Effects of Subsidy on Import Countries)—आयातक देश की व्यापार की शर्तों में तब सुधार होता है जब एक बड़ा देश अपने निर्यात को सब्सिडी प्रदान करता है। उसके लिए सब्सिडी वाली वस्तु की विश्व कीमत कम हो जाती है तथा वह अपने आयात की कम कीमत देता है, परन्तु कम कीमत का इसके आय वितरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब कीमतें कम कर दी जाती हैं तो उनका बुरा प्रभाव सब्सिडी युक्त आयात के साथ प्रतियोगिता करने वाले उद्योगों के श्रम तथा पूंजी पर पड़ता है। यद्यपि सब्सिडीयुक्त वस्तुओं को कम कीमत का या वैसे ही वस्तु उपभोक्ताओं को लाभ होता है तथापि आयातक देशों के उत्पादकों को वही या वैसी ही वस्तु पर हानि होती है।

नोट्स निर्यात को सब्सिडी देना अनुचित व्यापार व्यवहार समझा जाता है तथा आयातक देश ऐसी आयातित वस्तुओं पर प्रतिकारी शुल्क लगा देता है।

3. स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें (Voluntary Export Restraints—VERs)

स्वैच्छिक निर्यात रुकावट (VER) एक ऐसा समझौता है जो निर्यातक देश के निर्यातकों अथवा सरकार द्वारा आयातक देश के साथ उसके निर्यातों को सीमित करने के लिए किया जाता है। यह आयातक देश द्वारा तब किया जाता है जब उसका घरेलू उद्योग बड़े पैमाने पर आयातों द्वारा पीड़ित होता है। आयात की सीमा मात्रा मूल्य अथवा बाजार के अंश के अनुसार निश्चित की जा सकती है। VERs कभी-कभार ही 'स्वैच्छिक' होता है। इन्हें निर्यातकों को विवशता में स्वीकार करना पड़ता है अन्यथा आयातक देश उन पर अधिक शक्तिशाली व्यापार बाधाओं द्वारा प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। फिर भी यदि निर्यातक देश ऊंची कीमतों पर कम निर्यात करके अधिक लाभ कमाने की आशा रखता है तो वह अपने निर्यात पर स्वैच्छिक रुकावटों को स्वीकार कर सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) तथा अन्य औद्योगिक देशों द्वारा VERs का प्रयोग जापान तथा विकासशील देशों से स्टील, टीवी, ऑटोमोबाइल्स, वस्त्र, आदि के आयात पर रोक लगाने के लिए किया गया है। GATT द्वारा प्रशुल्कों तथा कोटों पर रोक लगाने के बाद देशों ने VERs को अपनाया है, परन्तु GATT नियमों के अन्तर्गत VERs नहीं आतीं।

आयातक देश पर VER **के प्रभावों** को चित्र में प्रदर्शित किया गया है जहाँ D_d वस्तुओं के लिए घरेलू मांग वक्र है तथा S_d वस्तुओं के लिए घरेलू पूर्ति वक्र है जो दूसरे देश को विश्व कीमत OP_w पर भेजी जाती है। इस कीमत पर OM घरेलू उत्पादकों द्वारा निर्यात तथा MM_3 आयात की जा रही है। अब यदि M_1M_2 के आयात कोटे की बजाय किसी निर्यातक देश द्वारा उसी मात्रा में VER अपनाई जाए तो उसके प्रभाव प्रशुल्क अथवा आयात कोटा के बराबर होंगे। VER तथा आयात कोटा के बीच एकमात्र अन्तर किराया अथवा अतिरिक्त लाभ है जो निर्यातक देश के

नोट

पूर्तिकर्ताओं को जाता है। VER के मामले में घरेलू मांग वक्र D_d वहीं रहता है जबकि पूर्ति वक्र S_d बदलकर S_v हो जाता है ताकि उच्च कीमत OP_v पर सन्तुलन हो जाए। VER के साथ पूर्ति वक्र S_v यह दर्शाता है कि OP_v कीमत पर, मात्रा OM की पूर्ति आयातक देश द्वारा की जाती है तथा M_1M_2 इसके आयात पर VER है। यह मात्रा आयातक देश को बेचकर निर्यातक देश के पूर्तिकर्ता VER से किराया प्राप्त होता है जो चित्र के अनुसार आयातक देश की राष्ट्रीय शुद्ध कल्याण हानि है। आयातक देश की उपभोक्ता अतिरेक की कुल हानि क्षेत्र $Z + a + R + b$ है जो कि प्रशुल्क अथवा आयात कोटा के बराबर है। क्षेत्र Z घरेलू उपभोक्ताओं से उत्पादकों को चला जाता है। क्षेत्र a तथा b प्रतिनिधित्व करने वाले दो त्रिभुज कुल राष्ट्रीय हानि हैं। क्षेत्र R उस राजस्व का प्रतीक है जो निर्यातक देश के पूर्तिकर्ताओं को VER से मिलता है जो आयातक देश की सरकार की हानि है तथा उसकी शुद्ध कल्याण हानि है। VER का आयातक देश पर एक अन्य प्रभाव यह पड़ता है कि उसकी व्यापार शर्तें निर्यातक देश की तुलना में सुधार की बजाय उन्हें और खराब करती हैं। ऐसा इसलिए कि यह निर्यातक देश की वस्तु की विश्व कीमत की बजाय उसकी उच्च घरेलू कीमत देता है।

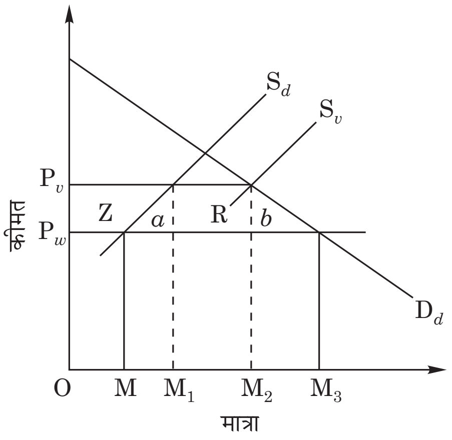

चित्र 10.2

यही नहीं VERs पक्षपाती होती हैं, क्योंकि ये समझौते न्यूनतम लागत निर्यातकों के साथ रखे जाते हैं, परन्तु वे उच्च लागत निर्यातकों से आयात की ओर ले जा सकते हैं जिससे आयातक देश का आयात बिल बढ़ा सकते हैं।

निर्यातक देश पर प्रभाव (Effects on Exporting Country)—जहाँ तक निर्यातक देश पर VER के प्रभावों का प्रश्न है उसे अतिरिक्त लाभ (किराया) का फायदा तथा व्यापार की शर्तों में सुधार मिलता है। अतः वह आयातक देश द्वारा बराबर का प्रशुल्क अथवा आयात कोटा लागू करवाने की जगह VER को प्राथमिकता देगा। चूंकि VERs स्थायी नहीं हैं, इसलिए निर्यातक देश बाद में इनमें छूट दिये जाने अथवा हटा लिए जाने के लिए आयातक देश पर दबाव डाल सकता है। इस प्रकार यह आयातक देशों को स्थायी प्रशुल्क अथवा कोटा के लिए मना कर सकता है।

जब एक VER निर्यात को रोकती है जो निर्यातकों के पास अधिशेष (surplus) उत्पादन होता है। परिणामस्वरूप, निर्यात योग्य वस्तुओं की कीमत गिर जाती है और आय में कमी तथा हानि होती है। इसके कारण संसाधन अन्य उत्पादक उद्योगों की ओर जा सकते हैं। यदि एक कार्टेल अथवा VER से बंधे निर्यातक किसी बड़े उद्योगों से सम्बन्धित हैं तो भी VER किसी नए बाजार की खोज तक निर्यात को कम करेगी। उससे पुनः संसाधनों का पुनः आवण्टन तथा हानि हो सकती है। इस प्रकार VER से निर्यातक देश को कुल मिलाकर आर्थिक हानि का सामना करना पड़ सकता है।

4. तकनीकी बाधाएँ (Technical Barriers)

आयातक देश कभी-कभी गैर-आर्थिक प्रकृति की तकनीकी व्यापार बाधाओं को अंगीकार कर अपने देश में आयात की मात्रा को घटाने का प्रयास करते हैं। तकनीकी बाधाएं कई तरह की होती हैं जो आयात को प्रतिबन्धित करती हैं। तकनीकी बाधाओं में स्वास्थ्य एवं सुरक्षा विनिमय, स्वच्छता विनिमय, औद्योगिक मानक, लेबलिंग तथा फैकेजिंग विनिमय, आदि आते हैं। वे विनिमय विदेशी आपूर्तिकर्ताओं पर उनके माल का आयात बनाए रखने के लिए अतिरिक्त लागतों का भार डाल देते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका में विदेशी कार निर्माताओं को वहां उत्पादन के लिए अमेरिकी सुरक्षा एवं धुआं निकासी नियन्त्रण नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। यही बातें स्वास्थ्य स्टैण्डर्ड के सम्बन्ध में लागू की जा सकती हैं। खाद्य वस्तुओं के आयातकों को विशेष गुणवत्ता, पैकेजिंग तथा स्टैण्डर्ड की आवश्कता होती है।

नोट

5. आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाएं (Import Licensing Procedure)

बहुत से देश अपने देश में आयात को प्रतिबन्धित करने के लिए जटिल तथा महंगी आयात लाइसेन्सिग प्रक्रियाओं को अपनाते हैं। आयात लाइसेन्स प्राय: ऊंची बोली लगाने वालों को दिए जाते हैं। अन्य मामलों में आयातकर्ताओं को आयात लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए एक भारी धनराशि सरकार के पास जमा करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, कुछ प्रशासनिक अड़चनों का सामना भी आयातकर्ताओं को करना पड़ता है, यथा–आयातकर्ताओं को परमिट प्राप्त करने के लिए लम्बे-लम्बे फार्म भरने पड़ते हैं, कार्यालयों का बार-बार चक्कर लगाना पड़ता है तथा सीमा शुल्क विभाग से माल छुड़ाने में तरह-तरह की अड़चनें सामने आती हैं। यह प्रक्रियाएं प्रशुल्क की तरह ही आयात में रुकावट उत्पन्न करती हैं।

6. सीमा शुल्क मूल्यांकन तथा वर्गीकरण (Customs Valuation and Classifications): सीमा शुल्क अधिकारी प्राय: आयात का मूल्यांकन वस्तुओं के लिए निर्धारित प्रशुल्क दर से अधिक करते हैं। उदाहरण के लिए अप्रैल, 1999 तक अमेरिका में कुछ रसायनों के आयात का मूल्यांकन बीजक पर लिखी कीमत के अनुसार लगाने की बजाय अमेरिका में उत्पादित अमेरिकी रसायनों के थोक मूल्य अथवा जो अधिक हो, के अनुसार लगाते थे। सीमा शुल्क मूल्यांकन का एक अन्य तरीका जान बूझकर माल छोड़ने में देरी करना ताकि आयातित वस्तुओं की लागत बढ़ जाए जैसा कि आयात प्रशुल्क करता है। इसके अतिरिक्त सीमा शुल्क सूची में बहुत-सी वस्तुओं का वर्णन होता है और प्रत्येक वर्ग के लिए प्रशुल्क दर का निर्धारण अलग-अलग होता है। सीमा शुल्क अधिकारी प्राय: वस्तुओं का अपना वर्गीकरण ऊंची दरों पर करके अधिक प्रशुल्क लगाते हैं। ऐसी प्रक्रियाओं आयात को प्रतिबन्धित करती हैं, क्योंकि इससे वस्तुएं प्राय: महंगी तथा घरेलू बाजार में गैर-प्रतिस्पर्द्धात्मक हो जाती हैं। इससे आयातकों में अनिश्चितता उत्पन्न हो जाती है।

7. सरकारी वसूली (Government Procurement)

सरकार अपने विभागों की आवश्यकता की वस्तुओं की पूर्ति घरेलू उत्पादों से करती है चाहे वे विदेशों से कम कीमतों पर ही क्यों न मिलें। उदाहरण के लिए अमेरिका-खरीदो अधिनियम (Buy-American Act) के अन्तर्गत अमेरिका के सरकारी विभागों अथवा एजेन्सियों को घरेलू निविदाएं ही स्वीकार करनी होती हैं चाहे वे विदेशी निविदाओं से 12% तक अधिक मूल्य की ही क्यों न हों। रक्षा के सम्बन्ध में वह 50% अधिक होने पर भी मान्य होता है। इसी तरह, जापान सरकार विदेशी निविदाओं पर विचार नहीं करती। विदेशी आपूर्तिकर्ताओं की निविदाएं स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने में सरकारें अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करती हैं। इसका उद्देश्य घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना होता है।

8. प्रतिकारात्मक शुल्क (Countervailing Duty)–प्रतिकारात्मक शुल्क एक तरह का आयात शुल्क अथवा आयातक देश द्वारा सब्सिडीयुक्त वस्तु की अपेक्षाकृत कम कीमत में वृद्धि हेतु लगाया गया प्रशुल्क है।

> *क्या आप जानते हैं* सरकारें वांछित वस्तुओं एवं सेवाओं के सन्दर्भ में घरेलू तथा विदेशी आपूर्तिकर्ताओं के बीच भेद करती हैं।

मान्यताएँ (Assumptions)

(अ) वस्तुओं की पूर्ति पूर्ण लोचदार होती है।

(ब) निर्यात वस्तु सब्सिडी युक्त होती है।

(स) आयातक देशों द्वारा इस वस्तु पर लगाया गया शुल्क निर्यात सब्सिडी के बराबर होता है।

व्याख्या (Explanation)

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर प्रतिकारात्मक शुल्क की व्याख्या चित्र 10.3 के माध्यम से की जा सकती है। चित्र में आयात मांग वक्र का D_m द्वारा तथा पूर्ति वक्र को P_wS द्वारा प्रदर्शित किया गया है। सब्सिडी से पूर्व OP_w कीमत

नोट

पर वस्तु की OM मात्रा का निर्यात तथा आयात किया जाता है। वस्तु को सब्सिडी प्राप्त होने के पश्चात् पूर्ति वक्र P_wS सब्सिडी की पूरी राशि के बराबर P_sS_1 तक नीचे सरक जाता है। मान लीजिए कीमत घटकर OP_s हो जाने पर आयात मांग में कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसी दशा में नया सन्तुलन बिन्दु E_1 पर होगा तथा आयात OM से

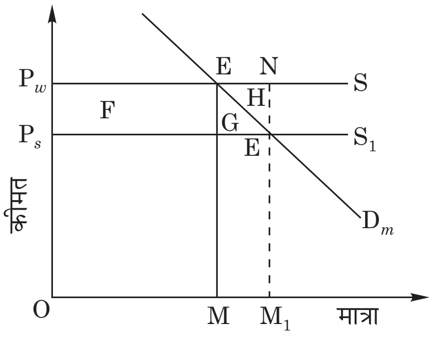

चित्र 10.3

OM_1 तक बढ़ जायेगा। इसके फलस्वरूप विदेशी उपभोक्ताओं को लाभ के रूप में $F + G = (P_wP_sE_1E)$ क्षेत्र उपभोक्ता की बचत होगा। निर्यातक देश की सब्सिडी की लागत $F + G + H = (OM_1 + P_wP_s)$ क्षेत्र है। चूंकि उत्पादक अतिरेक (या देशी) में लाभ F + G है, अतः निर्यात सब्सिडी से हानि त्रिभुज H है, यद्यपि सब्सिडी विदेशी उपभोक्ताओं को लाभ पहुंचाती है फिर भी आयातकर्ता देश को क्षेत्र H के बराबर उसकी कीमत कम होने के कारण इस वस्तु के उत्पादन में हानि होगी। इसकी क्षतिपूर्ति के लिए यह निर्यात सब्सिडी के बराबर प्रतिकारात्मक शुल्क लगा देता है। फलस्वरूप वस्तु की कीमत OP_s से बढ़कर OP_w हो जाती है अर्थात् वह सब्सिडी पूर्व स्तर पर वापस चली जाती है। इस तरह, सारी उपभोक्ता की बचत आयातक देश में समाप्त हो जाती है, परन्तु सरकार F क्षेत्र के बराबर शुल्क से राजस्व प्राप्त करती है, जिससे उपभोक्ताओं की बचत की कुछ हद तक क्षतिपूर्ति हो जाती है। दूसरी ओर शुल्क द्वारा निर्यातक देश का निर्यात घट जाता है, परन्तु सरकार निर्यात सब्सिडी के रूप में G + H क्षेत्र बचा लेती है।

9. राजकीय व्यापार (State Trading)

राजकीय व्यापार से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत वस्तुओं के आयात व निर्यात का समस्त दायित्व सरकार द्वारा नियन्त्रित संस्था पर छोड़ दिया जाता है। राजकीय व्यापार का उद्देश्य यह होता है कि दुर्लभ विदेशी विनिमय का उपयोग विदेशों से केवल अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक वस्तुओं के आयात हेतु किया जाए। इसके अतिरिक्त घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए भी यह उपयुक्त समझा जाता है कि आयात व निर्यात पर राज्य का नियन्त्रण रहे।

10. अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल (International Cartels)

गैर-प्रशुल्क बाधाओं का एक स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल में भी निहित है। अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में एकाधिकारी की स्थिति बनाए रखने में सफल हो जाता है, जिसका उद्देश्य परस्पर लाभ के लिए वस्तुओं की कीमतों पर नियन्त्रण रखना होता है। OPEC इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

टास्क टास्क अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल क्या है?

आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में व्यापार बाधाओं की भूमिका (Role of Trade Restrictions in Promoting Economic Development)

विकासशील देश बहुत-सी व्यापार बाधाएँ जैसे—आयात लाइसेंस तथा मात्रात्मक प्रतिबन्ध अपनाते हैं साथ ही गुप्त शुल्क यथा—स्टाम्प कर, बन्दरगाह शुल्क, अग्रिम न्यूनतम जमाराशि, आदि वसूल करते हैं। ये सभी उपाय व्यापार रुकावटें उत्पन्न करते हैं। ये व्यापार रुकावटें अल्पविकसित देशों के विकास को प्रोत्साहित करने में निम्नवत् सहायता करती हैं—

(1) प्रशुल्क तथा गैर-प्रशुल्क बाधाएँ घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाती हैं।

(2) विकासशील देशों द्वारा व्यापार में खड़ी की गई रुकावटों से भुगतान सन्तुलन को सुधारने में मदद मिलती है।

नोट

(3) व्यापार प्रतिबन्धों से उच्च बचत दर और निवेश प्रोत्साहित होता है।

(4) जब व्यापार प्रतिबन्धों के अन्तर्गत प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति दी जाती है, तो अल्पविकसित देशों को आधुनिक औद्योगिक तकनीक एवं जानकारी का लाभ प्राप्त होता है। वे औद्योगिक कुशलता तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी के सृजन द्वारा घरेलू उद्योगों की तकनीकी कार्यकुशलता बढ़ा देते हैं जिससे विशिष्टीकरण होता है तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(5) जब विभिन्न व्यापार प्रतिबन्धों का संरक्षण घरेलू उद्योगों को प्राप्त होता है तो विकासशील देशों में श्रमिक वर्ग को रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं।

(6) व्यापार पर प्रशुल्क तथा गैर-प्रशुल्क प्रतिबन्धों से सरकारी राजस्व में वृद्धि होती है।

(7) आयात प्रतिबन्ध अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... एक प्रमुख एवं प्रचलित गैर-प्रशुल्क बाधा है।
2. .... किसी सरकार द्वारा एक निर्यातक फर्म को दी जाने वाली आर्थिक सहायता है।
3. .... देश की व्यापार की शर्तों में तब सुधार होता है जब एक बड़ा देश अपने निर्यात को सब्सिडी प्रदान करता है।
4. गैट द्वारा प्रशुल्कों तथा कोटों पर रोक लगाने के बाद देशों ने .... को अपनाया है।
5. .... घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए भी यह उपयुक्त समझा जाता है।
6. गैर-प्रशुल्क बाधाओं का एक स्वरूप .... में भी निहित है।
7. प्रत्येक वर्ग के लिए .... का निर्धारण अलग-अलग होता है।
8. व्यापार पर प्रशुल्क तथा गैर-प्रशुल्क प्रतिबन्धों से सरकारी .... में वृद्धि होती है।

10.2 सारांश (Summary)

- निर्यात सब्सिडी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से दी जा सकती है, परन्तु प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडी GATT समझौता के अन्तर्गत प्रतिबन्धित है। अतः सरकारें विभिन्न प्रकार की अप्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडियां देती हैं; जैसे रियायती दरों पर ऋण, उनके द्वारा दिए गए प्रशुल्कों में वापसी, कमी वाले कच्चे माल के आबण्टन में उन्हें प्राथमिकता, विदेशी मुद्रा आबण्टन में प्राथमिकता, व्यापार मेले जैसी गतिविधियों के प्रोत्साहन में वित्तीय सहायता, बाजार अनुसन्धान, विज्ञापन, कर-राहत, आदि में वित्तीय सहायता।
- आयातक देश की व्यापार की शर्तों में तब सुधार होता है जब एक बड़ा देश अपने निर्यात को सब्सिडी प्रदान करता है। उसके लिए सब्सिडी वाली वस्तु की विश्व कीमत कम हो जाती है तथा वह अपने आयात की कम कीमत देता है, परन्तु कम कीमत का इसके आय वितरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
- स्वैच्छिक निर्यात रुकावट (VER) एक ऐसा समझौता है जो निर्यातक देश के निर्यातकों अथवा सरकार द्वारा आयातक देश के साथ उसके निर्यातों को सीमित करने के लिए किया जाता है। यह आयातक देश द्वारा तब किया जाता है जब उसका घरेलू उद्योग बड़े पैमाने पर आयातों द्वारा पीड़ित होता है।
- जब एक VER निर्यात को रोकती है जो निर्यातकों के पास अधिशेष (surplus) उत्पादन होता है। परिणामस्वरूप, निर्यात योग्य वस्तुओं की कीमत गिर जाती है और आय में कमी तथा हानि होती है। इसके कारण संसाधन अन्य उत्पादक उद्योगों की ओर जा सकते हैं।
- राजकीय व्यापार का उद्देश्य यह होता है कि दुर्लभ विदेशी विनिमय का उपयोग विदेशों से केवल अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक वस्तुओं के आयात हेतु किया जाए। इसके अतिरिक्त घरेलू उद्योगों को विदेशी

नोट

प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए भी यह उपयुक्त समझा जाता है कि आयात व निर्यात पर राज्य का नियन्त्रण रहे।

- विकासशील देश बहुत-सी व्यापार बाधाएँ जैसे—आयात लाइसेंस तथा मात्रात्मक प्रतिबन्ध अपनाते हैं साथ ही गुप्त शुल्क यथा—स्टाम्प कर, बन्दरगाह शुल्क, अग्रिम न्यूनतम जमाराशि, आदि वसूल करते हैं। ये सभी उपाय व्यापार रुकावटें उत्पन्न करते हैं।

10.3 शब्दकोश (Keywords)

- **अधिशेष**— अतिरिक्त शेष, बकाया।
- **अंगीकार**— ग्रहण, स्वीकार।

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रतिकारी शुल्क क्या है? आयातक तथा निर्यातक देशों पर इसके प्रभावों की विवेचना कीजिए।
2. स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें क्या हैं? निर्यातक तथा आयातक देशों पर इनके प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
3. अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में व्यापार प्रतिबंधों की भूमिका को स्पष्ट करें।
4. निर्यात सब्सिडियां क्या हैं? आयातक तथा निर्यातक देशों पर निर्यात सब्सिडी के प्रभावों की विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. आयात अभ्यंश	2. निर्यात सब्सिडी	3. आयातक	4. VERs
5. राजकीय व्यापार	6. अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल	7. प्रशुल्क दर	8. राजस्व।

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–11: व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलनः अर्थ एवं घटक (Balance of Trade and Balance of Payments: Meaning and Components)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
11.1 व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन : अर्थ एवं घटक (Balance of Trade and Balance of Payments: Meaning and Components)
11.2 सारांश (Summary)
11.3 शब्दकोश (Keywords)
11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन के अर्थ एवं घटक की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाला देश समय-समय पर स्वयं को वास्तविक व्यापारिक स्थिति की जाँच करना चाहता है। इस प्रकार एक तो वह स्वयं को वस्तु स्थिति से परिचित होता है तथा दूसरे, वह भविष्य के लिए अपनी व्यापार एवं भुगतान सम्बन्धी नीति में स्वयं के हितों के अनुरूप संशोधन कर सकता है। विदेशों से प्राप्त समस्त माल के आयात एवं विदेशों को भेजे गये निर्यात माल के मूल्यों की जाँच कर वह अपनी आयात-निर्यात नीति में संशोधन करने के बारे में निर्णय ले सकता है। इसलिए वह भुगतान सन्तुलन व व्यापार सन्तुलन तैयार करता है। वह एक निश्चित अवधि में किये गये समस्त निर्यात एवं आयात का शेष ज्ञात करके शुद्ध देनदारी अथवा लेनदारियों को मालूम करता है। निर्यातों के लिए वह विदेशों से भुगतान प्राप्त करेगा तथा आयातों के लिए उसे विदेशों को मूल्य चुकाना पड़ेगा। अतः आयात एवं निर्यात का शेष ज्ञात कर वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिणामस्वरूप अपनी शुद्ध वास्तविक स्थिति मालूम करता है। वस्तुओं के आयात-निर्यात के शेष को ही व्यापार सन्तुलन कहा जाता है। वस्तुओं के आयात निर्यात के शेष को ही व्यापार सन्तुलन कहा जाता है। व्यापारिक माल के मूल्य के अतिरिक्त अन्य कारणों से– विशेषकर जहाजी यातायात, वायु यातायात, बैंक, बीमा, पर्यटक, ऋण आदि के कारण भी एक देश विदेशों से भुगतान प्राप्त करता है और भुगतान चुकाता है। अतः सभी प्रकार के भुगतानों की लेनदारी एवं देनदारियों को ज्ञात कर एक देश अपनी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों के सम्बन्ध में वास्तविक स्थिति मालूम कर सकता है कि उसे विदेशों से कुल कितना भुगतान लेना अथवा चुकाना है। समस्त भुगतानों को सम्मिलित कर वास्तविक लेनदारी या वास्तविक देनदारी ज्ञात करने के लिए सन्तुलन तैयार किया जाता है। अतः व्यापार-शेष (अथवा व्यापार सन्तुलन), तथा भुगतान-शेष

नोट

(अथवा भुगतान सन्तुलन) द्वारा एक देश क्रमशः अपने आयात-निर्यात व्यापार और विदेशों से समस्त लेन-देनों के बारे में स्वयं की स्थिति ज्ञात कर लेता है। इसलिए प्रत्येक देश एक निश्चित अवधि के नियमित रूप से व्यापार सन्तुलन एवं भुगतान सन्तुलन तैयार करता है।

11.1 व्यापार सन्तुलन एवं भुगतान सन्तुलनः अर्थ एवं घटक (Balance of Trade and Balance of Payments: Meaning and Components)

एक देश द्वारा एक निश्चित अवधि में अपने देश से किए गए माल के निर्यात एवं आयात के शेष को व्यापार-सन्तुलन कहते हैं। इसको एक सांख्यिकीय सारणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ये वस्तुएँ अथवा व्यापारिक माल, जिनका बन्दरगाहों, सीमा सड़क केन्द्रों, हवाई अड्डों आदि पर आने व जाने का लेखा होता है, व्यापार सन्तुलन में शामिल होते हैं। इन्हें दृश्य (Visible) निर्यात एवं आयात भी कहते हैं। **व्यापार सन्तुलन एक निश्चित अवधि में एक देश के निर्यातों एवं आयातों के कुल मूल्य का अन्तर है।** यदि वस्तुओं के निर्यातों का मूल्य अधिक है आयातों का कम हैं तो व्यापार-सन्तुलन अनुकूल (अथवा पक्ष में) कहलाता है। इसके विपरीत आयातों का कुल मूल्य निर्यातों के कुल मूल्य की अपेक्षा अधिक होने पर व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल (अथवा विपक्ष में) कहलाता है। दोनों की राशि पूर्णतः बराबर होने पर पूर्णतः सन्तुलन की स्थिति होती है, परन्तु व्यवहार में ऐसा कम ही होता है। कभी आयात अधिक होते हैं तो कभी निर्यात।

फ्रेडरिक बेन्हम (Frederic Benham)—एक देश का व्यापार सन्तुलन एक अवधि के उसके निर्यातों के मूल्यों और उसके आयातों के मूल्य का सम्बन्ध है। यदि प्रथम दूसरे से अधिक है तो अन्तर को निर्यात आधिक्य और यदि दूसरा प्रथम से अधिक है तो अन्तर को आयात आधिक्य कहते हैं।

सेमुअलसन (Samuelson)—यदि व्यापारिक माल का निर्यात का मूल्य आयात-माल के मूल्य से अधिक है तो "अनुकूल व्यापार-शेष" कहते हैं। यदि आयात निर्यात से अधिक है तो यह "प्रतिकूल व्यापार शेष" हैं।

व्यापार सन्तुलन के तीन स्वरूप हैं—(*i*) **अनुकूल व्यापार सन्तुलन** (Favourable Balance of Trade)—उस अवस्था का नाम है जब एक देश में एक निश्चित अवधि प्रायः एक वर्ष में, व्यापारिक माल का निर्यात व्यापारिक माल के आयातों के मूल्य से अधिक हैं। इसे सदैव धनात्मक चिन्ह (+) से व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत का 1972-73 में व्यापार सन्तुलन + रु. 103.4 करोड़ था अर्थात् कुल निर्यातों का मूल्य आयातों के मूल्य से रु. 103.4 करोड़ अधिक था। (*ii*) **प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन** (Unfavourable Balance of Trade)—वह अवस्था है जब आयातों का मूल्य निर्यातों से अधिक होता है इसे ऋणात्मक चिन्ह से बताते हैं। जैसे भारत में 1977-78 में व्यापार सन्तुलन रु. 692 करोड़ था अर्थात् निर्यातों का कुल मूल्य आयातों के मूल्य से रु. 692 करोड़ कम था। (*iii*) **सन्तुलित व्यापार सन्तुलन** (Equilibrium Balance of Trade)—जब कुल निर्यातों व कुल आयातों का मूल्य बराबर हो। परन्तु ऐसी स्थिति अपवाद स्वरूप कठिनाई से ही होती है। कुछ तो अन्तर अवश्य पाया जाता है। भारत के व्यापार सन्तुलन में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों के द्वारा समुद्री वायुमार्ग एवं स्थलमार्ग सभी से किया गया विदेशी व्यापार का मूल्य सम्मिलित है। निर्यातों में पुनः निर्यात (Re-exports) भी सम्मिलित होते हैं। प्रायः आयातों का मूल्य लागत बीमा भाड़ा मूल्य (c.i.f. price) पर तथा निर्यातों का मूल्य जहाज पर मुक्त मूल्य (f.o.b. price) पर आंकलन किया जाता है।

व्यापार सन्तुलन का प्रभाव (Effects of Balance of Trade)

एक देश के व्यापार सन्तुलन का निम्नलिखित प्रभाव है:

(1) अर्थव्यवस्था की सामान्यि स्थिति (General Condition of the Economy of a Country)—साम्य व्यापार सन्तुलन सामान्य स्थिति को बताता है। अनुकूल सन्तुलन अच्छी सुदृढ़ स्थिति तथा प्रतिकूल सन्तुलन कमजोर स्थिति का परिचायक है। आयातों की निर्यातों से अधिकता का आशय विदेशियों के प्रति देनदारियाँ अधिक होना है और इसलिए प्रतिकूल सन्तुलन स्वदेश की कमजोर व्यापारिक स्थिति बताता है। इसके विपरीत निर्यात आयातों

नोट

से अधिक होने पर स्वदेश की स्थिति लेनदार की होती है और इसलिए यह सुदृढ़ अच्छी स्थिति हैं।

(2) विदेशी विनिमय दर (Foreign Exchange Rate)—अनुकूल विदेशी व्यापार सन्तुलन होने पर विदेशी विनिमय दर भी अनुकूल होती है क्योंकि निर्यातों के अधिक होने से विदेशी बाजारों में निर्यातकों देश की मुद्रा की पूर्ति अधिक होगी। इससे विदेशी मुद्रा का मूल्य कम अर्थात् स्वदेशी मुद्रा का मूल्य ऊँचा होगा।

प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने पर स्वदेशी बाजारों में विदेशी मुद्रा का मूल्य आयातों की अधिकता के कारण अधि क होगा अर्थात् स्वदेशी मुद्रा का मूल्य कम होगा। इससे प्रतिकूल विदेशी विनिमय दर की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। विदेशी मुद्रा बाजारों में आयातक देश की मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है। फलस्वरूप विदेशी विनिमय दर विपक्ष में रहती है।

(3) विदेशी मुद्रा कोष (Foreign Exchange Reserves)—अनुकूल व्यापार सन्तुलन होने से देश के विदेशी मुद्रा भण्डारों में वृद्धि होती है यह स्थिति अच्छी मानी जाती है। प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने से देश के विदेशी मुद्रा भण्डारों में कमी आ जाती है और इसलिए यह स्थिति अच्छी नहीं मानी जाती है।

(4) भुगतान सन्तुलन पर प्रभाव (Effects on Balance of Payments)—एक देश के सभी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों का सांख्यकीय सारांश रेकार्ड भुगतान सन्तुलन कहलाता है। अनुकूल व्यापार सन्तुलन की स्थिति से भुगतान सन्तुलन भी अनुकूल होने की सम्भावना बहुत अधिक होती है। क्योंकि व्यापारिक माल के अधिक निर्यातों के कारण उस देश की विदेशों से लेनदारियाँ अधिक होगी। इसके विपरीत प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन के कारण भुगतान सन्तुलन भी विपक्ष में होने की सम्भावना अधिक होगी।

(5) अधिक आयात सुविधाजनक (More Imports Convenient)—वह देश जिसका व्यापार सन्तुलन निरन्तर वर्षों तक अनुकूल रहता है किसी भी समय सरलतापूर्वक अन्य वस्तुओं का आयात कर सकता है उसे भुगतान सम्बन्धी कठिनाई नहीं होती। इसके विपरीत प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन वाले देश को अधिक आयातों के लिए कठिनाई होती है। ऐसे देश को अपनी आवश्यकताओं की वस्तुओं के आयात के लिए अन्य देशों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। निर्यातक देश आयातक देश का ऋण सुविधाएँ देते समय शर्तों के निर्धारण में विभिन्न दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं।

(6) व्यापार की शर्तें (Terms of Trade)—अनुकूल व्यापार सन्तुलन रखने वाले देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें भी उसके अनुकूल ही होती हैं। इसके विपरीत प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने पर व्यापार प्रतिकूल हो जाती है। व्यापार शर्तों का भावी व्यापार निर्धारण में बहुत महत्व होता है।

प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन में सुधार (Correction in the Unfavourable Balance of Trade)

एक देश अपने विदेशी व्यापार को सन्तुलित रखने का प्रयत्न करता है। प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने से देश की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में स्थिति कमजोर हो जाती है। अतः इसमें शीघ्रतिशीघ्र सुधार आवश्यक है। प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाते हैं—

क्या आप जानते हैं एक देश अपने विदेशी व्यापार को सन्तुलित रखने का प्रयत्न करता है। प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने से देश की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में स्थिति कमजोर हो जाती है।

(1) आयातों को सीमित रखना (Keeping Imports within Limits)—प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन वाला देश अपने आयातों में यथासम्भव कमी करने का प्रयत्न करता है। अति आवश्यक वस्तुओं के निर्यातों को ही अनुमति दी जाती है। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यों में भारी वृद्धि होने पर आयातों को भारी मात्रा में नहीं बढ़ाते हुए भी मूल्य बढ़ जाता है। जैसा कि 1972 के पश्चात तेल मूल्यों में वृद्धि से अनेक देशों का व्यापार सन्तुलन भारी विपक्ष में हो गया। ऐसी परिस्थिति में आयातों को यथासम्भव सीमित मात्रा में ही बनाये रखने का प्रयत्न होता है ताकि प्रतिकूलता अधिक नहीं बढ़े।

नोट

(2) निर्यातों में वृद्धि (Export Promotion)—प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन को सुधारने के लिए देश से निर्यातों में वृद्धि करने तथा निर्यातों से अधिकाधिक आय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। निर्यात संवर्द्धन के लिए मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation of Money), राशिपातन की नीति (Dumpting Policy), सार्वजनिक क्षेत्र में निर्यात सम्बर्द्धन संस्थानों एवं उपक्रमों की स्थापना, विदेशों से द्विपक्षीय समझौते करना, निर्यात वस्तुओं की किस्त, पैकिंग आदि में सुधार करना, देश में बन्दरगाह तक माल पहुँचाने के लिए यातायात व्यय में निर्यात देना, निर्यातकों को आर्थिक एवं अन्य सुविधाएँ देना, विदेशों में विक्रय वृद्धि हेतु बाजार अनुसन्धान, विज्ञापन, प्रदर्शनी, मेलों आदि का आयोजन तथा ऐसे ही अनेक प्रयत्न किये जाते हैं।

(3) आयात प्रतिस्थापन (Import Substitution)—विदेशों से आयातित कुछ माल को देश में ही बनाने के प्रयत्न किये जाते हैं, इससे दो लाभ होते हैं, *(i)* भविष्य में उन वस्तुओं का आयात नहीं करना पड़ता, तथा *(ii)* देश में ही नये नये औद्योगिक उत्पादनों के लिए कारखानों, अनुसन्धानगृहों, प्रयोगशालाओं की स्थापना की जाती है। परन्तु देश में निर्मित माल की किस्त एवं मूल्य (उत्पादन लागत) आदि में अन्तर हो जाता है। भारत ने अपने यहाँ आयातों के प्रतिस्थापन की नीति के कारण ही गत तीन दशाब्दियों में भारी औद्योगिक उन्नति की हैं और अनेक वस्तुओं का आयात बन्द अथवा कम कर दिया है।

(4) भुगतान सन्तुलन में साम्य (Equilibrium in Balance of Payments)—प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने पर भुगतान सन्तुलन की अन्य मदों-सेवाओं (बैंक, बीमा, समुद्री परिवहन), पर्यटन आदि के माध्यम से विदेशी मुद्रा प्राप्तियों (Receipts of Foreign Exchange) को अधिक करने का प्रयत्न किया जाता है। इससे आयातों के अधिक होने पर भी भुगतान सम्बन्धी कठिनाई नहीं होती।

(5) विदेशी मुद्रा के कारण (Foreign Exchange Loans)—प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन होने पर आयातों के भुगतान को स्थगित करने के लिए या तो दीर्घकालीन आधार पर उधार माल खरीदा जाता है अथवा विदेशी सरकारों, वित्तीय संस्थाओं से और अन्तर्राष्ट्रीय व क्षेत्रीय वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त किये जाते हैं। विक्रय के समय में माल के निर्यातक को तो वित्त संस्थाएँ भुगतान कर देती हैं और आयातक निर्धारित अवधि के पश्चात वित्त संस्थाओं को वह रकम चुका देता है।

भुगतान सन्तुलन (Balance of Payments) **का आशय**—वस्तुओं के आयात निर्यात के अतिरिक्त अन्य सौदे भी हैं, जिनके लिए विदेशों का भुगतान किया जाय अथवा भुगतान प्राप्त हो। भुगतान सन्तुलन बनाकर विदेशों से होने वाले समस्त मौद्रिक व्यवहारों की वास्तविक स्थिति ज्ञात की जाती है। इससे विदेशी मुद्राओं की प्राप्ति एवं उपयोग की मदों की जानकारी भी मिलती है। भुगतान सन्तुलन एक सांख्यकीय सारांश अभिलेख (रिकार्ड) (Statistical Summary Record) है जिसमें एक निश्चित अवधि (प्राय: एक वर्ष अथवा छ: माह) में एक देश के सभी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय सौदों का लेखा है। इससे ज्ञात हो जायेगा कि किन सौदों के लिए उस देश को विदेशों से भुगतान प्राप्त होता है तथा किनके लिए वह भुगतान चुकाता है। भुगतान सन्तुलन को कुछ प्रमुख विद्वानों ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

(i) **डेलबर्ट ए, स्नाइडर** (Delbert A. Snider), "एक देश का भुगतान सन्तुलन एक निश्चित अवधि में सम्पन्न उस देश के सभी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं वित्तीय सौदों का एक सारांश रिकार्ड है।"

(ii) **सेमुलसन** (Samuelson), "वह विवरण है, जिसमें सभी वस्तुओं, उपहारों, विदेशी सहायता, पूँजी, ऋण, स्वर्ण एवं अन्य मुद्राएँ जो देश के भीतर आती हैं और बाहर जाती हैं तथा इन सभी मदों के पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान रखा जाता है।"

(iii) **चार्ल्स एन. हैनिंग** (Charles N. Hanning), "एक निश्चित अवधि में (प्राय: एक वर्ष) एक देश के शेष विश्व के साथ हुए समस्त अन्तर्राष्ट्रीय सौदों के सांख्यकीय सारांश को भुगतान सन्तुलन कहा जाता है।"

नोट

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भुगतान सन्तुलन एक निश्चित अवधि (प्राय: एक वर्ष) में हुए एक देश के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय लेन-देनों का सारांश है जो सारणी के रूप में बनाया जाता है। इससे निम्नलिखित दो तथ्यों की जानकारी मिलती है–

(*i*) विदेशों का उस देश के प्रति कितना भुगतान दायित्व है?

(*ii*) उस देश का विदेशों के प्रति कितना भुगतान दायित्व है?

भुगतान सन्तुलन बनाने का उद्देश्य एक देश की अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिति प्रस्तुत करना है ताकि सम्बन्धित सरकारी अधिकारियों को मौद्रिक, प्रशुल्क, व्यापार व भुगतान सम्बन्धी नीति का निर्माण करने में सहायता मिले। जिस प्रकार एक औद्योगिक कम्पनी अपना वार्षिक लेखा तैयार कर वर्ष भर में लाभ तथा चिट्ठे द्वारा वर्ष के अन्तिम दिन अपनी आर्थिक स्थिति (सम्पत्ति एवं दायित्वों) का रिकार्ड तैयार करती है। एक देश भुगतान सन्तुलन में विश्व के अन्य देशों से सम्पन्न भुगतानों का विवरण (लेखा) तैयार करता है। इससे उस देश की वित्तीय स्थिति का ज्ञान होता है। भविष्य में विभिन्न आर्थिक नीतियाँ निर्धारण करने में यह सूचना उपयोगी सिद्ध होती है। विदेशी लोग भी भुगतान सन्तुलन के द्वारा उस देश की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व अन्य लेन-देनों में भुगतान क्षमता की सुदृढ़ता (Soundness of Payment Capacity) का पता लगाते हैं।

व्यापार सन्तुलन एवं भुगतान सन्तुलन में अन्तर–व्यापार सन्तुलन एवं भुगतान सन्तुलन का आशय जानने के पश्चात दोनों में अन्तर ज्ञात करना सरल है। दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित है:

(*i*) भुगतान सन्तुलन में वे सभी मदें जिनमें विदेशों से मौद्रिक भुगतानों का लेन-देन करना पड़ता है, को तथा व्यापार सन्तुलन में केवल वस्तुओं का आयात एवं निर्यातों के मूल्यों के शेष को ज्ञात किया जाता है। अत: व्यापार- सन्तुलन एक सीमित अर्थ रखने वाला शब्द है तथा भुगतान सन्तुलन विस्तृत अर्थ वाला। व्यापार सन्तुलन भी भुगतान सन्तुलन का एक अंश है। भुगतान सन्तुलन ज्ञात करने से पूर्व व्यापार सन्तुलन की जानकारी एवं निर्माण आवश्यक है।

(*ii*) व्यापार सन्तुलन में केवल वस्तुओं के आयात निर्यात का लेखा है। ये वस्तुएँ बन्दरगाहों से देश के बाहर एवं भीतर भेजी जाती हैं, इनको देखा जा सकता है। अत: इन्हें दृश्य व्यापार मदें (Visible Trade Items) कहते हैं। भुगतान सन्तुलन में दृश्य व्यापार मदों के अतिरिक्त अन्य मदें, जिन्हें देखा नहीं जाता, अदृश्य मदें (Invisible Items), जिनका बन्दरगाहों पर लेखा होना आवश्यक नहीं, भी सम्मिलित होता है।

(*iii*) व्यापार-सन्तुलन ज्ञात करने का उद्देश्य सीमित है कि एक देश किन-किन वस्तुओं का आयात व निर्यात करता है? उनका मूल्य क्या है? जबकि भुगतान सन्तुलन बनाने का उद्देश्य बहुत अधिक महत्वपूर्ण एवं विस्तृत है। इसके माध्यम से एक देश विश्व समाज में अपनी आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति को अधिक सही ढंग से देख सकता है। उसने वस्तु निर्यात कम किये हों, फिर भी अन्य मदों से वह पर्याप्त विदेशी मुद्राएँ अर्जित करके अपनी लेनदार की स्थिति बनाये रख सकता है व विदेशी से भारी संख्या में वस्तुएँ नकद भुगतान कर आयात कर सकता है।

(*iv*) व्यापार सन्तुलन अनुकूल एवं प्रतिकूल हो सकता है परन्तु लेखों के रूप में भुगतान सन्तुलन सदैव सन्तुलित होता है। भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को ऋण, अनुदान एवं स्वर्ण के आयात-निर्यात (यदि किये गये हों) के माध्यम से दूर कर सन्तुलित अवस्था बतायी जाती है। व्यवहार में भुगतान सन्तुलन भी असन्तुलित होता है, और यह असन्तुलन जबकि वह प्रतिकूल हो, कमजोर वित्तीय व आर्थिक स्थिति का परिचायक है, परन्तु व्यापार सन्तुलन में प्रतिकूलता अधिक महत्व नहीं रखती।

भुगतान सन्तुलन का महत्त्व–एक देश के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय लेन देनों का सांख्यकीय विवरण ही भुगतान सन्तुलन है। भुगतानों के लिए एक देश से दूसरे देशों में मुद्रा एवं पूँजीकोष का आवागमन (Movement) होता है। भुगतानों के चुकाने के लिए पूँजी का आवागमन कितनी मात्रा में किस देश की मुद्राओं में हुआ यह भुगतान सन्तुलन से ज्ञात हो जाता है। सेमुअलसन के अनुसार पूँजी के आवागमन के मौद्रिक पहलुओं को समझना अन्तर्राष्ट्रीय वित्त की एक प्रमुख समस्या है। भुगतान सन्तुलन में दी गई अन्य सूचनाएँ भी बहुत महत्वपूर्ण होती है। विशेषकर सरकार के लिए

नोट

जो आर्थिक नीति का निर्धारण करती है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन का महत्व निम्नलिखित है:

(1) देश में पूँजी का आवागमन एवं विनिमय नियन्त्रण व्यवस्था—भुगतान सन्तुलन से देश में विदेशी मुद्रा कोषों के आवागमन एवं सरकार द्वारा लगाये गये विनिमय नियन्त्रण उपायों की सफलता (या विफलता) का ज्ञान होता है। सही स्थिति की समय समय जानकारी होने से विनिमय नियन्त्रण उपायों में आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सकता है।

(2) देश की वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान क्षमता—भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता अथवा अनुकूलता के बारे में सही जानकारी होने से उस देश की वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिति ज्ञात हो जाती है। अन्य देश भविष्य में व्यापार करते समय इस स्थिति से भी बहुत प्रभावित होते हैं।

(3) आर्थिक नीति निर्धारकों के लिए महत्वपूर्ण—भुगतान सन्तुलन में दी गयी सूचनाओं से देश की आर्थिक नीति निर्धारण करने वाले सरकारी व अन्य मुद्रा अधिकारी बहुत लाभान्वित होते हैं।

(4) विनिमय दरों में परिवर्तन—अन्तर्राष्ट्रीय सौदों के फलस्वरूप विदेशी विनिमय दरों में होने वाले परिवर्तन विशेषकर अवमूल्यन तथा अधिमूल्यन का देश के आयात व निर्यातों पर होने वाले प्रभाव की जानकारी भुगतान सन्तुलन से मिलेगी।

(5) अर्थव्यवस्था पर विदेशी व्यापार का प्रभाव—देश के विदेशी व्यापार का देश की अर्थव्यवस्था के अन्य अंगों—राष्ट्रीय आय, उत्पादन, उपभोग, मूल्य स्तरों आदि पर होने वाले प्रभावों को समझने में कुछ वर्षों के भुगतान सन्तुलन का विश्लेषणात्मक अध्ययन सहयोग देता है।

(6) विदेशी व्यापार में परिवर्तन—एक देश के लगातार कई वर्षों के या विभिन्न समय के भुगतान-सन्तुलन का अध्ययन कर उस देश में होने वाले विदेशी व्यापार में परिवर्तनों, उसकी व्यापारिक स्थिति, उसके औद्योगिक विकास एवं कृषि विकास की आवश्यकताओं तथा उन देशों जिससे उसके व्यापारिक सम्बन्ध हैं की आर्थिक स्थिति एवं विकास की जानकारी मिलती है।

भुगतान सन्तुलन का ढाँचा (Structure of Balance of Payments)—भुगतान सन्तुलन को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जाता है—(*i*) चालू खाता (Current Account), तथा (*ii*) पूँजी खाता (Capital Account)। चालू खाते में वे सभी अन्तर्राष्ट्रीय सौदे जिनसे विर्तमान में उसी देश वालों को या विदेशियों को आय अर्जित होती का लेखा किया जाता है, जैसे वस्तुओं का आयात-निर्यात, सेवाओं से प्राप्त आय या इनके लिए विदेशियों को दी गयी राशियाँ, एक पक्षीय हस्तान्तरण, विनियोगों से आय आदि। जब कि पूँजी खाते में ऋण व सम्पत्ति को (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ढंग से) प्रभावित करने वाले सौदे जिनसे भविष्य में आय होगी, लिखे जाते हैं। इनमें पूँजी या मुद्रा का हस्तान्तरण, विनियोग आदि सम्मिलित हैं। पूँजीगत व्यवहारों का उल्लेख पूँजी खाते में किया जाता है।

> *नोट्स* मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति तथा व्यापार नीति निर्धारण के समय देश की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की जानकारी आवश्यक है।

भुगतान सन्तुलन में लेखे दोहरी लेखा प्रणाली (Double Entry Book Keeping) के आधार पर किये जाते हैं। आर्थिक एवं वित्तीय सौदों की प्रकृति को ध्यान में रखा जाता है तथा लेनदारियों एवं देनदारियों को क्रमश: जमा (Credit) व नाम (Debits) में दिखाया जाता है। वे समस्त सौदे, जिनके लिए विदेशों को भुगतान किया जाय देनदारी या नाम (Debits) में तथा वे सौदे जिनके लिए विदेशों से भुगतान प्राप्त हो लेनदारी या जमा (Credits) में लिखे जायेंगे। वास्तव में भुगतान दिया गया या लिया जायेगा या नहीं, इस विषय पर विचार नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, वस्तुओं के समस्त आयात (जिनमें मुफ्त में मिले उपहार भी हो सकते हैं) देनदारी (नाम) में लिखे जायेंगे, क्योंकि इनके लिए भुगतान चुकाया जाता है तथा इनसे विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी होती है। इसके विपरीत निर्यात लेनदारियाँ या जमा (Credits) में लिखे जाते हैं क्योंकि उनसे भुगतान प्राप्त होता है, विदेशी मुद्रा भण्डारों में वृद्धि

नोट

होती है। इसी प्रकार विदेशों से प्राप्त ऋण या राशियाँ भी जमा में लिखी जायेंगी, क्योंकि उनसे देश के विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि होती है। विदेशों को दिये गये ऋण या राशियाँ नाम में लिखी जायेंगी क्योंकि इससे विदेशी मुद्रा कोष कम होते हैं। स्वर्ण का आयात व निर्यात अन्य वस्तुओं के समान आयात व निर्यात के रूप में लिखा जायेगा। इस प्रकार समस्त लेन देनों का लेखा तैयार किया जायेगा एवं भुगतान सन्तुलन सन्तुलित होगा। चालू खाते के 'जमा' एवं 'नाम' में निकलने वाली शेष राशि पूँजी खाते के योग में समायोजित कर दी जाती है। अत: चालू खाता एवं पूँजी खाता दोनों मिलकर सन्तुलित स्थिति बताते हैं। चालू खाते के शेष के आधार पर ही भुगतान सन्तुलन में असाम्यता का बोध होता है। यदि 'जाम' पक्ष 'नाम' पक्ष से अधिक है तो 'शेष' पक्ष में अथवा अनुकूल तथा 'नाम' पक्ष 'जाम' पक्ष से अधिक होने पर 'शेष' विपक्ष में या प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन कहा जाता है।

चालू खाता—जमा (Credit) > नाम (Debit) अनुकूल भुगतान सन्तुलन (+)

जमा (Credit) < नाम (Debit) प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन (–)

जमा = नाम (भुगतान सन्तुलन की साम्य अवस्था)

भुगतान सन्तुलन की मदें (Items of Balance of Payments)—भुगतान सन्तुलन की मदें निम्नलिखित हैं—

चालू खाता	1.	वस्तुओं का आयात एवं निर्यात (दृश्य व्यापार)
	2.	यातायात (भाड़ा एवं अन्य यातायात व्यय)
अदृश्य व्यापार मदें	3.	यात्राएँ (सेवाओं के लिए या अन्य किसी प्रयोजन से हो)
	4.	विनियोग आय (ब्याज, लाभांश, लाभ आदि)
	5.	बीमा
	6.	हस्तान्तरण (निजी क्षेत्र हो या सरकारी या संस्थाओं कोपेन्शन आदि)
पूँजी खाता	1.	विनियोग (इस देश के विदेशों में या विदेशियों के इस देश में जिनकी अवधि एक वर्ष से अधिक की हो) सम्पत्तियों या दायित्वों सम्बन्धी सौदे।
	2.	अल्पकालीन विनियोग (जो एक वर्ष से कम हो—आय प्राप्ति के उद्देश्य से हो जिनमें बैंकों द्वारा जमा व ऋण भी सम्मिलित हैं)।
	3.	सरकारी सौदे—(1) पूँजीगत सौदे, (2) रक्षित कोष सम्बन्धि जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में जमा ऋण भी सम्मिलित है।

कुछ प्रमुख मदों का विस्तृत उल्लेख निम्नलिखित है—

(*i*) **व्यापारिक माल या दृश्य व्यापार या वस्तुओं का आयात-निर्यात** (Visible Trade)— सर्वाधिक महत्वपूर्ण मद है। इसकी "जमा" व "नाम" का अन्तर ही "व्यापार सन्तुलन" कहलाता है। विदेशी व्यापार में जो भी वस्तुएँ आयात व निर्यात की गयीं, उनके मूल्य का लेखा यहाँ लिखा जाता है। इन्हें दृश्य आयात या निर्यात मदें भी कहते हैं। आयात का मूल्य चुकाना होगा वे 'नाम' तथा निर्यात जिनका मूल्य प्राप्त होता है 'जमा' लिखी जाती हैं। सरकारी एवं निजी क्षेत्र दोनों के ही आयात निर्यात यहाँ दिखाये जायेंगे। सामान्यत: निर्यातों का मूल्य f.o.b. मूल्यों (Free on Board Price) तथा आयातों का c.i.f. (Cost Insurance Freight (लागत भाड़ा सहित मूल्य) आधार पर दिखाये जाते हैं।

(*ii*) **यातायात (परिवहन)** (Transport)—परिवहन सेवाओं के लिए जहाजरानी व वायु यातायात कम्पनियाँ अनेक देशों के मध्य अपनी सेवाएँ प्रदान करती है। इस देश की कम्पनियों को विदेशी मुद्रा से प्राप्त भाड़ा शुल्क 'जमा' की ओर तथा विदेशी कम्पनियों को दी गयी राशियाँ 'नाम' में दिखायी जाती है।

(*iii*) **यात्राएँ** (Travels)—विभिन्न देशों के नागरिक एक देश से दूसरे देश में पर्यटकों (Tourists) के रूप में या सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत कारणों से आते जाते हैं। देश में आने वालों से विदेशी मुद्राएँ प्राप्त होती (क्योंकि बदले में उन्हें व्यय के लिए इस देश की मुद्रा की जाती है) हैं। इसके विपरीत बाहर जाने वाले विदेशी मुद्राएँ व्यय करते हैं।

नोट

(*iv*) **बीमा** (Insurance)—बीमा कम्पनियाँ विभिन्न देशों में व्यापार (सामुद्रिक, अग्नि, जीवन, या अन्य बीमा व्यवसाय) करती है। इनको विदेशी मुद्रा में प्राप्त होने वाली आय विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि करती है, वह 'जमा' में दिखायी जायेगी। इसके विपरीत विदेशी कम्पनियों को चुकायी गयी राशि 'नाम' में लिखी जायेगी क्योंकि देश के विदेशी मुद्रा भण्डारों में उनसे कमी होगी।

टास्क विदेशी विनिमय दर किसे कहते हैं?

(*v*) **निवेश आय** (Investment Income)—देश के नागरिकों एवं व्यावसायिक संगठनों आदि ने विदेशों में किये गये निवेशों (Investments) से ब्याज, लाभांश आदि प्राप्त किये हों, वे जमा की तरफ तथा विदेशी नागरिकों द्वारा देश में किये गये निवेशों पर आय की उनको भेजी गयी राशियाँ 'नाम' पक्ष में लिखी जायेगी। सभी प्रकार के ब्याज, लाभांश के भुगतान, चाहे वे सरकारी हो या निजी क्षेत्र के लिखे जायेंगे।

(*vi*) **शिक्षा, चिकित्सा व्यय आदि** (Education, Medical Expences etc.)—अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान, जो शिक्षा, चिकित्सा आदि के लिए किये जायें, वे लिखे जायेंगे। प्राप्तियाँ, 'जमा' पक्ष में तथा विदेशी मुद्रा में किये गये भुगतान 'नाम' पक्ष में।

(*vii*) **हस्तान्तरण भुगतान** (Transfer Payments)—अनेक भुगतान सरकार द्वारा या निजी क्षेत्र द्वारा लिये दिये जाते हैं, जैसे पुराने कर्मचारियों को पेन्शन, पत्र-पत्रिकाओं के चन्दे, अनुदान व हर्जाने, विदेशों में विज्ञापन आदि। ये सभी अलग से इस शीर्षक में शामिल किये जाते हैं।

(*viii*) **सरकारी भुगतान** (Govt. Payments)—अनेक सरकारी संस्थाएँ एवं विभाग अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर लेन-देन करते हैं, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ व उससे सम्बन्धित संस्थाओं में व्यय, विदेशों में स्थित राजदूतावासों, वाणिज्य दूतावासों या सरकारी प्रतिनिधि मण्डल आदि से सम्बन्धित लेन-देन। विदेशों में किये गये व्यय 'नाम' पक्ष में तथा विदेशों से प्राप्तियाँ 'जमा' पक्ष में लिखी जाती हैं।

(*ix*) **पूँजीगत लेन-देन** (Capital Transactions)—पूँजी खाते में देश से होने वाली पूँजी कोषों के आवागमन (Movements) का लेखा किया जाता है। निजी क्षेत्र, बैंकिंग संस्थाओं तथा सरकारी क्षेत्र द्वारा पूँजीगत लेन-देन अलग अलग दिखाये जाते हैं। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण, निवेश, विनियोग आदि का अलग-अलग उल्लेख किया जाता है। विदेशी मुद्रा की प्राप्तियाँ जिनसे देश के विदेशी मुद्रा कोषों में वृद्धि हो, 'जमा' की ओर तथा विदेशी मुद्रा का बहिर्गमन, जिससे विदेशी मुद्रा कोष कम हो, 'नाम' की ओर लिखे जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार विदेशों से प्राप्त ऋण या विनियोग की राशि 'जमा' व विदेशों को दिये गये ऋण आदि 'नाम' पक्ष की ओर लिखे जाते हैं। जब दिये गये ऋण पुनः वापस लौटेंगे तब 'जमा' की ओर (भविष्य में) दिखाये जायेंगे। ऋण देते समय 'वचन पत्र' (IOUs or Securities) आयात किये जाते हैं, इसलिए भी यह 'नाम' में लिखा जायेगा।

(*x*) **स्वर्ण का आवागमन** (Gold Movements)—विदेशों से भुगतान में स्वर्ण का लेन-देन, विशेषकर जब कि भुगतान में असन्तुलन को दूर करने के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न हो, स्वर्ण का आयात वस्तुओं के समान ही होगा। सोना प्राप्त करना आयात व सोना भेजना निर्यात समझा जायेगा और तदनुसार लेखों से भुगतान के दोनों योग बराबर हो जायेंगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. .... को सांख्यिकीय सारणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. अनुकूल व्यापार संतुलन होने से देश के .... भंडारों में वृद्धि होती है।

नोट

3. विपरीत प्रतिकूल व्यापार संतुलन होने पर .... भी प्रतिकूल हो जाती हैं।
4. भुगतान संतुलन एक सांख्यकीय सारांश .... है।
5. व्यापार संतुलन भी भुगतान संतुलन का एक .... है।
6. भुगतान संतुलन में लेखे दोहरी .... के आधार पर किये जाते हैं।
7. .... विभिन्न देशों में व्यापार करती हैं।
8. पूँजी खाते में देश से होने वाली .... के आवागमन का लेखा किया जाता है।

11.2 सारांश (Summary)

- एक देश द्वारा एक निश्चित अवधि में अपने देश से किए गए माल के निर्यात एवं आयात के शेष को व्यापार-सन्तुलन कहते हैं। इसको एक सांख्यिकीय सारणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
- अनुकूल विदेशी व्यापार सन्तुलन होने पर विदेशी विनिमय दर भी अनुकूल होती है क्योंकि निर्यातों के अधिक होने से विदेशी बाजारों में निर्यातकों देश की मुद्रा की पूर्ति अधिक होगी। इससे विदेशी मुद्रा का मूल्य कम अर्थात् स्वदेशी मुद्रा का मूल्य ऊँचा होगा।
- प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन को सुधारने के लिए देश से निर्यातों में वृद्धि करने तथा निर्यातों से अधिकाधिक आय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। निर्यात संवर्द्धन के लिए मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation of Money), राशिपातन की नीति (Dumpting Policy), सार्वजनिक क्षेत्र में निर्यात सम्बर्द्धन संस्थानों एवं उपक्रमों की स्थापना, विदेशों से द्विपक्षीय समझौते करना, निर्यात वस्तुओं की किस्त, पैकिंग आदि में सुधार करना, देश में बन्दरगाह तक माल पहुँचाने के लिए यातायात व्यय में निर्यात देना, निर्यातकों को आर्थिक एवं अन्य सुविधाएँ देना, विदेशों में विक्रय वृद्धि हेतु बाजार अनुसन्धान, विज्ञापन, प्रदर्शनी, मेलों आदि का आयोजन तथा ऐसे ही अनेक प्रयत्न किये जाते हैं।
- वस्तुओं के आयात निर्यात के अतिरिक्त अन्य सौदे भी हैं, जिनके लिए विदेशों का भुगतान किया जाय अथवा भुगतान प्राप्त हो। भुगतान सन्तुलन बनाकर विदेशों से होने वाले समस्त मौद्रिक व्यवहारों की वास्तविक स्थिति ज्ञात की जाती है। इससे विदेशी मुद्राओं की प्राप्ति एवं उपयोग की मदों की जानकारी भी मिलती है।
- **भुगतान सन्तुलन बनाने का उद्देश्य** एक देश की अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिति प्रस्तुत करना है ताकि सम्बन्धित सरकारी अधिकारियों को मौद्रिक, प्रशुल्क, व्यापार व भुगतान सम्बन्धी नीति का निर्माण करने में सहायता मिले।
- व्यापार सन्तुलन अनुकूल एवं प्रतिकूल हो सकता है परन्तु लेखों के रूप में भुगतान सन्तुलन सदैव सन्तुलित होता है। भुगतान सन्तुलन में असाम्यता को ऋण, अनुदान एवं स्वर्ण के आयात-निर्यात (यदि किये गये हों) के माध्यम से दूर कर सन्तुलित अवस्था बतायी जाती है। व्यवहार में भुगतान सन्तुलन भी असन्तुलित होता है, और यह असन्तुलन जबकि वह प्रतिकूल हो, कमजोर वित्तीय व आर्थिक स्थिति का परिचायक है, परन्तु व्यापार सन्तुलन में प्रतिकूलता अधिक महत्व नहीं रखती।
- भुगतान सन्तुलन को मुख्यत: दो भागों में बाँटा जाता है—(*i*) चालू खाता (Current Account), तथा (*ii*) पूँजी खाता (Capital Account)। चालू खाते में वे सभी अन्तर्राष्ट्रीय सौदे जिनसे विर्तमान में उसी देश वालों को या विदेशियों को आय अर्जित होती का लेखा किया जाता है, जैसे वस्तुओं का आयात-निर्यात, सेवाओं से प्राप्त आय या इनके लिए विदेशियों को दी गयी राशियाँ, एक पक्षीय हस्तान्तरण, विनियोगों से आय आदि। जब कि पूँजी खाते में ऋण व सम्पत्ति को (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ढंग से) प्रभावित करने वाले सौदे जिनसे भविष्य में आय होगी, लिखे जाते हैं।

नोट

- **व्यापारिक माल या दृश्य व्यापार या वस्तुओं का आयात-निर्यात** (Visible Trade)– सर्वाधिक महत्वपूर्ण मद है। इसकी "जमा" व "नाम" का अन्तर ही "व्यापार सन्तुलन" कहलाता है। विदेशी व्यापार में जो भी वस्तुएँ आयात व निर्यात की गयीं, उनके मूल्य का लेखा यहाँ लिखा जाता है। इन्हें दृश्य आयात या निर्यात मदें भी कहते हैं।
- पूँजी खाते में देश से होने वाली पूँजी कोषों के आवागमन (Movements) का लेखा किया जाता है। निजी क्षेत्र, बैंकिंग संस्थाओं तथा सरकारी क्षेत्र द्वारा पूँजीगत लेन-देन अलग अलग दिखाये जाते हैं। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण, निवेश, विनियोग आदि का अलग-अलग उल्लेख किया जाता है।

11.3 शब्दकोश (Keywords)

- **अनुदान**– आर्थिक सहायता।
- **आवागमन**–आना-जाना।

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. व्यापार संतुलन तथा भुगतान संतुलन में क्या अंतर है?
2. भुगतान संतुलन की प्रमुख मदें कौन-सी हैं?
3. व्यापार संतुलन से आप क्या समझते हैं? प्रतिकूल व्यापार संतुलन का किसी देश की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. प्रतिकूल व्यापार संतुलन को ठीक करने के लिए कौन से उपाय अपनाये जाते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. व्यापार संतुलन	2. विदेशी	3. व्यापार शर्तें	4. अभिलेख
5. अंश	6. लेखा प्रणाली	7. बीमा कम्पनियाँ	8. पूँजी कोषों।

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—12: भुगतान-शेष में संतुलन एवं असंतुलन (Equilibrium and Dis-Equilibrium in BOP)

उद्देश्य (Objectives)

अनुक्रमणिका (Contents)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 भुगतान-शेष में सन्तुलन (Equilibrium in Balance of Payment)

12.2 भुगतान-शेष का महत्व (Importance of Balance of Payment)

12.3 भुगतान-शेष में असन्तुलन (Disequilibrium in Balance of Payment)

12.4 भुगतान-शेष में असन्तुलन के कारण (Causes of Disequilibrium in Balance of Payment)

12.5 विकासशील देशों के भुगतान-शेष में असन्तुलन के कारण (Reasions of Disequilibrium in Balance of Payments of Developing Nations)

12.6 सारांश (Summary)

12.7 शब्दकोश (Keywords)

12.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भुगतान-शेष में संतुलन तथा असंतुलन की व्याख्या करने में।
- भुगतान-शेष का महत्त्व तथा असंतुलन का कारण जानने में।
- विकासशील देशों के भुगतान-शेष में असंतुलन के कारण की विवेचना करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भुगतान शेष से आशय देश के सेवाओं के मूल्यों के संपूर्ण विवरण से होता है। इसका वितरण तैयार करते समय दोहरी प्रविष्टि प्रणाली अपनाई जाती है जिसमें शेष विश्व के साथ किसी देश के लेखे का विवरण होता है।

12.1 भुगतान-शेष में सन्तुलन (Equilibrium in Balance of Payment)

एक देश का व्यापार-शेष भले ही सन्तुलन में न रहे, पर भुगतान-शेष सदैव सन्तुलन की स्थिति में रहता है। व्यापार-शेष का आशय माल के आयात और निर्यात से होता है। जब किसी देश के निर्यात का मूल्य, आयात मूल्य से अधिक होता है, तो उस देश का व्यापार-शेष उसके पक्ष में होता है, किन्तु व्यापार-शेष से देश की सम्पूर्ण आर्थिक-स्थिति का ज्ञान नहीं होता तथा इसमें असन्तुलन हो सकता है।

नोट

जहां तक भुगतान-शेष का सम्बन्ध है, चूंकि इसका विवरण बहीखाते के **समान दोहरी प्रविष्टि** (Equal Dual Entry) लेनदारी एवं देनदारी के आधार पर तैयार किया जाता है और यदि सारी प्रविष्टियां सही ढंग से की जाती हैं तो कुछ लेनदारियां कुल देनदारियों के बराबर होती हैं। इसका कारण यह है कि लेन-देन के दोनों पक्ष योग राशि में बराबर होते हैं तथा उन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध दिशा में लिखा जाता है। **अतः लेखा के सन्दर्भ में भुगतान-शेष, सदैव सन्तुलन में रहता है।** यह बात दूसरी है कि इन दोनों के अन्तर को, ऋण द्वारा पूर्ति करके, समान दिखाया जाता है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार के सन्तुलन में, **चालू खाता** और **पूंजी खाता** दोनों को दृष्टि में रखना आवश्यक है। यदि केवल चालू खाते को लिया जाय तो भुगतान-शेष, असन्तुलित हो सकता है। यहां इन दोनों का अर्थ समझना आवश्यक है।

चालू खाते (Current Account) के अन्तर्गत लेन-देन के फलस्वरूप किए जाने वाले अथवा प्राप्त होने वाले उन भुगतानों का समावेश होता है जो चालू (एक) वर्ष में पूरे किए जाते हैं। **पूंजी खाते** (Capital Accounts) के अन्तर्गत उन मुद्दों को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा चालू खातों में प्रविष्ट भुगतान सम्भव होते हैं अर्थात् आयात-निर्यात एवं सेवाओं के बदले प्राप्य एवं देय भुगतानों को सम्भव बनाने वाली मदें पूंजी खाते में सम्मिलित की जाती हैं। **पूंजी खाते से किसी देश की अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग अथवा ऋणग्रस्तता सम्बन्धी स्थिति का ज्ञान होता है।** इन दोनों में वही अन्तर है जो आय और पूंजी में होता है। आय निश्चित अवधि में एक प्रवाह (flow) के समान है जबकि पूंजी समय-अन्तराल में एक संग्रह (stock) है। **चालू खाते के अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं, ब्याज एवं लाभांश और एकपक्षीय हस्तान्तरणों को शामिल किया जाता है तथा पूंजी खाते में दीर्घकालीन और अल्पकालीन विनियोगों एवं मुद्रा के आवागमन को शामिल किया जाता है।**

भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में रहता है। इसे निम्नवत् भी स्पष्ट किया जा सकता है।

'भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में होता है' का अर्थ है कि चालू-लेखा, पूंजी लेखा और सरकारी व्यवस्थापन लेखा की निवल क्रेडिट और डेबिट शेषों का बीजगणितीय जोड़ अवश्य शून्य होना चाहिए। भुगतान-शेष को निम्न प्रकार लिखा जाता है–

$$B = R_f - P_f$$

जहां B भुगतान-शेष, R_f विदेशियों से प्राप्तियों और P_f विदेशियों को किए गए भुगतानों को व्यक्त करते हैं।

जब $B = R_f - P_f = 0$, तो भुगतान-शेष सन्तुलन में है। जब $R_f - P_f > 0$, तो इसका मतलब है कि विदेशियों को किए गए भुगतानों की अपेक्षा विदेशियों से हुई प्राप्तियां अधिक हैं और भुगतान-शेष में **अतिरेक** (Surplus) है। दूसरी ओर, जब $R_f - P_f < 0$ अथवा $R_f < P_f$ तो भुगतान-शेष में घाटा है, क्योंकि विदेशियों को जो भुगतान किए गए हैं, वे विदेशियों से हुई प्राप्तियों से अधिक हैं।

यदि **निवल** (Net) विदेशी उधार, दान तथा विदेशों में निवेश को लिया जाए, तो लोचदार विनिमय दर निर्यात को आयात से बढ़ा देती है। अन्य करेन्सियों के दामों में घरेलू करेन्सी का मूल्य घट जाता है। आयात की सापेक्षता में निर्यात अधि क सस्ते हो जाते हैं। इसे समीकरण के रूप में यों दिखाया जा सकता है–

जहां X निर्यात, M आयात, I_f विदेशी निवेश और B विदेश से उधार लेने को व्यक्त करते हैं

अथवा $$X - M = I_f - B$$

अथवा $$(X - M) - (I_f - B) = 0$$

यह समीकरण बताता है कि भुगतान-शेष सन्तुलन में है। चालू लेखा के धनात्मक शेष का उसके पूंजी लेखा का ऋणात्मक शेष पूर्ण रूप से क्षतिपूर्ण कर देता है, और उलट भी। लेखांकन की दृष्टि से, भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में होता है। इसे निम्न समीकरण की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है–

$$C + S + T = C + I + G + (X - M)$$

अथवा $$Y = C + I + G + (X - M) \qquad [\because \; Y = C + S + T]$$

नोट

जहां C उपभोग व्यय, S घरेलू बचत, T कर प्राप्तियों, I निवेश व्यय, G सरकारी व्यय, X वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात को और M वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात को व्यक्त करते हैं।

ऊपर दिए गए समीकरण में C + S + T सकल राष्ट्रीय आय (GNI) अथवा राष्ट्रीय आय (Y) है और

$$C + I + G = A$$

जहां A को अवशोषण (absorption) कहा जाता है।

लेखांकन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कुल घरेलू व्यय (C + I + G) और चालू आय (C + S + T) बराबर हों अर्थात् A = Y; तो घरेलू बचतें (S_d) और घरेलू निवेश (I_d) भी बराबर होने चाहिए। इसी तरह आवश्यक है कि चालू खाते में निर्यात अतिरेक (X > M) को निवेश से बढ़ी हुई घरेलू बचत ($S_d > I_d$) क्षतिपूर्ति कर दें। इस प्रकार, **लेखांकन की दृष्टि से, भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में होता है।**

लेखांकन प्रणाली में, एक लेन-देन (Transaction) का अन्त:प्रवाह और बाह्य प्रवाह क्रमश: क्रेडिट और डेबिट पक्षों में लिखा जाता है। इसलिए क्रेडिट और डेबिट पक्ष सदैव सन्तुलन में होते हैं। यदि चालू लेखा में घाटा हो तो इसे पूंजी लेखा में उतने ही अतिरेक द्वारा पूरा करके सन्तुलन किया जा सकता है। इसके लिए विदेशों से उधार लेकर या/और विदेशी विनिमय रिजर्व से और स्वर्ण निर्यात द्वारा पूंजी लेखा में अतिरेक उत्पन्न किया जा सकता है। चालू लेखा में अतिरेक होने पर इसके विपरीत पूंजी लेखा में घाटे द्वारा सन्तुलन लाया जा सकता है। **अत: इस दृष्टिकोण से भी भुगतान शेष सदैव सन्तुलन में होता है।**

टास्क भुगतान-शेष में घाटे या अतिरेक से आप क्या समझते हैं?

भुगतान-शेष को मापना (Measuring BOP)

यदि भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलित रहता है, तो किसी देश के भुगतान-शेष में घाटा या अतिरेक क्यों प्रकट होता है? घाटे या अतिरेक की सम्भावना केवल उस स्थिति में नहीं होती, जब भुगतान-शेष में सब मदें शामिल कर ली जाएं। यदि किसी देश के भुगतान-शेष में से कुछ मदें निकाल दी जाएं और फिर शेष निकाला जाए तो इसमें घाटा या अतिरेक आ सकता है।

भुगतान-शेष में घाटे या अतिरेक को मापने के तीन तरीके हैं। प्रथम, **बुनियादी शेष** (Basic Balance) होता है जिसमें चालू लेखा शेष और दीर्घावधि पूंजी लेखा शेष शामिल हैं। दूसरा, **निवल तरलता शेष** (Net Liquidity Balance) है जिसमें बुनियादी शेष तथा अल्पवधि निजी अतरल पूंजी शेष शामिल हैं। तीसरा, **सरकारी भुगतान-शेष** (Official Settlement Balance) है जिसमें कुल निवल तरल शेष तथा अल्पवधि निजी तरल पूंजी शेष शामिल हैं।

इन शेषों के बीच सम्बन्ध को संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार दर्शाया गया है।

तालिका 1

व्यापार शेष.........	a
हस्तान्तरण भुगतान-शेष.........	b
चालू लेखा शेष.........	$\overline{c(= a + b)}$
दीर्घावधिक पूंजी शेष.........	d
बुनियादी शेष.........	$\overline{e(= c + d)}$
अल्पावधि निजी अतरल पूंजी.........	f

SDRs आबण्टन.........	g
अशुद्धियां और भूल-चूक	h
निवल तरलता शेष.........	$\overline{i(= e + f + g + h)}$
अल्पवधि निजी तरल पूंजी शेष.........	j
सरकारी भुगतान-शेष.........	$\overline{k(= i + j)}$

प्रत्येक शेष, घाटे का अलग-अलग चित्र प्रस्तुत करेगा। जो मदें एक विशिष्ट शेष में शामिल की जाती हैं, वे 'रेखा के ऊपर' रखी जाती हैं और जो मदें निकाल दी जाती हैं वे 'रेखा के नीचे' रखी जाती हैं। जो मदें रेखा के नीचे रखी जाती हैं वे निपटारा (Settlement) अथवा समायोजन (Accommodating) अथवा क्षतिपूरक (Compensatory) मदें कहलाती हैं। दूसरी ओर, जो मदें रेखा के नीचे रखी जाती हैं, वे स्वायत्त (Autonomous) मदें कहलाती हैं। सैद्धान्तिक विश्लेषण में, भुगतान-शेष में असन्तुलन का अर्थ है स्वायत्त मदों का शेष। अल्पवधि पूंजी लेन-देन के क्षतिपूरक का उद्देश्य भुगतान-शेष की स्वायत्त मदों में असन्तुलन को दूर करना है, परन्तु इसके बाद का निर्णय करना कठिन है कि कौन-सी मद क्षतिपूरक है और कौन-सी स्वायत्त है। उदाहरणार्थ, पीछे दी गई तालिका 1 में तीनों शीषों में प्रमुख अन्तर इस बात का है कि वे अल्पावधि में पूंजी गतियों को किस प्रकार लेती हैं, क्योंकि ये गतियां भुगतान-शेष में घाटे के लिए उत्तरदायी होती हैं। बुनियादी शेष तो अल्पावधि में निजी अतरल पूंजी गतियों को रेखा के नीचे रखता है जबकि निवल तरल शेष उन्हें रेखा के ऊपर रखता है। इसी प्रकार निवल तरल अल्पावधि में निजी तरल पूंजी गतियों को रेखा के नीचे रखता है और सरकारी भुगतान-शेष उन्हें रेखा के ऊपर रखता है।

उपर्युक्त विश्लेषण स्थिर विनिमय दरों की मान्यता पर आधारित है। इस प्रकार, स्थिर विनिमय दरों की प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय शेष में घाटा (या अतिरेक) सम्भव है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से कार्यशील विनिमय दरों की प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय शेष सिद्धान्त में कोई घाटा (या अतिरेक) नहीं हो सकता और फिर लेखांकन के आधारभूत नियम के अनुसार वास्तविक लेखांकन की दृष्टि से, भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में होता है। अन्तिम बात यह है कि इस तरह का भुगतान-शेष केवल तभी सन्तुलन में हो सकता है, जब क्षतिपूर्वक लेन-देन न हों।

नोट्स स्थिर विनिमय दरों की प्रणाली के अंतर्गत विनिमय मं घाटा (या अतिरेक) संभव है, परंतु स्वतंत्र रूप से कार्यशील विनिमय दरों की प्रणाली के अंतर्गत विनिमय शेष सिद्धांत में कोई घाटा या अतिरेक नहीं हो सकता।

12.2 भुगतान-शेष का महत्त्व (Importance of Balance of Payment)

देश के भुगतान-शेष के विवरण से हम न केवल उसके अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों को जान सकते हैं वरन् इस विवरण से उसकी मौद्रिक, राजकोषीय एवं विनिमय सम्बन्धी नीतियों को भी जाना जा सकता है। इसके महत्त्व को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

(1) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-स्थिति का सूचक—किसी देश की अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-स्थिति का विश्लेषण करने और उसे निर्देशित करने में भुगतान-शेष का महत्वपूर्ण स्थान है। इससे देश की सरकार को इस बात की जानकारी मिलती है कि अन्तर्राष्ट्रीय-जगत में उसकी आर्थिक-स्थिति क्या है तथा इस सम्बन्ध में किन नीतियों का अनुसरण किया जा सकता है ताकि भुगतान-शेष को सन्तुलित किया जा सके।

(2) विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति का सूचक—भुगतान-शेष के विवरण से हम यह जान सकते हैं कि किसी विशेष देश की विदेशी व्यापार प्रवृत्ति क्या है क्योंकि विदेशी व्यापार की मद, भुगतान-शेष की सबसे महत्वपूर्ण मद होती है।

नोट

यह भी जाना जा सकता है कि देश के निर्यातों एवं आयातों का मूल्य क्या है।

(3) विदेशी ऋणों के भुगतान की विधि का ज्ञान—भुगतान-शेष से हम यह भी जान सकते हैं कि एक देश अपने विदेशी दायित्वों का भुगतान किस प्रकार कर रहा है। क्या वह वस्तुओं का निर्यात कर रहा है अथवा विदेशी जमा का प्रयोग कर रहा है अथवा उपहार प्राप्त कर रहा है। इस प्रकार भुगतान-शेष के विवरण से यह जाना जा सकता है कि एक देश मुद्रा का ऋण ले रहा है अथवा दे रहा है, उसके विदेशी विनिमय कोषों में वृद्धि हो रही है अथवा कमी एवं उसकी मौद्रिक एवं नियन्त्रण सम्बन्धी नीतियां कहां तक प्रभावशाली हैं।

(4) मुद्रा के अवमूल्यन के प्रभाव का ज्ञान—भुगतान-शेष विवरण से यह जान सकते हैं कि उस देश की मुद्रा के अवमूल्यन का क्या प्रभाव हुआ है। चालू खाते से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि अवमूल्यन के फलस्वरूप देश के निर्यातों में वृद्धि हुई है अथवा नहीं।

(5) राष्ट्रीय आय पर प्रभाव—विदेशी व्यापार का देश की राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है अत: **प्रो. किंडलबर्जर** के अनुसार भुगतान-शेष का प्रयोग यह मानने के लिए किया जाता है कि विदेशी व्यापार एवं लेन-देन का देश की राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव हुआ है।

(6) विभिन्न मुद्राओं में देश की भुगतान-शेष की स्थिति—किसी भी देश का भुगतान-शेष विभिन्न मुद्राओं वाले देशों के साथ एकसमान रहे, यह आवश्यक नहीं है। जैसे अमरीकी अथवा डालर क्षेत्र के देशों के साथ एक देश की भुगतान-शेष की स्थिति घाटे की रह सकती है जबकि अन्य देशों के साथ अतिरेक की रह सकती है अत: भुगतान-शेष के अध्ययन से यह पता चल सकता है कि विभिन्न मुद्राओं में देश के भुगतान-शेष की स्थिति क्या है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी देश का भुगतान-शेष उसकी आर्थिक-स्थिति का **मापक** (Barometer) होता है। इसके महत्व को दृष्टि में रखकर ही प्रो. जेवन्स (Jevons) ने कहा है कि "एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री के लिए भुगतान-शेष का वही महत्व होता है जो एक रसायनशास्त्री के लिए तत्वों की आवधिक तालिका का होता है।"[1]

12.3 भुगतान-शेष में असन्तुलन (Disequilibrium in Balance of Payments)

एक देश के भुगतान शेष (BOP) में असन्तुलन या तो घाटा या अतिरेक हो सकता है। एक देश के BOP में घाटा या अतिरेक तब होता है जब उसकी स्वायत्त प्राप्तियां (Autonomous Receipts) (क्रेडिट) उसके स्वायत्त भुगतान (डेबिट) से मेल नहीं खाती हैं। यदि स्वायत्त डेबिट भुगतानों से स्वायत्त, क्रेडिट प्राप्तियां अधिक हों तो BOP में अतिरेक होता है और असन्तुलन अनुकूल (Favourable) कहा जाता है। दूसरी ओर, यदि स्वायत्त क्रेडिट प्राप्तियों से स्वायत्त डेबिट भुगतान अधिक हों तो BOP में घाटा होता है और असन्तुलन **प्रतिकूल** (Unfavourable) या **विरुद्ध** (Adverse) कहलाता है।

भुगतान-शेष में असन्तुलन के प्रकार (Kinds of Disequilibrium in Balance of Payment)

(1) चक्रीय असन्तुलन (Cyclical disequilibrium)

(2) सुदीर्घकालिक असन्तुलन (Secular disequilibrium)

(3) संरचनात्मक असन्तुलन (Structural disequilibrium)।

(1) चक्रीय असन्तुलन (Cyclical Disequilibrium)—भुगतान-शेष में चक्रीय असन्तुलन, चक्रीय उच्चावचन के कारण होता है। व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। व्यापार चक्र के कारण भुगतान-शेष में निम्न प्रकार से चक्रीय असन्तुलन पैदा हो सकता है—

(*a*) जब विभिन्न देशों में व्यापार चक्र के फलस्वरूप तेजी एवं मन्दी की स्थिति में भिन्नता हो अथवा गहनता हो। यदि एक देश X में, दूसरे देश Y की तुलना में व्यापार चक्र का प्रभाव अधिक गहन है तो X देश में तेजी की

1. "What is periodic table of elements to the chemist, the balance of payment is to the International Economist." —Jevons

नोट

स्थिति में भुगतान-शेष प्रतिकूल रहेगा (क्योंकि कीमतों में वृद्धि से निर्यात हतोत्साहित होंगे) एवं मन्दी के समय भुगतान-शेष अनुकूल रहेगा (कीमतों में कमी से निर्यात प्रोत्साहित होंगे)। Y देश में इसके विपरीत स्थिति होगी।

(*b*) यदि विभिन्न देशों में व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में भिन्नता हो तो भी भुगतान-शेष में चक्रीय असन्तुलन अथवा असाम्य पैदा हो सकता है। यदि दूसरे देश की तुलना में, एक देश में पुनरुत्थान (Recovery) की अवस्था बहुत विलम्ब से आती है तो इसका दीर्घकालीन प्रभाव उस देश के भुगतान-शेष पर प्रतिकूल होता है।

(*c*) यदि विभिन्न देशों में आयातों के लिए मांग की आय लोच में भिन्नता हो तो भी भुगतान-शेष में चक्रीय असन्तुलन पैदा हो सकता है। यदि अन्य बातों के स्थिर रहने पर X देश में आयातों के लिए मांग की आय लोच, Y की तुलना में अधिक है तो तेजी की स्थिति में X देश में भुगतान-शेष प्रतिकूल रहेगा एवं मन्दी के समय अनुकूल रहेगा।

(*d*) यदि विभिन्न देशों में आयातों के लिए मांग की कीमत लोच में भिन्नता हो तो भी भुगतान-शेष में चक्रीय असन्तुलन पैदा हो सकता है। यदि अन्य बातें स्थिर रहने पर, X देश में आयातों के लिए मांग की कीमत लोच, Y की तुलना में अधिक है तो तेजी की स्थिति में X देश में भुगतान-शेष अनुकूल होगा एवं मन्दी की स्थिति में प्रतिकूल होगा।

(2) सुदीर्घकालिक असन्तुलन (Secular Disequilibrium)—एक अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिनके अन्तर्गत धीरे-धीरे होने वाले दीर्घकालीन परिवर्तन होते हैं जैसे परम्परागत समाज (Traditional Society) से स्वयं-स्फूर्ति के पूर्व की अवस्था (Preconditions of take-off) प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था में कई परिवर्तन होते हैं जो एकाएक न होकर धीरे-धीरे होते हैं। इस समय अन्तराल में कई गतिशील तत्वों में परिवर्तन होते हैं; जैसे पूंजी-निर्माण, जनसंख्या की वृद्धि, तकनीकी प्रगति एवं नव-प्रवर्तन, औद्योगिक विकास इत्यादि। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में, विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बचत की तुलना में अधिक विनियोग करना आवश्यक हो जाता है तथा निर्यातों की तुलना में आयात भी अधिक करना होता है। यदि ऐसी स्थिति में देश में पर्याप्त मात्रा में विदेशी पूंजी उपलब्ध नहीं होती तो देश में भुगतान-शेष के घाटें की विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार यदि विकास की दर की तुलना में देश में जनसंख्या की वृद्धि की दर अधिक रहती है तो भी उसकी आयात की आवश्यकताएं निर्यात की तुलना में अधिक रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप भुगतान-शेष प्रतिकूल रहता है अथवा उसमें दीर्घकालीन घाटे की स्थिति आ जाती है।

आर्थिक विकास की परिपक्वता की अवस्था (Drive to Maturity) प्राप्त कर लेने के बाद देश में विनियोग की तुलना में आय का अनुपात बढ़ जाता है। पूंजी के आधिक्य से उत्पादन में भी वृद्धि होती है और आयातों की तुलना में निर्यात भी अधिक बढ़ने लगते हैं। यदि इस स्थिति में देश से पर्याप्त मात्रा में पूंजी का बहिर्गमन नहीं हो तो देश के भुगतान-शेष में **दीर्घकालीन अतिरेक** की स्थिति आ जाती है।

(3) संरचनात्मक असन्तुलन (Structural Disequilibrium)—किसी देश के भुगतान-शेष में संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति उस समय आती है जब निर्यात अथवा आयात या इन दोनों की मांग या पूर्ति के ढांचे में परिवर्तन होता है। **किंडलबर्जर** के अनुसार, "जब देश की आधारभूत परिस्थितियों में परिवर्तन के फलस्वरूप देश की आय का कुछ भाग या तो विदेशों में व्यय किया जाने लगता है अथवा विदेशों से आय प्राप्त होने लगती है तो भी भुगतान-शेष में असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाती है।" इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। माना विदेशों में भारतीय शक्कर की स्थानापन्न वस्तु की खोज के कारण भारत की शक्कर की मांग घट जाती है तो इस स्थिति में शक्कर उद्योग में लगे साधनों को अन्य निर्यात उद्योगों में हस्तान्तरित करना पड़ेगा और यदि किन्हीं कारणों से इन साधनों को अन्य निर्यात उद्योगों में हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता तो भार में कुल निर्यात में कमी हो जाएगी एवं आयात अपरिवर्तित रहने पर, भारत के भुगतान-शेष में असन्तुलन की स्थिति आ जाएगी। यह संरचनात्मक असन्तुलन का एक उदाहरण है।

नोट

यदि विदेशों में शक्कर की मांग कम न हो, किन्तु यदि भारत में गन्ने की फसल खराब हो जाने के कारण भारत अपने निर्यातों की पूर्ति नहीं कर पाता और यदि आयात अपरिवर्तित रहता है तो निर्यात कम हो जाने के कारण भारत के भुगतान-शेष में असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाएगी।

भुगतान **शेष में संरचनात्मक असन्तुलन उत्पन्न होने के कारणों को बिन्दुवार निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—**

(*i*) **पूंजीगत हानियां** (Capital Losses)—जब देश में युद्ध या अन्य प्राकृतिक संकटों के फलस्वरूप पूंजी की भारी मात्रा में क्षति होती है तो उत्पादन की बहुत हानि होती है एवं राष्ट्रीय आय पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कई पूंजीगत साधनों की क्षति के कारण, विदेशों से भारी मात्रा में पूंजी का आयात करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि निर्यात अपरिवर्तित रहते हैं (बढ़ नहीं पाते) तो भुगतान-शेष में सरंचनात्मक असन्तुलन पैदा हो जाता है।

(*ii*) **मांग का स्वरूप** (Pattern on Demand)—भुगतान-शेष में सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि देश में उत्पादन, मांग के ढांचे के अनुरूप हो। जब देश में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो मांग में भी वृद्धि होती है और देश में स्थित साधन इस बढ़ी हुई मांग की पूर्ति नहीं कर पाते तो इन वस्तुओं का विदेशों से आयात करना पड़ता है। यदि निर्यात अपरिवर्तित रहते हैं तो उक्त स्थिति में, आयातों की वृद्धि से भुगतान-शेष में असन्तुलन हो जाता है।

(*iii*) **व्यापार शर्तें** (Terms of Trade)—यह स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यापार-शर्तों का क्या आशय है तथा किस प्रकार व्यापार शर्तों का प्रभाव देश के भुगतान-शेष पर पड़ता है। एक देश के लिए व्यापार की शर्तें इसलिए अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो जाती हैं, क्योंकि आयातों और निर्यातों की मांग तथा पूर्ति में सापेक्षिक परिवर्तन हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किन्हीं कारणों से प्राथमिक उत्पादन और कच्चे माल की कीमतों में, निर्मित माल की तुलना में अधिक वृद्धि होती है तो जो देश प्राथमिक वस्तुओं (कृषि पदार्थों एवं कच्चे माल) का निर्यात करते हैं उनके लिए व्यापार की शर्तें अनुकूल हो जाती हैं और अतिरेक की स्थिति आ जाती है जबकि निर्मित माल वाले देश में संरचनात्मक असन्तुलन पैदा हो जाता है।

(*iv*) **दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह में परिवर्तन** (Changes in Long-term Capital Flows)—जब किसी देश के दीर्घकालीन पूंजी प्रवाह में परिवर्तन होता है तो इसके फलस्वरूप भी वहां संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति आ जाती है। जैसे एक देश दीर्घकाल से विदेशों से भुगतान प्राप्त कर रहा है जो उसके अनुकूल व्यापार सन्तुलन या अन्य कारणों से हो सकता है। यदि किन्हीं कारणों से उक्त भुगतान बन्द हो जाते हैं तो देश के भुगतान-शेष में संरचनात्मक असन्तुलन पैदा हो जाता है। **स्नाइडर** (D. A. Snider) के अनुसार, "पूंजी प्रवाह की गति अचानक रुकने का चाहे जो भी कारण हो, किन्तु इससे प्राप्तकर्ता देश के उत्पादन के ढांचे में असन्तुलन हो जाता है जिससे भुगतान-शेष भी असन्तुलित हो जाता है।"

(*v*) **संस्थागत परिवर्तन** (Institutional Changes)—जब देश में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत परिवर्तन होते हैं तो भी भुगतान-शेष में संरचनात्मक असन्तुलन पैदा हो जाता है। जैसे यदि राजनीतिक परिवर्तन के फलस्वरूप एक देश के निर्यात कम होते हैं तो भी भुगतान शेष असन्तुलित हो जाता है। इसी प्रकार व्यापार के क्षेत्र में यदि अवरोध अथवा बाधाएं पैदा की जाती हैं; जैसे विनिमय नियन्त्रण, अभ्यंश प्रणाली, इत्यादि तो भी संरचनात्मक असन्तुलन की स्थिति आ जाती है।

(*vi*) **व्यापार का ढांचा** (Pattern of Trade)—किसी देश के व्यापार के ढांचे में परिवर्तन होने के फलस्वरूप भी भुगतान-शेष में असन्तुलन की स्थिति आ जाती है। आयातों में वृद्धि अथवा निर्यातों में कमी होने से ऐसी असन्तुलन की स्थिति आ सकती है।

भुगतान शेष में असन्तुलन के अन्य प्रकार

(1) **अस्थायी असन्तुलन** (Temporary Disequilibrium)—भुगतान-शेष में अस्थायी असन्तुलन उस समय होता है जब वह अल्पकालीन अथवा अस्थायी कारणों से पैदा होता है तथा ऐसे असन्तुलन की स्थिति

दीर्घकालीन नहीं होती। जैसे ही अल्पकालीन कारण समाप्त होते हैं, असन्तुलन भी समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी देश में प्रतिकूल मौसम एवं बाढ़ अथवा सूखे की स्थिति के कारण खाद्यान्न की कमी हो जाती है तो उसे भारी मात्रा में विदेशों से आयात करना पड़ता है। यदि निर्यातों के मूल्य में कोई परिवर्तन न हो तो उतने समय के लिए जब तक कि अगले वर्ष प्रचुर मात्रा में फसल प्राप्त नहीं हो जाती, उस देश का भुगतान शेष असन्तुलित हो जाता है। इसे अस्थायी असन्तुलन कहते हैं।

(2) **स्थायी असन्तुलन** (Permanent Disequilibrium)—यह कुछ-कुछ दीर्घकालीन असन्तुलन से मिलता-जुलता है। दीर्घकालीन असन्तुलन उस समय होता है जब आर्थिक विकास की अवस्थाओं में परिवर्तन होता है, किन्तु इस कारण के अतिरिक्त यदि अन्य किन्हीं कारणों से किसी देश के भुगतान शेष का असन्तुलन दीर्घकाल तक चलता है तो उसे स्थायी असन्तुलन कहते हैं। जैसे यदि देश में उत्पादन लागत में वृद्धि होती है जिससे कीमतें बढ़ती हैं और उन्हें किसी तरह से कम नहीं किया जाता तो इसका देश के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे भुगतान शेष में स्थायी असन्तुलन होने की प्रवृत्ति रहती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. **निम्नलिखित कथनों में ✓ अथवा ✗ का निशान लगाइए (State whether the following statements are 'true' or 'false')—**

   1. व्यापार-शेष का आशय के आयात-निर्यात से होता है। ☐
   2. लेखांकन की दृष्टि से भुगतान-शेष हमेशा असंतुलित रहता है। ☐
   3. भुगतान-शेष में अतिरेक या घाटे को नापने के तीन तरीके हैं। ☐
   4. भुगतान-शेष अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक-स्थिति का सूचक है। ☐
   5. व्यापार-शेष में घाटे या अतिरेक को मापने के लिए बुनियादी शेष का तरीका अपनाया जाता है। ☐

12.4 भुगतान-शेष में असन्तुलन के कारण (Causes of Disequilibrium in Balance of Payment)

विभिन्न देशों में भुगतान-शेष में असन्तुलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं तथा एक ही देश में भिन्न-भिन्न समय में असन्तुलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं जैसे, भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में भुगतान-शेष में असन्तुलन इसलिए हुआ क्योकि भारी मात्रा में पूंजीगत वस्तुओं का औद्योगीकरण के लिए आयात किया गया तथा तृतीय योजनाकाल में इसलिए असन्तुलन हुआ क्योंकि देश में सूखे की स्थिति के कारण खाद्यान्न का काफी आयात किया गया जबकि युद्ध की स्थिति के कारण (चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के कारण) निर्यातों में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो सकी।

इस प्रकार भुगतान-शेष की कई मदों, जैसे दृश्य एवं अदृश्य आयात और निर्यात, एकपक्षीय भुगतान प्राप्ति, आदि में एक ही दिशा में होने वाले परिवर्तन असन्तुलन की स्थिति निर्मित कर देते हैं। सामान्य तौर पर निम्न कारण भुगतान-शेष में असन्तुलन पैदा कर देते हैं–

(1) **विकास एवं विनियोग कार्यक्रम—**विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों में भुगतान-शेष में असन्तुलन होने का मुख्य कारण, वहां भारी मात्रा में विकास एवं विनियोग सम्बन्धी कार्यक्रम हैं। ये देश द्रुत गति से औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास करना चाहते हैं किन्तु इसके लिए इनके पास पर्याप्त मात्रा में पूंजी एवं अन्य साधनों का अभाव होता है। अत: इन चीजों का इन्हें विदेशों से आयात करना होता है। इस प्रकार इन देशों का आयात तो बढ़ जाता है किन्तु उसी अनुपात में इनके निर्यात में वृद्धि नहीं हो पाती क्योंकि प्राथमिक उत्पादन होने के नाते, ये केवल इनी-गिनी वस्तुओं का ही निर्यात करते हैं। इसके साथ ही जब इन देशों में औद्योगीकरण की प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है तो उन वस्तुओं की खपत देश में ही बढ़ जाती है जिनका कि पहले निर्यात किया जाता था। इस प्रकार इन देशों के भुगतान-शेष में संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं जिसके फलस्वरूप संरचनात्मक असन्तुलन हो जाता है।

नोट

(2) चक्रीय उच्चावचन–व्यापार-चक्र के फलस्वरूप विभिन्न देशों में, भिन्न अर्थव्यवस्था में, चक्रीय उच्चावचन होते हैं जिनकी अवस्थाएं विभिन्न देशों में अलग-अलग होती हैं जिनके फलस्वरूप भुगतान-शेष में चक्रीय असन्तुलन पैदा हो जाता है।

क्या आप जानते हैं 1980 के दशक के दौरान विश्व के भुगतान शेष में चक्रीय उच्चावचन पैदा हुआ था।

(3) आय प्रभाव एवं कीमत प्रभाव–विकासशील देशों में आर्थिक विकास के फलस्वरूप लोगों की आय में वृद्धि होती है, जिससे कीमतों में वृद्धि होती है जिसका इन देशों के भुगतान-शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आय में वृद्धि होने से इन देशों के आयातों में वृद्धि होती है क्योंकि इनकी सीमान्त आयात प्रवृत्ति (marginal propensity to import) ऊंची होती है। इसके साथ ही चूंकि इन देशों में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति भी ऊंची होती है, लोगों की घरेलू वस्तुओं के उपभोग की मांग में भी वृद्धि होती है। इसका परिणाम यह होता है कि इनके पास निर्यात की वस्तुओं की कमी हो जाती है।

जब इन देशों में भारी उद्योगों में, अधिक मात्रा में विनियोग किया जाता है तो इसका मुद्रा-स्फीतिक प्रभाव होता है क्योंकि अन्तिम उत्पादन होने में तो काफी समय लगता है जबकि बढ़ती हुई मुद्रा लोगों के हाथों में पहुंच जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि वस्तुओं की मांग में वृद्धि होने से उनकी कीमतें बढ़ने लगती हैं जिससे आयातों को प्रोत्साहन मिलता है तथा निर्यात हतोत्साहित होते हैं और देश के भुगतान-शेष में असन्तुलन पैदा हो जाता है।

(4) निर्यात मांग में परिवर्तन–विकासशील देशों में भुगतान-शेष में असन्तुलन होने का एक प्रमुख कारण यह है कि इनके द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की मांग में परिवर्तन हुआ है। आज विकसित देश खाद्यान्न, कच्चे माल एवं अन्य वैकल्पिक वस्तुओं का उत्पादन करने लगते हैं जिनका कि पहले वे विकासशील देशों से आयात करते थे। इसके फलस्वरूप, विकासशील देशों के निर्यात कम हो गए हैं एवं उनके भुगतान-शेष में संरचनात्मक असन्तुलन पैदा हो गया है।

जहां तक विकसित देशों का प्रश्न है, उनके निर्यात भी पहले की तुलना में कम हो गए हैं जिसका कारण यह है कि एक तो उनके उपनिवेश बाजार समाप्त हो गए हैं एवं दूसरे, विकासशील देशों में अधिक आत्म-निर्भर होने की प्रवृत्ति पनप रही है। किन्तु इसे ध्यान में रखना चाहिए कि विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों के भुगतान-शेष में असन्तुलन की समस्या अधिक व्यापक एवं चिन्तनीय है।

(5) विकसित देशों में आयात प्रतिबन्ध–प्राय: विकसित देशों में अनुकूल व्यापार शर्तों एवं अन्य कारणों के फलस्वरूप, उनका भुगतान-शेष अतिरेक की स्थिति में रहता है और यदि ये विकासशील देशों से आयात करते रहें तो विकासशील देशों की भुगतान-शेष की स्थिति में सुधार हो सकता है। किन्तु ये देश तरह-तरह के आयात प्रतिबन्ध लगा देते हैं जिससे विकासशील देशों के निर्यात में वृद्धि नहीं हो पाती एवं उनके भुगतान-शेष में असन्तुलन हो जाता है।

(6) विकासशील देशों में तीव्र जनसंख्या वृद्धि दर–विकासशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि की दर बहुत अधिक है जिसका इन देशों के आर्थिक विकास एवं उनके फलस्वरूप भुगतान-शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण एक तो इन देशों की आयात की मात्रा में वृद्धि हो जाती है किन्तु दूसरी ओर, घरेलू उपभोग में वृद्धि होने से निर्यात-क्षमता कम हो जाती है। यह तथ्य भी इन देशों की स्थिति को भीषण बना देता है कि विकसित देशों की घटती हुई जनसंख्या से विकासशील देशों के निर्यात में कमी हो जाती है क्योंकि इन वस्तुओं की मांग में कमी हो जाती है। फलस्वरूप विकासशील देशों के भुगतान-शेष में असन्तुलन की समस्या और भी कठिन हो जाती है।

(7) प्रदर्शन प्रभाव–प्रो. नर्कसे ने अपनी पुस्तक[1] में प्रदर्शन प्रभाव (demonstration effect) की व्यापक चर्चा की है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, राजनीतिक एवं अन्य सामाजिक कारणों से जब अर्द्ध-विकसित देश विकसित देशों के सम्पर्क में आते हैं तो वहां के लोग विकसित देश के लोगों की उपभोग आदतों को अपनाने

नोट

के लिए प्रवृत्त होते हैं तथा पश्चिमी तड़क-भड़क को अपनाना चाहते हैं। अत: ऐसी वस्तुओं का विदेशों से आयात किया जाता है अर्थात् आयात प्रवृत्ति में वृद्धि होने लगती है, जबकि दूसरी ओर या तो उनकी निर्यात की मात्रा स्थिर रहती है अथवा उसमें कमी हो जाती है। इसके फलस्वरूप, विकासशील देशों के भुगतान-शेष में असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाती है।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय ऋण एवं विनियोग—अपने विकास कार्यक्रम को वित्तीय व्यवस्था के लिए बहुत-से विकासशील देश, विकसित देशों से भारी मात्रा में ऋण लेते हैं जिसके ब्याज एवं मूलधन की वापसी के लिए उन्हें बहुत अधिक विदेशी विनिमय खर्च करना होता है जिससे उनके भुगतान-शेष में असन्तुलन पैदा हो जाता है। दूसरी ओर, जो देश ऋण देते हैं, उनका भुगतान-शेष अनुकूल रहता है, क्योंकि उन्हें ब्याज, आदि के रूप में विदेशी विनिमय प्राप्त होता है।

12.5 विकासशील देशों के भुगतान-शेष में असन्तुलन के कारण (Reasions of Disequilibrium in Balance of Payments of Developing Nations)

विकाशील देशों में भुगतान शेष में असन्तुलन के परम्परागत कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेष कारण भी होते हैं जिनमें प्रमुख हैं—

(1) प्राथमिक उत्पादन की कीमतों की अस्थाई प्रकृति—विश्व बाजार में निर्मित वस्तुओं की तुलना में विकासशील देशों की प्राथमिक वस्तुओं की कीमतों में अस्थिरता रहती है। यदि मांग में परिवर्तन के फलस्वरूप इन वस्तुओं की कीमतों में उच्चावचन होते हैं तो निर्यात वस्तुओं की पूर्ति पर इसका प्रभाव पड़ता है। इसके पूर्व जब इनके निर्यातों की मात्रा अधिक रहती है तो ये देश एक निश्चित मात्रा में आयातों के आदी हो जाते हैं किन्तु जब निर्यात कम हो जाते हैं तो भी इनके आयात कम नहीं हो पाते, फलस्वरूप भुगतान-शेष प्रतिकूल हो जाता है।

(2) विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों में विनियोग की कमी—विकसित देशों का भुगतान-शेष अनुकूल रहता है। यदि ये अतिरेक वाले देश पिछड़े देशों में पूंजी का विनियोग करें तो विकासशील देशों की समस्या हल हो सकती है। उन्नीसवीं सदी में बहुत-से अर्द्ध-विकसित देशों का भुगतान-शेष ब्रिटेन के साथ इसलिए प्रतिकूल नहीं हुआ क्योंकि ब्रिटेन ने इन देशों में पूंजी का विनियोग किया।

(3) निर्यातों के विशिष्टीकरण में अन्तर—विकासशील देश मुख्य रूप से कृषि एवं खनिज वस्तुओं के निर्यात में विशिष्टीकरण करते हैं जिनके लिए मांग की आय लोच कम रहती है। इसके विपरीत, विकसित देश मुख्य रूप से औद्योगिक वस्तुओं के निर्यात में विशिष्टीकरण करते हैं जिसके लिए मांग की आय लोच तुलनात्मक रूप से ऊंची रहती है, जैसे ही एक देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है, उसका औद्योगिक एवं निर्मित वस्तुओं पर आनुपातिक व्यय बढ़ जाता है तथा खाद्यान्न पर आनुपातिक व्यय घट जाता है। यही कारण है कि विश्व में आय वृद्धि के साथ विकसित देशों के निर्यात में वृद्धि होती है तथा उनका भुगतान-शेष अनुकूल हो जाता है, जबकि विकासशील देशों के निर्यात कम हो जाने से उनका भुगतान-शेष प्रतिकूल हो जाता है।

(4) विश्व बाजार में विकासशील देशों की वस्तुओं के विज्ञापन एवं प्रतिष्ठा का अभाव—विकसित देशों ने विज्ञापन एवं विक्रय कला के माध्यम से विश्व बाजार में अपनी वस्तुओं की प्रतिष्ठा स्थापित कर ली है जिससे उनके निर्यातों में वृद्धि हुई है, किन्तु विकासशील देशों ने अपनी वस्तुओं की इस प्रकार प्रसिद्धि स्थापित नहीं की है, अभी भी वे अपने निर्यातों के लिए विश्व में बाजारों की खोज में लगे हुए हैं। फलस्वरूप उनके निर्यातों में वांछनीय वृद्धि नहीं हो पाई है एवं उनका भुगतान-शेष प्रतिकूल है।

उपर्युक्त सब कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विकासशील देशों का भुगतान-शेष प्रतिकूल क्यों रहता है।

विकासशील देशों के प्रतिकूल भुगतान-शेष में सुधार के उपाय

सामान्य रूप से प्रतिकूल भुगतान-शेष को कैसे ठीक किया जा सकता है, इसके लिए हमने इसी अध्याय के पिछले पृष्ठों में मौद्रिक तथा अमौद्रिक उपायों का विवेचन किया है। ये उपाय विकासशील देशों पर लागू किए जा सकते हैं। आगे हम इन उपायों के अतिरिक्त विकासशील देशों को दृष्टि में रखकर कुछ विशेष उपायों की चर्चा करेंगे—

नोट

(1) अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में सुधार—यदि हम विकासशील देशों के प्रतिकूल भुगतान-शेष को ठीक करना चाहते हैं तो इसके लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में, विकासशील देशों की समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए सुधार किया जाय। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय तरलता (International liquidity) में वृद्धि आवश्यक है। अर्थशास्त्रियों का विचार है कि तरलता में वृद्धि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा जारी की गई एवं स्वर्ण समर्थित कागजी मुद्रा से की जा सकती है। यहां मुद्रा कोष की बचत को विकासशील देशों में विनियोग करके भी तरलता की समस्या हल की जा सकती है।

(2) विनिमय की दर स्थिर—कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि यह विकासशील देशों के हित में है कि विनिमय की दर स्थिर रखनी चाहिए। इन देशों को प्राय: प्रतिकूल भुगतान-शेष की समस्या का सामना करना पड़ता है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की स्थिति मजबूत हो तो स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत ये देश अपने विकास कार्यक्रम को पूरा कर सकते हैं। यदि विनिमय दर के समायोजन के माध्यम से इन देशों के प्रतिकूल भुगतान-शेष को ठीक करने का प्रयत्न किया गया तो इस बात की अधिक सम्भावना है कि इन देशों की मुद्राओं के विनिमय मूल्य में ह्रास हो एवं भुगतान-शेष की समस्या और अधिक गम्भीर हो जाय।

(3) पूंजी के पलायन पर रोक—यदि विकासशील देशों से पूंजी बाहर जाती है तो इससे भुगतान-शेष की स्थिति और भी कठिन हो जाती है। यदि देश में राजनीतिक अस्थिरता, युद्ध या अशान्ति अथवा असुरक्षा की स्थिति विद्यमान रहती है तो पूंजी का बहिर्गमन होने लगता है। अत: अर्द्ध-विकसित देशों को ऐसी दशाओं का निर्माण करना चाहिए कि पूंजी देश के बाहर न जाने पाए।

(4) विदेशी विनियोगों को प्रोत्साहन—विकासशील देशों को इस प्रकार की दशाओं का निर्माण करना चाहिए कि देश में विदेशी विनियोगों को प्रोत्साहन मिले तथा जो लाभ वे अर्जित करें, उसका पुन: देश में विदेशी विनियोग कर दिया जाय। इसके लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की रियायतें दी जा सकती हैं किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विदेशी फर्मों की गतिविधियां देश के प्रतिकूल न हों।

(5) जनसंख्या नियन्त्रण—विकासशील देशों को विदेशों से इसलिए अधिक आयात करना पड़ता है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के कारण वस्तुओं के लिए इनकी मांग अधिक होती है। इसलिए आयातों पर नियन्त्रण करने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण रखा जाय। यह प्रशंसनीय है कि बहुत-से अर्द्ध-विकसित देश इस आवश्यकता को तेजी से अनुभव कर रहे हैं।

(6) सुरक्षित भण्डार का निर्माण—प्रो. हैरड ने इस सुझाव का समर्थन किया है कि एक अन्तर्राष्ट्रीय कच्चे माल का कोष अथवा भण्डार का निर्माण इस उद्देश्य से किया जाना चाहिए कि चक्रीय उच्चावचनों के बावजूद भी इनकी कीमतों को स्थिर रखा जा सके। इसी प्रकार विकासशील देशों को अनाज का सुरक्षित भण्डार रखना चाहिए ताकि संकट के समय इनके आयातों के लिए भारी मूल्य न चुकाना पड़े एवं उनके भुगतान-शेष में दबाव पैदा न हो।

(7) बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहन—विकासशील देशों को अपनी भुगतान-शेष की समस्या को हल करने के लिए निर्यातों में वृद्धि करना आवश्यक है। यह उसी समय सम्भव है जब उनके उत्पादन में वृद्धि हो। उत्पादन बढ़ाने के लिए विनियोग एवं बचत में वृद्धि होना आवश्यक है। प्रदर्शन प्रभाव के कारण इन देशों में बचत नहीं हो पाती है अत: इसे निष्क्रिय बनाया जाना चाहिए।

(8) निर्यातों में विविधता एवं नए बाजारों की खोज—अपने निर्यातों में वृद्धि करने के लिए विकासशील देशों को निर्यात संवर्द्धन के उपायों को अपनाना चाहिए तथा निर्यात की वस्तुओं में विविधता एवं गुणात्मक सुधार लाना चाहिए ताकि वे विश्व बाजार में प्रतियोगिता कर सकें। साथ ही निर्यात के लिए नए बाजारों की खोज की आवश्यक है। इससे उनके भुगतान-शेष में सुधार होगा।

(9) नई अन्र्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना—विकासशील देश इस बात पर जोर दे रहे हैं कि उनके हितों एवं समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए एक नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की जानी चाहिए। इसके लिए इन देशों में संगठन होना आवश्यक है। कोलम्बो कॉन्फ्रेंस में 'तृतीय विश्व के लिए बैंक' की स्थापना का जो निर्णय किया गया, वह उत्साहवर्द्धक है। अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो. रॉबर्ट ट्रिफिन ने इसका समर्थन किया है।

नोट

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सुधार, नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना एवं मौद्रिक एवं गैर-मौद्रिक उपायों के माध्यम से विकासशील देशों की प्रतिकूल भुगतान-शेष की समस्या को ठीक किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. एक देश के भुगतान-शेष में होता है—

   (क) लाभ (ख) घाटा या अतिरेक

   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. भुगतान-शेष में चक्रीय असन्तुलन होता है—

   (क) चक्रीय उच्चावचन के कारण (ख) अर्थव्यवस्था से असंतुलन के कारण

   (ग) व्यापार शेष में असंतुलन के कारण (घ) इनमें से कोई नहीं।

3. विकासशील अर्थव्यवस्था में विकास की प्रारंभिक अवस्था में बचत की तुलना में आवश्यक होता है—

   (क) आर्थिक कल्याण करना (ख) विनियोग करना

   (ग) श्रम एंव पूँजी लगाना (घ) इनमें से कोई नहीं।

4. एक अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास के लए गुजरना पड़ता है—

   (क) विभिन्न अवस्थाओं से (ख) दीर्घकालीन अतिरेक की अवस्था से

   (ग) क और ख दोनों अवस्थाओं से (घ) इनमें से कोई नहीं।

5. भुगतान-शेष अनुकूल रहता है—

   (क) विकासशील देशों का (ख) विकसित देशों का

   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

12.6 सारांश (Summary)

- एक देश का व्यापार-शेष भले ही सन्तुलन में न रहे, पर भुगतान-शेष सदैव सन्तुलन की स्थिति में रहता है। व्यापार-शेष का आशय माल के आयात और निर्यात से होता है।
- 'भुगतान-शेष हमेशा सन्तुलन में होता है' का अर्थ है कि चालू-लेखा, पूंजी लेखा और सरकारी व्यवस्थापन लेखा की निवल क्रेडिट और डेबिट शेषों का बीजगणितीय जोड़ अवश्य शून्य होना चाहिए।
- देश के भुगतान-शेष के विवरण से हम न केवल उसके अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों को जान सकते हैं वरन् इस विवरण से उसकी मौद्रिक, राजकोषीय एवं विनिमय सम्बन्धी नीतियों को भी जाना जा सकता है।
- एक देश के BOP में घाटा या अतिरेक तब होता है जब उसकी स्वायत्त प्राप्तियां (Autonomous Receipts) (क्रेडिट) उसके स्वायत्त भुगतान (डेबिट) से मेल नहीं खाती हैं।
- विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों में भुगतान-शेष में असन्तुलन होने का मुख्य कारण, वहां भारी मात्रा में विकास एवं विनियोग सम्बन्धी कार्यक्रम हैं।

12.7 शब्दकोश (Keywords)

- **संवर्द्धन—** उन्नत होना, बढ़ाने वाला।
- **पलायन—** भागना, अन्यत्र चले जाना।
- **निवल—** वास्तविक, शुद्ध।

नोट

12.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भुगतान सन्तुलन सदैव संतुलित रहता है। यदि ऐसा है तो हम किसी देश के भुगतान में अतिरेक की चर्चा क्यों करते हैं?
2. भुगतान-शेष में असंतुलन का क्या अर्थ है? पूर्ण रूप से समझाइए।
3. "भुगतान-शेष सदैव संतुलित रहता है" इस कथन की समीक्षा कीजिए तथा भुगतान-शेष के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
4. विकासशील देशों का भुगतान-शेष प्रतिकूल क्यों रहता है?
5. भुगतान शेष में असंतुलन कितने प्रकार से हो सकता है। पूर्ण रूप से समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. ✓	2. ✗	3. ✓	4. ✗
2.	1. (ख)	2. (क)	3. (ख)	4. (क)
	5. (ख)			

12.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—13: भुगतान-शेष समायोजन : मौद्रिक उपागम (BOP Adjustment : Monetary Approach)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 बी.ओ.पी. समायोजन भुगतान-शेष: मौद्रिक उपागम (BOP Adjustment: Monetary Approach)
13.2 सारांश (Summary)
13.3 शब्दकोश (Keywords)
13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- बी.ओ.पी. समायोजन और मौद्रिक उपागम की व्याख्या करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

एक देश के भुगतान शेष में असन्तुलन या तो घाटा या अतिरेक हो सकता है। एक देश के BOP में घाटा या अतिरेक हो सकता है। एक देश के BOP में घाटा या अतिरेक तब होता है जब उसकी स्वायत्त प्राप्तियां (Autonomous Receipts) क्रेडिट उसके स्वायत्त भुगतान (डेबिट) से मेल नहीं खाती। ऐसी स्थिति भुगतान शेष के समायोजन के लिए विभिन्न तंत्र का प्रयोग किया जाता है। जैसे– स्वर्णमान के अंतर्गत समायोजन, लोचशील विनिमय दरों के अंतर्गत स्वत: कीमत समायोजन, लोच विधि समायोजन तथा अवशोषण सिद्धांत तथा मौद्रिक उपागम।

13.1 भुगतान शेष समायोजन मौद्रिक उपागम (BOP Adjustment: Monetary Approach)

भुगतान सन्तुलन का मौद्रिक सिद्धान्त मुद्रा की मांग एवं पूर्ति के रूप में भुगतान सन्तुलन के परिवर्तनों की विवेचना करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भुगतान सन्तुलन घाटा सदैव और सभी स्थानों पर एक मौद्रिक तत्व है। अत: केवल मौद्रिक उपायों के माध्यम से ही इसका उपचार किया जा सकता है।

मान्यताएँ (Assumptions)—भुगतान सन्तुलन का मौद्रिक सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

1. सभी देशों में पूर्ण रोजगार की दशा विद्यमान है जिसके फलस्वरूप एक देश में बढ़ी हुई घरेलू मांग को घरेलू उत्पादन में वृद्धि करके पूरा नहीं किया जा सकता।
2. यदि परिवहन लागतें समान रहती हैं तब विभिन्न देशों में बेची जाने वाली समान वस्तुओं के लिए 'एक कीमत का नियम' लागू होता है।

नोट

3. किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मांग आय, धन और ब्याज दर जैसे आर्थिक चरों का फलन है।
4. यह मान लिया जाता है कि स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत करेंसी प्रवाह को निष्फल करना (steralisation) सम्भव नहीं है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजारों में एक कीमत का नियम लागू होता है।
5. मुद्रा की पूर्ति मौद्रिक आधार पर गुणज (multiple) होती है जिसमें घरेलू साख और देश की विदेशी मुद्रा रिजर्व शामिल होते हैं।
6. वस्तु तथा पूंजी दोनों बाजारों में उपभोग में पूर्ण स्थानापन्नता होती है जो प्रत्येक वस्तु के लिए एक कीमत और सम्पूर्ण देश के लिए एक ब्याज दर सुनिश्चित करती है।
7. देश के उत्पादन का स्तर बहिर्जात (exogeneous) मान लिया गया है।
8. मुद्रा-रूप मुद्रा शेषों (Nominal money balances) की मांग मुद्रा-रूप आय का एक धनात्मक फलन है।

सिद्धान्त (The Theory)

उपर्युक्त मान्यताओं के दिए हुए होने पर मौद्रिक धारणा को मुद्रा की मांग और मुद्रा की पूर्ति के बीच सम्बन्ध को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है–

मुद्रा की मांग (M_0) स्थिर फलन है आय (Y), कीमत (P) तथा ब्याज की दर (r) का,

$$M_D = f(Y, P\ r) \qquad ...(1)$$

मुद्रापूर्ति (M_s) मौद्रिक आधार (m) का गुणज है, जिसमें निर्मित घरेलू मुद्रा (D) और देश का विदेशी मुद्रा रिजर्व (R) सम्मिलित है।

सन्तुलन की स्थिति में, मुद्रा की मांग एवं पूर्ति बराबर होती है।

अर्थात्,

$$M_D = M_s$$

या $$M_D = (D + R) \qquad (\because \quad M_s = D + R)$$

(यदि सरलता के लिए m, जो एक स्थिरांक है, की उपेक्षा करें तब $M_s = D + R$)

भुगतान शेष घाटा अथवा अतिरेक देश के विदेशी मुद्रा रिजर्व में परिवर्तनों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

इस तरह, $$\Delta R = \Delta M_D - \Delta D$$

या, $$\Delta R = B$$

जहां B भुगतान शेष को व्यक्त करता है जो मुद्रा की मांग में परिवर्तन (ΔM_D) और घरेलू साख (निर्मित मुद्रा) में परिवर्तन (AD) के अन्तर के बराबर होता है।

भुगतान शेष घाटे का तात्पर्य है एक ऋणात्मक B जो R एवं मुद्रा पूर्ति को कम करता है। इसके विपरीत, अतिरेक से तात्पर्य है एक धनात्मक B जो R और मुद्रापूर्ति को बढ़ाता है। यदि $B = 0$ हो तो इसका तात्पर्य है भुगतान शेष में सन्तुलन है।

> *नोट्स* मौद्रिक उपागम के अन्तर्गत स्वत: समायोजन यन्त्र की विवेचना स्थिर तथा लोचशील दोनों विनिमय दर प्रणालियों के अन्तर्गत की जा सकती है।

स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत मान लीजिए $M_D = M_s$ जिससे भुगतान शेष (अथवा B) शून्य होता है। अब मान लीजिए मौद्रिक प्राधिकरण घरेलू मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि करता है, जबकि मुद्रा की मांग पूर्ववत रहती है।

नोट

फलस्वरूप $M_s > M_D$ और भुगतान शेष घाटा होता है। वे लोग जिनके पास अधिक मात्रा में नकद शेष हैं, वे अधिक विदेशी वस्तुओं और प्रतिभूतियों का आयात क्रय करेंगे, फलस्वरूप इनकी कीमतों में वृद्धि हो जाएगी। इससे विदेशी वस्तुओं और परिसम्पत्तियों का आयात बढ़ेगा। इससे भुगतान शेष में चालू और पूंजी दोनों लेखों के व्यय में वृद्धि होगी जिससे भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न होगा। इस तरह, विदेशी मुद्रा रिजर्व के बाह्य प्रवाह का अर्थ है R और घरेलू मुद्रा आपूर्ति में कमी। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक $M_s = M_D$ नहीं हो जाता तथा भुगतान शेष में पुन: सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता।

दूसरी ओर, यदि दी हुई विनिमय दर पर $M_s < M_D$ हो तो भुगतान शेष अतिरेक होगा। फलस्वरूप, लोग विदेशियों को वस्तुएं एवं प्रतिभूतियों को बेचकर घरेलू करेन्सी प्राप्त करेंगे। वे अपनी आय की तुलना में व्यय को सीमित करके अतिरिक्त मुद्रा शेषों (money balances) को प्राप्त करने का भी प्रयास करेंगे।

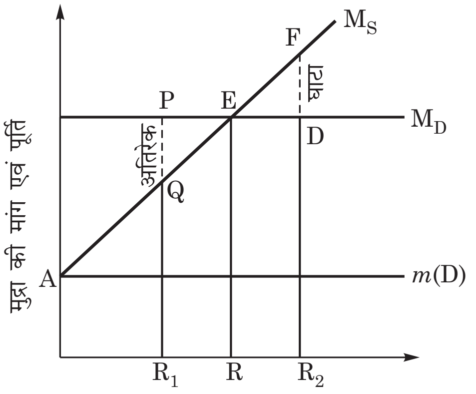

चित्र 13.1

इस स्थिति में मौद्रिक प्राधिकारी घरेलू करेन्सी के बदले आधिक्य (excess) विदेशी मुद्रा क्रय करेगा। इससे विदेशी मुद्रा रिजर्व का अन्त:प्रवाह होगा और घरेलू मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होगी। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक कि $M_s = M_D$ और भुगतान शेष में पुन: सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता। इस तरह, भुगतान शेष घाटा अथवा अतिरेक एक अस्थायी धारणा है जो दीर्घकाल में स्वत: ठीक हो जाती है।

इसकी विवेचना चित्र 13.1(A) तथा (B) के द्वारा भी की जा सकती है। चित्र (A) में, M_D स्थिर मुद्रा मांग वक्र और M_s मुद्रापूर्ति वक्र है। क्षैतिज रेखा m (D) मौद्रिक आधार को व्यक्त करती है जो घरेलू साख D का गुणज तथा स्थिरांक भी है। यह मुद्रा पूर्ति का घरेलू अवयव है। यही कारण है कि M_s वक्र बिन्दु A से प्रारम्भ होता है।

> *टास्क* तैरती विनिमय प्रणाली से आप क्या समझते हैं?

चित्र (A) में M_D और M_s वक्र एक-दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। जहां देश का भुगतान शेष सन्तुलन में होता है तथा विदेशी विनिमय रिजर्व OR होता है। चित्र (B) में PDC भुगतान असन्तुलन वक्र है जो चित्र (A) के M_s और M_D वक्रों के बीच अनुलम्ब अन्तर के रूप में खींचा गया है। जैसाकि चित्र (B) में B_0, चित्र (A) में E बिन्दु के अनुकूलन है, जहाँ भुगतान शेष में कोई असन्तुलन नहीं है।

यदि $M_s < M_D$ हो तो चित्र (A) में PQ भुगतान शेष अतिरेक होता है। इससे विदेशी मुद्रा रिजर्वों का अन्त:प्रवाह (Inflow) होता है जो OR_1 से OR को बढ़ाते हैं और मुद्रा पूर्ति को इस प्रकार बढ़ाते हैं कि E बिन्दु पर भुगतान शेष सन्तुलन में होता है। दूसरी ओर, यदि $M_s > M_D$ हो तब DF के बराबर भुगतान शेष में घाटा होता है। विदेशी मुद्रा रिजर्व का बाह्य प्रवाह होता है जिसमें OR_2 से OR तक कमी होती है और मुद्रा पूर्ति में इस तरह कमी होती है कि E बिन्दु पर भुगतान शेष सन्तुलन पुन: स्थापित हो जाता है। चित्र (B) में इसी प्रक्रिया की विवेचना की गई है जहां भुगतान शेष असन्तुलन स्वत: ठीक हो जाता है जब भुगतान शेष अतिरेक B_1Q_1 घाटा B_2Q_2 बराबर होते हैं।

लोचशील अथवा तैरती (Floating) विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत जब $B = 0$ हो तो विदेशी मुद्रा रिजर्व में कोई परिवर्तन नहीं होता, परन्तु जब भुगतान शेष में घाटा अथवा अतिरेक होता है तो मुद्रा की मांग में परिवर्तन और विनिमय दर विदेशी मुद्रा रिजर्व के किसी अन्तर्प्रवाह अथवा बाह्य प्रवाह के बिना समायोजन प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मान लीजिए मौद्रिक प्राधिकारी मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि करता है ($M_s > M_D$) और भुगतान शेष में घाटा

नोट

होता है। वे लोग जिनके पास अतिरिक्त नकद शेष है, अधिक वस्तुएं खरीदते हैं जिनके फलस्वरूप घरेलू और आयातित वस्तुओं की कीमतें बढ़ती हैं इससे घरेलू करेन्सी में मूल्य ह्रास (depreciation) और विनिमय दर में वृद्धि होती है। कीमतों में वृद्धि क्रमशः मुद्रा की मांग बढ़ाती है जिससे विदेशी मुद्रा रिजर्वों में बिना किसी बाह्य प्रवाह के M_D और M_s में समानता होती है। इसके विपरीत स्थिति तब उत्पन्न होगी जब $M_D > M_s$ हो तब कीमतों में कमी और घरेलू करेन्सी में मूल्य वृद्धि (appreciation) होता है जो स्वतः मुद्रा की आधिक्य मांग को समाप्त कर देता है। विनिमय दर तब तक गिरती है जब तक $M_D = M_s$ और विदेशी मुद्रा रिजर्वों में किसी अन्तर्प्रवाह के बिना भुगतान शेष में असन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता।

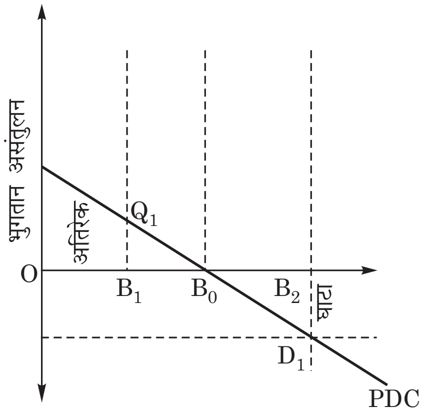

चित्र 13.2

> *क्या आप जानते हैं* विनिमय दर में स्थिरता बनाए रखने के लिए मौद्रिक प्राधिकारी को विदेशी विनिमय रिजर्व को बेचना पड़ेगा तथा घरेलू करेन्सी को खरीदना पड़ेगा।

आलोचनाएँ (Criticisms)

1. **अवास्तविक मान्यताएँ**–भुगतान शेष का मौद्रिक सिद्धान्त मुद्रा की स्थिर मांग और पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।
2. **एक कीमत नियम अमान्य**–इस सिद्धान्त की यह धारणा भी अमान्य है कि "बेची गई समान वस्तुओं के लिए एक कीमत नियम लागू होता है।"
3. **करेन्सी प्रवाहों का निष्फल सम्भव**–इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है कि स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत करेंसी प्रवाहों को निष्फल करना सम्भव नहीं है। आलोचकों का तर्क है कि करेन्सी प्रवाहों को निष्फल करना पूरी तरह से सम्भव है यदि मुद्रा शेषों और बाण्डों के सापेक्ष महत्त्व के बारे में निजी क्षेत्र अपनी सम्पत्ति पोर्टफोलिया की संरचना को समायोजित करने के लिए इच्छुक है, अथवा यदि सार्वजनिक क्षेत्र ऊंचा बजट घाटा करने को तैयार है, तब भी उसे भुगतान शेष घाटे का सामना करना पड़ता है।
4. **भुगतान-शेष और मुद्रा-पूर्ति के बीच सम्बन्ध वैध नहीं**–मौद्रिक सिद्धान्त किसी देश के भुगतान शेष और उसकी कुल मुद्रापूर्ति के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पर आधारित है। आलोचकों की धारणा है कि इन दोनों के बीच सम्बन्ध भुगतान शेष में घाटा अथवा अतिरेक होने की दशा में मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा विदेशी मुद्रा रिजर्वों के अन्तर्प्रवाहों और बाह्य प्रवाहों को निष्प्रभाव करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके लिए बाह्य प्रवाहों के निष्फलन की कुछ आवश्यकता होती है, परन्तु यह वित्तीय बाजारों के भूमण्डलीकरण के कारण सम्भव नहीं हो पाता।
5. **अल्पकाल की उपेक्षा**–मौद्रिक सिद्धान्त भुगतान शेष में स्वतः समायोजित होने वाले दीर्घकालीन सन्तुलन से सम्बन्धित है, परन्तु यह धारणा अवास्तविक है, क्योंकि यह अल्पकालीन व्याख्या करने में असफल है जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था नए सन्तुलन पर पहुंचने के लिए गुजरती है।
6. **अन्य घटकों की उपेक्षा**–मौद्रिक सिद्धान्त केवल घरेलू साख पर ध्यान केन्द्रित करता है तथा अन्य सभी वास्तविक एवं ढांचागत घटकों की उपेक्षा करता है, जो भुगतान शेष में असन्तुलन का कारण बनते हैं।

7. **आर्थिक नीति की उपेक्षा**–मौद्रिक धारणा भुगतान शेष सन्तुलन लाने में घरेलू साख की भूमिका पर जोर देती है तथा आर्थिक नीति उपायों की उपेक्षा करती है। **प्रो. क्यूरी** (Currie) का तर्क है कि भुगतान शेष सन्तुलन व्यय बदलावकारी नीतियों द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है जो वास्तविक प्रवाहों और सरकारी बजट के माध्यम से कार्य करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. भुगतान संतुलन का उपचार किया जा सकता है–
   (क) मौद्रिक उपायों द्वारा (ख) विदेशी व्यापार द्वारा
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. मुद्रा के माँग एवं पूर्ति के संबंध को इनमें व्यक्त किया जा सकता है–
   (क) $M_0 = f(Y, P, r)$ (ख) $f = M_p(X, Pr)$
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. एक देश के भुगतान शेष में असन्तुलन या तो घाटा या होता है–
   (क) वृद्धि (ख) कमी
   (ग) अतिरेक (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. भुगतान शेष का मौद्रिक सिद्धांत आधारित है–
   (क) वास्तविक मान्यताओं पर (ख) अवास्तविक मान्यताओं पर
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. भुगतान शेष में उपेक्षा की गई है–
   (क) आर्थिक नीति की (ख) अल्पकाल की
   (ग) करेन्सी प्रवाह की (घ) उपर्युक्त सभी।

13.2 सारांश (Summary)

- भुगतान सन्तुलन का मौद्रिक सिद्धान्त मुद्रा की मांग एवं पूर्ति के रूप में भुगतान सन्तुलन के परिवर्तनों की विवेचना करता है।
- वस्तु तथा पूंजी दोनों बाजारों में उपभोग में पूर्ण स्थानापन्नता होती है जो प्रत्येक वस्तु के लिए एक कीमत और सम्पूर्ण देश के लिए एक ब्याज दर सुनिश्चित करती है।
- जब भुगतान शेष में घाटा अथवा अतिरेक होता है तो मुद्रा की मांग में परिवर्तन और विनिमय दर विदेशी मुद्रा रिजर्व के किसी अन्तर्प्रवाह अथवा बाह्य प्रवाह के बिना समायोजन प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
- भुगतान शेष का मौद्रिक सिद्धान्त मुद्रा की स्थिर मांग और पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।
- मौद्रिक धारणा भुगतान शेष सन्तुलन लाने में घरेलू साख की भूमिका पर जोर देती है तथा आर्थिक नीति उपायों की उपेक्षा करती है।

नोट

13.3 शब्दकोश (Keywords)

- **करेंसी–** मुद्रा।
- **साख–** प्रतिष्ठा।

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भुगतान शेष में समायोजन के सिद्धांत की आलोचनात्मक विवेचना लीजिए।
2. मौद्रिक उपागम की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (क) 2. (क) 3. (ग) 4. (ख)
5. (घ)

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–14: विनिमय दर : अर्थ एवं घटक (Exchange Rate : Meaning and Components)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 विनिमय दर : अर्थ एवं घटक (Exchange Rate : Meaning and Components)

14.2 सारांश (Summary)

14.3 शब्दकोश (Keywords)

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विनिमय दर के अर्थ एवं घटक को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विदेशी विनिमय दर अथवा दर वह दर होती है जिस पर एक करेंसी का दूसरी करेंसी से विनिमय किया जाता है। यह दर एक करेंसी में दूसरी करेंसी की कीमत होती है। इसे व्यक्त करने का प्रचलित तरीका यह है कि घरेलू करेंसी के रूप में विदेशी करेंसी की एक इकाई की कीमत। डालर तथा पाउण्ड के बीच विनिमय दर बताती है कि एक पाउण्ड खरीदने के लिए कितने डालरों की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार डालर तथा पाउण्ड के बीच विनिमय दर संयुक्त राज्य अमेरिका के दृष्टिकोण से यों व्यक्त की जाती है–डालर 2-50 = 1 पाउण्ड ($2.50 = £1)। ब्रिटेन के लोग इसे व्यक्त करने के लिए कहेंगे कि एक डालर खरीदने के लिए कितने पाउण्ड चाहिएं और ऊपर दी गई विनिमय दर को इस रूप में व्यक्त करेंगे कि 0.40 पाउण्ड = 1 डालर (£0.40 = $1)।

14.1 विनिमय दर अर्थ एवं घटक (Exchange Rate : Meaning and Components)

विनिमय दर वह दर है **जिस पर किसी देश की मुद्रा की एक इकाई को दूसरे देश की मुद्रा की इकाइयों से परिवर्तित किया जाता है।** जैसे यदि एक डालर प्राप्त करने के लिए 44 रुपये लगते हैं तो डालर और रुपये की विनिमय दर डालर 1 = रु. 44 होगी।

क्राउथर (Crowther) के अनुसार, "विनिमय दर उस सीमा का माप है जिसके अनुसार किसी देश की मुद्रा की एक इकाई के बदले, दूसरे देश की इकाइयां प्राप्त की जाती हैं।"

एशर (Escher) के अनुसार, "विनिमय दर एक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा में व्यक्त मूल्य है।"

नोट

सेयर्स (Sayers) के अनुसार, "चलन मुद्राओं की पारस्परिक कीमतों को विदेशी विनिमय दर कहते हैं।"

हेन्स (Haines) के शब्दों में, "विनिमय दर एक मुद्रा की दूसरी मुद्रा के रूप में व्यक्त की गयी कीमत है।"

विश्व विदेशी विनिमय बाजार में हुंडी-व्यापार (अन्तरपणन) के द्वारा $2.50 = £1 अथवा £0.40 = $1 की विनिमय दर स्थिर रखी जाती है। हुंडी-व्यापार (arbitrage) **का मतलब है कि जिस बाजार में विदेशी करेंसी की कीमत कम हो वहां विदेशी करेंसी खरीदी जाए और जहां उसकी कीमत अधिक हो वहां उसे बेच दिया जाए।** हुंडी-व्यापार का परिणाम यह होता है कि करेंसियों की विदेशी विनिमय दर के अन्तर समाप्त हो जाते हैं और विश्व विदेशी विनिमय बाजार में एक ही विनिमय दर विद्यमान रहती है। यदि लन्दन के विनिमय बाजार में विनिमय दर $2.48 है और न्यूयार्क के विनिमय बाजार में $2.50 है तो विदेशी विनिमय सटोरिए, जिन्हें हुंडी-व्यापारी (arbitrageurs) कहते हैं, लन्दन में पाउण्ड खरीदेंगे और न्यूयार्क में उन्हें बेच देंगे। इस प्रकार प्रत्येक पाउण्ड पर 2 सैण्ट का लाभ प्राप्त करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि लन्दन के बाजार में पाउण्ड की कीमत डालरों के रूप में बढ़ जाएगी और न्यूयार्क के बार में गिर जाएगी। अन्त में यह कीमत दोनों बाजारों में बराबर हो जाएगी और हुंडी-व्यापार समाप्त हो जाएगा। यदि कुछ समय बाद डालर तथा पाउण्ड के बीच विनिमय दर बढ़कर $2.60=£1 हो जाए, तो कहेंगे कि पाउण्ड के मुकाबले डालर का मूल्यह्रास (अवमूल्यन) हो गया है, (या कि पाउण्ड के मुकाबले डालर की कीमत गिर गई है) क्योंकि अब एक पाउण्ड खरीदने के लिए अधिक डालरों की जरूरत पड़ेगी। यदि डालरों तथा पाउण्ड के बीच विनिमय दर गिरकर $2.40=£1 रह जाए, तो कहेंगे कि डालर का भाव बढ़ गया (अधिमूल्यन-Appreciation) है क्योंकि अब एक पाउण्ड खरीदने के लिए कम डालरों की जरूरत पड़ेगी। यदि पहली करेंसी का मूल्य घटेगा, तो दूसरी करेंसी का मूल्य बढ़ेगा और यदि पहली करेंसी का मूल्य बढ़ेगा तो दूसरी करेंसी का मूल्य घटेगा। इस प्रकार यह कहना कि पाउण्ड के मुकाबले डालर का मूल्य गिर गया है और यह कहना कि डालर के मुकाबले पाउण्ड का भव बढ़ गया है, एक ही बात है और इससे उलट भी वही बात है।

विनिमय दर के घटक–विनिमय दर मुद्राओं की मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यह दर घटती-बढ़ती रहती है अर्थात् इसमें उच्चावचन होते रहते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक हस्तान्तरण के कारण होते हैं। इन उच्चावचनों के कारण किसी भी देश में अनिश्चितता की स्थिति आ जाती है तथा देश की अर्थव्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे कई कारण हैं जो पारस्परिक रूप से देश की मुद्राओं की मांग को प्रभावित करते हैं और विनिमय दर में अल्पकालीन उच्चावचनों को जन्म देते हैं।

विनिमय दरों में उच्चावचन के कारण–प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एच. ई. ईविट** ने अपनी पुस्तक 'A Manual of Foreign Exchange' में विनिमय दरों के उच्चावचनों के निम्नांकित कारणों का उल्लेख किया है–

अल्पकालीन कारण	(*a*) व्यापारिक कारण
	(*b*) वित्तीय कारण
दीर्घकालीन कारण	(*c*) चलन और साख सम्बन्धी दशाएं
	(*d*) राजनीतिक और औद्योगिक दशाएं

इन कारणों का समावेश करते हुए, विनिमय दरों को प्रभावित करने वाले तत्वों अथवा उनमें उच्चावचन पैदा करने वाले मुख्य कारणों का विवेचन इस प्रकार हैं–

(1) व्यापारिक प्रभाव–इसके अन्तर्गत आयात एवं निर्यात के प्रभाव का समावेश होता है। यदि किसी देश के आयात अथवा निर्यात की मात्रा में परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव उस देश की विनिमय दर पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि निर्यातों की तुलना में आयात बढ़ जाते हैं तो विदेशी मुद्रा की मांग में वृद्धि होने लगती है तथाऐसे देश की विनिमय दर उसके प्रतिकूल हो जाती है। इसके विपरीत, यदि आयातों की तूलना में देश के निर्यातों में वृद्धि होती है तो देश की मुद्रा की मांग विदेशी में बढ़ती है और देश के लिए विनिमय दर अनुकूल हो जाती है।

क्या आप जानते हैं आयात-निर्यात के अन्तर्गत दृश्य मदों के अतिरिक्त अदृश्य मदों को भी शामिल किया जाता है।

(2) पूंजी का प्रवाह–एक देश से पूंजी के आवागमन का प्रभाव भी उसकी विनिमय दर पर पड़ता है। एक देश से पूंजी का अल्पकालीन बहिर्गमन विदेशों में ऊंची ब्याज दर प्राप्त करने के लिए हो सकता है अथवा विदेशों में पूंजी का दीर्घकालीन विनियोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि भारी मात्रा में पूंजी इंग्लैण्ड से अमरीका को हस्तान्तरित होती है तो इसके फलस्वरूप विनिमय बाजार में पौण्ड स्टर्लिंग की पूर्ति बढ़ जाती है और पौण्ड की तुलना में अमरीकन डालर का विनिमय मूल्य बढ़ जाता है अर्थात् पौण्ड की विनिमय दर गिर जाती है। यदि अमरीका से पूंजी इंगलैण्ड को हस्तान्तरित होती है तो ठीक इसके विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(3) चलन एवं साख सम्बन्धी दशाएं अथवा मौद्रिक नीति–ईविट ने चलन एवं साख सम्बन्धी दशाओं को विनिमय दर को प्रभावित करने वाला दीर्घकालीन कारण माना है। यदि देश में विस्तारवादी मौद्रिक नीति को अपनाया जाता है अर्थात् अति-निर्गम (Over-issue) से देश में चलन की मात्रा बढ़ायी जाती है तो देश में मूल्यों में वृद्धि होने लगती है, मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति कम हो जाती है और उसकी मुद्रा की विदेशों में मांग कम हो जाती है तथा उस देश की विनिमय दर भी गिरने लगती है। दूसरी ओर देश में मुद्रा संकुचन की नीति से वस्तुओं की कीमतें गिरती हैं, निर्यात प्रोत्साहित होते हैं और विनिमय दर बढ़ने लगती है। इस प्रकार मौद्रिक नीति का देश की विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है।

(4) बैंकों की क्रियाएं–विदेशी मुद्रा के लेन-देन में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है अत: इनकी क्रियाओं का विनिमय दर के निर्धारण में महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। बैंकों की क्रियाएं विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति को प्रभावित करती हैं जिसका प्रभाव विनिमय दर पर पड़ता है। इन क्रियाओं में बैंक दर आकर्षित होते हैं अर्थात् विदेशियों को उस देश में विनियोग करना लाभदायक होता है अत: देश में विदेशी पूंजी आने लगती है, स्वदेशी मुद्रा की मांग बढ़ने लगती है तथा विनिमय दर भी बढ़ने लगती है। जब देश में तुलनात्मक रूप से बैंक दर गिरती हैं तो ठीक इसके विपरीत प्रभाव होता है।

नोट्स बैंक दर के साथ, साख-पत्रों के क्रय-विक्रय का भी विनिमय दर पर प्रभाव होता है।

(5) मध्यस्थों की क्रियाएं अथवा मूल्यान्तर के सौदे–मध्यस्थों की क्रियाएं भी विनिमय-दर को प्रभावित करती हैं। इन क्रियाओं को **अन्तर्पणन** अथवा मूल्यान्तर सौदे (Arbitrage Operations) भी कहते हैं। अन्तर्पणन की क्रिया, दो मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों के अन्तर से लाभ उठाने के लिए की जाती है। जिस बाजार में मुद्रा सस्ती होती है, वहां से खरीदकर उसे ऐसे बाजार में बेचा जाता है जहां वह महंगी होती है। मुद्रा के क्रय-विक्रय का यह कार्य व्यापारिक बैंकों द्वारा अपने विदेशी प्रतिनिधियों के माध्यम से किया जाता है। अन्तर्पणन के सौदे तत्काल किये जाते हैं, क्योंकि समय-विलम्ब के साथ विनिमय दरों का अन्तर समाप्त हो सकता है।

(6) सट्टा बाजार की क्रियाओं का प्रभाव–विनिमय दर में भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व अनुमान कर विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय किया जाता है जिसका विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी समय सटोरियों द्वारा विदेशी मुद्रा को अधिक मात्रा में खरीदा जाता है तो उस मुद्रा की मांग बढ़ जाती है तथा उसकी विनिमय दर भी बढ़ने लगती है। यदि इसके विपरीत, सटोरियों द्वारा विदेशी मुद्रा बेची जाती है तो उसकी विनिमय दर गिरने लगती है। विशेष रूप से जब देश में किसी कारण अनिश्चितता का वातावरण बनता है तो उक्त क्रियाएं तेज हो जाती हैं और विनिमय दर में उतार-चढ़ाव होने लगते हैं। **ईविट** के अनुसार, यदि देश में श्रम संघर्ष (हड़ताल, तालाबन्दी) एवं उत्पादन की ऊंची लागत की स्थिति विद्यमान है तो मुद्रा के विनिमय मूल्य पर इसका तात्कालिक प्रभाव पड़ता

नोट

है और सटोरिये भविष्य में व्यापार की गिरती हुई स्थिति का अनुमान लगाकर विदेशी मुद्रा को बेचना शुरू कर देते हैं।

(7) स्टॉक एक्सचेन्ज की क्रियाएं–इन क्रियाओं में ऋण प्रदान करना, विदेशी ऋण पर ब्याज का भुगतान, विदेशी पूंजी की आमदनी एवं विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय आदि का समावेश होता है। इन क्रियाओं का विदेशी मुद्रा की मांग पर प्रभाव पड़ता है जिससे विनिमय दर भी प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, जब एक देश द्वारा विदेश को ऋण दिया जाता है तो विदेशी मुद्रा की मांग बढ़ जाती है तथा देश के लिए विनिमय दर प्रतिकूल हो जाती है, किन्तु जब विदेशियों द्वारा ऋण एवं ब्याज का भुगतान किया जाता है तो देश की मुद्रा की मांग बढ़ जाती है जिससे विनिमय दर भी बढ़कर देश के अनुकूल हो जाती है।

(8) मौसमी परिवर्तन–विनिमय दर को प्रभावित करने वाले "मौसमी परिवर्तन" का उल्लेख ईविट नेअपनी पुस्तक में किया है। उनका कहना है कि एक मुद्रा के विनिमय मूल्य पर उसकी मांग और पूर्ति में होने वाले मौसमी परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। जैसे आस्ट्रेलिया में अनाज और ऊन को दिसम्बर से फरवरी तक एकत्रित किया जाता है और इन्हीं महीनों में इन वस्तुओं का विदेशों में विक्रय किया जाता है जिससे वहां अन्य देशों की मुद्रा की तुलना में आस्ट्रेलिया की मुद्रा की मांग बढ़ती है तथा उसकी विनिमय दर भी बढ़ती है ऐसी स्थिति में सम्बन्धित देशों के बैंक इस बात का प्रयत्न करते हैं कि आवश्यक मुद्रा की पूर्ति कर, विनिमय दरों में होने वाले भीषण उच्चावचनों को रोका जा सके।

(9) विदेशी विनियोग का प्रभाव–विनियोग का भी विनिमय दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विश्व के अग्रणी स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा इस प्रकार की विनियोग की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। यदि विदेशी विनियोगकर्ता यह अनुभव करते हैं कि किसी विशेष देश की आर्थिक एवं औद्योगिक स्थिति अनुकूल है तथा भविष्य में उस देश की मुद्रा के विनिमय मूल्य में सुधार की आशा है तो वे अपने अतिरेक कोषों का प्रयोग उस देश की मुद्रा को क्रय करने में करते हैं जिसे बाद में प्रतिभूतियों के खरीदने में प्रयुक्त किया जाता है। इसका प्रभाव ठीक विनियोग के समान होता है तथा देश की विनिमय दर अनुकूल हो जाती है। एक अन्य कारण से भी विनियोग, विनिमय दर को प्रभावित करते हैं। मानलो अमरीका और भारत के बीच, भारत के रुपये की विनिमय दर डालर की तुलना में गिरने की सम्भावना हो और ऐसे ही समय में अमरीका भारत को बड़ी मात्रा में डालर का ऋण दे दे तो भारतीय रुपये की विनिमय दर गिरने से बच सकती है। यदि अमरीका, भारत में पूंजी का विनियोग करता है तो डालर की तुलना में रुपये की मांग बढ़ जाएगी और रुपये की विनिमय दर बढ़ जाएगी।

(10) देश की राजनीतिक एवं आर्थिक दशाएं–देश की राजनीतिक और आर्थिक दशाओं का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में सरकार स्थायी है, शान्ति और सुरक्षा है, सम्पत्ति के स्वामियों की एवं उनकी सम्पत्ति की रक्षा की जाती है तो भले ही देश में ब्याज की दर कम हो, फिर भी या तो ब्याज कमाने की दृष्टि से अथवा विनियोग के लिए, अथवा सुरक्षा की दृष्टि से विदेशी पूंजी देश में आती है जिससे विनिमय दर देश के पक्ष में हो जाती है। इसके विपरीत, यदि देश में राजनीतिक संघर्ष की स्थिति है, सरकार को उखाड़ फेंकने की चालें चल रही हैं तो देश से पूंजी का बहिर्गमन होने लगता है जिससे विदेशी मुद्रा की तुलना में देश की मुद्रा की विनिमय दर गिरती है।

इसी प्रकार देश की आन्तरिक औद्योगिक स्थिति का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में श्रमिकों एवं पूंजीपतियों के बीच अच्छे सम्बन्ध हैं; कीमतों और मजदूरी के स्तर में समन्वय है; औद्योगिक क्षेत्र में उद्यमी प्रतिभा एवं श्रमिकों में कुशलता है तो इन सबका देश की मुद्रा पर दीर्घकालीन प्रभाव यह होता है कि देश की विनिमय दर अनुकूल होती है।

टास्क हुंडी-व्यापार किसे कहते हैं?

विनिमय दरों के उच्चावचन की सीमाएं–विभिन्न मानों के अन्तर्गत विनिमय दरों के उच्चावचन की सीमाएं अलग-अलग होती हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) स्वर्णमान में–स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दरों में एक निश्चित सीमा तक ही उच्चावचन होते हैं तथा इनकी सीमाओं का निर्धारण स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा होता है। अत: दो स्वर्णमान वाले देशों में विनिमय दर, टंक समता (Mint Parity) के चारों ओर स्वर्ण आयात और स्वर्ण निर्यात बिन्दु की सीमाओं के भीतर ही घटती-बढ़ती रहती है।

(2) पत्र चलनमान में–अपरिवर्तनीय कागजी मान के अन्तर्गत विनिमय दर के उच्चावचनों की सीमाओं का निर्धारण यद्यपि क्रय-शक्ति समता के अनुसार होता है, किन्तु स्वर्णमान की टंक समता के समान, क्रय-शक्ति समता की सीमाओं में स्थिरता नहीं रहती वरन् इसमें परिवर्तन होते हैं अत: विनिमय दर में परिवर्तन केवल कुछ निश्चित सीमाओं तक ही नहीं होते वरन् विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति की दशाएं विनिमय दर को प्रभावित करती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... के अनुसार, "चलन मुद्राओं की पारस्परिक कीमतों को विदेशी विनिमय दर कहते हैं।"
2. .... मुद्राओं की माँग एवं पूर्ती द्वारा निर्धारित होती है।
3. एक देश से पूंजी का अल्पकालीन बहिर्गमन विदेशों में ऊँची .... प्राप्त करने के लिए हो सकता है।
4. .... का देश की विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है।
5. .... की क्रिया दो मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों के अनोखे लाभ उठाने के लिए की जाती है।
6. यदि अमरीका .... में पूँजी का विनियोग करता है जो डालर की तुलना में रुपये की माँग बढ़ जायेगी और रुपये की विनिमय दर बढ़ जायेगी।
7. देश की आन्तरिक .... स्थिति का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है।

14.2 सारांश (Summary)

विनिमय दर वह दर है **जिस पर किसी देश की मुद्रा की एक इकाई को दूसरे देश की मुद्रा की इकाइयों से परिवर्तित किया जाता है।** जैसे यदि एक डालर प्राप्त करने के लिए 44 रुपये लगते हैं तो डालर और रुपये की विनिमय दर डालर 1 = रु. 44 होगी।

विश्व विदेशी विनिमय बाजार में हुंडी-व्यापार (अन्तरपणन) के द्वारा $2.50 = £1 अथवा £0.40 = $1 की विनिमय दर स्थिर रखी जाती है। हुंडी-व्यापार (arbitrage) **का मतलब है कि जिस बाजार में विदेशी करेंसी की कीमत कम हो वहां विदेशी करेंसी खरीदी जाए और जहां उसकी कीमत अधिक हो वहां उसे बेच दिया जाए।**

विनिमय दर के घटक–विनिमय दर मुद्राओं की मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यह दर घटती-बढ़ती रहती है अर्थात् इसमें उच्चावचन होते रहते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक हस्तान्तरण के कारण होते हैं। इन उच्चावचनों के कारण किसी भी देश में अनिश्चितता की स्थिति आ जाती है तथा देश की अर्थव्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एच. ई. ईविट** ने अपनी पुस्तक 'A Manual of Foreign Exchange' में विनिमय दरों के उच्चावचनों के निम्नांकित कारणों का उल्लेख किया है– अल्पकालीन कारण; दीर्घकालीन कारण।

देश की आन्तरिक औद्योगिक स्थिति का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में श्रमिकों एवं पूंजीपतियों के बीच अच्छे सम्बन्ध हैं; कीमतों और मजदूरी के स्तर में समन्वय है; औद्योगिक क्षेत्र में उद्यमी प्रतिभा एवं श्रमिकों में कुशलता है तो इन सबका देश की मुद्रा पर दीर्घकालीन प्रभाव यह होता है कि देश की विनिमय दर अनुकूल होती है।

नोट

स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दरों में एक निश्चित सीमा तक ही उच्चावचन होते हैं तथा इनकी सीमाओं का निर्धारण स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा होता है।

अपरिवर्तनीय कागजी मान के अन्तर्गत विनिमय दर के उच्चावचनों की सीमाओं का निर्धारण यद्यपि क्रय-शक्ति समता के अनुसार होता है, किन्तु स्वर्णमान की टंक समता के समान, क्रय-शक्ति समता की सीमाओं में स्थिरता नहीं रहती वरन् इसमें परिवर्तन होते हैं

14.3 शब्दकोश (Keywords)

- **टंक–** चार माशे की एक तौल
- **स्टर्लिंग–** मुद्रा।
- **संकुचन–** सिकुड़ना।

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विनिमय दर का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके घटकों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सेयर्स 2. विनिमय दर 3. ब्याज दर (*iv*) मौद्रिक नीति

5. अन्तर्पणन 6. भारत 7. औद्योगिक।

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—15: विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (Theories of Determination of Exchange Rate)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (पीपीपी, मौद्रिक) (Theories of Determination of Exchange Rate (PPP, Monetary)

15.2 सारांश (Summary)

15.3 शब्दकोश (Keywords)

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- विनिमय दर के निर्धारण के सिद्धांत की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

स्वतंत्र विश्व अर्थव्यवस्था में दो देशों की विनिमय दर को सदैव निश्चित नहीं माना जा सकता है। क्योंकि उन मुद्राओं की मांग एवं पूर्ति में होने वाला परिवर्तन विनिमय दर को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय दर का निर्धारण उस बिंदु पर होता है जहाँ विदेशी मुद्रा की मांग उसकी कुल पूर्ति के बराबर हो जाती है। यहाँ मुद्रा निर्धारण संबंधी क्रय-शक्ति समता सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत है।

15.1 विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (पीपीपी, मौद्रिक) (Theories of Determination of Exchange Rate (PPP, Monetary)

प्रथम विश्व-युद्ध (1914-18) की अवधि में स्वर्णमान समाप्त हो जाने के पश्चात् बहुत-से देशों ने पत्र-मुद्रामान अपना लिया जिससे यह महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ कि अपरिवर्तनशील कागजी मान वाले देशों में विनिमय दर का निर्धारण किस प्रकार किया जाए? इस प्रश्न का समुचित उत्तर स्टाकहोम (स्वीडन) के **गुस्टाव कैसल** (Gustav Cassel) ने जिन्होंने 1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "*Money and Foreign Exchange After* 1914" में विनिमय दर को समझाने के लिए क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ऐसा माना जाता है कि इस सिद्धान्त की सर्वप्रथम प्रारम्भिक व्याख्या **जान ह्वीटले** (John Wheatley) ने 1802 में अपनी पुस्तक "*Remarks on Currency and Commerce*" में की, किन्तु इस सिद्धान्त को विकसित करने का श्रेय **प्रो. गुस्टाव कैसल** को ही जाता है।

सिद्धान्त की परिभाषा—जब एक देश की मुद्रा का विदेशी मुद्रा से विनिमय किया जाता है तो उस देश की मुद्रा की क्रय-शक्ति का विदेशी मुद्रा की क्रय-शक्ति से विनिमय किया जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विनिमय

नोट

दर को निर्धारित करने वाला मुख्य तत्व दो देशों की सापेक्षिक क्रय शक्ति है। जब दो मुद्राओं का विनिमय किया जाता है तो वास्तव में दो मुद्राओं की अन्तर्राष्ट्रीय क्रय शक्ति का विनिमय किया जाता है। इस आधार पर विनिमय की सन्तुलन दर ऐसी होनी चाहिए कि मुद्राओं के विनिमय से समान क्रय शक्ति का विनिमय हो। एक उदाहरण देकर इसे समझाया जा सकता है। यदि अमरीका में 1 डालर द्वारा उतना ही गेहूं खरीदा जा सकता है जितना कि भारत में 40 रुपये द्वारा खरीदा जा सकता है तो इस स्थिति में डालर और रुपये की विनिमय दर 1 : 40 होगी। एक दूसरे उदाहरण के अनुसार यदि एक साइकिल की कीमत इंगलैण्ड में 15 पौण्ड है तथा अमरीका में एक साइकिल की कीमत 30 डालर है तो क्रय शक्ति समता सिद्धान्त के अनुसार इंगलैण्ड और अमरीका में विनिमय दर 1 पौण्ड = 2 डालर होगी। अब हम क्रय शक्ति समता सिद्धान्त की कुछ परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

गुस्ताव कैसल के शब्दों में, "दो मुद्राओं की विनिमय दर आवश्यक रूप से इन मुद्राओं की आन्तरिक क्रय शक्ति के भागफल पर निर्भर रहती है।"

नोट्स "किन्हीं दो देशों में क्रयशक्ति समता एक देश की मुद्रा की वह मात्रा है जिससे उतनी मुद्रा वाले किसी व्यक्ति को उतनी ही क्रय शक्ति प्राप्त होती है अर्थात् उससे उतनी वस्तुएँ और सेवाएँ खरीदी जा सकती हैं जितनी कि दूसरे देश की निश्चित मुद्रा से खरीदी जा सकती है।"

जी. डी. एच. कोल के अनुसार, "उन राष्ट्रीय मुद्राओं का मूल्य जहां स्वर्णमान नहीं है, दीर्घकाल में उनकी वस्तुओं और सेवाओं की क्रय शक्ति द्वारा निश्चित होता है।

एस. ई. टामस के अनुसार, "जबकि किसी विशेष समय में, एक देश की चलन मुद्रा का मूल्य, दूसरे देश की चलन मुद्रा की तुलना में बाजार की माँग और पूर्ति की दशाओं द्वारा निर्धारित होता है, दीर्घकाल में यह मूल्य दोनों देशों की मुद्राओं के आपेक्षिक मूल्य द्वारा निर्धारित होता है जो प्रत्येक देश में वस्तुओं और सेवाओं की सापेक्षिक क्रय शक्ति द्वारा व्यक्त होता है। अन्य शब्दों में, विनिमय दर की प्रवृत्ति उस बिन्दु पर स्थिर रहने की होती है जहां दोनों देशों की मुद्राओं की क्रय शक्ति समान होती है। इस बिन्दु को ही क्रय शक्ति समता कहते हैं।"

अपरिवर्तनीय कागजीमान के अन्तर्गत किसी देश की मुद्रा का वाह्य मूल्य आवश्यक और अन्तिम रूप से, उस देश की, मुद्रा की विदेशी मुद्रा की तुलना में, घरेलू क्रय शक्ति पर निर्भर रहता है।

सिद्धान्त के दो रूप (Two Varsions of Theory)

क्रय शक्ति समता सिद्धान्त को दो रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है–सिद्धान्त का निरपेक्ष स्वरूप तथा सापेक्षिक स्वरूप। क्रय शक्ति समता के सापेक्षिक स्वरूप का प्रतिपादन **कैसल** ने किया है। अब हम इन दोनों का विस्तार से विवेचन करेंगे।

क्रय शक्ति समता–निरपेक्ष स्वरूप (Absolute version)–क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का निरपेक्ष रूप यह स्पष्ट करता है कि दो देशों में विनिमय दर सामान्य रूप से उनकी आन्तरिक क्रय शक्ति के अनुरूप होती है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना भारत में X प्रतिनिधि वस्तुओं की कीमत 40 रुपये है तथा उतनी ही वस्तुओं की कीमत अमरीका में एक डालर है। यदि विनिमय की चालू दर 40 रुपये = 1 डालर है तो निश्चित दी हुई वस्तुओं की कीमत किसी भी देश में उतनी ही होगी अर्थात् समान होगी। एवं विनिमय दर क्रय शक्ति समता बिन्दु पर होगी। इसे निम्न सूत्र से व्यक्त किया जा सकता है–

$$\text{विनिमय दर} = \frac{\text{देश A में चलन की इकाई}}{\text{देश B में चलन की इकाई}} = \frac{\text{B में आन्तरिक क्रय शक्ति}}{\text{A में आन्तरिक क्रय शक्ति}}$$

उपर्युक्त सूत्र में दायीं ओर का पक्ष विदेशी विनिमय दर बताता है जहां B देश की मुद्रा को विदेशी मुद्रा माना गया है।

निरपेक्ष स्वरूप के अन्तर्गत विदेशी विनिमय दर का निर्धारण घरेलू मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति के अनुपात द्वारा होता है। दो विभिन्न मुद्राओं की आन्तरिक क्रय शक्ति के अनुपात को ही क्रय शक्ति समता कहते हैं। यह सिद्धान्त बताता है कि जब व्यापार करने वाले देशों में मुद्रा की क्रय शक्ति समान रहती है तो उनमें विनिमय दर सन्तुलन में रहती हैं।

क्रय शक्ति समता का निरपेक्ष स्वरूप इस मान्यता पर आधारित है कि विश्व में व्यापार के द्वारा प्रत्येक देश में वस्तुओं की कीमतों में समानता स्थापित हो जाती है।

निरपेक्ष स्वरूप के दोष—निरपेक्ष स्वरूप देखने में सरल लगता है किन्तु व्यावहारिक रूप से यह महत्वहीन है, क्योंकि यह आन्तरिक मूल्यों के केवल निरपेक्ष स्तरों को नापता है तथा सापेक्षिक मूल्यों की अवहेलना करता है। किन्तु यह सुविदित है कि मुद्रा के मूल्य को केवल निरपेक्ष आधारों पर नहीं नापा जा सकता। यह भी स्पष्ट हे कि दो देशों में जिन वस्तुओं का उत्पादन एवं क्रय किया जाता है, उनके गुणों में भिन्नता रहती है अत: दो देशों की वस्तुओं के मूल्यों में समानता स्थापित करना सम्भव नहीं है। इन्हीं दोषों को दूर करने के लिए कैसल ने क्रय शक्ति समता के सापेक्षिक अथवा तुलनात्मक स्वरूप को प्रतिपादित किया।

क्रय शक्ति समता सापेक्षिक स्वरूप (Relative Version of the Theory)

कैसल द्वारा प्रतिपादित क्रय शक्ति का सापेक्षिक स्वरूप उपर्युक्त निरपेक्ष स्वरूप के सन्तुलन दृष्टिकोण से भिन्न है। सापेक्षिक स्वरूप में विनिमय दर के परिवर्तनों को ज्ञात करने के लिए आन्तरिक क्रय शक्ति के परिवर्तनों को ध्यान में रखा जाता है। **सापेक्षिक स्वरूप स्पष्ट करता है कि विनिमय की सन्तुलन दर में होने वाले परिवर्तन दो देशों की मुद्राओं की क्रयशक्ति के अनुपात में होने वाले परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होते हैं।** परिवर्तन को ज्ञात करने के लिए किसी पूर्व-अवधि की दर को सन्तुलन दर मान लिया जाता है एवं फिर देशों की मुद्राओं की आन्तरिक क्रय शक्ति में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर सन्तुलन दर में होने वाले परिवर्तनों की गणना की जाती है और इस आधार पर विनिमय की नयी सन्तुलन दर ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार सापेक्षिक रूप में सिद्धान्त का उद्देश्य दो देशों के बीच साम्य दर का पता लगाना नहीं होता बल्कि पहले से निर्धारित साम्य दर में परिवर्तन की दिशा या मात्रा का पता लगाना होता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—

$$\text{विनिमय दर} = \text{आधार वर्ष की विनिमय दर} \times \frac{\text{आधार वर्ष में देश का कीमत सूचकांक}}{\text{चालू वर्ष में देश का कीमत सूचकांक}} \times \frac{\text{विदेशी कीमतों का सूचकांक (चालू वर्ष में)}}{\text{विदेशी कीमतों का सूचकांक (आधार वर्ष में)}}$$

इसे हम एक उदाहरण देकर स्पष्ट कर सकते हैं। मानलो आधार वर्ष (1951) में भारत और अमरीका के बीच विनिमय दर 1 रुपये = 20 सेण्ट है तथा दोनों देशों में कीमतों का सूचकांक 100 है (आधार वर्ष का कीमत सूचकांक सदैव 100 ही मान लिया जाता है) अब चालू वर्ष (2002) में भारत में कीमतों का सूचकांक बढ़कर 500 हो जाता है तथा अमरीका में सूचकांक बढ़कर 200 हो जाता है तो नयी विनिमय दर इस प्रकार होगी—

$$1 \text{ रुपया} = 20 \text{ सेण्ट} \times \frac{100}{500} \times \frac{200}{100}$$

$$= 20 \text{ सेण्ट} \times \frac{2}{5}$$

$$= 8 \text{ सेण्ट।}$$

अर्थात् नयी विनिमय दर 1 रुपया = 8 सेण्ट होगी। इसका कारण यह है कि भारत में चालू वर्ष में, कीमतों का सूचकांक अमरीका की तुलना में ढाई गुना हो गया हैं इसका अर्थ यह है कि भारत के रुपये की कीमत कम हो गयी है। यहाँ यह ध्यान रहे कि आधार वर्ष का सूचकांक 100 मान लिया जाता है।

नोट

> *क्या आप जानते हैं* यदि दो देशों के कीमत सूचकांक में समान परिवर्तन होता है तो विनिमय दर भी वही रहेगी अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा।

यदि भारत में सूचकांक बढ़कर दुगुना हो जाय तथा अमरीका में भी कीमतों का निर्देशांक बढ़कर दुगुना हो जाय तो रुपया और डालर की विनिमय दर पुरानी दर के समान 1 रुपया = 20 सेण्ट ही रहेगी।

यदि हम मानलें कि दोनों देशों में कीमतों के स्तर में कोई परिवर्तन न हो किन्तु किसी कारण से विनिमय दर 1 रुपया = 25 सेण्ट हो जाती है। इसका अर्थ है कि रुपये की क्रय शक्ति अमरीका में बढ़ गयी है अत: लोगों को इससे लाभ होगा कि एक रुपये में 25 सेण्ट प्राप्त करें तथा निश्चित वस्तुओं (उदाहरण के लिए X वस्तुओं का समूह) को अमरीका में 20 सेण्ट में खरीदकर उसे भारत में 1 रुपये में बेच दें और प्रत्येक सौदे पर 5 सेण्ट का लाभ प्राप्त करें। इससे भारत में डालर की माँग बढ़ जाएगी किन्तु इसकी पूर्ति कम हो जाएगी क्योंकि अब बहुत कम लोग भारत से अमरीका को वस्तुओं का निर्यात करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि रुपये की तुलना में डालर का मूल्य बढ़ जाएगा तथा विनिमय दर पुन: पुरानी दर 1 रुपये = 20 सेण्ट हो जाएगी जो भारत और अमरिका के बीच क्रय शक्ति समता दर होगी।

क्रय शक्ति समता में परिवर्तन की माप के लिए **एल्सबथ्र** ने निम्नांकित समीकरण अपनाया :

$$R_p = R_b \times \frac{P_1}{P_2}$$

अर्थात्

$$\left[\text{क्रय शक्ति समता}\right] = \left[\text{पुरानी साम्य दर}\right] \times \left[\text{दोनों देशों में कीमत स्तरों के बीच अनुपात}\right]$$

जिस देश की मुद्रा में पुरानी साम्य दर (R_b) व्यक्त की जाएगी, P_1 के स्थान पर उसी देश का कीमत सूचकांक रखा जाएगा तथा P_2 दूसरे देश का कीमत सूचकांक होगा।

विनिमय दर में परिवर्तन की सीमाएँ–क्रय शक्ति समता सिद्धान्त के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विनिमय दर में परिवर्तन का मुख्य कारण, सम्बन्धित मुद्राओं की क्रयशक्ति में होने वाला परिवर्तन है। विनिमय दर से तब तक कोई परिवर्तन नहीं होगा जब तक मुद्राओं की क्रय शक्ति में परिवर्तन न हो। बाजार की विनिमय दर, देश की मुद्रा की माँग व पूर्ति में परिवर्तन होने पर सामान्य दर से कम या अधिक हो सकती है। बाजार की विनिमय दर में किन सीमाओं तक उच्चावचन अथवा परिवर्तन होंगे, वह वस्तुओं के परिवहन व्यय प्रशुल्क, बीमा-शुल्क, पैकिंग व्यय, इत्यादि पर निर्भर रहता है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि क्रय-शक्ति समता में परिवर्तन की सीमाएं इतनी निश्चित नहीं होती जितनी कि विनिमय की टकसाली दर के अन्तर्गत होती है। विनिमय दर के उच्चावचनों की सीमाओं को वस्तु निर्यात बिन्दु तथा वस्तु आयात- बिन्दु कहते हैं। रेखाचित्र 15.1 में विनिमय दर के उच्चावचनों को स्पष्ट किया गया है।

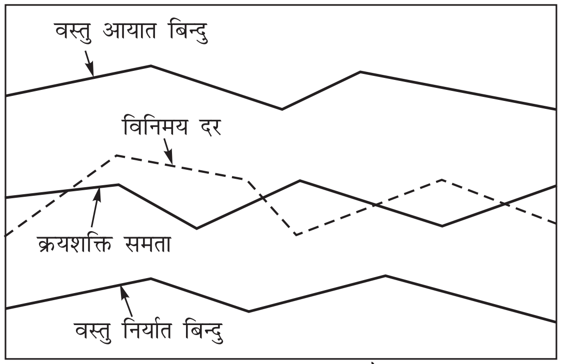

विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति

चित्र 15.1

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि बाजारी विनिमय दर, क्रय-शक्ति समता बिन्दु के आस-पास घूमती है तथा उसकी दीर्घकालीन प्रवृत्ति क्रय-शक्ति समता बिन्दु के समीप रहने की होती है।

नोट

टास्क क्रय-शक्ति समता सिद्धांत को कितने रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है ?

क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Purchasing Power Parity Theory)

क्रय शक्ति समता सिद्धान्त के निरपेक्ष और साक्षेप दोनों रूपों में कुछ न कुछ कमजोरियाँ हैं। ये देशों में वास्तविक विनिमय दर, उस विनिमय दर से भिन्न होती है जिसकी गणना क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त के आधार पर की जाती है। इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं **क्राउथर, केन्स, हाम एवं नर्कसे**, आदि अर्थशास्त्रियों ने की है। मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं–

(1) **विनिमय दर पर अन्य तत्वों का प्रभाव–**क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि दो देशों की मुद्राओं की क्रय-शक्ति एवं विनिमय दर में प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है किन्तु व्यावहारिक रूप में इन दोनों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता और न ही विनिमय दर केवल क्रय-शक्ति द्वारा निर्धारित होती है। **केन्स** के अनुसार विनिमय दर, क्रय-शक्ति के अतिरिक्त अन्य तत्वों द्वारा भी प्रभावित होती है; जैसे प्रशुल्क, सट्टा, पूँजी का आवागमन, माँग की पारस्परिक लोच, इत्यादि। ये सब तत्व मिलकर विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति को प्रभावित करते हैं जिनका प्रभाव विनिमय दर पर पड़ता है। क्रय शक्ति समता सिद्धान्त इन तत्वों की उपेक्षा करता है।

(2) **विनिमय दर का निर्धारण वस्तु मूल्य से नहीं वरन् मुद्राओं की माँग पूर्ति से–**आलोचकों का कहना है कि विनिमय दरों का निर्धारण, वस्तुओं के मूल्यों से नहीं बल्कि सम्बन्धित देशों की मुद्राओं की माँग और पूर्ति द्वारा होता है। वास्तविकता यह है कि एक देश के मूल्य स्तर का विनिमय दर से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। यदि किसी देश का मूल्य स्तर कम है तो उसकी वस्तुओं की माँग विदेशों में बढ़ जाती है जिससे भुगतान करने के लिए उस देश की मुद्रा की माँग बढ़ जाती है और विनिमय दर बढ़ने लगती है। अत: विनिमय दर को प्रभावित करने वाला मुख्य कारण मुद्रा की माँग है। हां, यह कहा जा सकता है कि वस्तुओं का मूल्य केवल आंशिक रूप में ही विनिमय दर को प्रभावित करता है।

(3) **विनिमय दर की पूर्व मान्यता एवं उसमें कठिनाई–**जब हम विनिमय दर में परिवर्तनों को नापना चाहते हैं तो हम पूर्व की सन्तुलन विनिमय दर को मानकर चलते हैं किन्तु पूर्व में प्रचलित सन्तुलन दर को ज्ञात करना सरल नहीं है। स्वयं **कैसल** ने इसकी कठिनाई को स्वीकार करते हुए कहा है कि "दो देशों में मुद्राओं की क्रय-शक्ति में परिवर्तन के फलस्वरूप विनिमय दर की गणना उसी समय की जा सकती है जब हम किसी विशेष सन्तुलन को प्रकट करने वाली विनिमय दर जानते हैं।"

(4) **आर्थिक दशाओं में परिवर्तन का प्रभाव–**क्रय-शक्ति समता के अन्तर्गत दो मुद्राओं में सन्तुलन विनिमय दर उसी समय स्थापित हो सकती है जब दोनों देशों में आर्थिक दशाएं अपरिवर्तित रहें। किन्तु वास्तव में आर्थिक दशाओं में परिवर्तन होते रहते हैं जो विनिमय दरों को प्रभावित करते हैं। भले ही दोनों देशों में कीमतों का स्तर अपरिवर्तित रहे, किन्तु यदि लोगों की रुचि, फैशन अथवा आय में परिवर्तन होता है तो इससे पारस्परिक माँग पर प्रभाव पड़ता है जिससे विनिमय दर परिवर्तित होती है। क्रय शक्ति समता सिद्धान्त इन तत्वों की उपेक्षा करता है।

(5) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वस्तुओं पर ही प्रभावशील–**कुछ आलोचकों का मत है कि क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त उसी समय मान्य होता है जब इसे उन वस्तुओं पर लागू किया जाए जिनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाता है, किन्तु जब इसे सामान्य मूल्य स्तर पर लागू किया जाता है तो यह लागू नहीं होता। अत: अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुओं के सम्बन्ध में भी उक्त सिद्धान्त एक स्वत:-सिद्ध विवेचन (Truism) के अलावा कुछ नहीं है।

(6) **वस्तुओं में विभिन्नता–**क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि दो देशों में वस्तुओं के समूहों में एकरूपता रहती है, किन्तु यह मान्यता गलत है क्योंकि भौगोलिक श्रम-विभाजन के कारण देशों के उत्पादन में विभिन्नता रहती है और यही कारण है कि उत्पादन तुलनात्मक लागत के आधार पर किया जाता है। जब देशों में वस्तुओं

नोट

में विभिन्नता रहेगी, तो क्रय-शक्ति के आधार पर विनिमय दर का निर्धारण कैसे होगा? इस बिन्दु पर क्रय शक्ति समता सिद्धान्त कोई प्रकाश नहीं डालता।

(7) **कीमत स्तर में परिवर्तन "अस्पष्ट" एवं "भ्रामक"**–विनिमय दर में परिवर्तन के लिए कीमत स्तर में परिवर्तन को आधार माना गया है, किन्तु यह बहुत ही अस्पष्ट है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि समस्त वस्तुओं में एकसमान परिवर्तन नहीं होता अर्थात् न तो सब वस्तुओं की कीमतें एक साथ बढ़ती हैं और न ही एक साथ घटती हैं। यदि कीमतें बढ़ती भी हैं तो कुछ वस्तुओं की कीमतें अन्य वस्तुओं की तुलना में अधिक बढ़ती हैं। ऐसी दशाओं के अन्तर्गत विभिन्न देशों में कीमतों में होने वाले परिवर्तनों की सामान्य अथवा सरल रूप में तुलना नहीं की जा सकती।

(8) **निरपेक्ष स्वरूप में परिवहन लागत की अवहेलना**–क्रय-शक्ति समता का निरपेक्ष स्वरूप वस्तुओं के परिवहन व्यय पर कोई ध्यान नहीं देता। यह सिद्धान्त उसी समय लागू हो सकता है जब दो देशों में वस्तुओं का स्वतन्त्र और बिना परिवहन लागत के प्रभाव (गतिशीलता) हो। इस मान्यता के अन्तर्गत न केवल औसत कीमत स्तर समान होता है वरन् प्रत्येक वस्तु की कीमत भी एक-सी होती है। किन्तु यह मान्यता उचित नहीं क्योंकि वस्तुओं के परिवहन व्यय के आधार पर तो दो देशों की वस्तुओं के मूल्यों में भिन्नता होती है, इसके अतिरिक्त, अन्य कारणों से भी वस्तुओं के मूल्यों में अन्तर होता है।

(9) **सूचकांकों की गणना में कठिनाई**–आलोचकों के अनुसार इस सिद्धान्त में सूचकांकों को विनिमय दरों में परिवर्तन का आधार माना गया है जबकि सूचकांकों के आधार पर विनिमय दर ज्ञात करने में काफी कठिनाई होती है। कीमत सूचकांक कई प्रकार के होते हैं; जैसे थोक मूल्य, जीवन-निर्वाह एवं मजदूरी सूचकांक, इत्यादि। अत: प्रश्न उपस्थित होता है कि क्रय-शक्ति की गणना करने के लिए किस सूचकांक का प्रयोग किया जाए? इसके सम्बन्ध में सिद्धान्त स्पष्ट है और फिर दो देशों के सूचकांकों की तुलना करना सम्भव नहीं है, क्योंकि दोनों देशों के आधार वर्ष, प्रतिनिधि वस्तुओं एवं उनके दिये जाने वाले भार (Weight) में भिन्नता होती है।

(10) **विनिमय दर का भी कीमत स्तर पर प्रभाव पड़ता है**–सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तन तो विनिमय दर को प्रभावित करते हैं, किन्तु यह सिद्धान्त यह नहीं मानता कि विनिमय दर परिवर्तनों का भी कीमत स्तर पर प्रभाव होता है, किन्तु यह उचित नहीं है, क्योंकि आनुभविक प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि विनिमय दर का भी कीमत स्तरों पर प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मौद्रिक अर्थशास्त्री **हाम** (G.N. Halm) ने मत व्यक्त किया है कि राष्ट्रीय कीमत स्तर विनिमय दर का अनुसरण करते हैं न कि उसे प्रभावित करते हैं।

(11) **स्थैतिक स्थिति में ही प्रभावशील**–क्रयशक्ति समता सिद्धान्त का एक दोष यह है कि यह केवल स्थैतिक (Stationary) दशाओं में ही लागू होता हैं इसमें दो देशों के आर्थिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों एवं गतिशीलता की अवहेलना की गयी है। उदाहरण के लिए, जब दो व्यापार करने वाले देशों में एक तीसरा देश प्रतियोगी के रूप में प्रवेश करता है तो निश्चित ही दो देशों के व्यापार एवं विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है।

(12) **नर्कसे द्वारा आलोचना**–क्रय शक्ति समता सिद्धान्त की आलोचना करते हुए नर्कसे (Prof. Nurkse) कहते हैं कि यह सिद्धान्त केवल कीमतों के उतार-चढ़ाव को ही विनिमय दर निर्धारण का आधार मानता है एवं माँग को प्रभावित करने वाले अन्य तत्वों की अवहेलना करता है। उनके ही शब्दों में, "यह सिद्धान्त माँग को केवल कीमत का फलन मानता है तथा कुल आय एवं व्यय में व्यापार चक्र के फलस्वरूप होने वाले परिवद्रनों की कोई व्याख्या नहीं करता जो विदेशी व्यापार के मूल एवं मात्रा को प्रभावित करते हैं।"

(13) **सिद्धान्त मात्र वस्तु कीमत समता पर आधारित है**–क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त, विनिमय दर को निर्धारित करने में केवल वस्तुओं की कीमतों को ही आधार मानता है और इसके अतिरिक्त भुगतान शेष के अन्तर्गत अन्य तत्वों पर विचार नहीं करता। **किण्डलबर्जर** का मत है कि क्रय शक्ति समता केवल व्यापार करने वाले देशों के लिए ही उपयुक्त है तथा यह ऐसे देशों का कोई पथ प्रदर्शन नहीं करता जो व्यापारी एवं बैंकर दोनों हैं।" (14) **मात्र दीर्घकालीन विवेचन**–सिद्धान्त की एक कमजोरी यह भी है कि यह अधिक से अधिक विनिमय दरों की दीर्घकालीन प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है, अल्पकाल में विनिमय दरों में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या नहीं करता। **केन्स**

का मत है कि चूंकि हम सब दीर्घकाल में मर जाते हैं अत: ऐसे सिद्धान्त का कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है जो अल्पकाल में समस्या का समाधान नहीं करता।

(15) **स्वतन्त्र व्यापार में बाधाएँ**–क्रय शक्ति समता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि दो देशों में बिना किसी प्रतिबन्ध के स्वतन्त्र व्यापार होता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि देशों के बीच व्यापार में कई प्रकार की बाधाएं रहती हैं; जैसे आयात-निर्यात प्रतिबन्ध, विनिमय नियन्त्रण, आदि। यहां तक कि जिस समय कैसल ने उक्त सिद्धान्त प्रतिपादित किया था उस समय भी व्यापार में कई प्रकार के नियन्त्रण लगे हुए थे। इसे दृष्टि में रखते हुए मुद्रा की विनिमय दर निर्धारित करने वाला सिद्धान्त व्यावहारिक रूप से महत्वहीन है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि क्रयशक्ति समता सिद्धान्त विनिमय दर को निर्धारित करने की कोई सन्तोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता और न ही इसका प्रयोग विनिमय की सन्तुलन दर की गणना के लिए किया जा सकता है। यही कारण है कि **हाम** इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि "क्रय शक्ति समता को सन्तुलन दर ज्ञात करने अथवा अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान सन्तुलन के विचलन की वास्तविक गणना करने में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। अधिक से अधिक क्रय शक्ति समता का प्रयोग उस अनुमानित श्रेणी को जानने के लिए किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत विनिमय की सन्तुलन दर को ज्ञात किया जा सकता है।

क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का मूल्यांकन

इस सिद्धान्त के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि क्रयशक्ति समता सिद्धान्त विनिमय दर को निर्धारित करने वाली दीर्घकालीन नहीं वरन् तात्कालिक शक्तियों की व्याख्या करता है। सिद्धान्त की कमजोरियों के बावजूद इसे समस्त मौद्रिक दशाओं में दीर्घकाल में विनिमय दर को निर्धारित करने वाला सारपूर्ण स्पष्टीकरण स्वीकार किया जाता है। यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या भी करता है कि भुगतान शेष का निर्धारण कैसे होता है। इससे स्पष्ट होता है कि देशों के सापेक्षिक मूल्य स्तरों में परिवर्तन के फलस्वरूप ही देशों के व्यापार एवं भुगतान में परिवर्तन होता है। यह सिद्धान्त विनिमय दर के निर्धारण में, कीमत स्तर के प्रभाव की समुचित व्याख्या करता है। यदि व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाय तो **क्रय शक्ति समता सिद्धान्त, टकसाली समता सिद्धान्त** पर एक महत्वपूर्ण सुधार है।

यह सिद्धान्त उस समय काफी महत्वपूर्ण हो जाता है जहां कीमतों के उतार-चढ़ाव विनिमय दर को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं किन्तु जब कीमतों के उच्चावचन इतने अधिक प्रभावपूर्ण नहीं होते तो यह सिद्धान्त भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं होता, किन्तु इस सिद्धान्त की आलोचनाओं से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि यह सिद्धान्त महत्वहीन है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) की अवधि में स्वर्णमान समाप्त हो जाने के पश्चात् बहुत से देशों ने .... अपना लिया।
2. विनिमय दर को निर्धारित करने वाला मुख्य तत्व .... देशों की सापेक्षिक क्रय-शक्ति है।
3. जब दो मुद्राओं का विनिमय किया जाता है तो वास्तव में दो मुद्राओं की .... का विनिमय किया जाता है।
4. .... के अनुसार, "जबकि किसी विशेष समय में, एक देश की चलन मुद्रा का मूल्य दूसरे देश की चलन मुद्रा की तुलना में बाजार की माँग और पूर्ति की दशाओं द्वारा निर्धारित होता है।"
5. .... द्वारा प्रतिपादित क्रय-शक्ति का सापेक्षिक स्वरूप निरपेक्ष स्वरूप के सन्तुलन दृष्टिकोण से भिन्न है।

(*vi*) विनिमय दर के उच्चावचनों की सीमाओं को .... तथा .... कहते हैं।

नोट

15.2 सारांश (Summary)

- गुस्ताव कैसल (Gustav Cassel) ने जिन्होंने 1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "Money and Foreign Exchange After 1914" में विनिमय दर को समझाने के लिए क्रय शक्ति समता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
- इस सिद्धान्त की सर्वप्रथम प्रारम्भिक व्याख्या जान ह्वीटले (John Wheatley) ने 1802 में अपनी पुस्तक "Remarks on Currency and Commerce" में की, किन्तु इस सिद्धान्त को विकसित करने का श्रेय प्रो. गुस्टाव कैसल को ही जाता है।
- जब एक देश की मुद्रा का विदेशी मुद्रा से विनिमय किया जाता है तो उस देश की मुद्रा की क्रय-शक्ति का विदेशी मुद्रा की क्रय-शक्ति से विनिमय किया जाता है।
- क्रय शक्ति समता सिद्धान्त को दो रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है—सिद्धान्त का निरपेक्ष स्वरूप तथा सापेक्षिक स्वरूप।
- क्रय शक्ति समता सिद्धान्त के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विनिमय दर में परिवर्तन का मुख्य कारण, सम्बन्धित मुद्राओं की क्रयशक्ति में होने वाला परिवर्तन है।
- क्रय-शक्ति समता में परिवर्तन की सीमाएं इतनी निश्चित नहीं होती जितनी कि विनिमय की टकसाली दर के अन्तर्गत होती है।
- क्रय शक्ति समता सिद्धान्त के निरपेक्ष और साक्षेप दोनों रूपों में कुछ न कुछ कमजोरियाँ हैं। ये देशों में वास्तविक विनिमय दर, उस विनिमय दर से भिन्न होती है जिसकी गणना क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।

15.3 शब्दकोश (Keywords)

- **विनिमय–** अदल-बदल, लेन-देन।
- **सापेक्षिक–** सापेक्ष, किसी की अपेक्षा करने वाला।
- **निरपेक्ष–** उदासीन, उपेक्षित।

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मूल्य निर्धारण संबंधी क्रय-शक्ति समता सिद्धांत क्या है? समझाइए।
2. क्रय-शक्ति समता सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा इसके सापेक्ष एवं निरपेक्ष स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. पत्र मुद्रामान	2. दो	3. अंतर्राष्ट्रीय क्रय शक्ति
4. एस.ई. टॉम्स	5. कैसल	6. वस्तु निर्यात बिन्दु, वस्तु आयात बिन्दु

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—16: विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (पत्राधान और भुगतान संतुलन) (Theories of Determination of Exchange Rate) (Portfolio and Balance of Payment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
16.1 विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (पत्राधान और भुगतान संतुलन) (Theories of Determination of Exchange Rate) (Portfolio and Balance of Payments)
16.2 सारांश (Summary)
16.3 शब्दकोश (Keywords)
16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- विदेशी विनिमय दर निर्धारण सिद्धांत की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

देश की मुद्रा की तुलना में, विदेशी मुद्रा के मूल्य का निर्धारण, विदेशी विनिमय बाजार में माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है एवं माँग तथा पूर्ति की शक्तियों का निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान-शेष अथवा भुगतान सन्तुलन की विभिन्न मदों द्वारा होता है। **जब भुगतान-शेष में घाटा होता है तो विनिमय दर में कमी हो जाती है। उसके विपरीत, जब भुगतान-शेष में आधिक्य होता है तो विनिमय दर में वृद्धि हो जाती है।**

16.1 विनिमय दर के निर्धारण का सिद्धांत (पत्राधान और भुगतान संतुलन) (Theories of Determination of Exchange Rate) (Portfolio and Balance of Payments)

भुगतान-शेष सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि विनिमय दर का निर्धारण माँग और पूर्ति के सन्दर्भ में भुगतान-शेष द्वारा होता है। इस सिद्धान्त को विनिमय दर का **माँग और पूर्ति का सिद्धान्त** भी कहते हैं। जहाँ क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त विनिमय दर की व्याख्या मूल्य-स्तरों में परिवर्तन की दृष्टि से करता है, भुगतान-शेष सिद्धान्त बताता है कि विनिमय दर मुद्रा की माँग-पूर्ति का फलन है, किन्तु क्रयशक्ति सिद्धान्त, विनिमय दर के निर्धारण में, उन अदृश्य मदों (Invisible

नोट

Items) को शामिल नहीं करता जिन्हें भुगतान-शेष सिद्धान्त करता है। भुगतान-शेष सिद्धान्त के अनुसार, विदेशी विनिमय की माँग, भुगतान-शेष में घाटे सम्बन्धी मदों के कारण होती है तथा विदेशी विनिमय की पूर्ति अतिरेक सम्बन्धी मदों के कारण होती है। चूंकि यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति का निर्धारण भुगतान-शेष की स्थिति द्वारा होता है, इसका आशय यह है कि उक्त माँग और पूर्ति का निर्धारण ऐसे तत्वों द्वारा होता है जो विनिमय दर के परिवर्तन अथवा मौद्रिक नीति से स्वतन्त्र होते हैं। **अतः विभिन्न देशों की विनिमय दरें उनके मौलिक भुगतान-शेष द्वारा निर्धारित होती हैं। यद्यपि भुगतान-शेष में अन्य मदों का समावेश भी होता है, किन्तु उसमें वस्तुओं की क्रय-विक्रय (व्यापार-शेष) सम्बन्धी मदें मुख्य होती हैं।** साधारण रूप से निर्यात, आयातों का भुगतान करते हैं (Exports pay for Imports) अर्थात् निर्यातों से जो विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है, उससे आयातों का भुगतान किया जाता है, इसके अतिरिक्त, भुगतान शेष की अन्य मदें भी विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति को प्रभावित करती हैं जिनका विनिमय दर के निर्धारण में प्रभाव होता है। उदाहरण के लिए, जिस देश की वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात, आयात से अधिक होते हैं उसकी मुद्रा की माँग, पूर्ति से अधिक हो जाती है अतः उस देश की विनिमय दर बढ़ने लगती है। इसकी विपरीत स्थिति में मुद्रा की विनिमय दर में गिरावट होने लगती है।

संक्षेप में, विनिमय दर निर्धारण का भुगतान सन्तुलन सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि **निर्यात ही आयातों का भुगतान करते हैं** (Exports pay for the imports) । इसका अभिप्राय यह है कि सन्तुलित विनिमय दर के निर्धारण के लिए किसी देश के कुल आयातों एवं कुल निर्यातों का मूल्य समान होना चाहिए ताकि प्रत्येक देश के भुगतान (Payments) तथा प्राप्तियाँ (Receipts) समान हों। इस सिद्धान्त को **विदेशी विनिमय का सन्तुलन सिद्धान्त** (Equilibrium Theory of Foreign Exchange) भी कहा जाता है।

क्या आप जानते हैं साधारण रूप से निर्यात, आयातों का भुगतान करते हैं (Exports pay for Imports) अर्थात् निर्यातों से जो विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है, उससे आयातों का भुगतान किया जाता है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण–भुगतान-शेष सिद्धान्त के अनुसार यदि माँग और पूर्ति की अनुसूचियाँ दी हुई हों तो जहाँ वे एक-दूसरे को काटती हैं, वहाँ मुद्राओं की सन्तुलन विनिमय दर का निर्धारण होता है।

रेखाचित्र 16.1 में DD और SS क्रमशः एक देश की मुद्रा के माँग वक्र और पूर्ति वक्र हैं। ये दोनों वक्र एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं अतः विनिमय दर PM अथवा ON है। यह विनिमय की सन्तुलन दर है जहाँ मुद्रा की माँग और पूर्ति दोनों बराबर (OM) हैं। भुगतान सन्तुलन अनुकूल होने पर सम्बन्धित देश की मुद्रा की माँग विदेशों में बढ़ती है जिससे माँग वक्र दाईं ओर विवर्तित होकर D_1D_1 हो जाता है। नया सन्तुलन H होगा जहाँ विनिमय दर बढ़कर ON_1 हो जाएगी। इसके विपरीत भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होने पर सम्बन्धित देश की मुद्रा की माँग कम हो जाएगी, फलस्वरूप माँग वक्र बाईं ओर खिसककर D_2D_2 हो जाएगा। नए सन्तुलन बिन्दु J पर नई विनिमय दर ON_2 होगी।

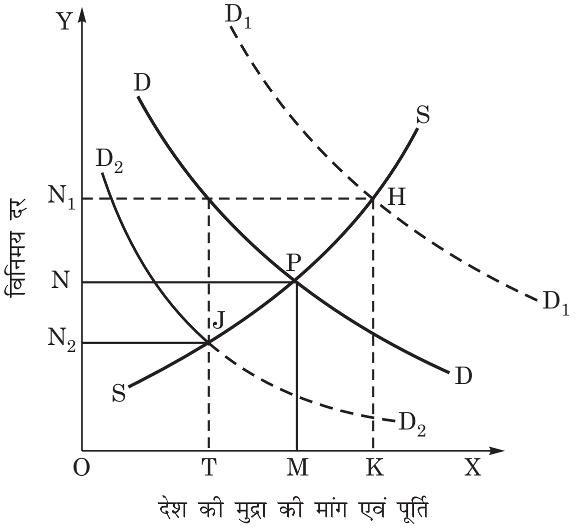

चित्र 16.1

नोट

इस प्रकार कहा जा सकता है कि माँग अथवा पूर्ति अथवा इन दोनों में होने वाले परिवर्तन विनिमय की सन्तुलन दर को प्रभावित करते हैं और मूल्य के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार विनिमय दर का निर्धारण किया जाता है।

भुगतान-शेष सिद्धान्त के गुण—विनिमय दर के निर्धारण में इस सिद्धान्त के गुण निम्नलिखित हैं—

(i) इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह स्पष्ट करता है कि अन्य वस्तुओं की भांति मुद्रा का मूल्य भी उसकी माँग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् यह विनिमय दर के निर्धारण को भी सामान्य मूल्य सिद्धान्त के क्षेत्र में लाता है।

(ii) यह सिद्धान्त इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि आयात-निर्यात की वस्तुओं के अतिरिक्त भुगतान-शेष की अन्य मदें भी माँग और पूर्ति के माध्यम से विनिमय दर को प्रभावित करती हैं। **कुरिहारा** (Kurihara) के अनुसार, "यह सिद्धान्त इस अर्थ में अधिक वास्तविक है कि इसमें विदेशी मुद्रा की घरेलू कीमत के निर्धारण को मात्र सामान्य मूल्य स्तर को व्यक्त करने वाली क्रय शक्ति का फलन न मानकर अन्य कई महत्वपूर्ण चरों (Variables) का फलन माना जाता है।"

(iii) इस सिद्धान्त का यह भी एक गुण है कि यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि भुगतान शेष में असन्तुलन की स्थिति को विनिमय-दर में मामूली परिवर्तन करके ठीक किया जा सकता है। यह परिवर्तन अवमूल्यन (Devaluation) अथवा पुनर्मूल्यन (Revaluation) करके किया जा सकता है, इसमें आन्तरिक क्रय शक्ति में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है जैसा कि क्रय शक्ति समता सिद्धान्त में बताया गया है।

भुगतान-शेष सिद्धान्त के दोष—भुगतान-शेष सिद्धान्त में उपर्युक्त गुणों के बावजूद भी निम्न दोष हैं—

(i) यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को लेकर चलता है तथा एक देश से दूसरे देश को मुद्रा के प्रभाव में हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता, किन्तु ये दोनों बातें अवास्तविक हैं।

(ii) यह सिद्धान्त विनिमय दर और आन्तरिक मूल्य स्तर में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं करता, किन्तु आलोचकों का मत है कि उक्त सम्बन्ध को पूर्ण रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि भुगतान-शेष की स्थिति पर देश के कीमत-लागत ढाँचे का प्रभाव पड़ता है।

(iii) इस सिद्धान्त के अनुसार विदेशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं की माँग पूर्ण रूप से बेलोचदार होती है तथा इस पर कीमत और विनिमय दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु सामान्य अनुभव की बात यह है कि बेलोचदार वस्तुओं की माँग पर भी कीमत परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है।

(iv) इस सिद्धान्त का एक मुख्य दोष यह भी है कि यह भुगतान-शेष को एक निश्चित मात्रा में मानकर चलता है, किन्तु तथ्य यह है कि व्यापार-शेष, देश एवं विदेश के कीमत स्तरों पर निर्भर रहता है तथा दो देशों के मूल्य स्तरों पर उन देशों की विनिमय दरों का भी प्रभाव पड़ता है, अत: भुगतान-शेष पूर्ण रूप से विनिमय दरों से स्वतन्त्र नहीं होता जैसा कि यह सिद्धान्त बताता है।

(v) विनिमय दर का माँग-पूर्ति का सिद्धान्त यह बताने में सक्षम नहीं है कि मुद्रा के आन्तरिक मूल्य का निर्धारण किस प्रकार होता है।

(vi) आलोचकों का कथन है कि भुगतान-शेष का सिद्धान्त बिना कारण-परिणाम की व्याख्या किये मात्र एक स्वत:सिद्ध तथ्य की ओर संकेत करता है। यदि भुगतान-शेष अन्त में सदैव सन्तुलन में हो जाते हैं तो प्रतिकूल व्यापार-शेष के अन्तर्गत विनिमय दर में कमी होने का कोई तर्क नहीं है, क्योंकि **के. डी. दूधा** के अनुसार ऐसा शेष (Balance) होता ही नहीं है जिसकी पूर्ति न की जाए।

नोट्स भुगतान-शेष "यह सिद्धान्त इस अर्थ में अधिक वास्तविक है कि इसमें विदेशी मुद्रा की घरेलू कीमत के निर्धारण को मात्र सामान्य मूल्य स्तर को व्यक्त करने वाली क्रय शक्ति का फलन न मानकर अन्य कई महत्वपूर्ण चरों (Variables) का फलन माना जाता है।"

नोट

विदेशी विनिमय दरों में उच्चावचन (Fluctuation in the Rate of Exchange)

विनिमय दर मुद्राओं की माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यह दर घटती-बढ़ती रहती है अर्थात् इसमें उच्चावचन होते रहते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक हस्तान्तरण के कारण होते हैं। इन उच्चावचनों के कारण किसी भी देश में अनिश्चितता की स्थिति आ जाती है तथा देश की अर्थव्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे कई कारण हैं जो पारस्परिक रूप से देश की मुद्राओं की माँग को प्रभावित करते हैं और विनिमय दर में अल्पकालीन उच्चावचनों को जन्म देते हैं।

विनिमय दरों में उच्चावचन के कारण—प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एच. ई. ईविट** ने अपनी पुस्तक *'A Manual of Foreign Exchange'* में विनिमय दरों के उच्चावचनों के निम्नांकित कारणों का उल्लेख किया है—

अल्पकालीन कारण	(*a*) व्यापारिक कारण
	(*b*) वित्तीय कारण
दीर्घकालीन कारण	(*c*) चलन और साख सम्बन्धी दशाएँ
	(*d*) राजनीतिक और औद्योगिक दशाएँ

इन कारणों का समावेश करते हुए, विनिमय दरों को प्रभावित करने वाले तत्वों अथवा उनमें उच्चावचन पैदा करने वाले मुख्य कारणों का विवेचन इस प्रकार है—

(1) **व्यापारिक प्रभाव**—इसके अन्तर्गत आयात एवं निर्यात के प्रभाव का समावेश होता है। यदि किसी देश के आयात अथवा निर्यात की मात्रा में परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव उस देश की विनिमय दर पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि निर्यातों की तुलना में आयात बढ़ जाते हैं तो विदेशी मुद्रा की माँग में वृद्धि होने लगती है तथा ऐसे देश की विनिमय दर उसके प्रतिकूल हो जाती है। इसके विपरीत, यदि आयातों की तुलना में देश के निर्यातों में वृद्धि होती है तो देश की मुद्रा की माँग विदेशों में बढ़ती है और देश के लिए विनिमय दर अनुकूल हो जाती है। आयात-निर्यात के अन्तर्गत दृश्य मदों के अतिरिक्त अदृश्य मदों को भी शामिल किया जाता हैं

(2) **पूँजी का प्रवाह**—एक देश से पूँजी के आवागमन का प्रभाव भी उसकी विनिमय दर पर पड़ता है। एक देश से पूँजी का अल्पकालीन बहिर्गमन विदेशों में ऊँची ब्याज दर प्राप्त करने के लिए हो सकता है अथवा विदेशों में पूँजी का दीर्घकालीन विनियोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि भारी मात्रा में पूँजी इंग्लैण्ड से अमरीका को हस्तान्तरित होती है तो इसके फलस्वरूप विनिमय बाजार में पौण्ड स्टर्लिंग की पूर्ति बढ़ जाती है और पौण्ड की तुलना में अमरीकन डालर का विनिमय मूल्य बढ़ जाता है अर्थात् पौण्ड की विनिमय दर गिर जाती है यदि अमरीका से पूँजी इंग्लैण्ड को हस्तान्तरित होती है तो ठीक इसके विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(3) **चलन एवं साख सम्बन्धी दशाएँ अथवा मौद्रिक नीति—ईविट** ने चलन एवं साख सम्बन्धी दशाओं को विनिमय दर को प्रभावित करने वाला दीर्घकालीन कारण माना है। यदि देश में विस्तारवादी मौद्रिक नीति को अपनाया जाता है अर्थात् अति-निर्गम (Over-issue) से देश में चलन की मात्रा बढ़ायी जाती है तो देश में मूल्यों में वृद्धि होने लगती है, मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति कम हो जाती है और उसकी मुद्रा की विदेशों में माँग कम हो जाती है तथा उस देश की विनिमय दर भी गिरने लगती है। दूसरी ओर देश में मुद्रा संकुचन की नीति से वस्तुओं की कीमतें गिरती हैं, निर्यात प्रोत्साहित होते हैं और विनिमय दर बढ़ने लगती है। इस प्रकार मौद्रिक नीति का देश की विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है।

(4) **बैंकों की क्रियाएँ**—विदेशी मुद्रा के लेन-देन में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है अत: इनकी क्रियाओं का विनिमय दर के निर्धारण में महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। बैंकों की क्रियाएँ विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति को प्रभावित करती हैं जिसका प्रभाव विनिमय दर पर पड़ता है। इन क्रियाओं में बैंक दर महत्वपूर्ण है। जब देश में बैंक दर, विदेशी बैंक दर की तुलना में ऊंची रहती है तो देश में विदेशी कोष आकर्षित होते हैं अर्थात् विदेशियों को उस देश में विनियोग करना लाभदायक होता है अत: देश में विदेशी पूंजी आने लगती है, स्वदेशी मुद्रा की माँग बढ़ने लगती है तथा विनिमय दर भी बढ़ने लगती है। जब देश में तुलनात्मक रूप से बैंक दर गिरती है तो ठीक इसके विपरीत प्रभाव होता है।

नोट

बैंक दर के साथ, साख-पत्रों के क्रय-विक्रय का भी विनिमय दर पर प्रभाव होता है।

(5) **मध्यस्थों की क्रियाएँ अथवा मूल्यान्तर के सौदे**—मध्यस्थों की क्रियाएँ भी विनिमय-दर को प्रभावित करती हैं। इन क्रियाओं को अन्तर्पणन अथवा मूल्यान्तर सौदे (Arbitrage Operations) भी कहते हैं अन्तर्पणन की क्रिया, दो मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों के अन्तर से लाभ उठाने के लिए की जाती है। जिस बाजार में मुद्रा सस्ती होती है, वहाँ से खरीदकर उसे ऐसे बाजार में बेचा जाता है जहाँ वह महंगी होती है। मुद्रा के क्रय-विक्रय का कार्य व्यापारिक बैंकों द्वारा अपने विदेशी प्रतिनिधियों के माध्यम से किया जाता है। अन्तर्पणन के सौदे तत्काल किये जाते हैं, क्योंकि समय-विलम्ब के साथ विनिमय दरों का अन्तर समाप्त हो सकता है।

(6) **सट्टा बाजार की क्रियाओं का प्रभाव**—विनिमय दर में भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व अनुमान कर विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय किया जाता है जिसका विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी समय सटोरियों द्वारा विदेशी मुद्रा को अधिक मात्रा में खरीदा जाता है तो उस मुद्रा की माँग बढ़ जाती है तथा उसकी विनिमय दर भी बढ़ने लगती है। यदि इसके विपरीत, सटोरियों द्वारा विदेशी मुद्रा बेची जाती है तो उसकी विनिमय दर गिरने लगती हैं विशेष रूप से जब देश में किसी कारण अनिश्चितता का वातावरण बनता है उक्त क्रियाएं तेज हो जाती हैं और विनिमय दर में उतार-चढ़ाव होने लगते हैं। **ईविट** के अनुसार, यदि देश में श्रम संघर्ष (हड़ताल, तालाबन्दी) एवं उत्पादन की ऊँची लागत की स्थिति विद्यमान है तो मुद्रा के विनिमय मूल्य पर इसका तात्कालिक प्रभाव पड़ता है और सटोरिये भविष्य में व्यापार की गिरती हुई स्थिति का अनुमान लगाकर विदेशी मुद्रा को बेचना शुरू कर देते हैं।

(7) **स्टॉक एक्सचेन्ज की क्रियाएँ**—इन क्रियाओं में ऋण प्रदान करना, विदेशी ऋण पर ब्याज का भुगतान, विदेशी पूँजी की आमदनी एवं विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय आदि का समावेश होता है। इन क्रियाओं का विदेशी मुद्रा की माँग पर प्रभाव पड़ता है जिससे विनिमय दर भी प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, जब एक देश द्वारा विदेश को ऋण दिया जाता है तो विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ जाती है तथा देश के लिए विनिमय दर प्रतिकूल हो जाती है, किन्तु जब विदेशियों द्वारा ऋण एवं ब्याज का भुगतान किया जाता है तो देश की मुद्रा की माँग बढ़ जाती है जिससे विनिमय दर भी बढ़कर देश के अनुकूल हो जाती है।

(8) **मौसमी परिवर्तन**—विनिमय दर को प्रभावित करने वाले "मौसमी परिवर्तन" का उल्लेख ईविट ने अपनी पुस्तक में किया है। उनका कहना है कि एक मुद्रा के विनिमय मूल्य पर उसकी माँग और पूर्ति में होने वाले मौसमी परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। जैसे आस्ट्रेलिया में अनाज और ऊन को दिसम्बर से फरवरी तक एकत्रित किया जाता है और इन्हीं महीनों में इन वस्तुओं का विदेशों में विक्रय किया जाता है जिससे वहाँ अन्य देशों की मुद्रा की तुलना में आस्ट्रेलिया की मुद्रा की माँग बढ़ती है तथा उसकी विनिमय दर भी बढ़ती है ऐसी स्थिति में सम्बन्धित देशों के बैंक इस बात का प्रयत्न करते हैं कि आवश्यक मुद्रा की पूर्ति कर, विनिमय दरों में होने वाले भीषण उच्चावचनों को रोका जा सके।

(9) **विदेशी विनियोग का प्रभाव**—विनियोग का भी विनिमय दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विश्व के अग्रणी स्टॉक एक्सचेंजों द्वारा इस प्रकार की विनियोग की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। यदि विदेशी विनियोगकर्ता यह अनुभव करते हैं कि किसी विशेष देश की आर्थिक एवं औद्योगिक स्थिति अनुकूल है तथा भविष्य में उस देश की मुद्रा के विनिमय मूल्य में सुधार की आशा है तो वे अपने अतिरेक कोषों का प्रयोग उस देश की मुद्रा को क्रय करने में करते हैं जिसे बाद में प्रतिभूतियों को खरीदने में प्रयुक्त किया जाता है। इसका प्रभाव ठीक विनियोग के समान होता है तथा देश की विनिमय दर अनुकूल हो जाती है। एक अन्य कारण से भी विनियोग, विनिमय दर को प्रभावित करते हैं। मानलो अमरीका और भारत के बीच, भारत के रुपये की विनिमय दर डालर की तुलना में गिरने की सम्भावना हो और ऐसे ही समय में अमरीका भारत को बड़ी मात्रा में डालर का ऋण दे तो भारतीय रुपये की विनिमय दर गिरने से बच सकती है। यदि अमरीका, भारत में पूँजी का विनियोग करता है तो डालर की तुलना में रुपये की माँग बढ़ जाएगी और रुपये की विनिमय दर बढ़ जाएगी।

(10) **देश की राजनीतिक एवं आर्थिक दशाएँ**—देश की राजनीतिक और आर्थिक दशाओं का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में सरकार स्थायी है, शान्ति और सुरक्षा है, सम्पत्ति के स्वामियों की एवं उनकी सम्पत्ति की रक्षा की जाती है तो भले ही देश में ब्याज की दर कम हो, फिर भी या तो व्याज कमाने की दृष्टि से अथवा विनियोग

नोट

के लिए, अथवा सुरक्षा की दृष्टि से विदेशी पूंजी देश में आती है जिससे विनिमय दर देश के पक्ष में हो जाती है। इसके विपरीत, यदि देश में राजनीतिक संघर्ष की स्थिति है, सरकार को उखाड़ फेंकने की चालें चल रही हैं तो देश से पूँजी का बहिर्गमन होने लगता है जिससे विदेशी मुद्रा की तुलना में देश की मुद्रा की विनिमय दर गिरती है।

इसी प्रकार देश की आन्तरिक औद्योगिक स्थिति का भी विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में श्रमिकों एवं पूँजीपतियों के बीच अच्छे सम्बन्ध हैं; कीमतों और मजदूरी के स्तर में समन्वय है; औद्योगिक क्षेत्र में उद्यमी प्रतिभा एवं श्रमिकों में कुशलता है तो इन सबका देश की मुद्रा पर दीर्घकालीन प्रभाव यह होता है कि देश की विनिमय दर अनुकूल होती है।

विनिमय दरों के उच्चावचन की सीमाएँ–विभिन्न मानों के अन्तर्गत विनिमय दरों के उच्चावचन की सीमाएँ अलग-अलग होती हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) **स्वर्णमान में–**स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दरों में एक निश्चित सीमा तक ही उच्चावचन होते हैं तथा इनकी सीमाओं का निर्धारण स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा होता है। अतः दो स्वर्णमान वाले देशों में विनिमय दर, टंक समता (Mint Parity) के चारों ओर स्वर्ण आयात और स्वर्ण निर्यात बिन्दु की सीमाओं के भीतर ही घटती-बढ़ती है।

टास्क विनिमय दरों के उच्चावचन की सीमाएँ बताइए।

(2) **पत्र चलनमान में–**अपरिवर्तनीय कागजी मान के अन्तर्गत विनिमय दर के उच्चावचनों की सीमाओं का निर्धारण यद्यपि क्रय-शक्ति समता के अनुसार होता है, किन्तु स्वर्णमान की टंक समता के समान, क्रय-शक्ति समता की सीमाओं में स्थिरता नहीं रहती वरन् इसमें परिवर्तन होते हैं अतः विनिमय दर में परिवर्तन केवल कुछ निश्चित सीमाओं तक ही नहीं होते वरन् विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति की दशाएं विनिम दर को प्रभावित करती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Options)–

1. विनिमय दरों में उच्चावचनों के कारण देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ेगा–
   (क) अनुकूल (ख) प्रतिकूल
   (ग) सामान्य (घ) कोई प्रभाव नहीं।
2. 'A Manual of Foreign Exchange' पुस्तक किसकी है–
   (क) मार्क्स (ख) स्मिथ
   (ग) एच.ई.ई. विट (घ) कुरिहारा।
3. विनिमय दरों के उच्चवचनों के अल्पकालीन कारण हैं–
   (क) व्यापारिक (ख) राजनीतिक
   (ग) सामाजिक (घ) औद्योगिक।
4. विनिमय दरों के उच्चावचनों के दीर्घकालीन कारण हैं–
   (क) शैक्षिक (ख) राजनीतिक
   (ग) सामाजिक (घ) व्यापारिक।
5. चलन एवं साख सम्बंधी दशाओं को विनिमय दर को प्रभावित करने वाला दीर्घकालीन कारण किसने माना है–
   (क) स्मिथ (ख) एच.ई.ई. विट (ग) मार्क्स (घ) कुरिहारा।

नोट

16.2 सारांश (Summary)

- यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि जब भुगतान–शेष में घाटा होता है तो विनिमय दर में कमी हो जाती है। उसके विपरीत, जब भुगतान–शेष में आधिक्य होता है तो विनिमय दर में वृद्धि हो जाती है।
- भुगतान–शेष सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि विनिमय दर का निर्धारण माँग और पूर्ति के सन्दर्भ में भुगतान–शेष द्वारा होता है। इस सिद्धान्त को विनिमय दर का माँग और पूर्ति का सिद्धान्त भी कहते हैं।
- विभिन्न देशों की विनिमय दरें उनके मौलिक भुगतान–शेष द्वारा निर्धारित होती हैं। यद्यपि भुगतान–शेष में अन्य मदों का समावेश भी होता है, किन्तु उसमें वस्तुओं की क्रय–विक्रय (व्यापार-शेष) सम्बन्धी मदें मुख्य होती हैं।
- संक्षेप में, विनिमय दर निर्धारण का भुगतान सन्तुलन सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि निर्यात ही आयातों का भुगतान करते हैं (Exports pay for the imports)। इसका अभिप्राय यह है कि सन्तुलित विनिमय दर के निर्धारण के लिए किसी देश के कुल आयातों एवं कुल निर्यातों का मूल्य समान होना चाहिए ताकि प्रत्येक देश के भुगतान (Payments) तथा प्राप्तियाँ (Receipts) समान हों। इस सिद्धान्त को विदेशी विनिमय का सन्तुलन सिद्धान्त (Equilibrium Theory of Foreign Exchange) भी कहा जाता है।
- इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह स्पष्ट करता है कि अन्य वस्तुओं की भांति मुद्रा का मूल्य भी उसकी माँग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् यह विनिमय दर के निर्धारण को भी सामान्य मूल्य सिद्धान्त के क्षेत्र में लाता है।
- इस सिद्धान्त का यह भी एक गुण है कि यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि भुगतान शेष में असन्तुलन की स्थिति को विनिमय–दर में मामूली परिवर्तन करके ठीक किया जा सकता है। यह परिवर्तन अवमूल्यन (Devaluation) अथवा पुनर्मूल्यन (Revaluation) करके किया जा सकता है, इसमें आन्तरिक क्रय शक्ति में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है जैसा कि क्रय शक्ति समता सिद्धान्त में बताया गया है।
- यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को लेकर चलता है तथा एक देश से दूसरे देश को मुद्रा के प्रभाव में हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता, किन्तु ये दोनों बातें अवास्तविक हैं।
- इस सिद्धान्त का एक मुख्य दोष यह भी है कि यह भुगतान–शेष को एक निश्चित मात्रा में मानकर चलता है, किन्तु तथ्य यह है कि व्यापार-शेष, देश एवं विदेश के कीमत स्तरों पर निर्भर रहता है तथा दो देशों के मूल्य स्तरों पर उन देशों की विनिमय दरों का भी प्रभाव पड़ता है, अतः भुगतान–शेष पूर्ण रूप से विनिमय दरों से स्वतन्त्र नहीं होता जैसा कि यह सिद्धान्त बताता है।
- विनिमय दर मुद्राओं की माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। यह दर घटती–बढ़ती रहती है अर्थात् इसमें उच्चावचन होते रहते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक हस्तान्तरण के कारण होते हैं। इन उच्चावचनों के कारण किसी भी देश में अनिश्चितता की स्थिति आ जाती है तथा देश की अर्थव्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- एक देश से पूँजी के आवागमन का प्रभाव भी उसकी विनिमय दर पर पड़ता है। एक देश से पूँजी का अल्पकालीन बहिर्गमन विदेशों में ऊँची ब्याज दर प्राप्त करने के लिए हो सकता है अथवा विदेशों में पूँजी का दीर्घकालीन विनियोग किया जा सकता है।
- मध्यस्थों की क्रियाएँ भी विनिमय–दर को प्रभावित करती हैं। इन क्रियाओं को अन्तर्पणन अथवा मूल्यान्तर सौदे (Arbitrage Operations) भी कहते हैं अन्तर्पणन की क्रिया, दो मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों के अन्तर से लाभ उठाने के लिए की जाती है।
- विनिमय दर में भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व अनुमान कर विदेशी मुद्राओं का क्रय–विक्रय किया जाता है जिसका विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी समय सटोरियों द्वारा विदेशी मुद्रा को अधिक मात्रा में खरीदा जाता है तो उस मुद्रा की माँग बढ़ जाती है तथा उसकी विनिमय दर भी बढ़ने लगती है।

नोट

16.3 शब्दकोश (Keywords)

- **उच्चावचन–** ऊपर–नीचे, छोटा–बड़ा, विषम।
- **साख–** प्रतिष्ठा, मर्यादा।

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विदेशी विनिमय के भुगतान–शेष सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
2. विदेशी विनिमय के भुगतान–शेष सिद्धांत के गुण–दोषों का वर्णन कीजिए।
3. विदेशी विनिमय दरों में उच्चावचनों से आप क्या समझते हैं? विवेचन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (क) 2. (ग) 3. (क) 4. (ख)
5. (ख)

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—17: समायोजन की प्रक्रिया (Process of Adjustments)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
17.1 समायोजन की प्रक्रिया (Process of Adjustments)
17.2 अवशोषण सिद्धान्त (The Absorption Theory)
17.3 सारांश (Summary)
17.4 शब्दकोश (Keywords)
17.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
17.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समायोजन की प्रक्रिया की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जब किसी देश का भुगतान शेष घाटे अथवा अतिरेक की स्थिति में होता है तो उसमें समायोजन के विभिन्न तंत्र प्रयोग में लाए जाते हैं जिससे कि वह संतुलन की अवस्था में आ जाए। इस इकाई में भी समायोजन की विभिन्न प्रक्रियाओं की चर्चा की गई है।

17.1 समायोजन की प्रक्रिया (Process of Adjustments)

1. स्वर्णमान के अंतर्गत समायोजन प्रक्रिया (Process of Adjustment under Gold Standard)

अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णमान 1880-1914 के बीच प्रचलित था। इसके अन्तर्गत प्रयुक्त करेंसी सोने की बनी हुई थी जिसे एक निश्चित दर पर सोने में बदला जा सकता था। देश का केन्द्रीय बैंक निर्धारित कीमत पर स्वर्ण के क्रय-विक्रय के लिए सदैव तत्पर रहता था। जिस दर पर देश की मानक मुद्रा स्वर्ण में बदली जा सकती थी वह दर स्वर्ण की टकसाल दर कीमत (mint price) कही जाती थी। इस दर को टकसाल दर समता (mint parity rate) अथवा विनिमय की टकसाल दर समता कहा जाता था क्योंकि यह दर सोने की टकसाल कीमत पर आधारित थी। परन्तु विनिमय की वास्तविक दर टकसाल दर समता से उतनी कम या ज्यादा हो सकती थी जितनी कि दोनों देशों के बीच जहाज में सोना लाने अथवा ले जाने की लागत (अर्थात् परिवहन लागत) होती

नोट

थी। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि ब्रिटेन के साथ अमेरिका के भुगतान शेष में घाटा है। अमेरिका के आयातकर्ताओं को आयातों तथा निर्यातों के मूल्य के अन्तर का भुगतान देकर करना होगा क्योंकि पौण्ड की पूर्ति की अपेक्षा पौण्ड की मांग बढ़ जाती है। परन्तु सोना भेजने की परिवहन लागत, अन्य रख-रखाव प्रभार, बीमा आदि पर भी व्यय करना पड़ता है। मान लीजिए अमेरिका से ब्रिटेन सोना भेजने का खर्च 2 सेंट प्रति औंस पड़ता है। अतः अमेरिका के आयातकर्ताओं को एक पौण्ड प्राप्त करने के लिए 6.02 डॉलर (6 डॉलर + .02 सेण्ट) भुगतान करना होगा। यह विनिमय दर अमेरिका का **स्वर्ण निर्यात बिन्दु** (gold export point) है। अमेरिका का कोई भी आयातकर्ता एक पौण्ड प्राप्त करने के लिए 6.02 डॉलर से अधिक भुगतान नहीं करेगा क्योंकि वह 6 डॉलर का सोना अमेरिका के खजाने से खरीद कर 0.2 सेण्ट प्रति औंस की लागत से उसे ब्रिटेन भेज सकता है। इसी तरह जब अमेरिका के भुगतान शेष में अतिरेक होता है तब पौण्ड का आयात मूल्य 5. 98 डॉलर से नीचे नहीं जा सकता। 5.98 डॉलर प्रति पौण्ड की विनिमय दर अमेरिका में **स्वर्ण आयात बिन्दु** अथवा नीचा स्वर्ण बिन्दु है।

क्या आप जानते हैं स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर को स्वर्ण बिन्दुओं के बीच मांग तथा पूर्ति की शक्तियां निर्धारित करती हैं।

स्वर्णमान के अन्तर्गत भुगतान शेष में घाटा अथवा अतिरेक-कीमत-स्वर्ण-प्रवाह (price-specie-flow) तन्त्र द्वारा स्वतः समायोजित हो जाता था। उदाहरण के लिए, एक देश के भुगतान शेष में घाटे का तात्पर्य था उसके विदेशी विनिमय रिजर्व में, उसके सोने का, अतिरेक देश को प्रवाहित होने के कारण गिरावट। इससे उसकी मुद्रा पूर्ति कम हो जाती थी जिसके फलस्वरूप उसके सामान्य कीमत स्तर में गिरावट आ जाती थी। फलस्वरूप इसके निर्यातों में वृद्धि और आयातों में कमी आ जाती थी। भुगतान शेष में यह समायोजन मुद्रा पूर्ति में कमी के कारण ब्याज दर में वृद्धि होने से भी हुआ। इससे भुगतान शेष अतिरेक देश से अल्पकालीन पूंजी का अन्तर्प्रवाह होता है। इस तरह, घाटे वाले देश को अतिरेक वाले देश से अल्पकालीन पूंजी के अन्तर्प्रवाह से भुगतान शेष में रहने वाला असन्तुलन समाप्त हो जाता है तथा सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

2. लोचशील विनिमय दरों के अन्तर्गत स्वतः कीमत समायोजन (कीमत प्रभाव) (Automatic Price Adjustment Under Flexible Exchange Rates (Price Effect))

लोचशील विनिमय दरों के अन्तर्गत विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियां भुगतान शेष में होने वाले असन्तुलन को स्वतः सन्तुलित कर देती हैं। विनिमय दर करेन्सी की कीमत होती है जिसे अन्य वस्तुओं की ही भांति मांग एवं पूर्ति की शक्तियां निर्धारित करती हैं।

भुगतान शेष में घाटा होने की दशा में देश की मुद्रा का मूल्य ह्रास और इसके विपरीत भुगतान शेष में अतिरेक होने की दशा में देश की मुद्रा का अधिमूल्यन होने पर भुगतान शेष में स्वतः सन्तुलन स्थापित हो जाता है। मुद्रा के मूल्य ह्रास का अर्थ है मुद्रा के सापेक्ष मूल्य में कमी, जबकि अधिमूल्यन का अर्थ है मुद्रा के सापेक्ष मूल्य में वृद्धि। मूल ह्रास अथवा अवमूल्यन से निर्यात प्रोत्साहित तथा आयात हतोत्साहित होते हैं, जबकि अधिमूल्यन की दशा में स्थिति इसके विपरीत होती है। विनिमय मूल्य ह्रास अर्थात् अवमूल्यन की दशा में विदेशी कीमतें घरेलू कीमतों में रूपान्तरित हो जाती हैं। मान लीजिए पौण्ड के सापेक्ष डॉलर का मूल्य ह्रास होता है अर्थात् विदेशी विनिमय बाजार में पौण्ड के मुकाबले डॉलर की कीमत कम हो जाती है तब इंग्लैण्ड में अमेरिका के निर्यातों की कीमतें गिर जाएंगी, जबकि अमेरिका में इंग्लैण्ड के आयातों की कीमतें बढ़ जाएंगी।

नोट

नोट्स जब अमेरिका में इंग्लैण्ड की वस्तुओं की कीमतें अधिक रहेंगी तो अमेरिकी लोग इंग्लैण्ड की वस्तुएं कम खरीदेंगे। इसके विपरीत, जब अमेरिका के निर्यातों की कीमतें इंग्लैण्ड से कम रहेंगी तब इंग्लैण्ड में उनकी बिक्री बढ़ जायेगी। इस तरह, अमेरिका के निर्यात बढ़ेंगे और आयात घट जाएंगे। इसके फलस्वरूप भुगतान शेष में सन्तुलन स्थापित हो जाएगा।

मान्यताएँ (Assumptions)–यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. मान लीजिए विदेशी व्यापार दो देशों–इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के बीच होता है।
2. दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार होता है।
3. दोनों देशों में कीमतें तथा विनिमय दरें लोचशील हैं।
4. भुगतान शेष में असन्तुलन विनिमय दरों में परिवर्तनों द्वारा स्वत: समायोजित हो जाता है।

व्याख्या (Explanation)–उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर समायोजन की प्रक्रिया को चित्र 17.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–चित्र में DD अमेरिका के विदेशी विनिमय का मांग वक्र है जो इंग्लैण्ड के आयातों को भी व्यक्त करता है तथा OS अमेरिका के विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र है जो इंग्लैण्ड के निर्यात को व्यक्त करता है।

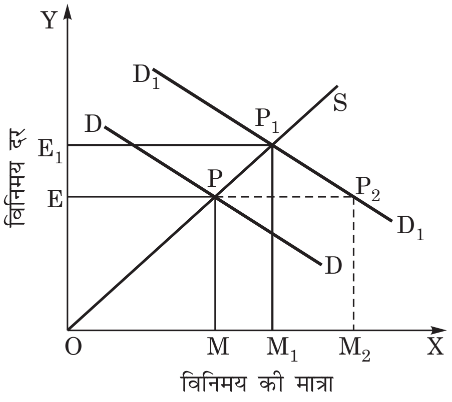

चित्र 17.1

अमेरिका के विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति बिन्दु P पर सन्तुलन में है। इस सन्तुलन बिन्दु के अनुरूप अमेरिकी डॉलर तथा इंग्लैण्ड के पौण्ड के बीच विनिमय दर OE तथा विनिमय मात्रा OM निर्धारित होती है। मान लीजिए इंग्लैण्ड के साथ अमेरिका के भुगतान शेष में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। इसे मांग वक्र के DD से D_1D_1 पर विवर्तन द्वारा प्रदर्शित किया गया है तथा घाटा PP_1 के बराबर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अमेरिका में इंग्लैण्ड की वस्तुओं की मांग बढ़ गई है जिसके फलस्वरूप पौण्ड की मांग बढ़ गई है। अन्य शब्दों में, अमेरिकी डॉलर का मूल्य ह्रास हो गया है तथा इंग्लैण्ड के पौण्ड की मूल्य वृद्धि हो गई है। फलस्वरूप अमेरिका में इंग्लैण्ड की वस्तुओं की आयात कीमतें बढ़ जाती हैं और अमेरिकी आयात निर्यातों की कीमतें गिर जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि नवीन सन्तुलन P_1 बिन्दु पर और नई विनिमय दर OE_1 स्थापित होती है।

इस नवीन सन्तुलन बिन्दु के अनुरूप OE_1 विनिमय दर पर विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति OM_1 होती है। इससे भुगतान शेष में घाटा समाप्त हो जाता है तथा विदेशी विनिमय की मांग व पूर्ति बराबर हो जाती है एवं भुगतान शेष में साम्य स्थापित हो जाता है।

पुन: जब विनिमय दर बढ़कर OE_1 हो जाती है तो अमेरिका की वस्तुएँ इंग्लैण्ड में सस्ती हो जाती हैं तथा इंग्लैण्ड की वस्तुएं अमेरिका में महंगी हो जाती हैं। सस्ती होने के कारण अमेरिकी वस्तुओं की मांग इंग्लैण्ड में बढ़ने से नया मांग वक्र दाहिनी ओर सरक कर D_1D_1 हो जाता है। इंग्लैण्ड में अमेरिकी निर्यात बढ़ने से नया सन्तुलन बिन्दु P से P_1 पर चला जाता है। साथ ही डॉलर में इंग्लैण्ड की ऊंची कीमत, इंग्लैण्ड की वस्तुओं की मांग कम कर देती है जिसे DD मांग वक्र के साथ P_2 से P_1 बिन्दु पर गति द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस तरह, भुगतान शेष में PP_2 घाटा MM_1 विदेशी करेंसी की पूर्ति में वृद्धि तथा मांगी गई विदेशी करेंसी में M_2M_1 कमी द्वारा दूर की जाती है। इस तरह, भुगतान शेष सन्तुलन OE_1 में विनिमय दर द्वारा प्राप्त हो जाता है जिस पर OM_1 विदेशी विनिमय (करेंसी) की मांग व पूर्ति की जाती है।

नोट

यह विश्लेषण विनिमय दर की मांग एवं पूर्ति की सापेक्ष लोच की पूर्व मान्यता पर आधारित है। परन्तु दोनों देशों में सापेक्ष कीमतों पर मूल्य ह्रास का पूरा प्रभाव मापने के लिए मांग एवं पूर्ति का सापेक्ष लोचदार होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि विदेशी विनिमय की मांग व पूर्ति की कम लोचें महत्वपूर्ण हैं। इसे चित्र 17.2 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में विनिमय की कम लोचदार मांग एवं पूर्ति वक्र जो क्रमशः DD तथा SS हैं। एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं और सन्तुलन विनिमय दर OE निर्धारित होती है। अब भुगतान शेष में PP_1 के बराबर घाटा उत्पन्न हो जाता है क्योंकि विदेशी मांग एवं पूर्ति लोचें बहुत कम (बेलोच) होती हैं अतः सन्तुलन की पुनः स्थापित करने के लिए डॉलर की बहुत अधिक मूल्य ह्रास तथा पौण्ड की बहुत अधिक मूल्य वृद्धि की आवश्यकता होगी। जब विदेशी विनिमय की दर बहुत अधिक बढ़कर OE_1 हो जाती है तब नया सन्तुलन P_1 पर स्थापित होता है। परन्तु अधिक मूल्य ह्रास का परिणाम यह होगा कि दोनों देशों में बहुत अधिक कीमतों में परिवर्तन होगा और दोनों ही अर्थव्यवस्थाएं अव्यवस्थित एवं छिन्न-भिन्न हो जायेंगी।

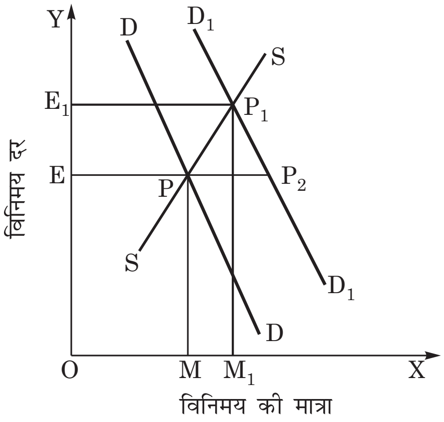

चित्र 17.2

आलोचना (Criticism)—लचीली विनिमय दरों का उपयोग व्यवहार में प्रायः कम ही होता है। जो देश मूल्य वृद्धि अथवा मूल्य ह्रास का सहारा लेते हैं उनके यहां कीमतों में उतार-चढ़ाव आते हैं तथा मुद्रास्फीति एवं मन्दी की गंभीर स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। इससे अर्थव्यवस्था में अनिश्चितता एवं असुरक्षा की स्थिति उत्पन्न होने का खतरा रहता है। इसके अतिरिक्त विदेशी विनिमय में होने वाली सट्टेबाजी भी लचीली विनिमय दरें अपनाने वाले देशों में अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न कर देती है।

3. लोच विधि (The Elasticity Method)

मार्शल-लर्नर शर्त (Marshall-Lerner Condition)—भुगतान शेष में समायोजन की लोच विधि मार्शल-लर्नर शर्त से सम्बन्धित है। इस विधि द्वारा मार्शल तथा लर्नर ने भुगतान-शेष में समायोजन की समस्या का अलग-अलग हल प्रस्तुत किया है। यह विधि उन शर्तों का विश्लेषण करती है जिनके अन्तर्गत एक देश की मुद्रा का अवमूल्यन करके भुगतान शेष में पुनः सन्तुलन स्थापित किया जाता है। इस तरह इसका सम्बन्ध अवमूल्यन के कीमत प्रभाव से है।

मान्यताएँ—भुगतान शेष में समायोजन की लोच विधि निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

1. देश का व्यापार सन्तुलन प्रारम्भ में सन्तुलित है।
2. देश का चालू खाता शेष व्यापार शेष के बराबर है।
3. आयातों तथा निर्यातों की पूर्ति पूर्ण लोचदार है।
4. वस्तुओं की कीमतें घरेलू मुद्रा में निश्चित की जाती हैं।
5. अवमूल्यन करने वाले देश में आय का स्तर स्थिर रहता है।
6. निर्यातों तथा आयातों के लिए मांग की कीमत लोचें आड़ी लोचें (arc elasticities) हैं।
7. पूर्ति अधिक लोचदार है।

सिद्धान्त (The Theory)—जब कोई देश अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है तो इसके आयातों की घरेलू कीमतें बढ़ जाती हैं जबकि इसके निर्यातों की विदेशी कीमतें कम हो जाती हैं। इस तरह अवमूल्यन द्वारा निर्यातों को बढ़ाकर तथा आयातों को कम करके एक देश अपने भुगतान शेष में समायोजन कर सकता है। परन्तु भुगतान शेष में समायोजन की इस विधि की सफलता देश के निर्यातों के लिए विदेशी मांग की कीमत लोच तथा आयातों के लिए घरेलू मांग की कीमत लोच पर निर्भर करेगी। **मार्शल-लर्नर शर्त** इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि जब आयातों

नोट

और निर्यातों की मांग की लोचों का योग निरपेक्ष रूप से 'इकाई' से अधिक होता है तभी एक देश के भुगतान शेष में सुधार होगा अर्थात्,

$$e_x + e_m > 1$$

जहाँ e_x = निर्यातों के मांग की लोच, e_m = आयातों के मांग की लोच। इसके विपरीत, इन दोनों मांग की लोचों का योग इकाई से कम है, अर्थात $e_x + e_m < 1$, तो अवमूल्यन भुगतान शेष की स्थिति को और बिगाड़ देगा अर्थात् भुगतान शेष घाटे को बढ़ा देगा। यदि इन लोचों का योग निरपेक्ष रूप से इकाई के बराबर है, अर्थात् $e_x + e_m = 1$, तब अवमूल्यन का भुगतान शेष की स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा अर्थात् अपरिवर्तित रहेगा।

अवमूल्यन से विदेशी मुद्रा में निर्यातों की घरेलू कीमतें कम हो जाती हैं कीमतें कम होने से निर्यात बढ़ते हैं। निर्यातों में वृद्धि कितनी होगी यह निर्यातों की मांग की लोच पर निर्भर करेगा। यह निर्यातित वस्तु की प्रकृति तथा बाजार की दशाओं पर भी निर्भर करता है। यदि निर्यात करने वाला केवल एक ही देश है तथा वह कच्चे माल एवं नाशवान वस्तुओं का निर्यात करता है तो उसके निर्यातों के मांग की लोच कम होगी। यदि देश अन्य देशों के साथ प्रतियोगी वस्तुओं—मशीनरी तथा औद्योगिक वस्तुओं आदि का निर्यात करता है तब उसकी वस्तुओं के लिए मांग की लोच ऊंची होगी तथा अवमूल्यन भुगतान शेष घाटे को पूरा करने में सहायक सिद्ध होगा।

अवमूल्यन से आयातों की घरेलू कीमतें भी बढ़ जाती हैं जिससे वस्तुओं का आयात कम हो जाता है। आयातों की मात्रा कितनी कम होगी यह आयातित वस्तुओं की मांग की लोच पर निर्भर करेगा। आयातों की मांग की लोच अवमूल्यन करने वाले देश द्वारा आयातित वस्तुओं की प्रकृति पर भी निर्भर करती है। यदि उपभोक्ता वस्तुओं, कच्चा माल तथा उद्योगों की आगतों का आयात किया जाता है तो आयातों की मांग की लोच कम होगी। जब वस्तुओं के आयातों की मांग की लोच ऊंची होती है तभी अवमूल्यन भुगतान-शेष के घाटे को पूरा करने में सहायक होता है। इस तरह, जब निर्यातों की मांग की लोच तथा आयातों की मांग की लोच का योग इकाई से अधिक होता है तो अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करने वाले देश के भुगतान शेष में सुधार होगा।

टास्क इस इकाई में दिया गया चित्र 17.2 क्या प्रदर्शित करता है?

J-वक्र प्रभाव (The J-Curve Effect)

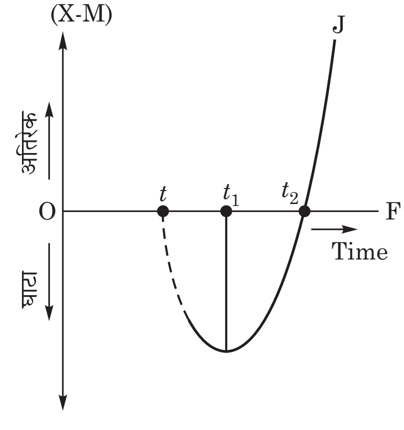

चित्र 17.3

अर्थशास्त्रियों की धारणा है मार्शल-लर्नर शर्त विकसित देशों में ही लागू हो सकती है तथा अल्पकाल की अपेक्षा यह दीर्घकाल में अधिक प्रभावी होती है। उनका तर्क है कि अवमूल्यन का निर्यातों एवं आयातों की मांग पर प्रभाव तुरन्त इसलिए नहीं पड़ेगा क्योंकि उपभोक्ताओं और उत्पादकों को अपने आपको नई स्थिति के साथ समायोजित होने में समय लगता है। इसलिए निर्यातों तथा आयातों के लिए मांग की अल्पकालीन कीमत लोचें कम होती हैं और वे मार्शल-लर्नर की शर्त को सन्तुष्ट नहीं करतीं। अत: प्रारम्भ में अवमूल्यन अल्पकाल में भुगतान शेष को अधिक बिगाड़ देता है परन्तु दीर्घकाल में सुधारता है। यह काल पर्यन्त J-वक्र का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इसे अवमूल्यन का J-वक्र प्रभाव कहा जाता है। इसे चित्र 17.3 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में समय को क्षैतिज वक्र पर तथा घाटा-अतिरेक को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। मान लीजिए एक देश समय t पर अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है। प्रारम्भ में J-वक्र का घेरा अधिक है। भुगतान शेष घाटे में वृद्धि प्रदर्शित करता है। t_1 समय के पश्चात् यह ऊपर की ओर उठता है तथा घाटा कम होना प्रारम्भ हो जाता है। t_2 समय

नोट

पर भुगतान शेष में सन्तुलन स्थापित हो जाता है और उसके पश्चात् t_2 से J तक अतिरेक होता जाता है। यदि मार्शल-लर्नर शर्त सन्तुष्ट नहीं होती है तो दीर्घकाल में J-वक्र t_2 से F तक चपटा हो जाएगा। इस स्थिति में यदि कोई देश लचीली विनिमय दर को अपनाए रहता है, तो उसकी मुद्रा का अवमूल्यन होने पर भुगतान शेष की स्थिति अधिक बिगड़ जाएगी। अवमूल्यन से विदेशी विनिमय बाजार में मुद्रा की पूर्ति अधिक हो जाती है जो मुद्रा का अधि मूल्यन कर सकती है। इससे विदेशी मुद्रा बाजार अस्थिर हो सकता है।

आलोचनाएं (Criticisms)

मार्शल-लर्नर शर्त पर आधारित लोच विधि की प्रमुख आलोचनाएं निम्नवत हैं :

1. **भ्रामक दृष्टिकोण**–लोच विधि में प्रयुक्त मार्शल की लोच से सम्बन्धित धारणा भ्रामक है क्योंकि यह केवल मांग अथवा पूर्ति वक्र पर वृद्धिशील परिवर्तनों और इन वक्रों में परिवर्तन से सम्बन्धित समस्याओं से सम्बन्ध रखती है। इसके अतिरिक्त इसमें मुद्रा की क्रय शक्ति को स्थिर मान लिया गया है जो देश की मुद्रा के अवमूल्यन से सम्बन्धित नहीं होती।
2. **कीमत स्थिरता**–इस विश्लेषण में यह मान लिया गया है कि व्यापार की जा रही सभी वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि अवमूल्यन से निर्यातों की घरेलू कीमतें तथा आयातों की विदेशी कीमतों में परिवर्तन होते हैं।
3. **पूर्ण प्रतियोगिता की धारणा अवास्तविक**–लोच सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण प्रतियोगिता की धारणा को स्वीकार करता है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण प्रातियोगिता नही पाई जाती। व्यापार में अनेक तरह के प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं जैसे प्रशुल्क, अभ्यंश विनिमय, नियन्त्रण, आदि।
4. **पूंजी की गतिशीलता की अवहेलना**–लोच विधि अवमूल्यन के फलस्वरूप विनिमय दर में होने वाले परिवर्तन का पूंजी की गतिशीलता पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी अवहेलना करती है। भुगतान शेष के सन्तुलन में पूंजी की गतिशीलता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
5. **आय प्रभावों की उपेक्षा**–मार्शल-लर्नर शर्त अवमूल्यन के आय प्रभावों की उपेक्षा करती है। अवमूल्यन आयातों तथा नियातों को प्रभावित कर देश की आय को प्रभावित करता है।
6. **स्फीति की सम्भावना**–भुगतान शेष में सुधार हेतु किए गए अवमूल्यन से निर्यातों में होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप देश की आय में वृद्धि की सम्भावना होती है। यह बढ़ी हुई आय आयातों की मांग और इस तरह, समस्त मांग में वृद्धि कर कीमतों को बढ़ा देगी जिससे अतंत: भुगतान शेष पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
7. **आय वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों की अवहेलना**–लोच विधि आय वितरण पर अवमूल्यन के प्रभाव की अवहेलना करती है। अवमूल्यन से संसाधनों का पुनर्वितरण होता है। यह संसाधनों को निर्यात और आयात-प्रतियोगी उद्योगों की ओर विवर्तित कर देगा। इससे विदेशी व्यापार से असम्बद्ध उद्योगों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।
8. **आंशिक विश्लेषण–**सिडनी एलेक्जैंडर जैसे अर्थशास्त्रियों की धारणा है कि मार्शल-लर्नर शर्त एक आंशिक विश्लेषण है जिसमें सापेक्ष कीमतों और आयात-निर्यात की मात्राओं के आधार पर अध्ययन किया गया। इस सिद्धान्त में अन्य बातों को यथावत मानकर लोचों के भुगतान-शेष पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है तथा आंशिक लोचों का समावेश किया गया है जो इसे आंशिक सन्तुलन का विश्लेषण निरूपित करता है।
9. **दीर्घ कार्य में उपयोगी–**मार्शल-लर्नर शर्त दीर्घकाल में व्यवहार्य है क्योंकि जब घरेलू मुद्रा का अवमूल्यन होता है तो उपभोक्ताओं और उत्पादकों को अपने आपको इस शर्त के साथ समायोजित होने में समय लगता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. स्वर्णमान के अन्तर्गत प्रयुक्त करेंसी बनी हुई थी—
   (क) सोने (ख) चाँदी
   (ग) ताँबा (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. जिस दर पर देश की मुद्रा स्वर्ण में बदली जाती है दर कही जाती है—
   (क) टकसाल दर कीमत (ख) स्वर्ण कीमत
   (ग) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. भुगतान शेष में घाटा होने पर मुद्रा का होता है—
   (क) अतिरेक (ख) अवमूल्यन
   (ग) मूल्यह्रास (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. भुगतान शेष में असन्तुलन विनिमय दरों में परिवर्तनों द्वारा स्वत: हो जाता है—
   (क) असन्तुलित (ख) समायोजित
   (ग) विपेक्षित (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. चित्र 17.1 में DD किस देश का माँग वक्र प्रदर्शित कर रहा है—
   (क) अमेरिका (ख) इंग्लैण्ड
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

17.2 अवशोषण सिद्धान्त (The Absorption Theory)

अवमूल्यन का अवशोषण सिद्धान्त कीन्स के राष्ट्रीय आय सम्बन्धों पर आधारित एक सामान्य सन्तुलन विश्लेषण है। इस सिद्धान्त को भुगतान शेष में समायोजन का केन्सीय मार्ग भी कहा जाता है। परन्तु यह सिद्धान्त केन्सीय सिद्धान्त से कुछ भिन्न है। केन्सीय सिद्धान्त अवमूल्यन के फलस्वरूप निर्यातों में वृद्धि और आयातों में कमी होने से आय में जो परिवर्तन होते हैं, उनका विश्लेषण करता है, जबकि अवशोषण सिद्धान्त घरेलू व्यय में होने वाले परिवर्तनों के माध्यम से समस्या का विश्लेषण करता है।

सिडनी एलेक्जैंडर (Sydney Alexander)—केन्सीय शब्दावली तथा विचारधारा पर आधारित अवमूल्यन के आय का प्रभाव का अध्ययन करता है। उसके अनुसार किसी देश के भुगतान शेष में घाटा होने का अर्थ यह है कि लोग जितना उत्पादन करते हैं उससे अधिक अवशोषण करते हैं। अन्य शब्दों में, राष्ट्रीय आय से उपभोग और निवेश पर घरेलू व्यय अधिक है। यदि भुगतान शेष में अतिरेक है तो लोग कम अवशोषण कर रहे हैं अर्थात् राष्ट्रीय आय से उपभोग और निवेश पर घरेलू व्यय कम है। इस तरह, इस विधि में भुगतान शेष को राष्ट्रीय आय तथा घरेलू व्यय के अन्तर के रूप में परिभाषित किया गया है।

इस विश्लेषण को निम्न समीकरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है—

$$Y = C + Id + X - M \qquad ...(1)$$

जहां Y राष्ट्रीय आय है, C उपभोग व्यय, Id कुल घरेलू निवेश, X निर्यात तथा M आयात है।

$C + Id$ कुल अवशोषण है जिसे यदि A द्वारा व्यक्त किया जाए तथा $X - M$ भुगतान शेष है जिसे B द्वारा व्यक्त किया जाए तब समीकरण (1) को निम्नवत लिखा जा सकता है—

$$Y = A + B$$

अथवा

नोट

$$B = Y - A \quad ...(2)$$

समीकरण (2) यह व्यक्त करता है कि भुगतान शेष राष्ट्रीय आय (Y) तथा कुल अवशोषण (A) का अन्तर है। भुगतान शेष को घरेलू आय बढ़ाकर अथवा अवशोषण (उपयोग तथा निवेश व्यय) को कम करके सुधारा जा सकता है। एलेक्जैंडर इसके लिए अवमूल्यन करने का सुझाव देता है। उसका तर्क क्रम इस प्रकार है–अवमूल्यन से निर्यात बढ़ते हैं तथा आयातों में कमी आती है जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। इस तरह बढ़ी हुई अतिरिक्त आय गुणक प्रभाव से आय को और अधिक बढ़ाएगी इससे घरेलू उपभोग में वृद्धि होगी। इस तरह राष्ट्रीय आय में वृद्धि का भुगतान-शेष पर शुद्ध प्रभाव राष्ट्रीय आय में कुल वृद्धि तथा अवशोषण में प्रेरित वृद्धि का अन्तर है जिसे निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है–

$$\Delta B = \Delta Y - \Delta A \quad ...(3)$$

अवमूल्यन होने पर कुल अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (a) उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति तथा निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति का योग होती है) पर निर्भर करता है। यहां अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति को a द्वारा व्यक्त किया गया है। इस तरह,

$$\Delta A = a \,.\, \Delta Y \quad ...(4)$$

समीकरण (4) से ΔA का मान समीकरण (3) में रखने पर हमें प्राप्त होता है–

$$\Delta B = \Delta Y - (a \,.\, \Delta Y)$$

$$\Delta B = \Delta Y - a \,.\, \Delta Y$$

$$\Delta B = (1 - a)\, \Delta Y$$

अवमूल्यन भी आय में परिवर्तन के द्वारा अवशोषण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जिसे यहां D से प्रदर्शित किया गया है। इस तरह,

$$\Delta B = (1 - a)\, \Delta Y + \Delta D \quad ...(5)$$

उपरोक्त समीकरण उन तीन घटकों की ओर संकेत करता है जो भुगतान शेष पर अवमूल्यन के प्रभावों की विवेचना करते हैं। ये तीन घटक हैं–(*i*) अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (a), (*ii*) आय में परिवर्तन (ΔY) तथा (*iii*) प्रत्यक्ष अवशोषण में परिवर्तन (ΔD)।

1. **अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति**–यदि अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति इकाई से कम ($a < 1$) है तो अवमूल्यन निर्यात को बढ़ाएगा और आयात में कमी लाएगा। उत्पादन और आय में वृद्धि होगी तथा चालू खाते पर भुगतान शेष में सुधार होगा। दूसरी ओर यदि $a > 1$ हो तो भुगतान शेष पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अन्य शब्दों में, लोग अधिक अवशोषण कर रहे हैं अर्थात् उपभोग पर अधिक व्यय कर रहे हैं तथा अधिक निवेश कर रहे हैं। ऐसी दशा में अवमूल्यन न तो निर्यात ही बढ़ाएगा और न ही आयात को कम करेगा। भुगतान शेष की स्थिति खराब रहेगी।

   पूर्ण रोजगार की दशाओं के अन्तर्गत यदि $a > 1$ हो तो सरकार को अवमूल्यन के साथ-साथ व्यय घटाने वाली नीति उपायों को अपनाना होगा ताकि अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पुन: आबण्टन इस तरह हो कि निर्यात बढ़े और आयात में कमी आए। अंतत: भुगतान शेष की स्थिति में सुधार आएगा।

2. **आय में परिवर्तन**–यदि अर्थव्यवस्था में निष्क्रिय संसाधन विद्यमान हैं तो अवमूल्यन से निर्यात बढ़ेगा और आयात कम होगा। निर्यात तथा आयात प्रतियोगी उद्योगों के विस्तार से आय में वृद्धि होती है। इससे अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त आय का सृजन होगा जो गुणक प्रभाव से आगे भी आय को बढ़ा देगी। इससे भुगतान शेष की स्थिति में सुधार होगा। यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति है तो अवमूल्यन प्रतिकूल राष्ट्रीय शेष को ठीक नहीं कर पाएगा क्योंकि राष्ट्रीय आय अब इस स्तर से आगे नहीं बढ़ सकेगी। अवमूल्यन से कीमतें बढ़ेंगी जिससे निर्यात घटेगा तथा आयात बढ़ेगा फलस्वरूप भुगतान शेष की स्थिति और अधिक खराब होगी।

3. **व्यापार शर्त प्रभाव**–अवमूल्यन से देश की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होती हैं क्योंकि इससे विदेशी मुद्रा में निर्यात

नोट

कीमतें गिर जाती हैं। यह धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि सामान्यतया एक देश के निर्यात, आयातों की अपेक्षा अधिक विशिष्टीकृत होते हैं। विशिष्टीकरण के फलस्वरूप आयात कीमतों की अपेक्षा निर्यात कीमतें अधिक प्रभावित होती हैं। अत: अवमूल्यन होने से व्यापार शर्तों के प्रतिकूल होने की अधिक सम्भावना होती है जिससे आय घट जाती है।

4. **अवशोषण पर प्रत्यक्ष प्रभाव**–अवशोषण पर अवमूल्यन के प्रत्यक्ष प्रभाव को एलेक्जेंडर ने इस तरह समझाया है–"अवमूल्यन के फलस्वरूप जब मुद्रा आय और मुद्रा कीमतें एक साथ बढ़ती हैं, तो वह प्रभाव जो वास्तविक व्यय को कम करता है, अवशोषण पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।" इस प्रभाव का अध्ययन नकद शेष प्रभाव मुद्रा भ्रम प्रभाव, आय पुनर्वितरण प्रभाव तथा फुटकर प्रत्यक्ष अवशोषण प्रभावों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

नकद शेष प्रभाव–किसी देश की मुद्रा का अवमूल्यन होने से उसकी घरेलू कीमतों में वृद्धि होती है। कीमतों के बढ़ने से लोग अधिक नकदी को इकट्ठा करते हैं। वास्तविक आय के स्थिर रहने पर, नकदी शेषों में वृद्धि होने पर वास्तविक व्यय घट जाएंगे। यदि नकदी धारणों के बढ़ने से अन्य परिसम्पत्तियों की बिक्री प्रारम्भ हो जाती है, तो इससे ब्याज की दर में परिवर्तन होते हैं। यह आगे वास्तविक आय की सापेक्षता में वास्तविक उपभोग अथवा निवेश को प्रभावित कर सकता है। इस तरह, नकद शेष प्रभाव नकदी बढ़ाने के लिए व्यय को त्यागकर आय-व्यय सम्बन्ध पर प्रत्यक्ष तौर से अथवा अन्य को नकदी में परिवर्तन करने के फलस्वरूप ब्याज दर द्वारा अप्रत्यक्ष तौर पर कार्य कर सकता है।

मुद्रा भ्रम प्रभाव–लोग अपनी आय, व्यय एवं बचतों का मुद्रा के रूप में विचार करने की प्रवृत्ति रखते हैं। इस मनोवैज्ञानिक आधार को दृष्टिगत रखते हुए एलेक्जेंडर कहते हैं कि अवमूल्यन के कारण जब कीमतें बढ़ती हैं तब भुगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव पड़ सकता है। यदि लोग बढ़ी हुई कीमतों पर कम खरीदते और उपभोग करते हैं चाहे उनकी मौद्रिक आय, नकद शेष प्रभाव से बढ़ने वाली आय से अधिक बढ़ी हो।

आय का पुनर्वितरण प्रभाव–यदि अवमूल्यन से आय का वितरण ऊंची बचत प्रवृत्ति वालों के पक्ष में तथा ऊंची उपभोग प्रवृत्ति वालों के विपक्ष में होता है तो अवशोषण स्वत: घट जाता है। जिस सीमा तक आय को खपाने की ऊंची सीमान्त प्रवृत्ति वाले लोगों से कम सीमान्त प्रवृत्ति वालों की ओर स्थानान्तरण किया जाता है उसी सीमा तक भुगतान शेष में सन्तुलन अवमूल्यन द्वारा सुधरेगा। उल्लेखनीय है कि पुनर्वितरण प्रभाव केवल उपभोग वस्तुओं तक ही नहीं फैलता बल्कि निवेश क्षेत्र में भी फैलता है। आय पुनर्वितरण का अन्तिम प्रभाव इन सभी कारकों का संयुक्त परिणाम होगा।

फुटकर प्रत्यक्ष अवशोषण प्रभाव–जब देश में कीमत वृद्धि की प्रत्याशा निरन्तर विद्यमान रहती है तो इससे अवशोषण बढ़ता है तथा अवमूल्यन से भुगतान शेष पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परन्तु ऐसा प्राय: अल्पकाल में ही होता है। जब अवमूल्यन से आयात कीमतें बढ़ती हैं और यदि निवेश वस्तुएं भी इसी श्रेणी में शामिल कर ली जाती हैं तो आयातित निवेश वस्तुओं का सापेक्ष आकर्षण घरेलू तौर पर उपलब्ध ऐसी वस्तुओं की सापेक्षता में अथवा उनके निकट स्थानापन्नों की सापेक्षता में कम हो जाएगा। इससे अवशोषण में वृद्धि होगी। परन्तु एक सम्भावना यह भी विद्यमान होती है कि घरेलू निर्मित, वस्तुओं की कीमतें इतनी ऊंची हों कि लोग इन वस्तुओं पर व्यय को कम अथवा स्थगित कर दें। इससे बचतों में वृद्धि हो जाएगी।

इसके अतिरिक्त यदि सरकार व्यय घटाने वाली मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का सहारा लेती है तो भी प्रत्यक्ष अवशोषण कम हो जाता है।

आलोचनाएं (Criticisms)–अवशोषण विधि की प्रमुख आलोचनाएं निम्नवत हैं–

1. इस विश्लेशण में प्रयुक्त उपभोग एवं निवेश प्रवृत्तियों की समुचित गणना करना सम्भव नहीं होता।
2. अवशोषण विधि घरेलू अवशोषण को प्रभावित करने वाली घरेलू नीतियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करती है। यह विधि अन्य देशों के अवशोषण पर अवमूल्यन के प्रभावों का अध्ययन नहीं करती।
3. अवशोषण विधि की एक प्रमुख कमजोरी यह है कि सापेक्ष कीमतों की अपेक्षा यह घरेलू उपभोग पर अधिक बल देती है। अवशोषण कम करने के लिए केवल घरेलू उपभोग के स्तर को कम करने का यह अर्थ नहीं हुआ कि इस तरह छोड़े गए संसाधन भुगतान सन्तुलन को सुधारने में ही लगाए जाएंगे।

नोट

4. अवशोषण विधि की आलोचना करते हुए **मैक्लप** ने मत व्यक्त किया कि अवमूल्यन का प्रभाव बताने में व्यय प्रवृत्तियां कम विश्वसनीय हैं जबकि मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का अवमूल्यन पर प्रभाव अधिक व्यापक होता है जिनकी अवशोषण विधि में उपेक्षा की गई है।
5. अवशोषण की अवधारणा अवमूल्यन के कीमत प्रभाव की अवहेलना करती है जबकि यह अधिक महत्वपूर्ण है।
6. अवशोषण की धारणा, स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के उपाय के रूप में सफल नहीं रही है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. निम्नलिखित कथनों में ✓ अथवा ✗ का निशान लगाइए (State whether the following statements are 'true' or 'false')—

1. अवशोषण का सिद्धांत मार्शल ने दिया था। ☐
2. सिडनी एलेक्जेंडर के अनुसार राष्ट्रीय आय से उपभोग और निवेश पर घरेलू व्यय कम है। ☐
3. अवमूल्यन भी आप में परिवर्तन के द्वारा अवशोषण को प्रत्यक्षरूप से प्रभावित करता है। ☐
4. अवमूल्यन से व्यापार की शर्तें अनुकूल होती हैं। ☐
5. पुनर्वितरण प्रभाव केवल उपभोग वस्तुओं तक नहीं फैलता बल्कि निवेश के क्षेत्र में भी फैलता है। ☐

17.3 सारांश (Summary)

- जब किसी देश का भुगतान शेष घाटे अथवा अतिरेक की स्थिति में होता है तो उसमें समायोजन के विभिन्न तंत्र प्रयोग में लाए जाते हैं जिससे कि वह संतुलन की अवस्था में आ जाए।
- अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णमान 1880-1914 के बीच प्रचलित था। इसके अन्तर्गत प्रयुक्त करेंसी सोने की बनी हुई थी जिसे एक निश्चित दर पर सोने में बदला जा सकता था। देश का केन्द्रीय बैंक निर्धारित कीमत पर स्वर्ण के क्रय-विक्रय के लिए सदैव तत्पर रहता था। जिस दर पर देश की मानक मुद्रा स्वर्ण में बदली जा सकती थी वह दर स्वर्ण की टकसाल दर कीमत (mint price) कही जाती थी। इस दर को टकसाल दर समता (mint parity rate) अथवा विनिमय की टकसाल दर समता कहा जाता था क्योंकि यह दर सोने की टकसाल कीमत पर आधारित थी। परन्तु विनिमय की वास्तविक दर टकसाल दर समता से उतनी कम या ज्यादा हो सकती थी जितनी कि दोनों देशों के बीच जहाज में सोना लाने अथवा ले जाने की लागत (अर्थात् परिवहन लागत) होती थी।
- स्वर्णमान के अन्तर्गत भुगतान शेष में घाटा अथवा अतिरेक-कीमत-स्वर्ण-प्रवाह (price-specie-flow) तन्त्र द्वारा स्वत: समायोजित हो जाता था।
- लोचशील विनिमय दरों के अन्तर्गत विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियां भुगतान शेष में होने वाले असन्तुलन को स्वत: सन्तुलित कर देती हैं। विनिमय दर करेन्सी की कीमत होती है जिसे अन्य वस्तुओं की ही भांति मांग एवं पूर्ति की शक्तियां निर्धारित करती हैं।
- भुगतान-शेष में समायोजन की समस्या का अलग-अलग हल प्रस्तुत किया है। यह विधि उन शर्तों का विश्लेषण करती है जिनके अन्तर्गत एक देश की मुद्रा का अवमूल्यन करके भुगतान शेष में पुन: सन्तुलन स्थापित किया जाता है। इस तरह इसका सम्बन्ध अवमूल्यन के कीमत प्रभाव से है।
- अवमूल्यन से विदेशी मुद्रा में निर्यातों की घरेलू कीमतें कम हो जाती हैं कीमतें कम होने से निर्यात बढ़ते हैं। निर्यातों में वृद्धि कितनी होगी यह निर्यातों की मांग की लोच पर निर्भर करेगा। यह निर्यातित वस्तु की प्रकृति तथा बाजार की दशाओं पर भी निर्भर करता है।

नोट

- अर्थशास्त्रियों की धारणा है मार्शल-लर्नर शर्त विकसित देशों में ही लागू हो सकती है तथा अल्पकाल की अपेक्षा यह दीर्घकाल में अधिक प्रभावी होती है।
- अवमूल्यन का अवशोषण सिद्धान्त कीन्स के राष्ट्रीय आय सम्बन्धों पर आधारित एक सामान्य सन्तुलन विश्लेषण है। इस सिद्धान्त को भुगतान शेष में समायोजन का केन्सीय मार्ग भी कहा जाता है।
- अवमूल्यन से देश की व्यापार शर्तें प्रतिकूल होती हैं क्योंकि इससे विदेशी मुद्रा में निर्यात कीमतें गिर जाती हैं।
- जब देश में कीमत वृद्धि की प्रत्याशा निरन्तर विद्यमान रहती है तो इससे अवशोषण बढ़ता है तथा अवमूल्यन से भुगतान शेष पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

17.4 शब्दकोश (Keywords)

- **टकसाल–** सिक्के/मुद्रा ढालने का कारखाना।
- **समायोजन–** सप्लाई, संभरण।

17.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भुगतान शेष के समायोजन की विभिन्न प्रक्रियाओं को समझाइए।
2. स्वर्णमान के अंतर्गत समायोजन की प्रक्रिया को समझाइए।
3. लोचशील विनिमय दरों के अंतर्गत स्वतः कीमत समायोजन पर प्राश डालिए।
4. अवशोषण सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. (क) 2. (क) 3. (ग) 4. (ख)
5. (क)

2. 1. ✗ 2. ✓ 3. ✓ 4. ✗
5. ✓

17.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–18: स्थिर एवं अस्थिर विनिमय दर के गुण एवं दोष (Merits and Demerits of Fixed and Flexible Exchange Rate)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 स्थिर विनिमय दर के गुण एवं दोष (Merits and Demerits of Fixed Exchange Rate)

18.2 अस्थिर विनिमय दर के गुण एवं दोष (Merits and Demerits of Flexible Exchange Rate)

18.3 सारांश (Summary)

18.4 शब्दकोश (Keywords)

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- स्थिर और अस्थिर विनिमय दरों के गुण एवं दोषों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विदेशी विनिमय के संबंध में प्राय: 'विनिमय दर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। विनिमय दर से अभिप्राय एक मुद्रा की दूसरी मुद्रा में कीमत से कीमत से है। अर्थात विनिमय दर का अभिप्राय उस दर से होता है जिस पर एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में बदला जाता है। इस प्रकार विनिमय दर दो देशों के मुद्राओं के विनिमय अनुपात को व्यक्त करता है। स्थिर विनिमय दर में परिवर्तन केवल एक निश्चित सीमा तक ही होता है। जबकि अस्थिर विनिमय दर में माँग और पूर्ति की शक्तियों के फलस्वरूप परिवर्तन होता रहता है।

18.1 स्थिर विनिमय दर के गुण एवं दोष (Merits and Demerits of Fixed Exchange Rate)

स्थिर विनिमय दर वह दर है जिसमें परिवर्तन एक निश्चित सीमा तक ही हो सकते हैं। स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर स्थिर होती थी, क्योंकि इनमें एक निश्चित सीमा (स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा निर्धारित) तक ही परिवर्तन होते थे। इस सीमा के आगे परिवर्तन होने पर स्वर्ण का आयात-निर्यात होने लगता था। दिसम्बर 1945 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के बाद बहुत-से देशों ने स्थिर विनिमय दर अपना ली थी तथा इस दर को बनाये रखने की चेष्टा की। मुद्रा कोष ने इस स्थिर दर को बनाये रखने में सहायता की। 1971 में डालर अवमूल्यन के बाद एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय

आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण विनिमय दर को स्थिर रखना सम्भव नहीं रह गया है अत: विनिमय दरें बदलती रहती हैं।

स्थिर विनिमय दरों के गुण (Merits of Fixed Rate)

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान में सरलता**–यदि देशों की विनिमय दरों में स्थिरता है तो अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान में आसानी हो जाती है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। देशों का एक-दूसरे की मुद्रा में विश्वास हो जाता है। इसके फलस्वरूप विश्व के देशों में आर्थिक एकता सम्भव होती है।

(2) **पूँजी निर्माण**–विनिमय दर में स्थिरता के कारण देश की अर्थव्यवस्था में भी स्थिरता आती है। लोग विदेशों में भी विनियोग करते हैं जिसके फलस्वरूप पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है। मुद्रा के मूल्य में स्थायित्व के कारण बचत को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(3) **विदेशी पूँजी को प्रोत्साहन**–यदि विनिमय दर में अस्थिरता होती है तो विदेशी पूँजी देश में आकर्षित नहीं होती क्योंकि विदेशी विनियोगकर्ताओं को इस बात का विश्वास नहीं रहता कि उन्हें अपनी पूँजी का प्रतिफल मिलेगा। किन्तु विनिमय दर स्थिर रहने से विदेशी पूँजी का आयात होता है जो देश के आर्थिक विकास में सहायक होती है।

(4) **उच्चावचनों की समाप्ति**–यदि विनिमय दर स्थिर रहती है तो अर्थव्यवस्था में ज्यादा उच्चावचन नहीं होते, जबकि विनिमय दर में अस्थिरता होने से उसमें अधिक उच्चावचन होते हैं जिससे सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है तथा अस्थिरता बढ़ती है।

(5) **नियोजन में सफलता**–नियोजन, विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों में उसी समय सफल हो सकता है जब उन्हें आवश्यक मात्रा में पूँजी, मशीनें, उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान, विदेशों में उपलब्ध हो सके। यदि विनिमय दर में स्थिरता रहती है तो पूर्व-निर्धारित व्यय के अनुसार उक्त वस्तुओं का आयात किया जा सकता है। विनिमय दर में अस्थिरता के कारण नियोजन में व्यय का अनुमान लगाना ही कठिन हो जाता है।

(6) **अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार पर अधिक निर्भरता**–जिन देशों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अधिक महत्त्व रहता है उन देशों के लिए विनिमय दरों में स्थिरता रखना आवश्यक हो जाता है अन्यथा उनकी अर्थव्यवस्था पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और आर्थिक विकास में बाधा उपस्थित होती है।

स्थिर विनिमय दर के दोष (Demerits of Fixed Exchange Rate System)

(1) **कठोर नियन्त्रण**–निश्चित विनिमय दर को बनाये रखने के लिए कई प्रकार के प्रतिबन्धों और नियन्त्रणों की आवश्यकता होती है जो प्राय: सम्भव नहीं हो पाते। निश्चित विनिमय दर उसी समय सम्भव है जब (*i*) आवश्यकतानुसार देश में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन किया जाय, (*ii*) सरकार किसी भी मात्रा में विदेशी विनिमय के क्रय-विक्रय के लिए तैयार रहे, और (*iii*) विनिमय नियन्त्रण का पूरा पालन किया जाय। **मेचलप** के अनुसार, प्राय: देश में आवश्यक मात्रा में मुद्रा में परिवर्तन नहीं किया जाता जिससे विनिमय दर में असाम्य की स्थिति आ जाती है।

(2) **भ्रष्टाचार का विषम चक्र**–विनिमय दरों को स्थिर बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में भी नियन्त्रण लगाना आवश्यक हो जाता है; जैसे विदेशी व्यापार, उद्योग, बैंकिंग, आदि। इन प्रतिबन्धों और नियन्त्रणों से देश में भ्रष्टाचार पनपने की सम्भावना रहती है जिससे और अधिक नियन्त्रण लगाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार भ्रष्टाचार का विषम चक्र फैलता जाता है।

टास्क अवमूल्यन से आप क्या समझते हैं?

नोट

(3) **राष्ट्रीय हितों की बलि**–निश्चित विनिमय दरों को बनाये रखने के लिए आन्तरिक हितों का परित्याग करना पड़ता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी जाती है। अपनी मुद्रा की दर की अन्य देशों से विनिमय दर स्थिर रखने के लिए देश की राष्ट्रीय आय, रोजगार, मूल्य स्तर और राष्ट्रीय हितों को गौण मान लिया जाता है।

(4) **विनिमय दरों में आकस्मिक परिवर्तन**–निश्चित विनिमय दर बनाये रखने के प्रयत्नों में जब कोई मुद्रा कमजोर हो जाती है तो उसका अवमूल्यन कर दिया जाता है जिसके फलस्वरूप विनिमय दर आकस्मिक रूप से घट जाती है। इसका विदेशी व्यापार और भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि निश्चित विनिमय दर प्रणाली सब परिस्थितियों में एवं सब देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. विनिमय दर स्थिर होती है–
   (क) स्वर्णमान के अन्तर्गत (ख) विदेशी व्यापार के अन्तर्गत
   (ग) नियोजन के समय (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. विनिमय दर स्थिर रहने से आयात होता है–
   (क) मशीनों का (ख) विदेशी पूँजी का
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. स्थिर विनिमय दर उसी समय संभव है जब–
   (क) देश की मुद्रा में परिवर्तन किया जाए (ख) विनिमय नियंत्रण का पालन किया जाए
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. स्थिर विनिमय दर को बनाए रखने के लिए प्राथमिकता दी जाती है–
   (क) विदेशी व्यापार को (ख) अन्तर्राष्ट्रीय हितों को
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

18.2 अस्थिर विनिमय दर के गुण एवं दोष (Merits and Demerits of Flexible Exchange Rate)

लोचदार विनिमय दर वह दर है जिसमें माँग और पूर्ति की शक्तियों के फलस्वरूप परिवर्तन होता रहता है तथा सरकार का इस पर कोई नियन्त्रण नहीं होता। **सेम्युलसन** के अनुसार, "लोचपूर्ण विनिमय दरों को वस्तुओं की माँग और पूर्ति अथवा पूँजी के प्रवाह के द्वारा लोचपूर्ण ढंग से ऊपर या नीचे रखा जाता है।"[1] इस प्रकार लोचदार विनिमय दरों की प्रणाली परिवर्तनों पर पूर्ण ध्यान देती है।

अस्थिर विनिमय दरों के गुण (Merits of Flexible Exchange Rate)

(1) **मौद्रिक नीति का सफल कार्यान्वयन**–लोचपूर्ण विनिमय दरों के अन्तर्गत किसी देश में अल्पकाल में मौद्रिक नीति को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सकता है। विनिमय दर में देश की मौद्रिक नीति के अनुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं और देश में कीमतों में स्थिरता, आय एवं रोजगार में वृद्धि की जा सकती है। इसका देश के आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

---

1 "Floating exchange rates are forced flexibly up or down by supply and demand for good or capital movements." *– Samuelson*

नोट

(2) **स्वतन्त्र आर्थिक नीति सम्भव**—स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत, एक देश एक बड़ी सीमा तक विदेशों पर निर्भर हो जाता है एवं देश के लिए स्वतन्त्र आर्थिक नीति नहीं अपना पाता। किन्तु परिवर्तनशील विनिमय दरों में वह अपने देश के लिए स्वतंत्र आर्थिक नीति अपना सकता है एवं अपने देश की प्रतिष्ठा बनाये रख सकता है।

(3) **अधिमूल्यन या अवमूल्यन सम्भव**—देश में आर्थिक उच्चावचन के फलस्वरूप कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां आती हैं कि देश की मुद्रा का **अवमूल्यन** (Devaluation) अथवा **अधिमूल्यन** (Over-Valuation) करना पड़ता है। जब सरकार द्वारा जानबूझकर विदेशी मुद्रा की तुलना में, देश की मुद्रा का मूल्य घटा दिया जाता है तो इसे अवमूल्यन कहते हैं और इसके विपरीत जब विदेशी मुद्रा की तुलना में देश की मुद्रा का मूल्य बढ़ा दिया जाता है तो इसे अधिमूल्यन कहते हैं। लोचपूर्ण विनिमय दरों में अवमूल्यन तथा अधिमूल्यन एक अल्पकालीन एवं स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। वास्तव में, मुद्रा की विनिमय दर में कमी या वृद्धि उसे ठीक स्तर पर लाने की प्रक्रिया मात्र होती है।

(4) **आर्थिक स्थिति का सूचक**—लोचपूर्ण विनिमय दरें, देश की वास्तविक आर्थिक प्रगति की सूचक होती हैं। यदि आर्थिक स्थिति में स्थिरता रहती है तो विनिमय-दर में स्थिरता बनी रहती है और यदि आर्थिक स्थिति अस्थिर रहती है तो विनिमय दर में भी अस्थिरता आ जाती है। इस प्रकार देश की विनिमय-दर आर्थिक स्थिति की सूचक है। अत: लोचपूर्ण विनिमय दर की यह विशेषता होती है कि वह घूम-फिरकर साम्य बिन्दु पर आ जाती है।

(5) **भुगतान सन्तुलन में सुधार**—भुगतान-शेष (Balance of Payment) में सन्तुलन स्थापित करना विनिमय दर का कार्य है तथा विनिमय दर में उसी समय वांछनीय परिवर्तन किये जा सकते हैं जबकि विनिमय दरें लोचपूर्ण हों। अत: भुगतान शेष में सन्तुलन तभी स्थापित किया जा सकता है जब विदेशी विनिमय दर में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहें।

क्या आप जानते हैं निश्चित विनिमय दर प्रणाली सब परिस्थितियों में एवं सब देशों के लिए उपयुक्त नहीं है।

अस्थिर विनिमय दरों के दोष (Demerits of Flexible Exchange Rate)

(1) **साधनों की बर्बादी**—विनिमय दरों में बार-बार परिवर्तन होने से निर्यात और आयात-प्रतियोगी उद्योगों में तुलनात्मक रूप से होने वाले लाभ में परिवर्तन होता रहता है जिससे इन उद्योगों में संसाधनों का हस्तान्तरण होता रहता है और संसाधनों की बर्बादी होती है। स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत भुगतान सन्तुलन में होने वाले अल्प परिवर्तनों को मौद्रिक रिजर्व में परिवर्तन करके ठीक किया जा सकता है तथा उनकी लागत अधिक नहीं होती। इस प्रकार विनिमय दरों में होने वाले बार-बार के परिवर्तनों से बचा जा सकता है।

(2) **भुगतान-शेष में सन्तुलन के लिए अनूकूल नहीं**—भुगतान-शेष में सन्तुलन बनाये रखने के लिए, लोचपूर्ण विनिमय दरों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। यदि विनिमय दर में एक दिशा में परिवर्तन होता है तो यह अनुमान लगा लिया जाता है कि उसी दिशा में आगे भी परिवर्तन होगा। इससे सट्टे की क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है जिससे भुगतान शेष में सन्तुलन तो दूर, उल्टे असन्तुलन पैदा हो जाता है तथा समस्या और उलझ जाती है।

(3) **व्यापार शर्तों पर प्रतिकूल प्रभाव**—लोचपूर्ण विनिमय दरों के अन्तर्गत बहुत देश व्यापार और विनिमय नियन्त्रण के माध्यम से अपनी विनिमय दर को उस बिन्दु से ऊँचा रखने का प्रयत्न करते हैं जो स्वतन्त्र बाजार में प्रचलित होती। इसका उन देशों की व्यापार की शर्तों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि निर्यात हतोत्साहित होते हैं। अत: लोचपूर्ण विनिमय दरों से जो लाभ होता है, उसकी तुलना में प्रतिकूल व्यापार की शर्तों से हानि अधिक होती है।

नोट

(4) **विकासशील देशों के लिए अनुपयुक्त–** अर्द्ध-विकसित देशों को विकसित देशों से कच्चा माल, पूंजीगत वस्तुएं, तकनीकी ज्ञान, आदि को आयात करने के लिए भारी मात्रा में विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है जबकि उनके पास इसकी बहुत कमी होती है अत: उनके लिए यह आवश्यक है कि विदेशी विनिमय दर में स्थिरता रहे और अस्थिर विनिमय दरें उनके हितों के अनुकूल नहीं होतीं।

देश के भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने की दशा में विनिमय दर का समायोजन करके भुगतान शेष की प्रतिकूल स्थिति को अनुकूल बनाया जा सकता है।

नोट्स स्थिर और लोचपूर्ण विनिमय दर–दोनों में ही कुछ गुण और दोष हैं। सर्वोत्तम विनिमय दर वह होगी जिसमें दोनों के गुण विद्यमान हों। ऐसी विनिमय दर एक बिन्दु पर स्थायी रखकर प्राप्त नहीं की जा सकती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **निम्नलिखित कथनों में ✓ अथवा ✗ का निशान लगाइए (State whether the following statements are 'true' or 'false')–**

1. अस्थिर विनिमय दर पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होता। ☐
2. देश की मौद्रिक नीति के अनुसार विनिमय दर में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ☐
3. देश की आर्थिक प्रगति का सूचक लोचपूर्ण विनिमय दरें होती हैं। ☐
4. लोचपूर्ण विनिमय दर का व्यापार की शर्तों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ☐
5. लोचपूर्ण विनिमय दर विकासशील देशों के लिए उपयुक्त है। ☐

18.3 सारांश (Summary)

- स्थिर विनिमय दर वह दर है जिसमें परिवर्तन एक निश्चित सीमा तक ही हो सकते हैं। स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर स्थिर होती थी, क्योंकि इनमें एक निश्चित सीमा (स्वर्ण बिन्दुओं द्वारा निर्धारित) तक ही परिवर्तन होते थे।
- लोचदार विनिमय दर वह दर है जिसमें माँग और पूर्ति की शक्तियों के फलस्वरूप परिवर्तन होता रहता है तथा सरकार का इस पर कोई नियन्त्रण नहीं होता।
- विनिमय दर स्थिर रहने से विदेशी पूँजी का आयात होता है जो देश के आर्थिक विकास में सहायक होती है।
- जिन देशों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अधिक महत्व रहता है उन देशों के लिए विनिमय दरों में स्थिरता रखना आवश्यक हो जाता है अन्यथा उनकी अर्थव्यवस्था पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- विनिमय दरों को स्थिर बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में भी नियन्त्रण लगाना आवश्यक हो जाता है।

18.4 शब्दकोश (Keywords)

- **लोचपूर्ण–** लोचदार, लोचयुक्त, लचक।
- **स्वर्णमान–** सोने का मान या स्टैंडर्ड।
- **अवमूल्यन–** मूल्य में कमी करना या कमी होना।

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. स्थिर एवं अस्थिर विनिमय दरों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. स्थिर विनिमय दर को स्पष्ट कीजिए तथा इसके गुणों की व्याख्या कीजिए।
3. स्थिर विनिमय दरों के गुण-दोष को स्पष्ट कीजिए।
4. अस्थिर विनिमय दर को स्पष्ट कीजिए तथा इसके दोष बताइए।
5. अस्थिर विनिमय दरों के गुण-दोष की व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (ख)	3. (ग)	4. (ख)
2.	1. ✗	2. ✓	3. ✓	4. ✗

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–19: व्यय घटाने वाली एवं व्यय बदलावकारी नीतियाँ (Expenditure Reducing and Expenditure Switching Policies)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
19.1 व्यय को घटाने वाली मौद्रिक-नीति (Expenditure Reducing Monetary Policy)
19.2 व्यय बदलावकारी नीतियाँ (Expenditure Switching Policies)
19.3 सारांश (Summary)
19.4 शब्दकोश (Keywords)
19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यय घटाने वाली मौद्रिक तथा वित्तीय नीति को जानने में।
- व्यय बदलावकारी नीतियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी देश के भुगतान शेष में हुए असन्तुलन को सन्तुलित करने के लिए सरकारों द्वारा प्राय: जिन विधियों का सहारा लिया जाता है वे हैं:

(क) आन्तरिक सन्तुलन जिसके अन्तर्गत कीमत स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार का उल्लेख किया जाता है, तथा

(ख) बाह्य सन्तुलन अथवा भुगतान शेष सन्तुलन।

प्रो. मीड (Meade) ने अपनी पुस्तक '*Balance of Payments*' में आन्तरिक एवं बाह्य सन्तुलन बनाए रखने के लिए सरकारों को कुल व्यय तथा विनिमय दर को नियन्त्रित रखने का सुझाव दिया है। **जोनसन** (Johnson) ने भी आन्तरिक एवं बाह्य दोनों सन्तुलन स्थापित करने के लिए नीतिगत उपकरणों के उपयोग की विवेचना की है।

19.1 व्यय को घटाने वाली मौद्रिक-नीति (Expenditure Reducing Monetary Policy)

मान लीजिए देश में भुगतान शेष घाटा है। यह आय से अधिक व्यय की ओर संकेत करता है। इसे ठीक करने के लिए मौद्रिक नीति के माध्यम से मुद्रा की पूर्ति घटाई जाती है। इससे ब्याज की दर में वृद्धि हो जाती है। ब्याज की दर बढ़ने से निवेश घट जाता है। घटा निवेश उत्पादन और आय को घटा देता है। इससे आयातित वस्तुओं की

नोट

कुल मांग में कमी आती है। कुल मांग में कमी आन्तरिक कीमत स्तर में भी कमी ला देती है जिससे विदेशी वस्तुओं के स्थान पर देशी वस्तुओं की मांग की ओर झुकाव बढ़ता है फलस्वरूप देश में आयात कम हो जाते हैं और निर्यात बढ़ जाते हैं। इससे चालू व्यापार घाटा कम हो जाता है। साथ ही आयात में कमी से अल्पकालीन पूंजी का बाह्य प्रवाह (out flow) घट जाता है जो भुगतान शेष घाटे को कम करता है। पुन: आन्तरिक ब्याज-दरों में वृद्धि से पूंजी का अन्त: प्रवाह बढ़ता है जिससे भुगतान शेष घाटा समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत, जब मौद्रिक प्राधिकरण भुगतान शेष अतिरेक को ठीक करने के लिए विस्तारक मौद्रिक नीति अपनाता है तो समायोजन प्रक्रिया उपरोक्त वर्णन के विपरीत चलती है।

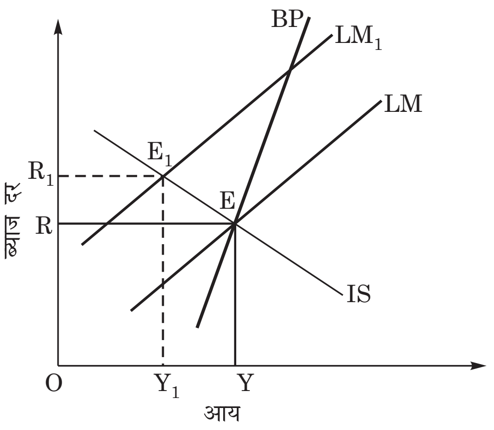

चित्र 19.1

व्यय घटाने वाली मौद्रिक नीति तथा इसके भुगतान शेष पर पड़ने वाले प्रभावों को चित्र-19.1 में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में क्षैतिज अक्ष पर आय के स्तर को तथा अनुलम्ब अक्ष पर ब्याज की दर को दर्शाया गया है। उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर हम अपने विश्लेषण को ऐसी स्थिति से प्रारम्भ करते हैं जहां OR ब्याज-दर तथा OY आय स्तर पर IS-LM-BP वक्रों के कटान बिन्दु E पर अर्थव्यवस्था पूर्ण सन्तुलन में है। अब मान लीजिए मौद्रिक प्राधिकरण द्वारा आन्तरिक मुद्रा पूर्ति घटा दी जाती है। इससे LM वक्र बाईं तरफ ऊपर की ओर सरक कर LM_1 पर आ जाता है। इससे नया सन्तुलन बिन्दु E_1 पर स्थापित होता है। चूंकि बिन्दु E_1 वक्र BP के बाईं तरफ ऊपर की ओर स्थित है अत: भुगतान शेष में अतिरेक है। नए सन्तुलन बिन्दु के अनुरूप ब्याज की दर बढ़कर OR से OR_1 हो जाती है। इससे पूंजी का अन्त: प्रवाह होगा और पूंजी लेखा में अतिरेक होगा। दूसरी ओर आय OY से घटाकर OY_1 हो जाती है। इससे आयात में कमी होगी और चालू रेखा आधिक्य उत्पन्न होगा। इस तरह, संकुचनकारी मौद्रिक नीति से भुगतान शेष में अतिरेक उत्पन्न होता है, परन्तु E_1 एक स्थायी सन्तुलन को प्रस्तुत नहीं करता। भुगतान शेष अतिरेक आन्तरिक मुद्रा पूर्ति को बढ़ावा देगा तथा धीरे-धीरे LM_1 वक्र को सरकाकर दाईं ओर LM वक्र पर ले जाएगा ताकि E_1 बिन्दु IS वक्र के साथ-साथ चलकर नीचे की ओर E बिन्दु पर पहुंच जाए और अर्थव्यवस्था पुन:भुगतान शेष सन्तुलन पर आ जाए।

> नोट्स व्यय बदालवकारी नीतियां एक देश की मुद्रा के अवमूल्यन (Devaluation) अथवा पुनर्मूल्यन (Revaluation) से सम्बन्धित हैं ताकि वह अपने व्यय को विदेशी से घरेलू वस्तुओं की ओर अथवा इसके विपरीत मोड़ सकें।

व्यय नीति (Expenditure Reducing Fiscal Policy)

भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के लिए व्यय घटाने वाली वित्तीय नीति के प्रभावों को चित्र-19ण्2 में प्रदर्शित किया गया है।

उपरोक्त मान्यताओं के दिए होने पर हम विश्लेषण को सन्तुलन स्थिति E से प्रारम्भ करते हैं जो वक्र IS-LM-BP का कटान-बिन्दु है। इस सन्तुलन बिन्दु के अनुरूप ब्याज की दर OR तथा आय-स्तर OY है। मान लीजिए सरकार संकुचनकारी वित्तीय नीति अपनाती है जिससे वह अपना व्यय घटाती है और/अथवा करों में वृद्धि करती है। इससे IS वक्र नीचे बाईं ओर सरककर IS_1 पर आ जाता है। यह IS_1 वक्र LM वक्र को बिन्दु E_1 पर काटता है। इससे

नोट

ब्याज-दर घटकर OR_1 हो जाती है। इसके फलस्वरूप पूंजी का बाह्य प्रवाह होता है और पूंजी लेखा घाटा उत्पन्न होता है। आय स्तर OY से घटाकर OY_1 हो जाने से आयात कम होते है। और चालू लेखा घाटा उत्पन्न होता है। **क्योंकि बिन्दु E_1 वक्र BP के दाईं तरफ नीचे की ओर है।**

वास्तव में संकुचनकारी वित्तीय नीति का भुगतान शेष पर पड़ने वाला प्रभाव BP वक्र की लोच पर निर्भर करेगा। चित्र-19.2 में BP वक्र लोचदार है, परन्तु यदि BP कम लोचदार है जैसा कि चित्र में BP_1 है तो संकुचनकारी वित्तीय नीति से भुगतान शेष अतिरेक होगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में बिन्दु E_1 वक्र BP के ऊपर बाईं ओर स्थित है।

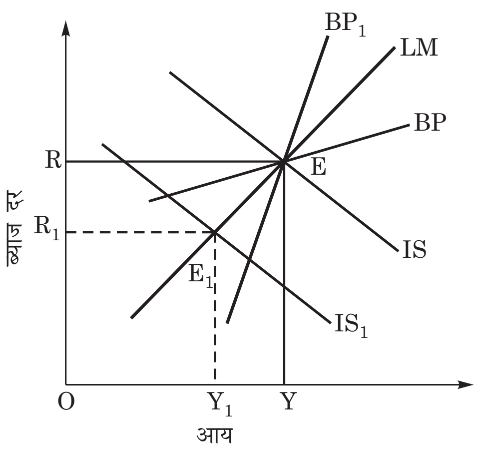

चित्र 19.2

> *क्या आप जानते हैं* संकुचनकारी वित्तीय नीति का पूर्ण परिणाम भुगतान शेष में घाटा है।

19.2 व्यय बदलावकारी नीतियां (Expenditure Switching Policies)

भुगतान शेष असन्तुलन को ठीक करने के लिए अर्थात् बाह्य सन्तुलन को बनाए रखने के लिए व्यय बदलावकारी नीतियों का प्रयोग किया जाता है।

जोनसन दो प्रकार की व्यय बदलावकारी नीतियों का उल्लेख करता है। **प्रथम**—अवमूल्यन तथा **दूसरा**—आयात को रोकने के लिए तथा भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के लिए प्रत्यक्ष नियन्त्रणों का प्रयोग।

1. अवमूल्यन (Devaluation): अवमूल्यन व्यय बदलावकारी नीति से सम्बन्धित है, क्योंकि यह व्यय को आयातित वस्तुओं से घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर विवर्तित करता है। अवमूल्यन से तात्पर्य है घरेलू मुद्रा के बाह्य मूल्य में विदेशी मुद्राओं की तुलना में कमी लाना। इस प्रक्रिया से देश की आन्तरिक क्रय शक्ति में किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता। जब कोई देश भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के लिए अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है तो उस देश में आयातित वस्तुओं के घरेलू मूल्य बढ़ जाते हैं, क्योंकि निर्यातित वस्तुओं के विदेशी मूल्य में कमी आ जाती है जबकि निर्यात पहले से अधिक सस्ते हो जाते हैं। इससे आयात हतोत्साहित होते हैं और निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है। देशी वस्तुओं की घरेलू तथा विदेशी मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन को बढ़ाया जाता है। इस कारण विदेशी वस्तुओं की ओर व्यय में बदलाव आता है। विदेशी के स्थान पर देशी वस्तुओं पर व्यय में अधिकता आती है तथा आयात पहले से अधिक महंगे हो जाने से उनमें कमी आती है। इस तरह निर्यात बढ़ने तथा आयात कम होने पर भुगतान शेष घाटा ठीक हो जाता है।

2. प्रत्यक्ष नियन्त्रण (Direct Control): भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के लिए व्यय बदलावकारी नीति की दूसरी विधि प्रत्यक्ष नियन्त्रणों के प्रयोग द्वारा वस्तुओं के आयात को कम करना है; ऐसी नीति निर्यात के लिए घरेलू वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के साथ-साथ आयात-प्रतिस्थापन वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करती है। उत्पादकों को निर्यात्य वस्तुओं के उत्पादन की ओर व्यय को बदलने के लिए सरकार उन्हें उत्पादन तथा निर्यात सब्सिडियां दे सकती है। सरकार अवांछनीय अथवा महत्वहीन वस्तुओं के आयात पर भारी आयात शुल्क लगाकर, कोटा निर्धारित कर उनके आयात को कम कर सकती है। साथ ही वह आवश्यक वस्तुओं को बिना शुल्क अथवा कम शुल्क अथवा कम शुल्क अथवा उन पर उदार कोटे द्वारा उनके आयात को स्वीकृति दे सकती है। उदाहरण के लिए सरकारी पूंजी वस्तुओं के नि:शुल्क आयात की अनुमति दे सकती है जबकि विलासित वस्तुओं पर भारी

आयात शुल्क लगा सकती है। कुछ आवश्यक वस्तुओं की निर्धारित मात्रा में आयात के लिए आयात कोटे निधारित कर दिए जाते हैं तथा आयातकों को सम्बन्धित आयात हेतु आयात लाइसेन्स लेने पड़ते हैं। इस तरह के नियन्त्रण को जोनसन **वाणिज्यिक नियन्त्रण** (Commercial Controls) कहता है इन विधियों से भुगतान शेष असन्तुलन को ठीक करने के लिए आयात को कम किया जाता है।

सरकार भुगतान शेष घाटा को कम करने के लिए **वित्तीय नियन्त्रण** (Financial Controls) अपनाती है। इसके अन्तर्गत घरेलू मुद्रा के उपयोग की स्वतन्त्रता को कुछ उपयोगों को दूसरों से अधिक महंगा बनाकर रोका जाता है। ये कठोर विनिमय नियन्त्रण उपाय हैं। इनके दोहरे उद्देश्य हैं; वे आयात को रोकते हैं तथा विदेशी मुद्रा का विनियमन (Regulation) करते हैं। इनमें मौद्रिक प्राधिकरण द्वारा विदेशी मुद्रा के भुगतान तथा प्राप्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण शामिल हो सकता है। सरकार बहुल विनिमय दरें भी अपना सकती है। यह आवश्यक वस्तुओं पर कम विनिमय दरें तथा अनावश्यक वस्तुओं पर अधिक ऊंची विनिमय दरें प्रयोग कर सकती है।

इस तरह दोनों, वाणिज्यिक तथा वित्तीय प्रत्यक्ष नियन्त्रण आयातों में कमी करके तथा अर्थव्यवस्था की विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं को नियन्त्रित करके, भुगतान शेष असन्तुलन को ठीक करने में सहायता पहुंचाते हैं।

टास्क प्राधिकरण को स्पष्ट कीजिए।

सीमाएं (Limitation)—प्रत्यक्ष नियन्त्रण सामाजिक लागतों में वृद्धि करते हैं। जब लोगों को विदेशी मुद्रा का उपयोग करने तथा आयात करने से रोका जाता है तब कल्याण की हानि होती है। इसके अतिरिक्त इन नियन्त्रणों कों लागू करने में बड़ी मात्रा में प्रशासनिक व्यय करना पड़ता है। अन्य देशों द्वारा प्रतिशोधात्मक उपाय भी अपनाए जा सकते हैं जो इसके लाभों को समाप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष नियन्त्रण भुगतान शेष के घाटे को दबाकर उसके लक्षण का उपचार करते हैं न कि रोग का। जब घाटा पूंजी पलायन से है तब दबाव द्वारा उसके मूल कारण को ठीक नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्ष नियन्त्रण केवल घाटे को ठीक करने की कार्यवाही करते हैं जबकि मूल कारण को ठीक करने में असफल रहते हैं। इस तरह, प्रत्यक्ष नियन्त्रण भुगतान शेष घाटे के स्थायी समाधान की बजाय अस्थायी समाधान ही प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि अधिकांश देश उदार व्यापार व्यवस्था के पक्ष में रहते हैं तथा मौद्रिक-वित्तीय उपायों को भुगतान शेष घाटा ठीक करने के लिए प्रत्यक्ष नियन्त्रणों से अधिक उपयोगी मानते हैं। अनेक कमियों के बावजूद अवमूल्यन को प्रत्यक्ष नियन्त्रण से श्रेष्ठ माना जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. आंतरिक ब्याज दरों में वृद्धि से .... का अंत: प्रवाह बढ़ता है।
2. .... मौद्रिक नीति से भुगतान शेष में अतिरेक उत्पन्न होता है।
3. संकुचनकारी नीति का पूर्ण परिणाम .... में घाटा है।
4. भुगतान शेष असंतुलन को ठीक करने के लिए .... बदलाव कार्य नीतियों का प्रयोग किया जाता है।
5. .... व्यय बदलावकारी नीतियों से संबंधित है।

19.3 सारांश (Summary)

- आन्तरिक एवं बाह्य सन्तुलन बनाए रखने के लिए सरकारों को कुल व्यय तथा विनिमय दर को नियन्त्रित रखने का सुझाव दिया है।
- भुगतान शेष असन्तुलन को ठीक करने के लिए अर्थात् बाह्य सन्तुलन को बनाए रखने के लिए व्यय बदलावकारी नीतियों का प्रयोग किया जाता है।

नोट

- अवमूल्यन व्यय बदलावकारी नीति से सम्बन्धित है, क्योंकि यह व्यय को आयातित वस्तुओं से घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर विवर्तित करता है।
- सरकार अवांछनीय अथवा महत्वहीन वस्तुओं के आयात पर भारी आयात शुल्क लगाकर, कोटा निर्धारित कर उनके आयात को कम कर सकती है।
- प्रत्यक्ष नियन्त्रण सामाजिक लागतों में वृद्धि करते हैं। जब लोगों को विदेशी मुद्रा का उपयोग करने तथा आयात करने से रोका जाता है तब कल्याण की हानि होती है।

19.4 शब्दकोश (Keywords)

- **प्राधिकरण–** प्राधिकार देना, प्राधिकारी का अधिकार।
- **विस्तारक–** विस्तार करने वाला।

19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. व्यय घटाने वाली नीतियों की विवेचना कीजिए।
2. व्यय घटाने वाली वित्तीय नीति को चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।
3. व्यय बदलावकारी वित्त नीतियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. पूँजी 2. संकुचनकारी 3. भुगतान शेष 4. व्यय
5. अवमूल्यन।

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–20: सीमा शुल्क संघ एवं स्वतंत्र व्यापार संगठन के स्थैतिक एवं गत्यात्मक प्रभाव (Static and Dynamic Effects of a Custom Union and Free Trade Organization)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
20.1 सीमा शुल्क संघ एवं स्वतंत्र व्यापार संगठन के स्थैतिक एवं गत्यात्मक प्रभाव (Static and Dynamic Effects of a Custom Union and Free Trade Organization)
20.2 सारांश (Summary)
20.3 शब्दकोश (Keywords)
20.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
20.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सीमा शुल्क संघ एवं स्वतंत्र व्यापार संगठन के स्थैतिक एवं गत्यात्मक प्रभाव की व्यवस्था करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सीमा संघ, एक समूह के सदस्यों के बीच ऐसा समझौता होता है जिसके अन्तर्गत सदस्य देशों के बीच समस्त आयात प्रशुल्क समाप्त कर दिये जाते हैं। संघ के बाहर के देशों के लिए सब सदस्य समान प्रशुल्क (आयात करों) का प्रयोग करते हैं। सीमा संघ और स्वतन्त्र बाजार क्षेत्र में यह अन्तर है कि सीमा संघ में प्रशुल्क का एकसमान ढांचा होता है अर्थात् गैर-सदस्य देशों के लिए प्रशुल्क का समानीकरण किया जाता है। जबकि स्वतंत्र बाजार क्षेत्र में सदस्य देश प्रशुल्क के मामले में गैर-सदस्य देशों के लिए अलग-अलग एवं भेदपूर्ण नीति अपनाते हैं।

सीमा संघ सीमित अथवा पूर्ण हो सकते हैं। सीमित संघ में एक अथवा कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में व्यापार समझौता किया जाता है जबकि पूर्ण सीमा संघ में सभी रुकावटों को दूर कर दिया जाता है। सदस्य देशों के बीच उत्पत्ति के साधनों की भी स्वतन्त्र गतिशीलता होती है। इन देशों में मौद्रिक एवं राजस्व नीतियों में भी समानता होती है। इस प्रकार के पूर्ण संघ को **आर्थिक संघ** (Economic Union) कहते हैं।

नोट

20.1 सीमा शुल्क संघ एवं स्वतंत्र व्यापार संगठन के स्थैतिक एवं गत्यात्मक प्रभाव (Static and Dynamic Effects of a Custom Union and Free Trade Organization)

गैट (GATT) द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार, सीमा संघ में दो उद्देश्यों का समावेश होता है—**प्रथम,** सदस्य देशों के बीच में समस्त प्रशुल्कों और व्यापार को सीमित करने वाले कारणों की समाप्ति एवं **द्वितीय,** गैर-सदस्य देशों के विदेशी व्यापार पर समान प्रशुल्क और अन्य नियमों को लागू करना। वास्तव में, सीमा संघ का सिद्धान्त, प्रशुल्क सिद्धान्त की शाखा है। इसके मुख्य प्रतिपादक **मीड** (J.E. Meade)**, वाइनर, वान्के** (Vanke)**, लिप्से** (Lipsey) **और लेकेस्टर** (Lancaster) हैं। सीमा संघ के निर्माण में प्रशुल्क के ढांचे में परिवर्तन होता है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भेद-नीति शुरू होती है। **इस प्रकार सीमा संघ का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भेद-पूर्ण नीति का सिद्धान्त है।**

सीमा संघ का उद्देश्य सदस्य देशों के आयातों को प्रशुल्क के मामले में रियायतें देना है और गैर-सदस्य देशों के आयातों में भेद करना है। इस प्रकार की नीति का सदस्य देशों के उत्पादन और उपभोग पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

सीमा संघ के बारे में नवीनतम विवेचना का प्रारम्भ द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद **प्रो. वाइनर** की पुस्तक 'The Customs Union Issue' के प्रकाशन के बाद हुआ। इसके विकास में Trade Creation and Trade Diversion के विचार ने भी योगदान दिया। **वाइनर** से पहले सीमा संघ के बारे में यह धारणा प्रचलित थी कि स्वतंत्र व्यापार से अधिकतम विश्व कल्याण होता है। एक संघ में प्रशुल्कों को समाप्त कर सीमा संघ स्वतंत्र व्यापार के प्रति गतिशील होता है और इस प्रकार विश्व कल्याण को बढ़ाता है भले ही इससे विश्व कल्याण अधिकतम न हो। इस प्रचलित विचारधारा पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए **वाइनर** ने दो विचारों को विकसित किया—**व्यापार सृजन** (Trade Creation) और **व्यापार दिशा-परिवर्तन** (Trade Diversion) एवं इस बात की जांच की है कि क्या एक सीमा संघ आवश्यक रूप से विश्व कल्याण में वृद्धि करता है। **वाइनर** का विश्लेषण उपभोग-लाभ से सम्बन्धित नहीं है तथा केवल सीमा संघ के उत्पादन प्रभाव की विवेचना करता है।

स्थैतिक प्रभाव (Static Effect)**—बाइनर** के अनुसार, स्थैतिक दशाओं के अन्तर्गत एक सीमा संघ का उत्पादन प्रभाव, विभेदात्मक प्रशुल्क के व्यापार सृजन एवं व्यापार दिशा परिवर्तन के प्रभावों पर निर्भर रहता है। **व्यापार सृजन** का तात्पर्य संघ के सदस्यों में होने वाले नये व्यापार से है तथा **व्यापार दिशा परिवर्तन** का आशय उस व्यापार से है जो गैर सदस्य देशों द्वारा सदस्य देशों के साथ किया जाता है। ये दोनों प्रकार के व्यापार सदस्य देशों में प्रशुल्क की समाप्ति क फलस्वरूप होते हैं।

(A) व्यापार सृजन (Trade Creation)

व्यापार सृजन की व्याख्या आंशिक सन्तुलन के अन्तर्गत की जा सकती है। यदि तीन देश A, B तथा C हैं—देश A तथा B सीमा संघ का निर्माण करते हैं तथा देश C गैर-सदस्य देश है।

रेखाचित्र में DD और SS वक्र A देश की मांग और पूर्ति वक्र हैं जो वस्तु X से सम्बन्धित हैं। यह भी मान्यता है कि X वस्तु दोनों B और C देशों में स्थिर लागत के अन्तर्गत उत्पादित की जाती है। B देश की पूर्ति OP कीमत पर पूर्ण लोचदार है तथा C देश की पूर्ति भी OW कीमत पर पूर्ण लोचदार है। देश A का बाहरी देशों के लिए प्रशुल्क WH है। यह रेखाचित्र में स्पष्ट है।

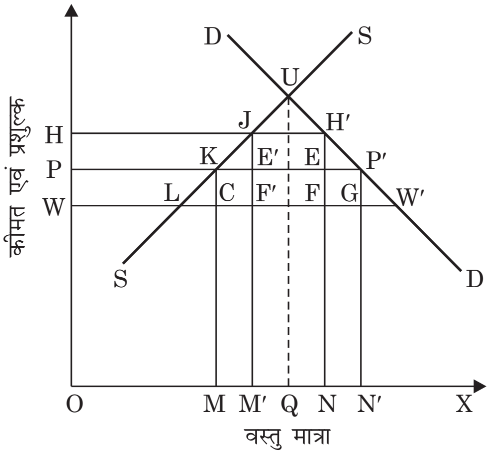

चित्र 20.1

नोट

A और B देश में संघ बनने के पूर्व की स्थिति इस प्रकार है—आयात के अभाव में देश A में X वस्तु की कीमत का निर्धारण DD और SS के कटान बिन्दु पर होगा तथा कीमत QU होगी, किन्तु देश A में कीमत-स्तर इस बिन्दु तक नहीं बढ़ेगा क्योंकि X का आयात कम उत्पादन लागत वाले देश C से किया जा सकता है जहां प्रशुल्क WH का भुगतान कर X की OH (OW + WH) कीमत पर आयात हो सकता है। देश B से आयात नहीं होगा, क्योंकि प्रशुल्क के बिना उसकी कीमत OP, देश C से अधिक होगी। इस प्रकार सीमा संघ बनने के पूर्व देश A के उत्पादक X वस्तु की OM′ मात्रा की पूर्ति करेंगे, क्योंि यह मात्रा वे OH से कम कीमत पर दे सकते हैं तथा शेष M′N मात्रा का देश C से आयात किया जाएगा अत: संघ बनने के पूर्व देश A में प्रभावपूर्ण पूर्तिवक्र SJH′ होगा।

देश A और B का सीमा संघ बनने के बाद इन दोनों के बीच प्रशुल्क समाप्त कर दिया जाता है तथा देश C से आयात के लिए WH प्रशुल्क का प्रयोग किया जाता है। अब देश A वस्तु X को देश B से OP कीमत पर आयात कर सकता है जो प्रशुल्क सहित OH से कम है। ऐसी स्थिति में देश A द्वारा वस्तु X को अधिक मात्रा का आयात होगा और व्यापार का विस्तार M′ से MN′ हो जाता है। यह व्यापार सृजन प्रभाव है जो दो कारणों से होता है—**उत्पादन** के द्वारा एवं **उपयोग** के द्वारा।

उत्पादन के कारण व्यापार सृजन इसलिए होता है, क्योंकि संघ बनने के पहले, देश C की X वस्तु की कीमत प्रशुल्क सहित OH थी तथा देश A के उत्पादक वस्तु X की OM′ मात्रा का उत्पादन करते थे जो अधिक सस्ता था। जब देश A को X वस्तु OP कीमत पर मिलने लगती है तो देश A के उत्पादक सस्ती कीमत में केवल OM मात्रा का ही उत्पादन करते हैं अत: KE′ मात्रा की पूर्ति विदेशों से होती है। इसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होती है और व्यापार-सृजन होता है।

सीमा संघ के फलस्वरूप देश A के लोगों के कल्याण में भी वृद्धि होती है। X वस्तु की KE′ मात्रा का उत्पादन करने की साधन लागत देश A के पूर्तिवक्र के क्षेत्र KJM′M के बराबर है। जब KE′ मात्रा का B से आयात किया जाता है तो देश A के निवासियों को KE′M′M का भुगतान करना होता है। इस प्रकार देश A के लोगों की वास्तविकता बचत होती है जो रेखाचित्र में KJE′ के बराबर है। यह व्यापार सृजन के प्रभावों के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि है।

व्यापार सृजन उपभोग-प्रभाव के द्वारा भी होता है। देश A में X वस्तु का उपभोग ON से बढ़कर ON′ हो जाता है जो सीमा संघ बनने से X वस्तु की कीमत गिरने के फलस्वरूप होता है। अधिक X वस्तुएं उपलब्ध होने के कारण देश A के लोगों की उपयोगिता H′P′N′N हो जाती है जिसके लिए उन्हें EP′N′N का भुगतान X की अतिरिक्त NN′ इकाइयों के लिए करना पड़ता है अत: उपभोक्ताओं के कल्याण में EP′H के बराबर वृद्धि होती है।

(B) व्यापार दिशा परिवर्तन (Trade Diversion)

सीमा संघ बनने के पूर्व देश A वस्तु X की M′N मात्रा देश C से आयात करता था, किन्तु संघ बनने के बाद अब देश A वस्तु X की MN′ मात्रा देश B से आयात करता है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि X वस्तु की MN′ मात्रा का देश C से आयात करता था तो देश A आयात-कर्ता M′NFF′ के बराबर भुगतान करते थे तथा देश A के उपभोक्ताओं को अतिरिक्त प्रशुल्क का भुगतान WH की दर से (JH′FF′ के बराबर) करना पड़ता था अत: कुल भुगतान JH′NM′ के बराबर हो जाता था। इसमें से प्रशुल्क की मात्रा देश A देश के निवासियों को वस्तु X की उतनी ही मात्रा का आयात करने क लिए देश B के र्नितकों को E′EBM′ के बराबर भुगतान करना पड़ता है (जबकि देश C को M′NFF′ के बराबर भुगतान करते थे) अत: भुगतान की मात्रा E′EFF′ के बराबर बढ़ गयी है जो **व्यापार दिशा परिवर्तन के फलस्वरूप होने वाली क्षति है** जिसकी केवल आंशिक पूर्ति ही कीमतों की कमी से हो पाती है, पूर्ण रूप से क्षतिपूर्ति नहीं होती।

नोट

व्यापार सृजन और विवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक

अभी हमने **वाइनर** के सीमा संघ के व्यापार सृजन और विवर्तन का अध्ययन किया है। अब हम संक्षेप में उन कारकों का अध्ययन करेंगे जो व्यापार सृजन और विवर्तन को प्रभावित करते हैं–

(1) **उत्पादन लागत में अन्तर**–जो देश सीमा संघ के सदस्य हैं उनके बीच उत्पादन लागत में जितना अधिक अन्तर होता है उनके बीच उतनी ही अधिक मात्रा में व्यापार का सृजन होगा। यदि इनमें उपादन लागत में बहुत कम अन्तर होता है, तो व्यापार सृजन की सम्भावना प्राय: नहीं रहती।

(2) **यातायात व्यय**–यदि सीमा संघ के सदस्य देशों के बीच वस्तुओं को मंगाने का यातायात व्यय अधिक होता है तो इन देशों में व्यापार सृजन अधिक नहीं होता।

(3) **सीमा संघ का आकार**–संघ के आकार का भी प्रभाव, व्यापार, सृजन और विवर्तन पर पड़ता है, क्योंकि इससे उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।

(4) **प्रतियोगिता और पूरकता** (Competitiveness and Complementarity)–इस सम्बन्ध में यह विचार है कि यदि दो प्रतियोगी देश सीमा संघ बनाते हैं तो उनमें व्यापार सृजन अधिक होगा। यही कारण है कि एक उद्योग-प्रधान देश को उद्योग-प्रधान देश के साथ सीमा संघ बनाना चाहिए। इसके विपरीत, यदि संघ के दो देश उत्पादन के क्षेत्र में एक-दूसरे के पूरक हैं तो उनमें व्यापार विवर्तन होगा।

क्या आप जानते हैं संघ का आकार जितना बड़ा होगा, सदस्य देशों की उत्पादन क्षमता उतनी ही अधिक होगी।

स्थैतिक उपयोग प्रभाव (Static Consumption Effect)

सीमा-संघ बनाने के बाद व्यापार में जो विस्तार होता है उसका उपभोग पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। कुछ विशेष मान्यताओं के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा सकता है कि संघ बनने के फलस्वरूप उपभोग में वृद्धि होती है और सदस्य देशों के कल्याण में वृद्धि होती है। इसे मैकोवर-मार्टन मॉडल में स्पष्ट किया गया है जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे।

उपभोग में वृद्धि : मेकोवर-मार्टन मॉडल (Makower-Morton Model): यह मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

(*i*) केवल दो देश A और B हैं जो केवल दो ही वस्तुओं X और Y का उत्पादन कर सकते हैं।

(*ii*) प्रत्येक देश का उत्पादन सम्भावना वक्र रैखिक (Linear) है अर्थात् सीधी रेखा का है।

(*iii*) प्रारम्भ में दोनों देशों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

(*iv*) जब दोनों देश एक-दूसरे से पृथक् रहते हैं तो उनके उत्पादन सम्भावना वक्र के ढाल में अन्तर होता है अर्थात् दोनों देशों में वस्तु प्रतिस्थापन दर अलग-अलग है।

(*v*) पृथक् रहने पर किसी भी देश में पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं होता।

(*vi*) दोनों देशों में उपभोग का ढांचा एकसमान है।

अब हम रेखाचित्र से इसे स्पष्ट करेंगे–

रेखाचित्र में AA′ सीधी रेखा देश A का उत्पादन सम्भावना वक्र है तथा BB′ सीधी रेखा देश B का उत्पादन सम्भावना वक्र है। चूंकि दोनों उत्पादन सम्भावना वक्र समान्तर नहीं हैं अत: X और Y दोनों वस्तुओं की प्रतिस्थापन दर में अन्तर है। पृथक् रहने पर उपर्युक्त दशाओं के अन्तर्गत प्रत्येक देश की मांग की स्थिति उपभोग बिन्दु का निर्धारण करती है जो देश A के लिए P तथा देश B के लिए R है। ये दोनों बिन्दु ON सीधी रेखा पर है जो दोनों

नोट

देशों के समान उपभोग ढांचे को स्पष्ट करती है।

अब देश A और B दोनों मिलकर सीमा संघ (Customs Union) बनाते हैं तथा अब एक उत्पादक क्षेत्र के अन्तर्गत दोनों का उत्पादन सम्भावना वक्र CDE हो जाता है। CDE वक्र को AA′ तथा BB′ को मिलाकर प्राप्त किया गया है अत: AC = OB और B′E = OA′ है। सीमा संघ बनने के बाद उपभोग सन्तुलन T पर है जिस पर दोनों देशों के लिए X और Y दोनों वस्तुओं की कुल उपभोग की मात्रा उस उपभोग से ज्यादा है जो सीमा संघ बनने के पूर्व थी। इसे सिद्ध करने के लिए हम A′P के समान्तर B′M रेखा खींचते हैं जो ON रेखा को M बिन्दु पर काटती है, इस प्रकार–

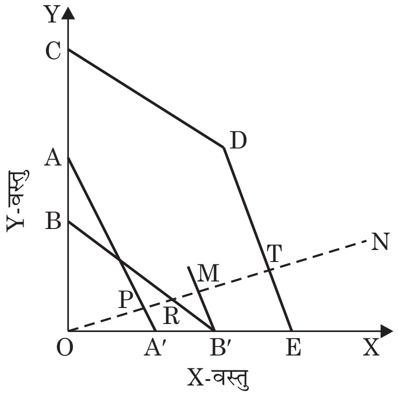

चित्र 20.2

OA′ = B′E

इसलिए OP = MT

सीमा संघ बनने के बाद कुछ उपभोग OT है। संघ बनने के पूर्व कुल उपभोग OP + OR = MT + OR था अत: संघ बनने के बाद, पूर्व की तुलना में उपभोग RM अधिक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रारम्भ में दी गयी मान्यताओं के अन्तर्गत संघ बनने के पश्चात् अधिक कुशलता से उत्पादन किया जा सकता है तथा वास्तविक आय में वृद्धि की जा सकती है।

प्रो. मीड और **प्रो. लिप्से** द्वारा प्रस्तुत सीमा संघ की विवेचना से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सीमा संघ का सिद्धान्त द्वितीय श्रेष्ठतम के सिद्धान्त को समर्थन प्रदान करता है। वास्तव में, द्वितीय श्रेष्ठ का सिद्धान्त उप-इष्टतम (Sub-optimal) की सब स्थितियों पर लागू होता है तथा सीमा संघ का उदाहरण इसका ही विशेष उदाहरण है। **लिप्से** ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है–"जब कुछ प्रशुल्कों में परिवर्तन किया जाना है, तो कल्याण में उस समय अधिक वृद्धि होगी जब इन प्रशुल्कों को समाप्त करने के बदले उन्हें कुछ कम कर दिया जाए। इसका कारण यह है कि दो देशों के बीच प्रशुल्क समाप्त करने से विश्व उत्पादन क्षमता में वृद्धि होने की सम्भावना नहीं है यदि व्यापार दिशा परिवर्तन प्रभाव व्यापार सृजन के प्रभावों को समाप्त कर देता है अर्थात् हीन बना देता है। यही द्वितीय श्रेष्ठतम का सिद्धान्त है। यदि कोई श्रेष्ठतम अर्थात् स्वतंत्र व्यापार को प्राप्त नहीं कर सकता तो कुछ प्रशुल्कों को हटा लेना गलत होगा तथा कुछ प्रशुल्कों का लगा रहना अच्छा होगा।

सीमा संघ की व्याख्या पारम्परिक कल्याण सिद्धान्त में करना सम्भव नहीं है, क्योंकि इसमें केवल **सर्वोत्तम दशाओं** (Optimum Conditions) की ही व्याख्या है, किन्तु सीमा संघ के सिद्धान्त में इन कुछ सर्वोत्तम दशाओं का उल्लंघन किया गया है तथा इसमें श्रेष्ठतम कल्याण प्राप्त करने की अपेक्षा श्रेष्ठतम दशाओं को ही प्राप्त करने का प्रयत्न है। इसलिए इसे **द्वितीय श्रेष्ठतम सिद्धान्त** कहा गया है। **वाइनर** ने सीमा संघ के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है तथा इसे **लिप्से** और **लैन्केस्टर** ने अधिक सामान्य रूप से प्रस्तुत किया है।

नोट्स सीमा संघ में स्वतंत्र व्यापार और बढ़े हुए संरक्षण दोनों के तत्व निहित हैं।

द्वितीय श्रेष्ठतम का सामान्य सिद्धान्त

अर्थशास्त्र के छात्र इस बात से परिचित हैं कि **परेटो का अनुकूलतम** उस स्थिति का सूचक है जहाँ सामाजिक कल्याण अधिकतम होता है। इसे उत्पादन एवं विनिमय की अनुकूलतम दशाओं के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि सामान्य सन्तुलन की प्राप्ति में कुछ बाधाएं उपस्थित होती हैं तो परेटो की अनुकूलतम दशाओं को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में द्वितीय श्रेष्ठतम का सामान्य सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि परेटो की अन्य

नोट

दशाएं, यद्यपि उन्हें प्राप्त किया जा सकता है, वांछनीय नहीं है। परेटो की उक्त दशाओं को छोड़कर अन्त में जो अनुकूलतम स्थिति प्राप्त होगी, उसे **द्वितीय श्रेष्ठतम अनुकूलन** कहेंगे।

उक्त सिद्धान्त से **लिप्से** एवं **लैन्केस्टर** ने कुछ विपरीत निष्कर्ष निकाले हैं। उनके अनुसार उन विभिन्न स्थितियों की पूर्व जांच नहीं की जा सकती जिनमें परेटो की अनुकूलतम की कुछ दशाएं पूर्ण होती हैं। विशेष रूप से यह सही नहीं है कि वह स्थिति जिसमें अनुकूलतम दशाओं में से अधिक की (सब नहीं) सन्तुष्टि होती है उस स्थिति से श्रेष्ठ होगी जिसमें कुछ कम दशाओं की सन्तुष्टि होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी स्थिति में जिसमें कई बाधाओं के कारण परेटो की अनुकूलतम दशाओं की सन्तुष्टि नहीं हो पाती, किसी भी बाधा को हटाने से कल्याण अथवा क्षमता पर यह प्रभाव होगा कि या तो उसमें वृद्धि होगी, या कमी होगी अथवा अपरिवर्तित रहेगी।

इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र में विनिमय की अनुकूलतम दशा वह होती है जहां किन्हीं दो वस्तुओं में प्रत्येक व्यक्ति के लिए जो दोनों वस्तुओं का उपभोग करता है, प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान रहती है। इसके लिए यह आवश्यक शर्त है कि प्रत्येक उपभोक्ता के लिए कीमतें समान रहनी चाहिए। यह निष्कर्ष उसी समय मान्य रहता है जब समस्या केवल दिये हुए वस्तुओं के संग्रह को कुशलता के साथ वितरण करने की है। किन्तु यदि उत्पादन में परिवर्तन होता है तो कल्याण में वृद्धि के लिए आवश्यक दशाओं में बाधा उपस्थित हो जाती है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम ऐसे दो व्यक्तियों की कल्पना करते हैं जिनकी रुचियों भिन्न-भिन्न हैं। अब सरकार कुछ आय प्राप्त करना चाहती है। दोनों व्यक्तियों ने यह निर्णय ले लिया है कि प्रत्येक व्यक्ति को सारकार द्वारा चाही गयी आय का 50% योगदान देना चाहिए। आय अप्रत्यक्ष करों द्वारा वसूल की जानी है। आय प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है असमान अप्रत्यक्ष कर लगाना। विलासिता की पूरक वस्तुओं पर उच्चतम दर से कर लगाया जाता है एवं विलासिता की प्रतिस्थापनीय वस्तुओं पर कम दर से कर लगाया जाता है। चूंकि दोनों व्यक्तियों की रुचि भिन्न है, प्रथम व्यक्ति के लिए X वस्तु विलासिता की प्रतिस्थापनीय वस्तु है तथा यही वस्तु दूसरे व्यक्ति के लिए विलासिता की पूरक वस्तु है। Y वस्तु प्रथम व्यक्ति के लिए विलासिता की पूरक तथा यही वस्तु दूसरे व्यक्ति के लिए विलासिता की प्रतिस्थापनीय वस्तु है। आय प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि है कि जब X वस्तु प्रथम व्यक्ति को बेची जाय तो उस पर नीची दर से कर लगाया जाय तथा इसे द्वितीय व्यक्ति को बेचा जाय तो उस पर ऊंची दर से कर लगाया जाय जबकि Y पर उस समय ऊंचा कर लगाया जाय जब उसे प्रथम व्यक्ति को बेचा जाय तथा दूसरे व्यक्ति को इसे बेचे जाने पर कम कर लगाया जाय। इस प्रकार द्वितीय श्रेष्ठतम की अनुकूलन दशा के लिए यह आवश्यक है कि दोनों व्यक्तियों के लिए सापेक्षिक कीमतें भिन्न-भिन्न हों।

सीमा संघ के प्रावैगिक प्रभाव (Dynamic Effect)

व्यापार सृजन और व्यापार दिशा परिवर्तन सीमा संघ के स्थैतिक प्रभाव हैं, किन्तु स्थैतिक प्रभावों का व्यावहारिक जगत में अधिक महत्व नहीं है। सीमा संघ के फलस्वरूप बाजार का जो विस्तार होता है, उसके प्रावैगिक प्रभाव स्थैतिक प्रभाव की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। प्रावैगिक प्रभाव अग्र प्रकार है–

(1) **प्रतियोगिता में वृद्धि–**सीमा संघ के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होता है जिससे प्रतियोगिता में वृद्धि होती है। अब तक जिन उद्योगों को संरक्षण प्राप्त था, उन्हें जीवित रखने के लिए नव-प्रवर्तन करना होता है। संघ के फलस्वरूप आन्तरिक प्रतियोगिता में अधिक वृद्धि होती है जिससे सीमान्त फर्मों को अपने उत्पादन की विधि में सुधार करना होता है एवं साधनों का आवंटन कम कुशल प्रयोगों से अधिक कुशल प्रयोगों में होता है। **एल्सवर्थ** के अनुसार, "(सीमा संघ के फलस्वरूप) रूढ़िवादी और पारम्परिक उद्योग प्रगतिशील और सक्रिय हो जाते हैं और व्यापार में बने रहने के लिए उन्हें विकसित विधियों का प्रयोग करना होता है।"

टास्क व्यापार दिशा में परिवर्तन का क्या आशय है?

नोट

इस बात की पूर्ण सम्भावना रहती है कि सीमा संघ प्रतियोगिता में वृद्धि करेगा एवं एकाधिकार तथा अल्पाधिकार की प्रवृत्तियों को समाप्त करेगा। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सीमा संघ बनने के पूर्व यदि राष्ट्रीय बाजारों में कार्टेल सक्रिय थे तो सम्भव है कि सीमा संघ बनने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल बन जाएं तो उत्पादन को सीमित कर कीमतों को बढ़ायें। अत: स्पष्ट है कि समान नीति के अभाव में सीमा संघों से उपभोक्ता के हितों में वृद्धि नहीं होगी।

(2) **पैमाने की बचतें**–बाजार के विस्तार एवं उत्पादकता में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सीमा संघ से बाजार का विस्तार होता है तथा बाजार का विस्तार होने से उत्पादकता में वृद्धि होती है। बड़े पैमाने के उत्पादन से अनेक प्रकार की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं। **मार्शल** के अनुसार, "बड़े पैमाने के उत्पादन के मुख्य लाभ हैं–कुशलता में मितव्ययता, मशीनों एवं कच्चे माल तथा अन्य पदार्थों में मितव्ययता।" कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि अर्द्ध-विकसित देशों के लिए सीमा संघों से बड़े पैमानों की बचतों की सबसे बड़ी आशा है।

(3) **तकनीकी विकास**–सीमा संघ से तकनीकी विकास भी होता है। बाजार के विस्तार से कुछ उद्योग तो अवश्य ही पैमाने की बचत प्राप्त करते हैं। इन उद्योगों में बड़ी फर्में बाजार में अपना हिस्सा बढ़ा लेती हैं तथा ये बड़ी फर्में शोध कार्यों में अधिक व्यय करती हैं जिससे तकनीकी विकास होता है।

(4) **विनियोग एवं नये उद्योगों का सृजन**–यदि सीमा संघों से उत्पादन क्षमता अनुकूल ढंग से प्रभावित होती है तो कुल वास्तविक आय और बचत में वृद्धि होती है तथा विनियोग की कुल मात्रा भी अधिक होती है। नये विनियोग के फलस्वरूप अधिक प्रावैगिक लाभ होते हैं। यदि सीमा संघ आर्थिक, वित्तीय एवं सामाजिक नीतियों में समन्वय कर सकता है तो नये निर्यात उद्योगों का विस्तार किया जा सकता है।

(5) **व्यापार शर्तों में सुधार**–सीमा संघ का यह भी प्रावैगिक लाभ है कि इसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों की वस्तु व्यापार शर्तों में सुधार होता है। यह उस समय सम्भव है जब संघ बन जाने के बाद सदस्य देशों का, बाहरी देशों से आयात कम हो जाता है। व्यापार की शर्तों पर प्रावैगिक प्रभाव उसी समय महत्वपूर्ण होते हैं जब विश्व बाजार में संघ के सदस्य देश मुख्य निर्यातक हों।

(6) **विकास दर में वृद्धि**–यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सीमा संघ बनने के फलस्वरूप सदस्य देशों को बड़े पैमाने की बाह्य और आन्तरिक बचतें प्राप्त होने लगती हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि इन देशों की उत्पादकता में वृद्धि होती है जिससे राष्ट्रीय आय एवं विकास दर में वृद्धि होती है।

(7) **लागत में कमी**–चूंकि उत्पादन में उच्च तकनीक का प्रयोग होता है। प्रति इकाई उत्पादन लागत घट जाती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... का सिद्धान्त प्रशुल्क सिद्धांत की शाखा है।
2. .... का विश्लेषण उपभोग-लाभ से संबंधित नहीं है। यह केवल सीमा संघ के उत्पादन प्रभाव की विवेचना करता है।
3. .... का तात्पर्य संघ के सदस्यों में होने वाले व्यापार से है।
4. संघ के आकार का भी प्रभाव, व्यापार सृजन और .... पर पड़ता है, क्योंकि इससे उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।
5. प्रत्येक देश का उत्पादन संभावना वक्र .... है।
6. यदि उत्पादन में परिवर्तन होता है तो .... में वृद्धि के लिए आवश्यक दशाओं में बाधा उपस्थित जो जाती है।

नोट

7. व्यापार सृजन और व्यापार दिशा परिवर्तन सीमा संघ के .... हैं।
8. सीमा संघ के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होता है जिससे .... में वृद्धि होती है।
9. सीमा संघ से .... भी होता है।

20.2 सारांश (Summary)

- गैट (GATT) द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार, सीमा संघ में दो उद्देश्यों का समावेश होता है–**प्रथम,** सदस्य देशों के बीच में समस्त प्रशुल्कों और व्यापार को सीमित करने वाले कारणों की समाप्ति एवं **द्वितीय,** गैर-सदस्य देशों के विदेशी व्यापार पर समान प्रशुल्क और अन्य नियमों को लागू करना।
- सीमा संघ का उद्देश्य सदस्य देशों के आयातों को प्रशुल्क के मामले में रियायतें देना है और गैर-सदस्य देशों के आयातों में भेद करना है। इस प्रकार की नीति का सदस्य देशों के उत्पादन और उपभोग पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
- सीमा संघ के बारे में नवीनतम विवेचना का प्रारम्भ द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद **प्रो. वाइनर** की पुस्तक 'The Customs Union Issue' के प्रकाशन के बाद हुआ। इसके विकास में Trade Creation and Trade Diversion के विचार ने भी योगदान दिया।
- **बाइनर** के अनुसार, स्थैतिक दशाओं के अन्तर्गत एक सीमा संघ का उत्पादन प्रभाव, विभेदात्मक प्रशुल्क के व्यापार सृजन एवं व्यापार दिशा परिवर्तन के प्रभावों पर निर्भर रहता है। **व्यापार सृजन** का तात्पर्य संघ के सदस्यों में होने वाले नये व्यापार से है तथा **व्यापार दिशा परिवर्तन** का आशय उस व्यापार से है जो गैर सदस्य देशों द्वारा सदस्य देशों के साथ किया जाता है।
- जो देश सीमा संघ के सदस्य हैं उनके बीच उत्पादन लागत में जितना अधिक अन्तर होता है उनके बीच उतनी ही अधिक मात्रा में व्यापार का सृजन होगा। यदि इनमें उपादन लागत में बहुत कम अन्तर होता है, तो व्यापार सृजन की सम्भावना प्रायः नहीं रहती।
- सीमा-संघ बनाने के बाद व्यापार में जो विस्तार होता है उसका उपभोग पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। कुछ विशेष मान्यताओं के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा सकता है कि संघ बनने के फलस्वरूप उपभोग में वृद्धि होती है और सदस्य देशों के कल्याण में वृद्धि होती है।
- **प्रो. मीड** और **प्रो. लिप्से** द्वारा प्रस्तुत सीमा संघ की विवेचना से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सीमा संघ का सिद्धान्त द्वितीय श्रेष्ठतम के सिद्धान्त को समर्थन प्रदान करता है। वास्तव में, द्वितीय श्रेष्ठ का सिद्धान्त उप-इष्टतम (Sub-optimal) की सब स्थितियों पर लागू होता है तथा सीमा संघ का उदाहरण इसका ही विशेष उदाहरण है।
- अर्थशास्त्र के छात्र इस बात से परिचित हैं कि **परेटो का अनुकूलतम** उस स्थिति का सूचक है जहाँ सामाजिक कल्याण अधिकतम होता है। इसे उत्पादन एवं विनिमय की अनुकूलतम दशाओं के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।
- **परेटो का अनुकूलतम** उस स्थिति का सूचक है जहाँ सामाजिक कल्याण अधिकतम होता है। इसे उत्पादन एवं विनिमय की अनुकूलतम दशाओं के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।
- व्यापार सृजन और व्यापार दिशा परिवर्तन सीमा संघ के स्थैतिक प्रभाव हैं, किन्तु स्थैतिक प्रभावों का व्यावहारिक जगत में अधिक महत्व नहीं है। सीमा संघ के फलस्वरूप बाजार का जो विस्तार होता है, उसके प्रावैगिक प्रभाव स्थैतिक प्रभाव की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।
- सीमा संघ के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होता है जिससे प्रतियोगिता में वृद्धि होती है। अब तक जिन उद्योगों को संरक्षण प्राप्त था, उन्हें जीवित रखने के लिए नव-प्रवर्तन करना होता है।

नोट

- बाजार के विस्तार एवं उत्पादकता में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सीमा संघ से बाजार का विस्तार होता है तथा बाजार का विस्तार होने से उत्पादकता में वृद्धि होती है। बड़े पैमाने के उत्पादन से अनेक प्रकार की बाह्य तथा आन्तरिक बचतें प्राप्त होती हैं।
- यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सीमा संघ बनने के फलस्वरूप सदस्य देशों को बड़े पैमाने की बाह्य और आन्तरिक बचतें प्राप्त होने लगती हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि इन देशों की उत्पादकता में वृद्धि होती है जिससे राष्ट्रीय आय एवं विकास दर में वृद्धि होती है।

20.3 शब्दकोश (Keywords)

- **इष्टतम**—अनुकूलता, आदर्श।
- **सृजन**—निर्माण करना।
- **सूचक**—निर्धारक।

20.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सीमा संघ से आप क्या समझते हैं? इसके उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों को व्यापार सृजन और व्यापार दिशा परिवर्तन के माध्यम से स्पष्ट कीजिए?
2. द्वितीय श्रेष्ठतम का सामान्य सिद्धान्त क्या है? इसे स्पष्ट कीजिए?
3. सीमा संघ एवं स्वतंत्र व्यापार के स्थैतिक उपभोग प्रभाव को रेखाचित्र बनाकर स्पष्ट कीजिए।
3. सीमा संघ एवं स्वतंत्र व्यापार के प्रावैगिक प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सीमा संघ	2. वाइनर	3. व्यापार सृजन	4. विवर्तन
5. रैखिक	6. कल्याण	7. स्थैतिक प्रभाव	8. प्रतियोगिता
9. तकनीकी विकास।			

20.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–21: सार्क/साप्टा, आसियान (SAARC/SAPTA, ASEAN)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) (The South Asian Association for Regional Co-operation–SAARC)

21.2 सार्क के सिद्धांत (Principle of SAARC)

21.3 दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता (SAPTA)

21.4 साप्टा से साफ्टा (SAPTA to SAFTA)

21.5 आसियान (ASEAN)

21.6 सारांश (Summary)

21.7 शब्दकोश (Keywords)

21.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दक्षिण एशियाई क्षेत्रिय सहयोग संघ (सार्क) के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।
- सार्क के सिद्धांत को समझने में।
- दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता एवं आसियान के विषय में जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सार्क का मूल आधार क्षेत्रीय सहयोग पर बल देना है। 7 से 8 दिसम्बर 1985 को ढाका में दक्षिण एशिया के 7 देशों के राष्ट्राध्यक्षों का सम्मेलन हुआ जिसमें 'सार्क' की स्थापना हुई। इस संगठन में सम्मिलित देश है–भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका और मालदीव। सार्क के सातवें शिखर सम्मेलन में साप्टा (South Asian Preferential Trade Arrangement–SAPTA) पर हस्ताक्षर किए गए।

1967 में दक्षिण-पूर्वी एशिया के पांच देशों ने आपसी सहयोग की दृष्टि से 'आसियान' नामक असैनिक संगठन का निर्माण किया। आसियान की सदस्य संख्या 10 है।

21.1 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) (The South Asian Association for Regional Co-Operation—SAARC)

'सार्क' (दक्षेस) का पूरा नाम है 'साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल को-ऑपरेशन' अर्थात् 'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ'। 7 व 8 दिसम्बर, 1985 को ढाका में दक्षिण एशिया के 7 देशों के राष्ट्राध्यक्षों का सम्मेलन हुआ तथा 'सार्क' की स्थापना हुई। ये देश हैं—भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान,श्रीलंका-और मालदीव। यह दक्षिण एश्यिा के सात पड़ोसी देशों की विश्व राजनीति में क्षेत्रीय सहयोग की पहली शुरुआत है।

मालदीव को छोड़कर संघ के शेष सदस्य (भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान और श्रीलंका) भारतीय उपमहाद्वीप के हिस्से हैं। ये सभी देश इतिहास, भूगोल, धर्म और संस्कृति के जरिए एक-दूसरे से जुड़े हैं। विभाजन के पहले भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश एक ही प्रशासन और अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग थे, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद ये देश एक-दूसरे से दूर हो गए। सार्क का **मुख्यालय** (सचिवालय) **काठमाण्डू (नेपाल)** में है। सार्क सचिवालय की स्थापना दूसरे सार्क सम्मेलन (बंगलौर) के बाद 16 जनवरी, 1987 को की गई थी। सचिवालय के महासविच का कार्यकाल 2 वर्ष रखा गया है।

सार्क वार्षिक शिखर सम्मेलन

क्रम	समय (वर्ष)	स्थान
1.	1985 (7-8 दिसंबर)	ढाका (बांग्लादेश)
2.	1986 (16-17 नवंबर)	बंगलौर (भारत)
3.	1987 (7-8 नवंबर)	काठमांडू (नेपाल)
4.	1988 (29-31 दिसम्बर)	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)
5.	1990 (22-23 नवंबर)	माले (मालदीव)
6.	1991 (21 दिसंबर)	कोलम्बो (श्रीलंका)
7.	1993 (10-11 अप्रैल)	ढाका (बांग्लादेश)
8.	1995 (2-4 मई)	नई दिल्ली (भारत)
9.	1997 (12-14 जुलाई)	माले (मालदीव)
10.	1998 (29-31 जुलाई)	कोलम्बो (श्रीलंका)
11.	2002 (5-6 जनवरी)	काठमांडू (नेपाल)
12.	2004 (4-6 जनवरी)	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)
13.	2005 (13-14 नवम्बर)	ढाका (बांग्लादेश) से प्रस्तावित

सहयोग क्षेत्रों का निर्धारण—सार्क का मूल आधार क्षेत्रीय सहयोग पर बल देना है। अगस्त 1983 में क्षेत्रीय सहयोग के ऐसे नौ क्षेत्र रेखांकित किए गए थे—कृषि, स्वास्थ्य सेवाएं, मौसम विज्ञान डाक-तार संवाएं, ग्रामीण विकास, विज्ञान तथा तकनीकी, दूरसंचार तथा यातायात, खेलकूद तथा सांस्कृतिक सहयोग। दो वर्ष बाद ढाका में इस सूची में कुछ और विषय जोड़ दिए गए—आतंकवाद की समस्या, मादक-द्रव्यों की तस्करी तथा क्षेत्रीय विकास में महिलाओं की भूमिका। सार्क के 7वें शिखर सम्मेलन (ढाका, अप्रैल 1993) में **'साप्टा'** (South Asian Preferential Trade Arrangement—SAPTA) पर हस्ताक्षर किए गए तथा इसे दिसम्बर, 1995 में लागू किया गया। 'साप्टा' सदस्य देशों के बीच व्यापार एवं आर्थिक सहयोग बढ़ाने के प्रयास करता है। 'साप्टा' के तत्वावधान में सदस्य देशों के बीच व्यापारिक आदान-प्रदान के लिए जो विचार-विमर्श हुआ है, उसका मुख्य उद्देश्य सन् 2005 तक दक्षिण एयियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र (South Asian Free Trade Area) (SAFTA—**'साफ्टा'**) का निर्माण करना है।

नोट

सार्क का चार्टर एवं ढाका घोषणा

सार्क के चार्टर में 10 धाराएं (अनुच्छेद) हैं इनमें सार्क के उद्देश्यों, सिद्धान्तों, संस्थाओं तथा वित्तीय व्यवस्थाओं को परिभाषित किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं–

उद्देश्य–चार्टर के अनुच्छेद 1 के अनुसार सार्क के मुख्य उद्देश्य हैं–

दक्षिण एशिया क्षेत्र की जनता के कल्याण एवं उनके जीवन-स्तर में सुधार करना;

- दक्षिण एशिया के देशों की सामूहिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि करना;
- क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना;
- आपसी विश्वास, सूझ-बूझ तथा एक-दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना;
- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग एवं पारस्परिक सहायता में वृद्धि करना;
- अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग में वृद्धि करना; तथा
- सामान्य हित के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग मजबूत करना

सार्क वर्ष

1989	मादक पदार्थ विरोधी अभियान वर्ष
1990	बालिका वर्ष
1991	आश्रय वर्ष
1992	पर्यावरण वर्ष
1993	विकलांग वर्ष
1994	युवा वर्ष
1995	गरीबी उन्मूलन वर्ष
1996	साक्षरता वर्ष
1997	शासन में भागीदारी वर्ष
1991-2000	दक्षेस बालिका दशक
2005	पर्यटन वर्ष

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. सार्क का पूरा नाम है–
   (क) साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल को-ऑपरेशन
   (ख) दक्षिण-एशियाई वरीयता व्यापार समझौता
   (ग) एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग
   (घ) इनमें से कोई नहीं।
2. सार्क का मुख्यालय स्थित है–
   (क) मुम्बई (ख) कलकत्ता
   (ग) काठमाण्डू (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

3. सचिवालय के महासचिव का कार्यकाल रखा गया है—
   (क) 7 वर्ष का (ख) 5 वर्ष का
   (ग) 2 वर्ष का (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. सार्क के चार्टर में धाराएं हैं—
   (क) 10 (ख) 8
   (ग) 5 (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. सार्क का मूल आधार है—
   (क) क्षेत्रीय सहयोग पर बल देना (ख) आत्मनिर्भरता में वृद्धि करना
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

21.2 सार्क के सिद्धान्त (Principle of SAARC)

चार्टर के अनुच्छेद 2 के अनुसार सार्क के मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं—

- संगठन के ढांचे के अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतन्त्रता, दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा आपसी लाभ के सिद्धान्तों का सम्मान करना;
- इस प्रकार का सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहयोग का स्थान नहीं लेगा बल्कि उनका पूरक होगा;
- इस प्रकार का सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का विरोधी नहीं होगा।

वित्तीय प्रावधान—सार्क सचिवालय के व्यय को पूरा करने के लिए सदस्य देशों के अंशदान को निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है—भारत 32%, पाकिस्तान 25%; नेपाल, बांग्लादेश एवं श्रीलंका प्रत्येक का 11% और भूटान एवं मालदीव प्रत्येक का 5%।

संस्थाएं—चार्टर के अन्तर्गत 'सार्क' की निम्न संस्थाओं का उल्लेख किया गया है—

(*i*) शिखर सम्मेलन, (*ii*) मन्त्रिपरिषद्, (*iii*) स्थायी समिति, (*iv*) तकनीकी समितियां, (*v*) कार्यकारी समिति, (*vi*) सचिवालय।

लगभग तीन वर्ष बाद 5-6 जनवरी, 2002 को काठमांडू (नेपाल) में सम्पन्न सार्क राष्ट्राध्यक्षों के 11वें शिखर सम्मेलन में पाकिस्तान समेत सभी सात सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने हर प्रकार के आतंकवाद का मिल-जुलकर खात्मा करने का संकल्प लिया। ग्यारह पृष्ठ के सार्क घोषणा-पत्र में इसके अलावा आपसी व्यापारिक, आर्थिक सहयोग, क्षेत्र के विकास के लिए विभिन्न योजनाओं को शुरू करने का मसौदा शामिल है। अगला सार्क शिखर सम्मेलन अगले वर्ष पाकिस्तान में आयोजित किए जाने की घोषणा के साथ ही काठमांडू शिखर सम्मेलन का समापन हो गया।

काठमांडू घोषणा-पत्र में आतंकवाद को विश्व-शान्ति के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया गया। सदस्य देशों ने 56 सूत्रीय घोषणा-पत्र में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए वृहत् योजना तैयार करने पर बल दिया है। आर्थिक सहयोग पर भी समान रूप से बल देते हुए सदस्य देशों द्वारा इस मौके पर दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र (साप्टा) में एक निश्चित अवधि के भीतर व्यापारिक गतिरोधों को दूर करते हुए क्षेत्रीय व्यापार सुगम बनाकर इसका लाभ सभी सार्क देशों तक पहुंचाए जाने की जरूरत पर भी बल दिया है।

भारत-पाक सीमा पर तनाव व्याप्त होने के कारण शिखर सम्मेलन के दौरान भारत-पाकिस्तान पर ही हर देश एवं मीडिया की नजरें टिकी थीं।

जनवरी, 2004 के प्रथम सप्ताह में इस्लामाबाद, पाकिस्तान में आयोजित SAARC शिखर सम्मेलन को "ऐतिहासिक" कहा गया। इस सम्मेलन में भारत और पाकिस्तान न केवल नजदीक आए बल्कि सात देशों के इस सम्मेलन में इस्लामाबाद घोषापत्र जारी किया गया। इसमें इन देशों ने संयुक्त रूप से आतंकवाद का मुकाबला करने की बात के साथ-साथ उन्मुक्त व्यापार (free trade) पर भी महत्वपूर्ण सहमति दिखाई। इस घोषणा-पत्र की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

- दक्षिण एशिया को एक शान्तिपूर्ण तथा स्थिर क्षेत्र बनाना है;
- विवाद, मतों की भिन्नता तथा संघर्ष का समाधान बातचीत द्वारा शान्तिपूर्ण तरीकों से करना है;
- सार्वभौमिकता, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता तथा राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के आधार पर अच्छे पड़ोसियों जैसे सम्बन्ध का विकास करना
- बल प्रयोग न करने, हस्तक्षेप न करने तथा दूसरों के मामलों में दखल न करने पर जोर दिया गया; तथा
- SAARC के छोटे-छोटे देशों की विशेष समस्याओं के प्रति सजगता।

इस सम्मेलन में एक 10-सूत्री सामाजिक चार्टर (Social Charter) पर भी सहमति व्यक्त की गई जिसका उद्देश्य दक्षिण एशिया के लोगों के कल्याण को प्रोन्नत करना तथा आर्थिक विकास की गति को तेज करना है। निर्धनता उनमूलन, महिलाओं की स्थिति में सुधार तथा जनसंख्या के स्थिरीकरण जैसे मुद्दों के समाधान के लिए रणनीति तैयार करने में सहमति व्यक्त की गई। यह सहमति भी व्यक्त की गई कि बुनियादी शिक्षा, पर्याप्त आवास, सुरक्षित पेयजल तथा सफाई तथा मूल स्वास्थ्य की गारण्टी विधान, कार्यकारिणी तथा प्रशासनिक प्रावधानों में मिलनी चाहिए। यह निर्णय भी लिया गया कि संगठित स्वेच्छा सेवक कार्यक्रम (Organised Volunteer Programme) को पुनर्जीवित किया जाए तथा एक देश के स्वेच्छा सेवक दूसरे देशों में जाकर सामाजिक क्षेत्रों में कार्य कर सकें।

टास्क क्या साप्टा समझौता सार्क देशों को साफ्टा की ओर ले जा सकता है?

21.3 दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता (SAPTA)

दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता (साप्टा) की स्थापना वाले समझौते पर 11 अप्रैल, 1993 को ढाका में हुए 7वें सार्क शिखर सम्मेलन में हस्ताक्षर किए गए थे। समझौते पर सभी सात सार्क देशों, नामत: भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, श्रीलंका और मालदीव ने हस्ताक्षर किए थे। साप्टा के तहत सार्क देशों के बीच व्यापार और आर्थिक सहयोग के संवर्द्धन के प्रयोजन से टैरिफ रियायतों के आदान-प्रदान के लिए एक ढांचा प्रदान किया गया है।

दिसम्बर, 1995 में साप्टा करार के प्रभावी होने के बाद से सदस्य राष्ट्रों के बीच टैरिफ रियायतों के आदान-प्रदान के लिए तीन दौर की वार्ताएं आयोजित की जा चुकी हैं। तीसरे दौर की वार्ता 23 नवम्बर, 1998 को सम्पन्न हुई। तीसरे दौर तक, भारत ने कुल 2565 टैरिफ लाइनों पर रियायतें प्रदान की हैं। भारत द्वारा दूसरे सार्क सदस्यों को प्रदान की गई रियायतों को प्रभावी बनाने वाली सीमा शुल्क अधिसूचना 10 अगस्त, 1999 को जारी की गई और बाद में 8 सितम्बर, 1999 को शुद्धिपत्र जारी किया गया।

जुलाई, 1998 में कोलम्बो में सार्क सम्मेलन के दौरान सभी सार्क सदस्य देशों को एक पेशकश की गई थी कि भारत उनके साथ द्विपक्षीय मुक्त व्यापार करार करना चाहेगा ताकि इस क्षेत्र में आर्थिक समेकन की गति को तेज किया जा सके। श्रीलंका से इस बारे में सकारात्मक उत्तर प्राप्त हुआ था। दो वार्ता-दौर सम्पन्न होने के पश्चात् मुक्त व्यापार करार पर 28 दिसम्बर, 1998 को नई दिल्ली से हमारे प्रधानमन्त्री और श्रीलंका के राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर किए थे। इसके अतिरिक्त सम्मेलन के दौरान प्रधानमन्त्री ने यह भी घोषणा की थी कि भुगतान सन्तुलन के प्रयोजन से भारत द्वारा 2307 मदों पर लगाए गए आयात प्रतिबन्धों को 1 अगस्त, 1998 से सार्क सदस्य देशों से आयातों में मामले में हटा लिया जाएगा। इन उपायों से सार्क सदस्य देशों के बीच व्यापार तथा आर्थिक सहयोग में वृद्धि होने की आशा है।

नोट्स साप्टा का क्षेत्र विस्तार टैरिफ के क्षेत्र में प्रबन्ध, पैरा-टैरिफ और नॉन-टैरिफ उपाय तथा सीधे व्यापार उपायों तक फैला है।

साप्टा के तहत वार्ताओं का अन्तिम उद्देश्य दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र अथवा साप्टा का लक्ष्य प्राप्त करना है। जुलाई, 1998 में कोलम्बो में दसवें सार्क सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि सभी 7 सार्क देशों से एक विशेषज्ञ समिति (सीओई) की स्थापना की जाए ताकि दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र के लिए करार अथवा सन्धि वार्ताएं शुरू की जा सकें। इस करार में व्यापार को मुक्त करने के लिए बाइंडिंग अनुसूचियों का खुलाशा होगा और इसके 2001 तक अन्तिम रूप दिए जाने तथा लागू किए जाने की उम्मीद थी। जुलाई, 1999 में सार्क सचिवालय, काठमाण्डू में आयोजित अपनी पहली बैठक में विशेषज्ञ समिति ने साप्टा सन्धि का मसौदा तैयार करने के लिए विचारार्थ विषयों को अन्तिम रूप दिया।

21-22 अक्टूबर, 2001 को सार्क सचिवालय में आर्थिक सहयोग पर सार्क के मुख्य बिन्दुओं के बारे में आयोजित बैठक में यह नोट किया गया था कि वर्ष 2001 तक सन्धि के पाठ को अन्तिम रूप देना सम्भव नहीं होगा। तथापि, बैठक में साप्टा सन्धि को शीघ्र ही अन्तिम रूप दिए जाने के बारे में प्रबल प्रतिबद्धता को दोहराया गया था।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. **निम्नलिखित कथनों में ☑ अथवा ☒ का निशान लगाइए (State whether the following statements are 'true' or 'false')—**
   1. काठमांडु घोषणा पत्र में आतंकवाद को विश्व शान्ति के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया गया है। ☐
   2. सार्क सम्मेलन में 11 सूत्री सामाजिक चार्टर पर सहमति व्यक्त की गई है। ☐
   3. सीमा शुल्क अधिसूचना 12 अगस्त 1999 को जारी की गई। ☐
   4. जनवरी 2004 के प्रथम सप्ताह में इस्लामाबाद, पाकिस्तान में आयोजित सार्क शिखर सम्मेलन को ऐतिहासिक कहा गया। ☐
   5. चार्टर के अंतर्गत सार्क के केवल 3 संस्थाओं का उल्लेख किया गया है। ☐

21.4 साप्टा से साफ्टा (SAPTA To SAFTA)

6 जनवरी, 2004 के दिन SAARC देशों के शिखर सम्मेलन में एक ऐतिहासिक समझौता के ढांचे पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार उन्मुक्त व्यापार क्षेत्र, "दक्षिण एशियाई उन्मुक्त व्यापार समझौता" (South Asian Free Trade Agreement—SAFTA) की स्थापना होगी। SAFTA की स्थापना SAPTA की जगह पर होगी। इस समझौता से भारत-पाकिस्तान व्यापार का स्वरूप भी बदल जाएगा जो अब तक अनौपचारिक था। आज भारत-पाक व्यापार सिर्फ 250 मिलियन अमरीकी डॉलर का था। ऐसी उम्मीद की जाती है SAFTA की स्थापना के बाद यह व्यापार एक बिलियन डॉलर का हो सकता है।

SAFTA जनवरी 1, 2006 से कार्य करने लगेगा। उन्मुक्त व्यापार की सारी प्रक्रिया 10 वर्षों में पूरी हो जाएगी। व्यापार का उदारीकरण दो चरणों में होगा, यथा—

- दो वर्षों में भारत तथा पाकिस्तान टारिफ की दरों में 20 प्रतिशत की कमी करेंगे, जबकि अन्य देश ऐसा 3 वर्षों में करेंगे। ऐसा प्रथम चरण में होगा।
- दूसरे चरण में, अगले 5 वर्षों में भारत और पाकिस्तान आयात शुल्कों को घटाकर 5 प्रतिशत या उससे कम कर देंगे। श्रीलंका ऐसा 6 वर्षों में तथा अन्य सदस्य देश 8 वर्षों में करेंगे।

SAFTA की स्थापना WTO के पश्चात् हो रही है। इसलिए इसका रूप तथा विषय WTO के प्रावधानों के अनुकूल ही होगा। इसने WTO की संस्थाओं तथा व्यवहार को बड़े पैमाने पर अपनाया है। इन्हें विवाद को सुलझाने, सुरक्षा, उपायों, भुगतान शेष के अपवादों तथा न्यूनतम विकसित देशों (भूटान, नेपाल, मालदीव तथा बांग्लादेश) के लिए विशेष एवं भेदात्मक प्रावधानों में देखा जा सकता है।

WTO की तरह किसी भी देश को यह अधिकार है वह जनवरी 1, 2006 SAFTA की स्थापना के बाद इससे अलग

नोट

हो सकता है। इसके लिए 6 मास की पूर्व सूचना देनी पड़ेगी। WTO की तरह SAFTA में सदस्य देशों के वाणिज्य या व्यापार मन्त्रियों की मन्त्रिस्तरीय परिषद् होगी। समझौते को लागू करने के लिए विशेषज्ञों की समिति होगी।

SAARC देशों के वाणिज्य एवं व्यापार समाज ने SAFTA का स्वागत किया है। सेवा क्षेत्र, यथा–स्वास्थ्य, पर्यटन तथा मनोरंजन में द्विपक्षीय व्यापार असीमित विकास की सम्भावनाएं देखी जा रही है। इसके परिवहन लिंक की स्थापना करनी होगी, वीसा (VSSA) जारी करने में ढील देनी होगी तथा थाने में अनिवार्य उपस्थिति की व्यवस्था को हटाना होगा।

21.5 आसियान (ASEAN)

'एसियन' या **'आसियान'** का पूरा नाम 'दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ' (Association of South-East Asian Nations – ASEAN) है। यह इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड का एक प्रादेशिक संगठन है। 1967 में दक्षिण-पूर्वी एशिया के पांच देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से 'आसियान' नामक असैनिक संगठन का निर्माण किया और 8 अगस्त, 1967 को बैंकाक में एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर इसके निर्माण की औपचारिक घोषणा की। आसियान की सदस्य संख्या अब 10 हो गई है। आसियान के मौजूदा 10 सदस्य राष्ट्रों में इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर, थाईलैण्ड, ब्रूनेई, वियतनाम, लाओस, म्यांमार एवं कम्बोडिया सम्मिलित हैं। 24 जुलाई, 1996 को भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभागी बना लिया गया है। रूस और चीन को भी पूर्ण संवाद सहभागी का स्तर प्रदान किया गया है।

आसियान का **केन्द्रीय सचिवालय जकार्ता (इण्डोनेशिया)** में है और उसका अध्यक्ष महासचिव होता है। महासचिव का पद प्रति पांच वर्ष के लिए प्रत्येक देश को जाता है और देश के चुनाव का आधार अकारादि क्रम है। सचिवालय के ब्यूरो निदेशकों तथा अन्य पदों की भर्ती तीन वर्ष बाद होती है।

आसियान के शिखर सम्मेलन सार्क की भांति अधिक नहीं हुए हैं। पहला शिखर सम्मेलन 1976 में, दूसरा 1977 में, तीसरा एक दशक बाद 1987 में, चौथा जनवरी, 1992 में, पांचवां दिसम्बर 1995 में थाईलैण्ड की राजधानी बैंकाक में तथा दठा दिसम्बर, 1998 में हनोई में सम्पन्न हुआ। विदेश मन्त्रियों की बैठक प्रति वर्ष अवश्य होती रही है। 4-6 नवम्बर, 2001 में हुए आसियान शिखर सम्मेलन में आतंकवाद के विरुद्ध एकजुटता के साथ-साथ चीन के साथ मिलकर अगले 10 वर्षों में विश्व का सबसे बड़ा मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाए जाने के बारे में सहमति हुई। सम्मेलन में 10 आसियान देशों के साथ ही चीन, जापान तथा द. कोरिया के शासनाध्यक्षों ने भी भाग लिया।

आसियान के सदस्य राष्ट्रों का **नौवां शिखर सम्मेलन** 7-8 अक्टूबर, 2003 को बाली (इण्डोनेशिया) में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में पारित घोषणा-पत्र में सन् 2020 तक क्षेत्र को एक साझा बाजार बनाने का लक्ष्य रखा गया है। इस घोषणा-पत्र को बाली कोनकोर्ड द्वितीय नाम दिया गया। 8 अक्टॅबर, 2003 को भारत-आसियान शिखर सम्मेलन बाली में हुआ जिसमें आसियान ने भारत के साथ मुक्त व्यापार सन्धि के प्रारूप तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से संघर्ष के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसके अनुसार 2011 तक भारत तथा आसियान के दस देशों के बीच मुक्त व्यापार क्षेत्र स्थापित हो जाएगा। 29-30 नवम्बर, 2004 को वियनतिएन (लाओस) में आसियान देशों का 10वां शिखर सम्मेलन हुआ। इसके साथ ही भारत-आसियान की तीसरी शिखर बैठक हुई। इस बैठक में भारत-आसियान दीर्घ,कालीन समझौता किया गया।

आसियान के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य है द.पू. एशिया में आर्थिक प्रगति को त्वरित करना और उसके आर्थिक स्थायित्व को बनाए रखना। मोटे तौर पर इसके निर्माण का उद्देश्य सदस्य राष्ट्रों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में परस्पर सहायता करना तथा सामूहिक सहयोग से विभिन्न साझी समस्याओं का हल ढूंढ़ना है जो इसके निर्माण के समय आसियान घोषणा में स्पष्ट रूप से लिखित है। इसका ध्येय इस क्षेत्र में एक साझा बाजार तैयार करना और सदस्य देशों के बीच व्यापार को बढ़ावा देना है।

नोट

क्या आप जानते हैं भारत की आसियान में संवाद सहभागी के रूप में भूमिका स्थापित की गई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. SAARC देशों के वाणिज्य एवं व्यापार समाज ने ········ का स्वागत किया।
2. 'आसियान' का पूरा नाम ········ है।
3. 1967 में दक्षिण-पूर्वी एशिया के पाँच देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से ········ का निर्माण किया था।
4. आसियान का केन्द्रीय सचिवालय ········ में है।
5. आसियान के सदस्य राष्ट्रों का नौवां शिखर सम्मेलन 7-8 अक्टूबर 2003 को ········ में सम्पन्न हुआ था।

21.6 सारांश (Summary)

- 'सार्क' (दक्षेस) का पूरा नाम है 'साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल को-ऑपरेशन' अर्थात् 'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ'।
- सार्क का **मुख्यालय** (सचिवालय) **काठमाण्डू (नेपाल)** में है। सार्क सचिवालय की स्थापना दूसरे सार्क सम्मेलन (बंगलौर) के बाद 16 जनवरी, 1987 को की गई थी।
- सार्क का मूल आधार क्षेत्रीय सहयोग पर बल देना है। अगस्त 1983 में क्षेत्रीय सहयोग के ऐसे नौ क्षेत्र रेखांकित किए गए थे।
- सार्क के चार्टर में 10 धाराएं (अनुच्छेद) हैं इनमें सार्क के उद्देश्यों, सिद्धान्तों, संस्थाओं तथा वित्तीय व्यवस्थाओं को परिभाषित किया गया है,
- काठमांडू घोषणा-पत्र में आतंकवाद को विश्व-शान्ति के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया गया।
- दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता (साप्टा) की स्थापना वाले समझौते पर 11 अप्रैल, 1993 को ढाका में हुए 7वें सार्क शिखर सम्मेलन में हस्ताक्षर किए गए थे।
- जुलाई, 1998 में कोलम्बो में सार्क सम्मेलन के दौरान सभी सार्क सदस्य देशों को एक पेशकश की गई थी।
- साप्टा के तहत वार्ताओं का अन्तिम उद्देश्य दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र अथवा साप्टा का लक्ष्य प्राप्त करना है।
- **'एसियन'** या **'आसियान'** का पूरा नाम 'दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ' (Association of South-East Asian Nations—ASEAN) है।
- 1967 में दक्षिण-पूर्वी एशिया के पांच देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से 'आसियान' नामक असैनिक संगठन का निर्माण किया।
- आसियान के सदस्य राष्ट्रों का **नौवां शिखर सम्मेलन** 7-8 अक्टूबर, 2003 को बाली (इण्डोनेशिया) में सम्पन्न हुआ।

21.7 शब्दकोश (Keywords)

- **संवर्द्धन**—उन्नत होना, बढ़ाने वाला।
- **टैरिफ**—शुल्क-सूची।
- **समेकन**—मिलकर एक हो जाना।

नोट

21.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सार्क की स्थापना के उद्देश्य एवं संगठन का वर्णन कीजिए। क्षेत्रीय व्यापार बढ़ाने में इसकी भूमिका की विवेचना कीजिए।
2. क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग में 'आसियान' की भूमिका का परिक्षण कीजिए।
3. साप्टा समझौते की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
4. टिप्पणी लिखिए–

   (क) सार्क (ख) साप्टा (ग) साफ्टा।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. (क)	2. (ग)	3. (ग)	4. (क)
	5. (क)			
2.	1. ✓	2. ✗	3. ✗	4. ✓
	5. ✗			
3.	1. SAFTA	2. दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ		3. आसियान
	4. जकार्ता	5. बाली।		

21.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई—22: क्षेत्रवाद: यूरोपीय संघ एवं नाफ्टा (Regionalism: EU and NAFTA)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 क्षेत्रीय आर्थिक गुट (Regional Economic Union)

22.2 यूरोपीय संघ के उद्देश्य (Objectives of EU)

22.3 यूरोपीय संघ का संगठन (Organization of EU)

22.4 यूरोपीय साझा बाजार की प्रगति (Progress of EU Market)

22.5 आर्थिक समुदाय बनने का प्रभाव (Effect of EU Economic Forum)

22.6 भारत और यूरोपीय संघ (India and EU)

22.7 यूरोपीय संघ की नई मुद्रा: यूरो (New Money of EU : Euro)

22.8 नाफ्टा (NAFTA)

22.9 सारांश (Summary)

22.10 शब्दकोश (Keywords)

22.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- क्षेत्रीय गुट अथवा समूह को समझने में।
- यूरोपीय संघ के संगठन एवं उद्देश्य की व्याख्या करने में।
- यूरोपीय साझा बाजार की प्रगति तथा भारत और यूरोपीय संघ का विवेचन करने में।
- यूरोपीय संघ की नई मुद्रा : यूरो तथा नाफ्टा के विषय में जानकारी हासिल करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

1950 तथा 1960 के दशकों में क्षेत्रीय आर्थिक समूह या क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण (Regional Economic Groping or Regional Economic Integration) का काफी तेजी से विकास हुआ। आर्थिक एकीकरण का अर्थ है व्यक्तिगत देशों को समूहों में संगठित करना। इसके पश्चात् समूह के देशों के वस्तुओं तथा सेवाओं के व्यापार पर से प्रतिबन्ध हटा लिया जाता है। ऐसे क्षेत्रीय एकीकरण की धारणा के पीछे निकटता महत्वपूर्ण कारण है। पड़ोसी देश निम्न कारणों से एकीकरण के लिए तैयार हो जाते हैं–

नोट

- इन देशों के मध्य कम दूरियां तय करनी पड़ती हैं;
- उपभोक्ताओं की रुचि में समानता पाई जा सकती है तथा पड़ोसियों के मध्य वितरण प्रणाली स्थापना अधिक आसान होती है;
- पड़ोसी देशों का कॉमन इतिहास हो सकता है, कॉमन हित के प्रति जागरूकता हो सकती है तथा ऐसे अन्य कारणों से अपनी नीतियों के समन्वित करने के लिए अधिक इच्छुक हो सकते हैं।

22.1 क्षेत्रीय आर्थिक गुट (Regional Economic Union)

क्षेत्रीय आर्थिक समूह चार प्रकार के हो सकते हैं–

1. **उन्मुक्त व्यापार क्षेत्र** (Free Trade Area – FTA)–सदस्य देशों के मध्य टारिफ को समाप्त कर दिया जाता है, किन्तु गैर-सदस्य देशों के साथ व्यापार के बाह्य टारिफ बरकरार रहता है।
2. **सीमा-शुल्क संघ** (Customs Union)–संघों के अन्दर सभी आन्तरिक टारिफ समाप्त कर दिए जाते हैं, जबकि संघ के सभी देश एक ही बाह्य टारिफ लगाते हैं।
3. **साझा बाजार** (Common Market)–सीमा शुल्क संघ की सभी विशेषताएं इसमें मौजूद रहती हैं। इसके अतिरिक्त श्रम तथा पूंजी की गतिशीलता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता है।
4. **पूर्ण आर्थिक एकीकरण** (Complete Economic Integration)–इस स्थिति में मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों को एक करके और अधिक आर्थिक एकीकरण किया जाता है। इस स्तर के एकीकरण का अर्थ राजनीतिक एकीकरण भी है। यूरोपीय संघ पूर्ण आर्थिक एकीकरण की ओर निश्चित रूप में बढ़ रहा है।

क्षेत्रीय एकीकरण के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव पड़ते हैं। सामाजिक प्रभाव का अर्थ है सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण है। आर्थिक प्रभाव का अर्थ पर संसाधनों का अधिक उत्तम आबण्टन, स्पर्द्धा में वृद्धि के कारण कार्यकुशलता में वृद्धि, आदि। राजनीतिक प्रभाव है सम्प्रभुता की थोड़ी हानि।

पिछले एक दशक में क्षेत्रीय आर्थिक समझौतों में तेजी से वृद्धि हुई है। मई 2003 में 265 ऐसे समझौतों की सूचना WTO को दी गई। WTO ने अपने सदस्य देशों को GATT की धारा 1 के अन्तर्गत MFN क्लाज में भेदभावहीनता (non-discrimination) के मौलिक सिद्धान्त के अपवाद के रूप में सीमा-शुल्क संघ तथा मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना की सहमति दी है। क्षेत्रीय व्यापार समूहों का करीब 90 प्रतिशत उन्मुक्त व्यापार के समझौते हैं तथा केवल 10 प्रतिशत सीमा शुल्क संघ। यों तो 1990 के दशक से ही ऐसे समझौतों में तेजी से वृद्धि हुई है, तथापि पश्चिमी यूरोप एवं अमरीका की अगुआई में 1980 से इसमें वृद्धि होने लगी थी। हाल ही से जापान सहित एशियाई देशों ने MFN आधारित व्यापार पर पूर्ण निर्भर करना छोड़ दिया है। COMECON (Council of Mutual Economic Corporation) के ध्वस्त होने के बाद से 1990 से क्षेत्रीय समूहों की संख्या बढ़ी है। World Trade Report 2003 के अनुसार विश्व आयात का 43.2 प्रतिशत 2000 में इन्हीं क्षेत्रीय समूहों के माध्यम से हुआ।

मार्च 1957 में रोम में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसके फलस्वरूप यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community) का निर्माण हुआ जिसमें 6 सदस्य थे–फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स एवं लक्जेमबर्ग। **यूरोपीय आर्थिक समुदाय** (EEC) को **यूरोपीय साझा बाजार** (ECM) के नाम से भी जाना जाता है। यूरोपियन आर्थिक समुदाय का उद्देश्य एक साझा बाजार की स्थापना करना था ताकि सदस्य देशों में विकास, स्थिरता एवं लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि हो सके। इन 6 देशों का साझा बाजार स्थापित करने की व्यवस्था को ही यूरोपीय साझा बाजार (ECM) कहते हैं जिसका प्रारम्भ 1 जनवरी, 1958 को हुआ। **यूरोपीय आर्थिक समुदाय जिसका वर्तमान नाम यूरोपीय संघ है, का मुख्यालय ब्रुसेल्स (बेल्जियम) में है।** यूरोपीय साझाा बाजार की स्थापना के पीछे मुख्य कारण यह था कि उक्त 6 देशों ने यह अनुभव किया कि जब तक वे एक सीमा एवं सीमा संघ नहीं बनाते, उनकी आर्थिक प्रगति संभव नहीं है। सीमा संघ बन जाने के फलस्वरूप इन देशों में वस्तुओं और सेवाओं के आवागमन की पूर्ण स्वतंत्रता है, इन देशों के बीच कोई प्रशुल्क नहीं है तथा बाहरी देशों के लिए इनकी प्रशुल्क नीति समान है।

नोट

1973 में तीन नये देशों–**ब्रिटेन, डेनमार्क** एवं **आयरलैण्ड** को इस समुदाय में सम्मिलित किया गया। बाद में तीन अन्य देशों **ग्रीस, स्पेन** तथा **पुर्तगाल** को समुदाय की सदस्यता मिलने से समुदाय की सदस्य संख्या 12 हो गई। पुन: 1 जनवरी, 1995 को **आस्ट्रिया, फिनलैण्ड** एवं **स्वीडन** को समुदाय में सदस्यता मिल जाने से इस समुदाय की सदस्य संख्या 12 से बढ़कर 15 हो गई। मई, 2004 में 10 और देश इस संघ में शामिल होने से वर्तमान में इसकी सदस्य संख्या 25 है। **तीन देश बल्गारिया, क्रोएशिया** तथा **रोमानिया** इस संघ में 2007 में सम्मिलित होने जा रहे हैं।

वर्ष 1995 में यूरोपीय आर्थिक समुदाय को **यूरोपीय संघ** के नाम से जाना जाता है।

22.2 यूरोपीय संघ के उद्देश्य (Objectives of EU)

यूरोपीय साझा बाजार की स्थापना के पीछे एक ऐसे आर्थिक संघ के निर्माण का उद्देश्य था जिससे सदस्य देशों की आर्थिक, वित्तीय और सामाजिक नीतियों में एकीकरण हो सके तथा यूरोपीय आर्थिक समुदाय का सर्वांगीण विकास हो। इस दृष्टि से इसके निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए :

(1) सदस्य राष्ट्रों के बीच प्रशुल्को एवं आयात-निर्यात अभ्यंशों को हटाना,

(2) सदस्य राष्ट्रों के बाहर के देशों के लिए एकसमान प्रशुल्क एवं व्यापारिक नीति अपनाना,

(3) सदस्य देशों के लिए एकसमान कृषि नीति अपनाकर उसे निर्माण उद्योगों के समान महत्त्व देना,

(4) सदस्य देशों के बीच श्रम और पूंजी के आवागमन में आने वाली बाधाओं को हटाना,

(5) सदस्य देशों की आर्थिक नीतियों का एकीकरण करना एवं भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयों को हल करना,

(6) सदस्य देशों के कानूनों में इस दृष्टि से समन्वय करना कि साझा बाजार व्यवस्थित ढंग से कार्य कर सके,

(7) सदस्य देशों में रोजगार बढ़ाने एवं आर्थिक विकास को गतिशील बनाने से संबंधित उपयों पर विचार करना, एवं

(8) समुद्रपारीय निर्भर क्षेत्रों की यूरोपीय अर्थिक समुदाय के साथ एकता स्थापित करना।

आर्थिक संघ की स्थापना के साथ ही साथ, यूरोपीय आर्थिक संघ का उद्देश्य एक राजनीतिक संघ भी बनाना है।

22.3 यूरोपीय संघ का संगठन (Organization of EU)

यूरोपीय साझा बाजार का संगठन एक सरकार के समान है तथा उसके विभिन्न आर्थिक मामलों के कार्यों का सम्पादन करने के लिए इसकी विभिन्न शाखाएं हैं जो इस प्रकार हैं :

(1) **यूरोपीय आर्थिक परिषद्** (European Economic Council)–यह यूरोपीय आर्थिक समुदाय की प्रमुख प्रशासनिक संस्था है जिसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र का एक सदस्य होता है। समुदाय के लिए यह परिषद् कार्यकारी एजेण्ट के रूप में कार्य करती है। इस परिषद् की बैठक एक माह में कम से कम एक बार होती है जिसमें प्राय: सारे निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं।

(2) **कार्यकारी आयोग** (The Executive Commission)–इसका दायित्व साझा बाजार की नीतियों का निर्धारण कर उन्हें कार्यान्वित करना है। इसका मुख्यालय ब्रुसेल्स में स्थित है। इस आयोग का मुख्य कार्य यह देखना है कि सदस्य देशों की सरकारें निर्धारित नीतियों के अनुसार व्यवहार करती हैं या नहीं।

(3) **यूरोपीय संसद** (The European Parliament)–यह सदस्य देशों की संसद की ऐसी संस्था है जिसका मुख्य कार्य यूरोपीय आर्थिक समुदाय से संबंधित मामलों पर अपनी सहमति प्रदान करना है। इस संसद के एक वर्ष में 8 सत्र होते हैं।

नोट

(4) **मौद्रिक समिति** (Monetary Committee)–यूरोपीय आर्थिक समुदाय के भुगतान सन्तुलन एवं अन्य वित्तीय मामलों में सलाह देने के लिए एक मौद्रिक समिति का गठन किया जाता है जिसके सदस्य आयोग के प्रतिनिधि सदस्य देशों के केन्द्रीय बैंक के अधिकारी एवं प्रख्यात अर्थशास्त्री होते हैं।

(5) **न्यायालय** (The Court of Justice)–आर्थिक समुदाय के मामलों से संबंधित विवादों को निपटाने के लिए एक न्यायालय है जो लक्जेमबर्ग में स्थित है। इस न्यायालय को विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह आर्थिक समुदाय से संबंधित मामलों पर सदस्य राष्ट्रों के निर्णय को अमान्य करते हुए अपना निर्णय दे सकता है जो सबको मान्य होता है।

(6) **यूरोपीय आर्थिक एवं सामाजिक समिति** (European Economic and Social Committee)–यह एक सलाह देने वाली संस्था है जिसमें सदस्य देशों के उद्योग, कृषि श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं के प्रतिनिधि शामिल रहते हैं।

(7) **द' एविनान कमेटी** (The D'avignon Committee)–सदस्य देशों की विदेशी नीति में समानता बनाए रखने के उद्देश्य से इस कमेटी की नियुक्ति की गई जो बेल्जियम के विदेश मन्त्रालय के निर्देशक **द' एविनान** के नाम पर आधारित है। यह समिति सदस्य राष्ट्रों की विदेशी नीति से संबंधित मामलों पर सलाह देती है।

टास्क यूरोजोन किसे कहा गया है?

22.4 यूरोपीय साझा बाजार की प्रगति (Progress of EU Market)

साझा बाजार की स्थापना के बाद, इसके सदस्य राष्ट्रों के व्यापार में भारी वृद्धि हुई है। इसकी प्रगति का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(1) **अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में वृद्धि**–प्रशुल्क हटाए जाने के फलस्वरूप साझा बाजार के सदस्य देशों के बीच, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में काफी वृद्धि हुई है।

(2) **विदेशी व्यापार में वृद्धि**–यूरोपीय साझा बाजार के देशों में विदेशी व्यापार में काफी वृद्धि हुई है।

(3) **आर्थिक विकास में वृद्धि**–साझा बाजार के देशों ने अपने आर्थिक विकास को काफी गतिशील बना लिया है तथा इनके कुल घरेलू उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई है।

(4) **औद्योगिक कुशलता और रोजगार में वृद्धि**–साझा बाजार बनने के बाद इन देशों की औद्योगिक कुशलता एवं औद्योगिक उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है। उत्पादन बढ़ने से इन देशों में रोजगार में भी वृद्धि हुई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. World Trade Reports 2003 के अनुसार विश्व आयात का 48.2% 2000 में किसके माध्यम से हुआ–

   (क) आयात के (ख) निर्यात के

   (ग) क्षेत्रीय समूह (घ) इनमें से कोई नहीं।

2. यूरोपीय संघ का मुख्यालय कहाँ है–

   (क) बेल्जियम (ख) इंग्लैंड

   (ग) जानेवा (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

3. कार्यकारी आयोग का मुख्यालय कहाँ है–
   (क) अमेरिका (ख) ब्रुसेल्स
   (ग) इंग्लैण्ड (घ) इनमें से कोई नहीं।
4. यूरोपीय संसद के एक वर्ष में कितने सत्र होते हैं–
   (क) 4 (ख) 6
   (ग) 8 (घ) इनमें से कोई नहीं।
5. समिति सदस्य राष्ट्रों की विदेशी नीति से संबंधित मामलों पर सलाह देती है–
   (क) 'द एविनान कमेटी' (ख) यूरोपीय आर्थिक परिषद
   (ग) न्यायालय (घ) इनमें से कोई नहीं।

22.5 आर्थिक समुदाय बनने का प्रभाव (Effect of EU Economic Forum)

यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों द्वारा एक सीमा संघ (Custom Union) बनाए जाने का व्यापक प्रभाव हुआ है जिसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

(1) **बाजार का विस्तार**–यूरोपीय अर्थिक समुदाय का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि इन देशों के बाजार का क्षेत्र विस्तृत हुआ है जिससे उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हुई है। इसे बड़े पैमाने की बचतें भी प्राप्त हुई हैं।

(2) **स्वस्थ प्रतियोगिता का विकास**–साझा बाजार बनने से पहले, सदस्य देशों के पास जो एकाधिकारी शक्तियाँ थीं, वे समाप्त हो गईं तथा देशों में स्वस्थ प्रतियोगिता का विकास हुआ है।

(3) **आर्थिक विकास**–साझा बाजार बनने के बाद इन देशों ने विशेष कोष की स्थापना कर, उसकी सहायता से कम विकसित देशों को आर्थिक सहायता देकर उन्हें समान रूप से विकसित बना दिया।

(4) **पूंजी एवं श्रम की गतिशीलता में वृद्धि**–एक आर्थिक समुदाय बन जाने के बाद सदस्य देशों में पूंजी एवं श्रम की गतिशीलता में वृद्धि हुई है जिससे न केवल उत्पादन में तेजी से विकास हुआ है, वरन् आर्थिक विकास की गति भी तेज हुई है।

इस प्रकार यूरोपीय आर्थिक समुदाय बनने के बाद सदस्य देशों में अनुकूल राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव हुआ है।

22.6 भारत और यूरोपीय संघ (India and EU)

यूरोपीय संघ भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है और हमारे कुल व्यापार का 21 प्रतिशत इसके साथ होता है। भारत का इस संघ के साथ 14 अरब अमेरिकी डॉलर का निर्यात व्यापार होता है। इसके बावजूद इस संघ को होने वाले दुनियाभर से निर्यात में भारत का हिस्सा सिर्फ एक प्रतिशत बैठता है और इस संघ के व्यापारिक भागीदारों में भारत का 20वां स्थान है। भारत से यूरोप संघ को **निर्यात** की जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में सिलेसिलाए सूती वस्त्र और सह उत्पाद, रत्न और आभूषण, सूती धागे, कपड़े इससे तैयार माल, यंत्र और उपकरण तथा औषधि, फार्मास्यूटिकल्स और फाइन केमिकल्स शामिल हैं। इस संघ से **आयात** की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं हैं–मोती, बहुमल्य/कम मूल्यवान रत्न, सोना, यंत्र, इलेक्ट्रॉनिक सामान तथा जैविक रसायन।

भारत और यूरोपीय संघ देशों के अच्छे आर्थिक संबंध हैं। आपसी तथा सामूहिक दोनों दृष्टियों से यह बात लागू होती है। इन संबंधों के आधार हैं–(1) भागीदारी और विकास पर भारत-यूरोपीय संघ समझौता तथा (2) भारत-यूरोपीय संघ संयुक्त आयोग।

नोट

भारत का यूरोपीय संघ के कई देशों–ऑस्ट्रिया, साइप्रस, चेक गणराज्य, फिनलैण्ड, फ्रांस, हंगरी, इटली, नीदरलैण्ड, पोलैण्ड, पुर्तगाल, स्लोवाक गणराज्य, स्लोवानिया तथा स्पेन के साथ अलग से भी व्यापारिक/आर्थिक सहयोग समझौता है। इस समझौतों/मंचों के द्वारा आपसी आर्थिक/वाणिज्यिक संबंधों की समय-समय पर समीक्षा के अवसर मिलते हैं।

यूरोपीय संघ को भारत द्वारा वर्ष 1990-91 में 8,951 करोड़ रु., 2000-01 में 46,120 करोड़ रु., 2001-02 में 45,524 करोड़ रु., 2002-03 में 54,173 करोड़ रु. तथा 2003-04 में 61,816 करोड़ रु. मूल्य का निर्यात व्यापार हुआ जबकि इसी अवधि में आयात व्यापार क्रमशः 12,680 करोड़ रु., 45,663 करोड़ रु., 46,711 करोड़ रु., 56,434 करोड़ रु. तथा 62,248 करोड़ रु. का हुआ। वर्ष 2003-04 में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यूरोपीय समुदाय के देशों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यूरोपीय देशों के साथ भारत का नया व्यापार समझौता

पिछले वर्षों में क्रमशः यूरोपीय देशों के साथ भारत का न केवल व्यापार बढ़ा है वरन् अन्य क्षेत्रों में सहयोग स्थापित हुआ है। दिसम्बर 1993 में भारत और यूरोपीय समुदाय ने **'साझेदारी और विकास'** के एक नये समझौते पर हस्ताक्षर किये। इससे भारत की यूरोपीय समुदाय की तकनीकी जानकारी और प्रौद्योगिकी प्राप्त करने में सुविधा होगी तथा निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। इसका मुख्य उद्देश्य भारत और यूरोपियन आर्थिक समुदाय के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करना है ताकि द्विपक्षीय सहयोग को मजबूत किया जा सके। लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों एवं मानवाधिकारों पर आधारित इस समझौते में दो प्रमुख क्षेत्रों में सहयोग गैट की 'सर्वाधिक अनुग्रहित राष्ट्र' की धारा पर आधारित व्यापारिक सहयोग तथा गरीबों के उत्थान के लिए विकासकारी सहयोग, प्रस्तावित है। इसमें **संयुक्त आयोग** के गठन का भी प्रावधान है जो समझौते के उद्देश्यों के संबंध में प्राथमिकता निर्धारित करेगा। दक्षिण एशिया के किसी भी देश के साथ यूरोपियन आर्थिक समुदाय (European Economic Community—EEC) के इतना व्यापक समझौते का यह पहला अवसर था।

नोट्स यूरोपीय आर्थिक समुदाय जिसका वर्तमान नाम यूरोपीय संघ है, का मुख्यालय ब्रुसेल्स (बेल्जियम) में है।

22.7 यूरोपीय संघ की नई मुद्राः यूरो (New Money of EU : Euro)

हाल ही में यूरोपीय समुदाय के नेताओं द्वारा यूरोपीय समुदाय के लिए एक सांझी मुद्रा (Common Money) के प्रयोग का निर्णय विश्व के आर्थिक परिवर्तन की दिशा में एक क्रान्तिकारी प्रयोग है। इस हेतु हॉलैण्ड में आयोजित सम्मेलन में सदस्य देशों के वित्तमंत्रियों द्वारा यूरोपीय मौद्रिक संघ (European Monetary Union—E.M.U.) की स्थापना का निर्णय दो चरणों में लिया गया। सभी यूरोपीय साझा बाजार के देशों के लिए 1997 तक एक मुद्रा स्थापित करने का समय निर्धारित किया गया। दिसम्बर 1991 में हुई **मास्ट्रिश्ट संधि** (Mastricht Treaty) में यूरोपीय संघ के 15 राष्ट्रों ने 1999 तक यूरो (Euro) नाम वाली संयुक्त मुद्रा 1999 से लागू करने की व्यवस्था की थी।

यूरो करैन्सी 1 जनवरी, 1999 से अस्तित्व में आ चुकी है। नकद सौदों के लिए यूरोपीय संघ के 12 राष्ट्रों में एकीकृत सांझी मुद्रा 'यूरो' का प्रयोग 1 जनवरी, 2002 से आरम्भ हो चुका है।

28 फरवरी, 2002 तक देशों की पुरानी मुद्राओं का अस्तित्व बनाए रखने का प्रस्ताव किया गया था किन्तु 1 मार्च, 2002 से अकेली यूरो ही इन 12 देशों में विधिग्राह्य मुद्रा (Legal Tender) हो गई है। बन्द हुई यूरोपीय मुद्राओं को 1 जनवरी, 2012 तक बैंकों से यूरो में बदला जा सकेगा।

यूरो को अपनाने वाले 12 राष्ट्रों के क्षेत्र को **''यूरोजोन''** (Eurozone) कहा गया है। यूरोजोन में सम्मिलित राष्ट्र हैं–ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, फिनलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, यूनान, आयरलैण्ड, इटली, लक्जेमबर्ग, नीदरलैण्ड्स, पुर्तगाल एवं स्पेन। यूरोपीय संघ के शेष तीन राष्ट्र–ब्रिटेन, डेनमार्क एवं स्वीडन अभी यूरोजोन में शामिल नहीं हुए हैं।

नोट

यूरोपीय मुद्राओं के साथ यूरो की विनिमय दर (31 दिसम्बर, 1998 को निर्धारित)

यूरोपीय मुद्रा	एक यूरो का मूल्य
जर्मन मार्क	1.96
फ्रांसीसी फ्रैंक	6.56
इटालियन लीरा	1936.27
स्पेनिश पेसेटा	166.39
डच गिल्डर	2.20
बेल्जियम फ्रैंक	40.34
आस्ट्रियन शिलिंग	13.76
पुर्तगाली एस्कुडो	200.48
फिनिश मार्का	5.95
आयरिश पाउण्ड	0.79
लक्जेमबर्ग फ्रैंक	40.34

यूरो में भागीदारी की प्रमुख शर्तें

मास्ट्रिश्च संधि के दस्तावेजों में यूरोप में मौद्रिक एवं आर्थिक एकीकरण एवं साझी मुद्रा 'यूरो' के प्रचलन के लिए चार प्रमुख शर्तों का उल्लेख किया गया—(*i*) मुद्रास्फीति की दर पर नियंत्रण (उत्तम निष्पादन करने वाले पहले तीन देशों में प्रचलित-मुद्रास्फीति की दर का 1.5% से अधिक न होना)। (*ii*) निम्न ब्याज दर (उत्तम निष्पादन करने वाले प्रथम तीन देशों की ब्याज की दर की तुलना में 2% से अधिक न होना)। (*iii*) सरकारी ऋण का GDP के 60% से अधिक न होना। (*iv*) वार्षिक बजट घाटा GDP के 3% से अधिक न होना।

मास्ट्रिश्च संधि में यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) के देशों से उपर्युक्त शर्तों को पूरा करने का अनुरोध किया गया ताकि वे यूरोप की साझी मुद्रा 'यूरो' में अपनी भागीदारी दर्ज कर सकें।

क्या आप जानते हैं यूरोपीय संघ भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है और हमारे कुल व्यापार का 21 प्रतिशत इसके साथ होता है।

यूरो प्रचलन के विभिन्न चरण

यूरोपीय देशों में 1 जनवरी, 1999 से अपनाई जाने वाली साझी मुद्रा 'यूरो' के संचालन पर नियंत्रण रखने हेतु **यूरोपीय सेण्ट्रल बैंक की औपचारिक स्थापना जून 1998** में जर्मनी में फ्रैंकफर्ट में कर दी गई थी और नीदरलैण्ड के **बिनड्यूजनबर्ग** को यूरोपीय सेण्ट्रल बैंक का प्रथम अध्यक्ष बनाया गया।

यद्यपि खाते की मुद्रा में यूरो का प्रयोग 1 जनवरी, 1999 से आरम्भ हो चुका था, किन्तु सौदों में नकद यूरो का प्रयोग 1 जनवरी, 2002 से किया जा रहा है। तीन वर्ष का यह अन्तराल **यूरो का संक्रमण काल** (Transition Period of Euro) है क्योंकि विशाल आकार में यूरो के करेन्सी नोट तथा सिक्कों की छपाई एवं टंकण में तीन वर्ष का अन्तराल न केवल आवश्यक ही है, बल्कि व्यावहारिक भी है। यूरोपियन सेण्ट्रल बैंक द्वारा निर्गत यूरो के नोट तथा सिक्के, यूरो की छतरी में सम्मिलित देशों की परिसीमाओं में निर्विघ्न 1 जनवरी, 2002 में नकद सौदों (Cash Transactions) में हस्तान्तरित किये जा रहे हैं।

नोट

यूरो मुद्रा के संक्रमण काल (1999-02) के बीच सभी 12 देशों की मुद्राएं न केवल जीवित रखने का निर्णय किया गया था, बल्कि यूरो के साथ-साथ **विनिमय का माध्यम, मूल्य का मापक** तथा **संचय का आधार** बनाए रखने पर भी सहमति हुई थी, किन्तु यूरो मुद्रा की छपाई पूरी होने एवं चलन में आने के बाद 1 जनवरी, 2002 से ये सभी 12 मुद्राएं निष्प्रभावी हो गई हैं। 'यूरो' अपनाने वाले सभी 12 राष्ट्रों ने इन सिक्कों के पीछे अपनी विशिष्ट पहचान मुद्रित की है किन्तु सभी सिक्के सदस्य राष्ट्रों में समान रूप से स्वीकार किए जाएंगे।

यूरो मुद्रा के 7 करेन्सी नोट 5 से 500 यूरो तक के मूल्य वर्ग में छापे गये हैं तथा 8 सिक्के टंकित किए गये हैं, यूरो की छतरी तले आया प्रत्येक देश सिक्कों के एक तरफ अपने देश की कोई विशिष्ट कृति छापने के लिए स्वतंत्र है, किन्तु यूरो का कोई भी सिक्का प्रत्येक सदस्य देश द्वारा समान रूप में स्वीकार किया जाएगा। इस प्रकार 1 जनवरी, 2002 से यूरो ने खाते की मुद्रा के साथ-साथ चलन की मुद्रा का रूप भी ले लिया है।

यूरो एवं भारत (Euro and India)

वर्तमान में भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक हिस्सेदार यूरोपीय संघ है। यूरोपीय संघ के साथ भारत के विदेशी व्यापार में बड़ी मात्रा में आयात की वस्तुओं के साथ-साथ निर्यात की वस्तुएं भी सम्मिलित हैं। यूरोपीय संघ द्वारा साझी मुद्रा यूरो अपनाए जाने के बाद भारत को **'इनवायसिंग'** के लिए एक नई वैकल्पिक सुदृढ़ मुद्रा मिल गई है। इसके अतिरिक्त 12 देशों द्वारा यूरो अपनाने पर भारत को अब 12 मुद्राओं के साथ परिवर्तनीयता की कठिनाइयों से छुटकारा मिल गया है और विनिमय दर की अनिश्चितता में कमी आने से भारत का विदेशी व्यापार और अधिक अनुकूल होगा। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में यूरो एक सुदृढ़ वैकल्पिक मुद्रा के रूप में उभर कर सामने आई है। आशा है कि विदेशी बाजार में भारत के व्यापार की अमेरिकी डॉलर पर निर्भरता कम होगी और यूरोलैण्ड के साथ विनिमय स्थिरता के वातावरण में भारतीय निर्यात बढ़ेंगे। इसके अतिरिक्त यूरो के उदय से अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय ऋणकर्ताओं को कम लागत पर ऋण उपलब्ध हो सकेंगे।

22.8 नाफ्टा (NAFTA)

नाफ्टा (उत्तरी अमरीका मुक्त व्यापार समझौता) के निर्माण में पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की भूमिका उल्लेखनीय है। यह समझौता उत्तरी अमरीका महाद्वीप के तीन देशों अमरीका, कनाडा और मैक्सिको के एक नए शक्तिशाली क्षेत्रीय संगठन का जनक है जो तीखे अन्तर्विरोधों से ग्रस्त संयुक्त राज्य अमरीका के आर्थिक तंत्र को स्फूर्ति प्रदान करने वाला ताबीज माना जाता है। नाफ्टा लागू होने के बाद मैक्सिको जाने वाला 65 प्रतिशत अमरीका माल बिना आयात शुलक अदा किए मैक्सिको के बाजारों में बिक सकेगा। इसके अलावा अमरीका पूँजी निवेश पर क्रमश: सभी प्रतिबन्ध हट जाएंगे।

नाफ्टा के अन्तर्गत अमरीका, कनाडा और मैक्सिको अगले 15 वर्षों में अपने यहाँ व्यापार पर लगे सारे प्रतिबंधों को हटाकर मुक्त व्यापार क्षेत्र बन जाएंगे। यह विश्व का इस समय सबसे बड़ा मुक्त बाजार क्षेत्र माना जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the Blanks) –

1. आर्थिक समुदाय बन जाने से सदस्य देशों में श्रम एवं पूँजी की .... में वृद्धि हुई है।
2. भारत का यूरोपीय संघ के साथ .... अमेरिकी डॉलर का निर्यात व्यापार होता है।
3. सितम्बर 1993 में भारत और यूरोपीय समुदाय ने .... के एक नये समझौते पर हस्ताक्षर किया।
4. .... 1 जनवरी, 1999 से अस्तित्व में आ चुकी है।
5. .... इस समय विश्व का सबसे बड़ा मुक्त व्यापार क्षेत्र माना गया है।

नोट

22.9 सारांश (Summary)

- आर्थिक एकीकरण का अर्थ है व्यक्तिगत देशों को समूहों में संगठित करना। इसके पश्चात् समूह के देशों के वस्तुओं तथा सेवाओं के व्यापार पर से प्रतिबन्ध हटा लिया जाता है।
- क्षेत्रीय एकीकरण के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभाव पड़ते हैं। सामाजिक प्रभाव का अर्थ है सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण है। आर्थिक प्रभाव का अर्थ पर संसाधनों का अधिक उत्तम आबण्टन, स्पर्द्धा में वृद्धि के कारण कार्यकुशलता में वृद्धि, आदि।
- मार्च 1957 में रोम में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसके फलस्वरूप यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community) का निर्माण हुआ जिसमें 6 सदस्य थे–फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेल्जियम, नीदरलैण्ड्स एवं लक्जेमबर्ग। यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) को यूरोपीय साझा बाजार (ECM) के नाम से भी जाना जाता है। यूरोपियन आर्थिक समुदाय का उद्देश्य एक साझा बाजार की स्थापना करना था ताकि सदस्य देशों में विकास, स्थिरता एवं लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि हो सके।
- भारत से यूरोप संघ को निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में सिलेसिलाए सूती वस्त्र और सह उत्पाद, रत्न और आभूषण, सूती धागे, कपड़े इससे तैयार माल, यंत्र और उपकरण तथा औषधि, फार्मास्यूटिकल्स और फाइन केमिकल्स शामिल हैं।
- भारत का यूरोपीय संघ के कई देशों–ऑस्ट्रिया, साइप्रस, चेक गणराज्य, फिनलैण्ड, फ्रांस, हंगरी, इटली, नीदरलैण्ड, पोलैण्ड, पुर्तगाल, स्लोवाक गणराज्य, स्लोवानिया तथा स्पेन के साथ अलग से भी व्यापारिक/आर्थिक सहयोग समझौता है।
- हाल ही में यूरोपीय समुदाय के नेताओं द्वारा यूरोपीय समुदाय के लिए एक सांझी मुद्रा (Common Money) के प्रयोग का निर्णय विश्व के आर्थिक परिवर्तन की दिशा में एक क्रान्तिकारी प्रयोग है।
- वर्तमान में भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक हिस्सेदार यूरोपीय संघ है। यूरोपीय संघ के साथ भारत के विदेशी व्यापार में बड़ी मात्रा में आयात की वस्तुओं के साथ-साथ निर्यात की वस्तुएं भी सम्मिलित हैं।

22.10 शब्दकोश (Keywords)

- **उन्मुक्त**–खुला हुआ।
- **संप्रभुता**–किसी राष्ट्र की स्वतंत्र सत्ता।

22.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. क्षेत्रीय आर्थिक समूह को समझाइए तथा इसके प्रकार को स्पष्ट कीजिए।
2. यूरोपीय साझा बाजार के उद्देश्यों एवं प्रगति का विवरण दीजिए।
3. यूरोपीय साझा बाजार का संगठन स्पष्ट कीजिए। भारत के साथ इसके व्यापार में क्या प्रगति हुई है, समझाइए।
4. यूरोपीय साझा बाजार के उद्देश्यों की प्रगति का विवरण दीजिए।
5. नाफ्टा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. (ग) 2. (ख) 3. (ख) 4. (ग)
5. (क)

2. 1. गतिशीलता 2. 14 अरब 3. साझेदारी और विकास
4. यूरो करेन्सी 5. नाफ्टा।

22.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—23: बहुपक्षवाद और विश्व व्यापार संगठन (Multilateralism and World Trade Organization)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 बहुपक्षवाद और विश्व व्यापार संगठन (Multilateralism and World Trade Organization)

23.2 विश्व व्यापार संगठन के समझौते (Agreement of WTO)

23.3 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत (WTO and India)

23.4 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्ड (International Labour Standard)

23.5 पर्यावरण संरक्षण (Environment Conservation)

23.6 सारांश (Summary)

23.7 शब्दकोश (Keywords)

23.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से बहुपक्षवाद की व्याख्या करने में।
- विश्व व्यापार संगठन के कार्यों एवं समझौतों को समझने में।
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्ड एवं पर्यावरण संरक्षण का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने, व्यापार में परिमाणात्मक प्रतिबन्धों को हतोत्साहित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के सुलझाने हेतु जिस GATT (गैट) की स्थापना 30 अक्टूबर, 1947 को की गई थी, उसका अस्तित्व 12 दिसम्बर, 1995 को समाप्त हो गया। उसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में एक अधिक शक्तिशाली संगठन 'विश्व व्यापार संगठन-WTO' की स्थापना की गई है।

गैट के आठवें दौर की वार्ता (जिसे उरुग्वे दौर के रूप में जाना जाता है) के **डंकल प्रस्तावों** को स्वीकार करते हुए अन्ततः 15 अप्रैल, 1994 को मोरक्को के मराकस नगर में गैट के 124 सदस्य देशों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके परिणामस्वरूप 1 जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई। 30 दिसम्बर, 1994 को समझौते पर हस्ताक्षर कर भारत इस विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य बन गया।

नोट

23.1 बहुपक्षवाद और विश्व व्यापार संगठन (Multilateralism and World Trade Organization)

गैट के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में एक अधिक प्रभावी संगठन "विश्व व्यापार संगठन–WTO" की स्थापना 1 जनवरी, 1995 को हुई। भारत इस संगठन का संस्थापक सदस्य है। लगभग पाँच दशक तक विश्व व्यापार पर निगरानी रखने वाला संगठन गैट बहुपक्षीय मुद्दों को सुलझाने में पूरी तरह से सफल नहीं हो सका, जिसके परिणामस्वरूप WTO अस्तित्व में आया। जहाँ गैट अस्थाई प्रकृति का था वहीं WTO स्थायी प्रकृति का संगठन है क्योंकि इसकी स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय संधि के अनुसार की गई है।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) का कार्य है विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के क्रियान्वयन, प्रशासन एवं परिचालन हेतु सुविधाएँ उपलब्ध कराना। विश्व संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग, व्यापार एवं प्रशुल्क के बारे में सदस्य देशों के बीच विचार विमर्श हेतु मंच उपलब्ध कराना आदि।

WTO की सबसे बड़ी चुनौती है बहुपक्षवाद। WTO के तीसरे सम्मेलन में सदस्य देशों ने विरोध प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारियों का आरोप था कि WTO विभिन्न मुद्दों पर नागरिक संस्थाओं की अनदेखी कर रहा है। जैसे मानवाधिकार से लेकर पर्यावरण संरक्षण तक के मुद्दों पर। सम्मेलन की कार्यसूची में श्रम मानकों जैसे गैर व्यापारिक मुद्दों के समावेश का भारत सहित कई विकासशील देशों ने कड़ा विरोध किया। यद्यपि WTO पर बहुपक्षीय व्यवस्था को सुचारू रूप से क्रियान्वित करने का भारी दबाव था। भारत कार्य सूची में व्यापारिक मुद्दों के अलावा गैर-व्यापारिक अथवा नये मुद्दों के थोपे जाने के विरोध में था। भारत श्रम जैसे मुद्दों को अंतर्राष्ट्रीय श्रम न्यायालय में भेजने के पक्ष में था। इस प्रकार WTO बहुपक्षीय मुद्दों को लेकर अनेक बार चर्चाओं में रहा है और सदस्यों के विरोध-प्रदर्शन का समना भी करता रहा है लेकिन सदस्यों के सुझावों को ध्यान में रखते हुए अपनी नीतियों को समय-समय पर परिवर्तित कर सामंजस्य स्थापित करता आ रहा है। WTO अपनी नीतियों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करते हुए सदस्य देशों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने में सफल हुआ है।

गैट के सभी सदस्यों द्वारा 1 जनवरी, 1995 तक WTO की सदस्यता ग्रहण न कर पाने के कारण यह निर्णय लिया गया है कि गैट का अस्तित्व अभी एक वर्ष और अर्थात् 1995 तक बना रहेगा। अन्ततः लगभग पांच दशक तक विश्व व्यापार पर निगरानी रखने वाले इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का अस्तित्व 12 दिसम्बर, 1995 को समाप्त हो गया।

मुख्यालय एवं सदस्यता– विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय गैट की ही भांति जेनेवा में स्थित है। वर्तमान समय में इसकी सदस्य संख्या 148 है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना सदस्य देशों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के आधार पर की गई है। अतः गैट की अस्थायी प्रकृति के विपरीत WTO एक स्थायी संगठन है।

विश्व बैंक, आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन तथा गैट सचिवालय द्वारा तैयार किए गए अनुमानों के अनुसार उरुग्वे दौर के पैकेज के परिणामस्वरूप व्यापार पर प्रभाव के रूप में सन् 2005 तक 745 अरब डॉलर के वस्तु व्यापार की वृद्धि होगी।

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यः-

(1) वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार को बढ़ावा देना।

(2) प्रभावपूर्ण माँग एवं रोजगार में व्यापाक एवं प्रभावी वृद्धि करना।

(3) विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

(4) पोषणीय अथवा सतत विकास की अवधारणा को स्वीकार करना।

(5) जीवन-स्तर में वृद्धि करना।

(6) पर्यावरण का संरक्षण एवं सुरक्षा करना।

नोट

विश्व व्यापार संगठन गैट के कार्य

(1) व्यापार एवं प्रशुल्क से सम्बन्धित किसी भी मसले पर सदस्य देशों के बीच विचार-विमर्श हेतु एक मंच के रूप में कार्य करना।

(2) विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के क्रियान्वयन, प्रशासन एवं परिचालन हेतु सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

(3) व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।

(4) विवादों के निपटारे से सम्बन्धित नियमों एवं प्रक्रियाओं को प्रशासित करना।

(5) विश्व आर्थिक नीति के निर्माण में अधिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक से सहयोग करना।

(6) विश्व संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

(7) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देने, व्यापार में परिमाणात्मक प्रतिबंधों को हतोत्साहित करने एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओं को सुलझाने हेतु गैट की स्थापना 30 अक्टूबर, 1947 को की गई थी।

WTO का प्रशासन—विश्व व्यापार संगठन के कार्य संचालन हेतु एक सामान्य परिषद (General Council) है जिसमें प्रत्येक सदस्य देश का एक स्थायी प्रतिनिधि होता है। इसकी बैठक सामान्यतया माह में एक बार जेनेवा में होती है। दिन-प्रतिदिन के प्रशासकीय कार्यों के संचालन हेतु संगठन का सर्वोच्च पदाधिकारी 'महानिदेशक' (Director General) होता है जो सामान्य परिषद द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है। महानिदेशक की सहायता के लिए विभिन्न सदस्य राष्ट्रों से चार उपमहानिदेशक भी चुने जाते हैं।

क्या आप जानते हैं विश्व व्यापार संगठन में नीति निर्धारण हेतु सर्वोच्च अधिकार प्राप्त इसका 'मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन' (Ministerial Conference) है। मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन का आयोजन प्रायः हर दूसरे वर्ष होता है।

WTO का प्रथम मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 9 से 13 सितम्बर, 1996 को सिंगापुर में हुआ। सम्मेलन में विचारणीय प्रमुख मुद्दों में श्रम मानकों, निवेश तथा प्रतिस्पर्धा को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के विषय सम्मिलित किए गए थे। इसके अतिरिक्त, टेक्सटाइल्स तथा सूचना प्रौद्योगिकी के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी विचारणीय मुद्दों में शामिल थे। भारत सहित विकाशील देश जहाँ श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के विरोध में थे, वहीं अमेरिका सहित विकसित राष्ट्र इन्हें जोड़ने के पक्ष में थे। भारत का कहना था कि श्रम मानक WTO की नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की विषय-वस्तु है। निवेश सम्बन्धी मामलों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने का भी भारत ने विरोध किया। पांच दिन चले इस सम्मेलन के घोषणा-पत्र में श्रम मानकों को ILO का विषय स्वीकार किया गया तथा स्पष्ट किया गया कि विकासशील राष्ट्रों के व्यापार को प्रतिबन्धित करने के लिए श्रम मानकों का प्रयोग नहीं किया जाएगा। विकासशील देशों के लिए यह एक बड़ी उपलब्धि थी। निवेश तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में विवाद का ट्रिम्स (Trade Ralated Investment Measures) के तहत हल किया जाएगा। इसके लिए एक कार्यकारी दल का गठन किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, कम्प्यूटर एवं सूचना प्रौद्योगिकी के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सन् 2000 तक शुल्क मुक्त कर देने का भी समझौता हुआ। भारत ने इस तिथि को आगे बढ़ाने की अपील की है।

WTO का दूसरा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 18 से 20 मई, 1998 को जेनेवा में सम्पन्न हुआ। इसमें 132 देशों के वाणिज्य मन्त्रियों ने भाग लिया। इसमें भारत ने क्षेत्रीय व्यापारिक गुटों के फैलाव का विरोध किया तथा इसे विकासशील देशों के साथ भेदभावपूर्ण वाला बताया।

नोट

WTO का तीसरा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 30 नवम्बर से 3 दिसम्बर, 1999 को अमेरिका के सिएटल नगर में सम्पन्न हुआ। इसमें 135 सदस्य देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन को लोगों के प्रदर्शन एवं विरोध का सामना करना पड़ा। प्रदर्शनकारियों का आरोप था कि मानवाधिकार से लेकर पर्यावरण संरक्षण तक के अनेक मुद्दों पर नागरिक संस्थाओं के विचारों का यह संगठन अनदेखी कर रहा है। सम्मेलन की कार्यसूची में श्रम मानकों जैसे गैर-व्यापारिक मुद्दों के समावेश का भारत सहित विकासशील देशों ने कड़ा विरोध किया। इसके अतिरिक्त बाजार पहुँच (Market Access), कृषि सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी समझौते आदि विवादास्पद मुद्दों पर सदस्य देशों आम सहमति पर नहीं पहुँच सके। बायो-टेक्नोलॉजी को वार्ता में शामिल किए जाने के अमेरिका प्रयास का भी विरोध हुआ। अधिकांश मुद्दों पर आम सहमति न बन पाने के कारण सम्मेलन की समाप्ति पर कोई घोषणापत्र जारी नहीं किया जा सका तथा सम्मेलन के कार्य को स्थगित करने की घोषणा की गई। विश्व व्यापार संगठन के निदेशक माइक मूर को सदस्य देशों के साथ विचार-विमर्श करके सम्मेलन के कार्य को पुन: शुरू करने की बात कही गई।

WTO का चौथा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन—विश्व व्यापार संगठन की भावी कार्य योजना का विनिश्चय करने के लिए 9 से 14 नवम्बर, 2001 के बीच दोहा (कतर) में चौथे विश्व व्यापार संगठन का मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन आयोजित किया गया। यद्यपि निवेश सम्बन्धी बहुपक्षीय व्यवस्था, प्रतिस्पर्द्धा नीति, व्यापार सरलीकरण, पर्यावरण मुद्दों सहित वार्ताओं का व्यापाक दौर शुरू करने का दबाव था, भारत कार्य सूची में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली पर व्यापार भिन्न अथवा नए मुद्दों के ऐसे किसी अतिभार को लादने के विरुद्ध था। इसका विचार था कि विश्व व्यापार संगठन के पास अधिदेशित वार्ताओं एवं अधिदेशित समीक्षाओं सहित पर्याप्त विस्तृत कार्यसूची थी अत: भारत ने वार्ताओं के लिए नए मुद्दों पर विचार करने से पूर्व वर्तमान करारों से उत्पन्न क्रियान्वन मुद्दों का समयबद्ध आधार पर समाधान किये जाने की आवश्यकता को रेखांकित किया।

दोहा में आयोजित चौथे मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन के विचार-विमर्श में भारत ने सक्रिय भूमिका निभाई। यह क्रियान्वयन सम्बन्धी मुद्दों के वास्तविक समाधान, कृषि में वर्धमान बाजार पहुँच, जन स्वास्थ्य नीतियों के लिए ट्रिप्स के अन्तर्गत पर्प्याप्त सुनम्यता एवं स्पष्टता के पक्ष में था तथा कार्यसूची में श्रम जैसे व्यापार भिन्न मुद्दों को शामिल किए जाने के सख्त विरुद्ध था। यह ऐसी कार्य सूची को अपनाए जाने को सुनिश्चित करने में समर्थ रहा जिसमें न सिर्फ व्यापार पर, बल्कि विकासशील देशों के विकासात्मक लक्ष्यों एवं प्राथमिकताओं पर भी जोर दिया गया है। सम्मेलन के निष्कर्ष में भारत द्वारा व्यक्त की गई अनेक चिन्ताओं को ध्यान में रखा गया है। दोहा घोषणा-पत्र द्वारा भावी व्यापार वार्ताओं के लिए कार्य सूची निर्धारित किए जाने के साथ ही केन्द्र बिन्दु अब विश्व व्यापार संगठन में कार्य योजना को और बदलेगा। अन्य विकास देशों के साथ मिलकर भारत यह सुनिश्चित करेगा कि कार्य योजना में उनके हितों एवं चिन्ताओं पर यथेष्ट ध्यान दिया जाए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)—

1. विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्स्य .... है।
2. विश्व व्यापार संगठन की सदस्य संख्या .... है।
3. .... का प्रथ मंत्रिस्तरीय सम्मेलन 9 ससे 13 सितम्बर, 1996 को सिंगापुर में हुआ।
4. WTO के तीसरे मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में .... देशों ने भाग लिया।

23.2 विश्व व्यापार संगठन के समझौते (Agreement of WTO)

विश्व व्यापार संगठन समझौता (WTO Agreement) गैट की उरुग्वे दौर की वार्ताओं के परिव्ययों पर आधारित WTO के मूलभूत समझौते में निम्नलिखित को सम्मिलित किया गया—

(1) कृषि से सम्बन्धित समझौते,

नोट

(2) व्यापार सम्बन्धित बौद्धिक सम्पदा अधिकार,

(3) व्यापार से सम्बन्धित विनियोजन (अथवा निवेश) उपाय,

(4) व्यापार-सेवाओं से सम्बन्धित सामान्य समझौता,

(5) झगड़ों के निपटान से सम्बन्धित नियमों एवं प्रक्रियाओं का समझौता,

(6) बहु पार्श्विक व्यापार समझौते,

(7) व्यापार में तकनीकी बाधाओं का समझौता,

(8) प्रतिराशिपातन पर समझौता,

(9) व्यापार नीति पुनरावलोकन तंत्र।

इस तरह, वर्ष 1986 में उरुग्वे में प्रारम्भ हुए बहुआयामी व्यापार समझौते के अन्तर्गत पूर्व की भांति वस्तुओं के व्यापार के अतिरिक्त अनेक महत्वपूर्ण विषयों; यथा कृषि, बौद्धिक अधिकार, व्यापार सम्बन्धित निवेश के उपाय तथा व्यापार सेवाओं से सम्बन्धित उपायों को सम्मिलित किया गया। उरुग्वे दौर की वार्ता में विभिन्न राष्ट्रों के बीच उपर्युक्त विषयों पर एक पैकेज दृष्टिकोण अपनाने पर सहमति हुई, ताकि एक क्षेत्र में दी गई सुविधाओं का दूसरे क्षेत्र में भी लाभ प्राप्त किया जा सके।

1. कृषि से सम्बन्धित प्रस्ताव एवं समझौते– कृषि को गैट की आठवें दौर (अर्थात् उरुग्वे दौर) की वार्ता में प्रथम बार सम्मिलित किया गया।

कृषि को विश्व व्यापार से सम्बद्ध करने के महत्व को WTO की मन्त्रिस्तरीय इस घोषणा में समझा जा सकता है, "इस बात की प्रबल आवश्यकता थी कि विश्व कृषि व्यापार में अधिक अनुशासन और निश्चितता लाई जाये और संरचनात्मक अधिशेष सहित इस क्षेत्र के प्रतिबन्धों एवं विकृतियों को सुधारने एवं रोकने के प्रयास किए जायें ताकि विश्व कृषि बाजार असन्तुलन, अस्थिरता और अनिश्चितता के माहौल से उबर सके।"

विश्व व्यापार संगठन का कृषि से सम्बन्धित समझौता घरेलू सब्सिडी, निर्यात सब्सिडी, न्यूनतम बाजार पहुँच की वचनबद्धता, घरेलू सहायता, स्वास्थ्य, वनस्पति तथा खाद्य सहायक कार्यों से सम्बद्ध है। यह समझौता (अ) गैर-टैरिफ उपायों के स्थान पर साधारण कस्टम ड्यूटी लगाकर, जो धीरे-धीरे कम की जाएगी घरेलू बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिए खोलता है (ब) यह सरकारी सहायता को धीरे-धीरे कम करके अति उत्पादन को धीरे-धीरे नियंत्रित करने का प्रयास करता है और परिणामस्वरूप अतिरेकों को भी, जो या तो निर्यात सब्सिडी के द्वारा बेचे अथवा नष्ट किए जाते हैं। (स) यह निर्यात प्रतिस्पर्धा पर नई नियमावलियों को लागू करने और सब्सिडी तथा सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा को कम करने के प्रयत्नों को भी प्रेरित करता है।

(क) कृषि अनुदान की समाप्ति–सन्धि में कृषि के क्षेत्र में प्रथम सुझाव कृषि में दिए जाने वाले अनुदानों (Subsidies) की समाप्ति का है। अनुदान के कारण कृषि उत्पादों की कीमतें उस देश में अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों से कम होती हैं। ऐसी धारणा है कि इसके कारण विकसित देशों के कृषि उत्पादों के विपणन में, कीमतों में अधिकता के कारण बाधा पहुँचती है।

कृषि में दिए जाने वाले घरेलू अनुदान अथवा सब्सिडीयाँ दो प्रकार के होते हैं–

(*i*) **उत्पादन के उपादानों से सम्बन्धित अनुदान–**इस श्रेणी के अनुदान में उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपादनों यथा : उर्वरकों, सिंचाई, बीज, कृषि ऋण आदि पर दिए गए अनुदान शामिल किए जाते हैं। डंकल प्रस्ताव के अनुसार विकासशील देशों में इस तरह की दी जाने वाली राशि वर्ष 1986 से 1988 के आधार वर्षों में कुछ उत्पाद मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। WTO प्रस्ताव के अनुसार इस तरह की अनुदान राशि प्रतिशत आकलन करने में गरीब कृषकों एवं साधन रहित कृषकों को दी जाने वाली अनुदान राशि सम्मिलित नहीं की जाती है।

(*ii*) **विशिष्ट उत्पाद के उत्पादन से सम्बन्धित अनुदान–**कृषि के क्षेत्र में एक अन्य प्रकार की अनुदान राशि कुछ

नोट

विशिष्ट फसलों के उत्पादन के लिए दी जाती है। W.T.O. प्रस्तावों के अनुसार इस प्रकार की अनुदान राशि भी किसी विशेष उत्पाद के कुल उत्पाद मूल्य के दस प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। कुल उत्पाद मूल्य आधार वर्ष की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कीमत के आधार पर ज्ञात किया जाता है।

समझौते में यह तय किया गया कि विकासशील देश अपने उत्पाद मूल्य के 10 प्रतिशत तक आर्थिक अनुदान उपलब्ध करा सकते हैं, जबकि विकसित देशों के लिए यह सीमा 5 प्रतिशत के निम्न स्तर तक है। यदि किसी देश के अनुदान इस निर्धारित सीमा से ऊँचे हैं तब उन्हें छः वर्षों के अन्दर 20 प्रतिशत कम करना होगा।

(ख) निर्यात सब्सिडियाँ–W.T.O. के सदस्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के कार्यकाल में प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडियों के मूल्य को कम करके 1986-90 की आधार अवधि स्तर के नीचे 36% पर ले जाएँ और सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा को उसी अवधि के 21% के स्तर पर। विकासशील देशों के लिए यह कटौतियां 10 वर्ष के लिए कार्यकाल में विकसित देशों की कटौतियों का 2/3 होंगी। न्यूनतम विकसित देशों के लिए कमी नहीं की जाएगी।

(ग) न्यूनतम बाजार-पहुँच वचनबद्धता–न्यूनतम बाजार-पहुँच वचनबद्धता उन्हीं देशों पर लागू है जो कृषि सम्बन्धी आयात में टैरिफ भिन्न रुकावटों का प्रयोग करते हैं और तदनुरूप ही इन रुकावटों को टैरिफ का रूप देने तथा इन टैरिफों को 6 वर्ष के काल में 36% कम करने को बाध्य हैं। इन देशों के लिए यह आवश्यक है कि 6 वर्ष के लिए विदेशी कृषि उत्पादों की खपत की न्यूनतम 3% बाजार प्रवेश सुविधा विदेशी कृषि उत्पादों को दें जो 6 वर्ष के बाद बढ़कर 5% हो जाएंगी। विकासशील देशों में कृषि उत्पादों का टैरिफ 10 वर्ष के काल में 24% कम किया जाएगा। न्यूनतम विकसित देशों में टैरिफ में कोई कमी नहीं कि जाएगी।

(घ) घरेलू सहयोग–उन घरेलू सहयोग अथवा समर्थन (Domestic support) के उपायों में, जिनके द्वारा व्यापार पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता है, जिन्हें ग्रीन बॉक्स (Green Box) नीतियाँ कहते हैं, यह कटौती लागू नहीं होती। इन नीतियों में सामान्य सरकारी सेवाएँ सम्मिलित हैं, जैसे–अनुसन्धान, रोग-नियन्त्रण, आधार संरचना और खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र। इनमें वे भुगतान भी सम्मिलित हैं जो कृषकों को प्रत्यक्ष रूप में दिए जाते हैं ताकि वे उत्पादन को प्रोत्साहित कर सकें, जैसे–कृषकों को कृषि के पुनर्गठन के लिए आय सहायता तथा पर्यावरण एवं नियमित सहायता कार्यक्रमों के अधीन प्रत्यक्ष भुगतान। यह परिभाषा बहुत विस्तृत है और इसमें सभी प्रकार की सरकारी सब्सिडीयाँ सम्मिलित की जा सकती हैं।

(ङ) स्वास्थ्य एवं पशुधन स्वास्थ्य के उपाय–स्वास्थ्य एवं पशुधन स्वास्थ्य उपायों के अन्तर्गत खाद्य सुरक्षा तथा पशु और वनस्पति स्वास्थ्य के उपाय सम्मिलित हैं। समझौते की धारणा है कि विभिन्न देशों की सरकारों को पूर्णाधिकार है कि मनुष्य, पशु और वनस्पति के जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उचित उपाय करें, परन्तु यह भी आवश्यक है कि वे मनमाने ढंग से अथवा अनुचित रूप से अन्य सदस्यों के बीच, जहाँ स्थिति समरूप अथवा एक जैसी हो, भेदभाव न करें। समझौता यह भी सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि पशु और वनस्पति स्वास्थ्य के उपाय व्यापार में अनुचित बाधा न डालें। समझौता मनुष्य और पशु स्वास्थ्य की सुरक्षा के उचित स्तरों के निर्धारण और जोखिमों के मूल्यांकन की प्रक्रियाओं और मापदण्डों का वर्णन करता है।

(च) खाद्य भण्डारण और खाद्य सहायता–समझौते में मान्य है कि अन्तरित काल में न्यूनतम विकसित और खाद्य आयाती विकासशील देश खाद्य आयात में ऋणात्मक प्रभावों का अनुभव कर सकते हैं, अतः इसने कृषि विकास के लिए खाद्य सहायता और मूल खाद्यान्नों में पूर्ण अनुदान और सहायता के लक्ष्य रखे हैं। यह IMF तथा विश्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक खाद्य आयात के लिए अल्पविकसित वित्तीय सहायता की सम्भावना को मानता है। कृषि समझौते के प्रावधानों के कार्यान्वयन के पुनरावलोकन हेतु एवं कृषि समिति का गठन किया गया है।

2. व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights, TRIPs): WTO का दूसरा महत्वपूर्ण समझौता बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित है। इसके अनुसार किसी भी नए आविष्कार के पंजीकृत पेटेन्ट पर 20 वर्षों के लिए सम्पूर्ण विश्व के विरुद्ध एकाधिकार प्राप्त हो जाएगा। इस अवधि में विश्व में कहीं भी किसी अन्य व्यक्ति/संस्था को उस पेटेन्ट से रक्षित उत्पाद का उत्पादन करने के लिए

पेटेन्टधारी व्यक्ति/संस्था से अनुज्ञा लेनी होगी व उसे निर्धारित रॉयल्टी राशि का भुगतान करना होगा। इस उत्पाद के उत्पादन के लिए पेटेन्टधारी से प्रौद्योगिकी न लेकर स्वयं के द्वारा किए गए अनुसन्धान एवं शत-प्रतिशत स्वप्रयासों से उत्पादन तकनीक विकसित कर लेने पर भी 20 वर्ष तक पेटेन्टधारी की अनुज्ञा के बिना उत्पादन करने का अधिकार नहीं रहेगा। उस उत्पाद पर भावी शोध व उसके परिवर्धन, सुधार करने का अधिकार भी पेटेन्टधारी व्यक्ति/संस्था को ही होगा।

नोट्स TRIPs समझौते के अन्तर्गत 7 प्रकार की बौद्धिक सम्पत्ति आती है—(1) कॉपीराइट तथा तत्सम्बन्धी अधिकार, (2) ट्रेन्डमार्क, (3) भौगोलिक संकेत, (4) औद्योगिक डिजाइन, (5) पेटेन्ट जिनमें सम्मिलित हैं सूक्ष्म जीवाणु और पौधों की विभिन्न जातियाँ, (6) संघटित सर्किट तथा (7) व्यापारिक रहस्य।

3. व्यापार से सम्बन्धित विनियोजन उपाय (Trade Ralated Investment Measures, TRIMs): विश्व व्यापार संगठन सन्धि की तीसरी महत्वपूर्ण बात व्यापार से सम्बन्धित विनियोजन उपायों की है। इसके अनुसार कोई राष्ट्र विदेशी पूँजी विनियोग का नियमन एवं नियन्त्रण नहीं कर सकेगा। विकासशील देशों के लिए विनिमय दर में गिरावट रोकने, विदेशी पूँजी से अर्जित लाभ के पुनर्विनियोजन को सुनिश्चित करने, निर्यात वृद्धि करने और देश के लघु एवं रोजगार प्रधान उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए विदेशी पूँजी का नियमन करना आवश्यक समझा जाता है।

यह समझौता स्वीकार करता है कि कुछ निवेश उपाय, व्यापार में रुकावट डालते हैं और उसे विकृत कर देते हैं। अत: WTO यह अपेक्षा रखता है कि विकसित देश 2 वर्ष में, विकासशील देश 5 वर्ष में और विकसित देश 7 वर्ष में सब गैर-अनुरूप TRIMs को अनिवार्य रूप से सूचित करेंगे तथा उसे हटा देंगे। WTO ने TRIMs पर एक समिति का गठन किया है जो इन वचनबद्धताओं के पालन को मानीटर करेगी और इसकी रिपोर्ट वस्तुओं में व्यापार के काउन्सिल को प्रतिवर्ष देगी।

4. व्यापार-सेवाओं से सम्बन्धित सामान्य समझौता (General Agreement on Trade in Services, GATS): विश्व व्यापार संगठन सन्धि के चौथे समझौते के अन्तर्गत सभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-योग्य सेवाएँ आती हैं। विदेशी सेवाएँ और सेवा प्रदाता, घरेलू सेवाओं और सेवा-प्रदाताओं के बराबर समझे जाएँगे तथापि सरकारें विशिष्ट परम-मित्र राष्ट्र (MFN) की छूट की सूचना देंगी, जिसका 5 वर्ष पश्चात् पुनरावलोकन किया जाएगा। इसकी सीमा सामान्यत: 10 वर्ष की होगी। यह पारदर्शिता पर बल देता है, जिसमें सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी नियमनों का प्रकाशन सम्मिलित है। सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान और हस्तान्तरण में रुकावट नहीं डाली जाएगी, सिवाय भुगतान शेष की कठिनाइयों के जहाँ ऐसी रुकावटें अस्थायी, सीमित और कुछ शर्तों के अधीन होंगी। सेवाओं में व्यापार का उदारीकरण उत्तरोत्तर होगा। सेवाओं के व्यापार में प्रतिकूल प्रभावों की कटौती अथवा नितान्त समाप्ति तथा सरकारों द्वारा विशिष्ट वचनबद्धताओं के सामान्य-स्तर को ऊँचा करना, ये सब प्रति 5 वर्ष के अन्तराल में वार्ताओं के द्वारा किया जाएगा।

इस समझौते में विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेष शर्तें भी दी गई हैं। जहाँ तक मूल निवासियों के आवागमन का सम्बन्ध है, इसके अनुसार देशों की सरकारों को छूट है कि अपनी सेवाएँ देने के लिए उनकी अस्थायी निवास सम्बन्धी विशेष वचनबद्धताओं के लिए परस्पर बातचीत करें। यह उन लोगों पर लागू नहीं जो स्थायी निवास अथवा रोजगार के इच्छुक हों।

वित्तीय सेवाओं के सम्बन्ध में यह देशों की सरकारों को अधिकार देता है कि निवेशकों, जमाकर्ताओं और पॉलिसी-धारकों के लिए उचित उपाय करें तथा आर्थिक प्रणाली की अखण्डता और स्थिरता को सुनिश्चित करें। **दूरसंचार** के क्षेत्र में यह देशों को निर्देश देता है कि वे दूरसंचार वहन तन्त्रों का स्थापन, निर्माण, अधिग्रहण, पट्टे पर देना, संचालन या पूर्ति सुनिश्चित करें और जनता को उपलब्ध कराएं। विकासशील देश अपने घरेलू दूरसंचार ढांचे और सेवाओं की और सेवा-सीमाओं की पुष्टता तथा अन्तर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ और अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन के सहयोग से दूरसंचार सेवाओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सहयोग की वृद्धि के लिए उपाय करें। GATS विमानों की मरम्मत और रख-रखाव सेवाओं, वायु यातायात सेवाओं के विपणन तथा कम्प्यूटर आरक्षण सेवाओं पर भी लागू होता है।

नोट

5. विवाद निपटान प्रणाली– WTO के स्थापना समझौते के प्रावधानों के अन्तर्गत सदस्य देशों के एकाधिकार एवं कर्तव्य से सम्बन्धित विषय पर विचार-विमर्श और विवाद के निपटान का प्रावधान विवाद-निपटान (Dispute Settlement) नियमों और प्रणालियों के समझौते में किया गया है। इसके लिए एक विवाद निर्धारण निपटान संस्था (Dispute Settlement Body-DSB) की स्थापना की गई है। विवाद के प्रथम चरण में सम्बन्धित सदस्यों के बीच विचार-विमर्श का प्रावधान है। वार्ता असफल होने की दशा में WTO का डाइरेक्टर जनरल मध्यस्थता और समाधान के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करता है। शिकायती सदस्य DSB से 30 दिन के अन्दर 3 विशेषज्ञों के नाम की सूची के लिए अनुरोध कर सकता हें यह भी प्रावधान है कि DSB द्वारा मनोनीति एक सात सदस्यीय अपील समिति उसका पुनरावलोकन करके DSB को 60 से 90 दिन के अन्दर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी। DSB इस रिपोर्ट को 30 दिन के भीतर अनुमोदित करेगी और इसे बिना शर्त दोनों देशों को मानना होगा।

6. बहुपार्श्विक व्यापार समझौते– बहुपार्श्विक व्यापार समझौते (Plurilateral Trade Agreements-PTA) में शामिल हैं—नागरिक विमानन व्यापार समझौता, सरकारी खरीद का समझौता, अन्तर्राष्ट्रीय दुग्धोत्पादन समझौता तथा अन्तर्राष्ट्रीय गोमांस समझौता। इसमें पहला समझौता जेनेवा में अप्रैल, 1979 में हुआ जो बाद में संशोधित, परिवर्द्धित एवं परिमार्जित किया गया। अन्तिम तीन समझौते माराकेश में 15 अप्रैल, 1994 में हुए थे।

टास्क बहुपार्श्विक व्यापार समझौते (Plurilateral Trade Agreements-PTA) से आप क्या समझते हैं?

7. व्यापार में तकनीकी बाधाओं का समझौता– व्यापार में तकनीकी बाधाओं का समझौता (Agreement on Technical Barriers to Trade) टोकियो दौर में स्वीकृत व्यापार में तकनीकी बाधाओं के समझौते का विस्तारण और स्पष्टीकरण है। इस समझौते में यह सुनिश्चित किया गया है कि तकनीकी विमर्श और मानक, परीक्षण और प्रमाणन प्रणालियाँ व्यापार के मार्ग में अनावश्यक रुकावट न बनें, फिर भी यह समझौता स्वीकार करता है कि देशों को मानवीय, पशु अथवा वनस्पति स्वास्थ्य तथा पर्यावरण की रक्षा का अधिकार है। समझौते में मानवीकरण संस्थाओं द्वारा मानकों की संरचना, स्वीकृति और उपयोग की संहिता (Code) सम्मिलित है।

8. प्रति-राशिपातन पर समझौता– गैट के अनुच्छेद VI के अनुसार, यदि राशिपातन आयात, आयातकर्ता देश के घरेलू हितों को हानि पहुँचाता है तो अनुबन्धित सदस्य को यह अधिकार है कि वह राशिपातन विरोधी उपायों (Anti Dumping Measures) को अपनाए। संशोधित समझौता टोकियो दौर के समझौते का परिवर्धित रूप है। यह राशिपातित आयात से घरेलू उद्योगों की क्षति का मूल्यांकन, राशिपातन विरोधी छानबीन प्रारम्भ करने और कार्यरूप देने, घरेलू अधिकारियों द्वारा की गई राशिपातन के झगड़े निपटान की कार्यवाही करने की प्रक्रिया में अधिक स्पष्टता, अधिक विस्तृत नियम और मापदण्ड निर्धारित करता है। नए नियमों के अन्तर्गत राशिपातन विरोधी छानबीन तुरन्त बन्द कर दी जाएगी यदि 'डम्पिग की सीमा' निर्यात कीमत के 2% से कम है, या किसी विशेष देश में डम्प किए गये आयात मात्रा उस उत्पाद के कुल आयात से 3% कम है बशर्ते कि यह ऐसे कुल डम्प किए आयात की 7% की सीमा के अन्तर्गत हो।

9. व्यापार-नीति पुनरावलोकन तन्त्र– व्यापार-नीति पुनरावलोकन तन्त्र (Trade Policy Review Mechanism-TPRM) बहुपक्षीय व्यापार तन्त्र के सुचारु रूप से चलने के लिए बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के अन्तर्गत व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं का पुनरावलोकन करता है, इस उद्देश्य के लिए यह व्यापार-नीति पुनरावलोकन संस्था (Trade Policy Review Body-TPRB) की स्थापना का संकेत करता है। पूर्ण पारदर्शिता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक सदस्य TPRM को निरन्तर अपने द्वारा जारी व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं को रिपोर्ट देता रहेगा। TPRB बहुपक्षीय व्यापार तन्त्र पर प्रभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के वातावरण में वर्तमान प्रवृत्तियों का वार्षिक अति-निरीक्षण करेगा।

डाइरेक्टर जनरल द्वारा समर्पित वार्षिक रिपोर्ट इस अति-निरीक्षण में सहायक होगी, जो WTO के मुख्य कार्यों की व्याख्या करेगी और बहुपक्षीय व्यापार तन्त्र पर प्रभाव डालने वाले नीतिगत विषयों पर विशेष प्रकाश डालेगी।

समीक्षा—विश्व व्यापार संगठन के विभिन्न सम्मेलनों में बहुपक्षीय व्यापार तन्त्र द्वारा मुक्त विश्व व्यापार की उन्नति में सदस्यों द्वारा विश्वास व्यक्त किया जाता रहा है। समझौतों से सम्बन्धित कतिपय मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच गम्भीर मतभेद अभी भी बना हुआ है। कृषि सब्सिडी में कटौती तथा सिंगापुर मुद्दे पर सर्वसम्मति अभी भी नहीं बन पाई है। आलोचकों की धारणा है कि विश्व व्यापार संगठन के अधिकांश समझौते धनी देशों के हितों के पोषक हैं। संगठन की बैठकों में इन्ही देशों का प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है।

मन्त्रिस्तरीय सम्मेलनों के अतिरिक्त WTO का विवाद निपटान बोर्ड (DSB) अपना कार्य सुचारु रूप से कर रहा है। इसके समक्ष कई विवाद पेश किए गए जिनका दृढ़तापूर्वक निपटारा इस संस्था द्वारा किया गया। इसका पहला निर्णय अमेरिका के पेट्रोल टैक्स विषयक था, जिसके फलस्वरूप वाशिंगटन ने अपने कानून को सुधारने का निश्चय किया। दिसम्बर, 1996 में इसने अमेरिका के विरुद्ध भारत के पक्ष में भारत निर्मित ऊनी वस्त्रों की अमेरिकी बाजार में बिक्री के विषय में निर्णय दिया। नवम्बर, 1996 में इसी प्रकार कोस्टारिका ने अमेरिका में सूती कमीज बिक्री सम्बन्धी मुकदमा जीता। अमेरिका ने, एकपक्षीय दण्ड देने की बजाय, जापानी फिल्म मार्केट के विषय में जापान को DSB में घसीटा। अमेरिका के विरुद्ध तीन निर्णयों ने WTO सदस्यों में, विशेषकर विकासशील देशों में, विश्वास जाग्रत किया है कि DSB ऐसी विवादों में उचित एवं न्यायसंगत निर्णय लेने में सक्षम है।

आलोचकों की धारणा है कि विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से कुछ हद तक स्वतन्त्र व्यापार और वैश्वीकरण को बढ़ावा तो मिल सकता है, परन्तु यह विश्व अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास करने में सक्षम है, इसमें संदेह है। यह अधिक विकसित देशों के लिए और अधिक विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा। इसके कार्यकरण से जिस नई आर्थिक व्यवस्था का सूत्रपात होगा उसमें निश्चित ही नवीन एवं जटिल समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है जिसके फलस्वरूप वर्तमान शताब्दी को अवांछित दुष्परिणामों का सामना करना पड़ सकता है। विश्व व्यापार संगठन के कार्यकरण के साथ-साथ देशों के बीच न समाप्त होने वाले समझौतों का दुष्चक्र विवाद तथा असहमति, का दायरा भी बढ़ता जा रहा है। वैश्वीकरण के साथ ही साथ क्षेत्रीय तथा व्यापार गुटों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव विश्व अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास को कहाँ तक बढ़ावा दे सकेगा यह विचारणीय विषय है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा वैश्वीकरण एवं उदारीकरण पर बल दिए जाने का प्रभाव यह हो रहा है कि अल्पविकसित देशों के समक्ष बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रभुत्व का खतरा मंडराने लगा है। उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में विश्व व्यापार संगठन को रोबस्ट ग्लोबल कैपिटलिज्म की न्यायोचित व्यवस्था को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है न कि 'रोबर कैपिटलिज्म' को।

23.3 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत (WTO and India)

वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन में शामिल होने के उपरान्त भारत द्वारा भूमण्डलीकरण की नीतियों का अनुपालन करने के परिणामस्वरूप विश्व निर्यात व्यापार में भारत का भाग जो 1990 में 0.5% था वह बढ़कर 1965 में 0.6% तक पहुँच गया। आर्थिक सुधारों की 12 वर्षों की अवधि के दौरान 2002 तक यह भाग बढ़कर 0.8 प्रतिशत स्तर तक पहुँच गया।

वर्ष 1990 में भारत का कुल निर्यात 18,143 मिलियन अमेरिकी डॉलर था जो बढ़कर 1995 में 31,117 मिलियन डॉलर तथा 1998 में 32,700 मिलियन डॉलर हो गया। 1999 में भारत का निर्यात कुछ घटकर 32,639 मिलियन रह गया। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1999-2000 में भारत का कुल निर्यात 36,822 मिलियन डॉलर, 2001-01 में 44,560 मिलियन डॉलर तथा वर्ष 2003-04 में 63,843 मिलियन डॉलर रहा।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 2002-03 के दौरान भारत का व्यापारिक वस्तुओं का कुल निर्यात 51.7 अरब अमेरिकी डालर था। इस तरह भारत को 50 अरब अमरीकी डालर निर्यात का महत्वपूर्ण आंकड़ा प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई। इस दौरान देश के कुल निर्यात में 18.05 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई जो कि निर्धारित 12 प्रतिशत के लक्ष्य से बहुत अधिक है। रुपये में वर्ष 2002-03 के दौरान व्यापारिक वस्तुओं का कुल निर्यात 2,50,130 करोड़ रुपये था जबकि

नोट

वर्ष 2001-02 में निर्यात 2,09,018 करोड़ रु. था। इस प्रकार इसमें 19.67% की वृद्धि हुई। इस तरह रुपए के हिसाब से निर्यात विगत एक दशक में तीन गुने से ज्यादा बढ़ गया। वर्ष 2003-04 में भारत का निर्यात पुनः बढ़कर 2,93,367 करोड़ रु. हो गया।

वर्ष 2002 के लिए विश्व व्यापार संगठन की नवीनतम् रिपोर्ट के अनुसार भारत ने व्यापारिक वस्तुओं के निर्यात में 15% की वृद्धि दर्ज की है और इस क्षेत्र में वर्ष 2002 में विश्व के 30 प्रमुख निर्यातक और आयातक देशों में भारत ने चीन (22%) के बाद दूसरा स्थान प्राप्त कर लिया है।

इसके साथ ही देश का आयात भी वर्ष 2001-02 में 2,41,929 करोड़ रुपए से बढ़कर 2002-03 में 2,87,303 करोड़ रु. हो गया। इस तरह इसमें 18.76% की वृद्धि दर्ज हुई। वर्ष 2003-04 में भारत का आयात बढ़कर 2,99,108 करोड़ रु. हो गया। रुपए के हिसाब से वर्ष 2002-03 में व्यापार घाटा (–) 37,173 करोड़ रु. था जो वर्ष 2001-02 में (–) 32,911 करोड़ रु. रहा। इसी तरह वर्ष 2003-04 में देश का व्यापार घाटा बढ़कर (–) 65,741 करोड़ रु. हो गया।

भारत के भुगतान सन्तुलन में चालू खाते का घाटा वर्ष 1991-92 में (%) 1,178 मिलियन डालर था, जो बढ़कर 1999-2000 में (–) 4,698 मिलियन डालर हो गया। वर्ष 2000-01 में चालू खाते का घाटा (–) 3,590 मिलियन डालर रहा। इसके पश्चात् स्थिति में तेजी से बदलाव आया तथा अदृश्य व्यापार की मदों की प्राप्तियों में भारी वृद्धि हुई जिससे भुगतान सन्तुलन का चालू खाता देश के पक्ष में हो गया। वर्ष 2003-04 में भारी व्यापार घाटे के बावजूद अदृश्य प्राप्तियों में आई मजबूती से भुगतान सन्तुलन के चालू खाते का शेष बढ़कर 10,561 मिलियन डालर हो गया।

उल्लेखनीय है कि वर्ष 2002 में कुल विश्व निर्यात व्यापार (6,272 बिलियन डालर) में भारत का हिस्सा 0.8 प्रतिशत रहा जबकि अमेरिका का हिस्सा 10.7% चीन का हिस्सा 5.2% तथा जापान का हिस्सा 6.6% रहा। इसी तरह इस दौरान कुल विश्व आयात व्यापार (6,510 बिलियन डालर) में भारत का हिस्सा 0.9%, चीन का हिस्सा 4.5% तथा जापान का हिस्सा 5.2% रहा। वर्ष 2004 में भी विश्व निर्यात व्यापार में भारत का हिस्सा 0.8% ही बना रहा जबकि इसी वर्ष इसके निर्यात में 28.1% की वृद्धि दर्ज की गई।

भारत के सेवाओं के निर्यात व्यापार में 1990 के उपरान्त पर्याप्त प्रगति हुई है। वर्ष 1990 में विश्व सेवा निर्यात व्यापार में भारत का हिस्सा 0.5% (4.6 बिलियन अमेरिकी डालर) था जो बढ़कर 2001 में 1.4% (20.9 बिलियन अमेरिकी डालर) हो गया।

अब प्रश्न यह उठता है कि विश्व व्यापार में भारत के भाग में अपेक्षित वृद्धि क्यों नहीं हो पा रही है? इसका प्रमुख कारण है कि जहाँ **विकसित देश विश्व व्यापार संगठन जैसे राज्योपरि संगठन** (Super-statal Organisation) **के दबावाधीन विकासशील देशों को अपने व्यापार अवरोधक** (Trade Barriers) **को समाप्त करने और वस्तुओं के बेरोक-टोक प्रवाह के लिए मजबूर करते हैं, वहीं अपने हितों की रक्षा के लिए संरक्षणात्मक नीतियाँ चलाने के लिए व्यापार अवरोधक खड़े करते हैं।** इस सम्बन्ध में **आर्थिक समीक्षा** (1994-95) में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि, "नब्बे के दशक में औद्योगिक देशों में बेरोजगारी अपनी चरम सीमा पर थी। इस कारण न केवल इन देशों में समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, बल्कि अन्य देशों में भी संरक्षणवाद का शोर भयंकर बन सकता है और इससे बहुपक्षीय व्यापार को खतरा उत्पन्न हो सकता है।.......चाहे बहुत-से विकासशील देशों ने आर्थिक सुधारों के अंग के रूप में अपने व्यापार को महत्वपूर्ण ढंग से उदार बना दिया है, विकसित देशों ने व्यापार अवरोधक खड़े किए हैं और विकासशील देशों के लाभ की मदों को बाजार प्राप्त करने में खतरा उत्पन्न हो गया है।" इस तरह विकसित देश विकासशील देशों के निर्यात व्यापार में तरह-तरह के अवरोध खड़े करने का प्रयास करते हैं जिसके परिणामस्वरूप विश्व निर्यात व्यापार में इनका हिस्सा बढ़ नहीं पा रहा है।

नोट

23.4 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्ड (International Labour Standard)

विकासशील देशों के निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के निर्माण के सन्दर्भ में विकसित देशों का तर्क है कि इस कार्य में लगे श्रमिकों का शोषण होता है। उन्हें पर्याप्त मजदूरी नहीं दी जाती, इन देशों में चलाए जा रहे श्रम कल्याण कार्यक्रम अत्यल्प हैं, यहाँ श्रमिकों का जीवन-स्तर निम्न है। कारखानों में बाल श्रम का प्रयोग होता है। मानवाधिकारों का हनन होता है। ये देश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्डों का पालन नहीं करते। इस आधार पर विकसित देश विकासशील देशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगाते हैं।

इसी आधार पर अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों ने भारत कालीन निर्यात को बाधित करने का प्रयास किया है। आलोचकों का मत है कि यह सामाजिक कण्डिका हारकिन बिल (Harkin Bill) की ही एक कड़ी है जो संयुक्त राज्य के श्रम विभाग पर इस बात के लिए आग्रह करता है कि ऐसी वस्तुओं की हर वर्ष पहचान की जाए जो बाल श्रम (Child Labour) से बनाई जाती हैं और उन देशों की भी पहचान की जाए जो इनका निर्यात करते हैं। इस बिल के पास हो जाने पर संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ऐसी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगा देगी। इस तरह, भारत द्वारा निर्यात किए जाने वाले कालीनों, हीरे-जवाहरात, टैक्सटाइल, सिले-सिलाए वस्त्र, चाय, आदि के निर्यात पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ेगा।

विश्व व्यापार संगठन के एक अन्य सामाजिक कण्डिका के अधीन विकासशील देशों से किए जाने वाले आयात पर प्रतितुल्य शुल्क (Countervailing duty) लगाए जाने का प्रावधान है ताकि इन देशों में विद्यमान निम्न श्रम लागत (Low labour cost) के प्रभाव को समाप्त किया जा सके। इसके अर्थ को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है—यदि भारत में एक कमीज की कीमत 100 रु. तथा अमेरिका में उसकी कीमत 250 रु. है तो इस अन्तर का मुख्य कारण श्रम लागत में अन्तर है। इस तुलनात्मक लाभ को दूर करने के लिए भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका को निर्यात पर शुल्क अदा करना होगा ताकि इस लागत लाभ को निष्प्रभावी बनाया जा सके। यह उल्लेखनीय है कि इस सामाजिक कण्डिका का उद्देश्य मानवीय चिन्ताएँ हैं ताकि विकासशील देश अपने श्रमिकों को बेहतर मजदूरी दें जिससे उनका जीवन-स्तर उन्नत हो।

विकासशील देशों का तर्क है कि इस प्रस्ताव से तीसरी दुनिया के देशों की प्रतिस्पर्द्धा शक्ति समाप्त हो जाएगी। इस मानवतावादी तर्क के आधार पर तीसरी दुनिया के मजदूरों की हालत को सुधारने के पीछे विकासशील देशों की गहरी चाल छिपी है जिसका वास्तविक उद्देश्य विकासशील देशों को प्राप्त स्पर्द्धा लाभ से वंचित करना है। यह सर्वविदित है कि टैक्नॉलॉजी की दृष्टि से ये देश बहुत पिछड़े हैं। इन देशों को विकसित देशों से टैक्नॉलॉजी प्राप्त करने के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ती है। यदि यह कण्डिका लागू कर दी जाती है तो **भारतीय वस्तुएँ संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय समुदाय के देशों में अविक्रय बन जाएँगी।** इस तरह, गरीब देशों को गरीब होने की कीमत अदा करनी पड़ेगी। अत: सामाजिक कण्डिका को मुख्य लक्ष्य भारत जैसे देश हैं ताकि इनकों प्राप्त प्रतिस्पर्धी लाभ को नष्ट कर दिया जाए और इनकी निर्मित वस्तुओं के निर्यात की क्षमता को अपंग बना दिया जाए।

विकसित देशों से सामाजिक कण्डिका के गुह्यार्थ को समझते हुए श्रम मानदण्ड और व्यापार में सम्बन्ध का कड़ा विरोध करते हुए भारत के केन्द्रीय वाणिज्य मन्त्री ने स्पष्ट से कहा, "मैं यह बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि जहाँ हम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्डों (International labour standards) के लिए पूर्णतया वचनबद्ध हैं वहीं हम इस प्रयास को बिल्कुल उचित नहीं मानते जो ऐसे क्षेत्रों में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है, जहाँ वे विद्यमान नहीं हैं। व्यापार नीति को सभी चिन्ताओं का न्यायकर्ता नहीं माना जा सकता।" इस सामाजिक कण्डिका को G-15 के देशों के प्रबल विरोध का भी सामना करना पड़ा। इन देशों ने स्पष्ट किया कि इस प्रस्ताव से इनकी अर्थव्यवस्थाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ेगी। इससे इनके भुगतान शेष की समस्या और विकट बन जाएगी।

इसी तरह, निर्गुट एवं अन्य विकासशील देशों के श्रम मन्त्रियों के पाँचवें सम्मेलन में जो जनवरी, 1995 में दिल्ली में हुआ 'सामाजिक कण्डिका' को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया गया। सम्मेलन में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई कि "प्रस्तावित सम्बन्ध में व्यापार-उदारीकरण के लाभ समाप्त हो जाएँगे और बेरोजगारी एवं वेदना की समस्याएँ बढ़

नोट

जाएँगी।" दिल्ली घोषणा ने इस प्रस्तावित सम्बन्ध के दबाव डालने वाले पक्ष की आलोचना की और यह उल्लेख किया—**श्रम मानदण्डों के मुद्दे पर किसी प्रकार का दबाव अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के संविधान का उल्लंघन है।** इस घोषणा में इस बात पर बल दिया गया है कि "एकपक्षीय दबाव के आर्थिक उपायों का प्रयोग करके विकसित देश तीसरी दुनिया के देशों से आर्थिक अथवा राजनैतिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं जो स्वीकार्य नहीं है।"

23.5 पर्यावरण संरक्षण (Environment Conservation)

पर्यावरण संरक्षण एक अन्य कण्डिका है जिसका सहारा लेकर विकसित देश विकासशील देशों के निर्यात व्यापार को अवरुद्ध करना चाहते हैं। विकासशील देशों एवं पर्यावरणविदों का तर्क है विकासशील देशों में स्थापित कल-कारखानों, ताप विद्युत गृहों एवं आर्थिक विकास के लिए किए जाने वाले अन्य क्रियाकलापों से पर्यावरण को व्यापक क्षति पहुँच रही है, परन्तु ये देश पर्यावरण संरक्षण हेतु कोई समुचित कदम नहीं उठा रहे हैं जिससे विश्व पर्यावरण को गम्भीर क्षति पहुँच रही है। विकसित देशों का तर्क है कि पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जिम्मेवार तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति उदासीन देशों को पर्यावरण विनाश के लिए हर्जाना देना चाहिए। विशेषज्ञों का मत है कि इससे अधिक विभेदकारी शर्त की कल्पना करना सम्भव नहीं है, क्योंकि विश्व परिवेश सम्बन्धी पर्यावरण के तीन-चौथाई की क्षति के लिए विगत दो शताब्दियों में विकसित देश जिम्मेवार हैं। यह वस्तुतः एक विडम्बना ही है कि विकसित देश इन तथ्यों के प्रकाश में अपने द्वारा किए गए गुनाहों की सजा विकासशील देशों को देना चाहते हैं।

विकसित देशों का दोहरा मापदण्ड (Double Standards)—विकसित देश बहुत-सी रियासतों और शुल्कों में कटौती करने के लिए विकासशील देशों को बाध्य करते हैं तथा उन पर तरह-तरह से प्रतिबन्ध लगाकर उनके निर्यात व्यापार में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा वैश्वीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों को अपने लाभ को बढ़ने के लिए इस्तेमाल करते हैं। इस स्थिति को अग्रवत् देखा जा सकता है :

भारत का **टैक्सटाइल उद्योग** विकसित देशों से स्पर्द्धा की शक्ति रखता है, परन्तु विकसित देश विभिन्न प्रकार के संरक्षणवादी उपायों द्वारा कुशल टैक्सटाइल उत्पादों को बाजार तक पहुँचने में रुकावटें उत्पन्न करते हैं। **इन उपायों के कई रूप हैं—ये डम्पिंग-विरोधी क्रियाओं या एकपक्षीय नियमों में परिवर्तन करके अथवा पर्यावरण के मुद्दों का प्रयोग कर स्पर्द्धा को निरस्त करते रहते हैं।** ये सभी उपाय विकसित देशों में देशीय उद्योगों की सुरक्षा के लिए किए जाते हैं और परिणामतः ये उपाय भारतीय टैक्सटाइल निर्यात के निर्वाध प्रवाह के प्रति रुकावटें पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए, जब भारतीय स्कर्ट संयुक्त राज्य अमेरिका में अत्यन्त लोकप्रिय होने लगी तो यह दुष्प्रचार किया जाने लगा कि ये स्कर्ट ज्वलनशील पर्दाथ से बनाए गए हैं, परन्तु ये आरोप मिथ्या सिद्ध हुए अमेरिकी नीति निर्धारकों को इस पर लगाए गए प्रतिबन्ध को हटाना पड़ा। इसी तरह, यूरोपीय संघ के देशों ने भारतीय टैक्सटाइल निर्यात पर डम्पिंग विरोधी शुल्क लगा दिया जिससे इन देशों में भारतीय टैक्सटाइल की कीमत बढ़ गई। इससे हमारे निर्यात पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। चूंकि इस क्षेत्र द्वारा कुल निर्यात का लगभग 32 प्रतिशत जुटाया जाता है।, संरक्षणवादी नीतियों का टैक्सटाइल उद्योग पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा और इसके परिणामस्वरूप हमारी कृषि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी पड़ेगा जो इस क्षेत्र से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

विकसित देशों ने अपने देशीय टैक्सटाइल उद्योग में कोटा कम करने के लिए 10 वर्षों की लम्बी अवधि का प्रस्ताव किया है, परन्तु विकासशील देशों को अपने टैरिफ, मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाने और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को तुरन्त लागू करने के लिए दबाव डालते रहते हैं। स्पष्टतः विकसित देश जहाँ तक टैक्सटाइल सन्धि का प्रश्न है, दोहरा मापदण्ड अपना रहे हैं।

इसी तरह श्रम मानदण्डों, पर्यावरण, मानवाधिकारों, आदि का मुद्दा उठकार विकसित देश विकासशील देशों के निर्यात व्यापार को बाधित करने का प्रयास करते हैं। विकसित देशों द्वारा श्रम मानदण्डों को व्यापार से जोड़ने का प्रयास एक तरह का छद्मवेशी संरक्षणवाद ही है ताकि भारत जैसे विकासशील देशों में सस्ते श्रम की सहायता से बने माल के निर्यात व्यापार पर रोक लगाई जा सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत बाल श्रम के प्रयोग का समर्थक है। यहां बाल श्रम को कम करने और अन्ततः इसकों पूर्णतया समाप्त करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं, परन्तु इसे भारत के

नोट

कालीनों, रसायन व हस्तशिल्पों, आदि के निर्यात को बाधित करने के लिए तर्क के रूप में प्रयोग करना न्यायोचित नहीं है। उल्लेखनीय है कि इस आधार पर भारतीय निर्यात को बाधित करना भी संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों का एक पाखण्ड ही है। अमेरिका के इस दृष्टिकोण को पाखण्डी ठहराते हुए बी.आर. सबाडे ने लिखा है—"बहुत-सी अमेरिकी कम्पनियों ने मैक्सिकों, इण्डोनेशिया और कुछ अनय देशों में अपने कारखाने दूरदराज के इलाकों में परिवर्तित कर दिए। इन कारखानों में भारी मात्रा में बच्चे नियुक्त किए गए और वे 12 घण्टे से अधिक कार्य करते हैं। रुगर विश्वविद्यालय द्वारा हाल ही में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि 2,90,200 बाल श्रमिक संयुक्त राज्य अमेरिका में दुकानों, कारखानों एवं फर्मों में कठोर जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे दोहरे मापदण्डों के साथ यू.एस.ए. भारत को बाल श्रम की छड़ी के साथ सजा देना चाहता है।" इस निर्यात व्यापार को अपने पक्ष में करने के लिए विकसित देश तरह-तरह के दोहरे मापदण्ड अपनाते रहते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए विश्व व्यापार संगठन के मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में विकसित देशों द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं श्रम मानकों जैसे गैर-व्यापारिक मुद्दों को जब भी शामिल करने का प्रयास किया जाता है, भारत सहित विकासशील देश इसका प्रबल विरोध करते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)—

1. विश्व व्यापार संगठन (WHO) का सदस्य भारत कब बना—

   (क) 1995 (ख) 1996

   (ग) 1998 (घ) 2000।

2. भारत को 50 अरब अमरीकी डालर निर्यात का महत्वपूर्ण आंकड़ा प्राप्त करने में सफलता मिली—

   (क) 2001-2002 (ख) 2002-2003

   (ग) 2003-2004 (घ) 2004-2005।

3. विश्व व्यापार संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत ने वर्ष 2002 में व्यापारिक वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि दर्ज की—

   (क) 10% (ख) 20%

   (ग) 15% (घ) 20%।

4. विश्व के 30 निर्यातक देशों में वर्ष 2002 में चीन के बाद भारत का स्थान था—

   (क) पहला (ख) दूसरा

   (ग) तीसरा (घ) चौथा।

5. वर्ष 2004 में विश्व निर्यात व्यापार में भारत का हिस्सा था—

   (क) 0.5% (ख) 0.6%

   (ग) 0.7% (घ) 0.8%।

23.6 सारांश (Summary)

- गैट के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में एक अधिक प्रभावी संगठन "विश्व व्यापार संगठन—WTO" की स्थापना 1 जनवरी, 1995 को हुई। भारत इस संगठन का संस्थापक सदस्य है।
- विश्व व्यापार संगठन के कार्य संचालन हेतु एक सामान्य परिषद (General Council) है जिसमें प्रत्येक सदस्य देश का एक स्थायी प्रतिनिधि होता है। इसकी बैठक सामान्यतया माह में एक बार जेनेवा में होती है।
- WTO का प्रथम मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 9 से 13 सितम्बर, 1996 को सिंगापुर में हुआ। सम्मेलन में विचारणीय प्रमुख मुद्दों में श्रम मानकों, निवेश तथा प्रतिस्पर्धा को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के विषय सम्मिलित किए

नोट

गए थे। इसके अतिरिक्त, टेक्सटाइल्स तथा सूचना प्रौद्योगिकी के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी विचारणीय मुद्दों में शामिल थे।

- विश्व व्यापार संगठन का कृषि से सम्बन्धित समझौता घरेलू सब्सिडी, निर्यात सब्सिडी, न्यूनतम बाजार पहुँच की वचनबद्धता, घरेलू सहायता, स्वास्थ्य, वनस्पति तथा खाद्य सहायक कार्यों से सम्बद्ध है। यह समझौता (अ) गैर-टैरिफ उपायों के स्थान पर साधारण कस्टम ड्यूटी लगाकर, जो धीरे-धीरे कम की जाएगी घरेलू बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिए खोलता है (ब) यह सरकारी सहायता को धीरे-धीरे कम करके अति उत्पादन को धीरे-धीरे नियंत्रित करने का प्रयास करता है और परिणामस्वरूप अतिरेकों को भी, जो या तो निर्यात सब्सिडी के द्वारा बेचे अथवा नष्ट किए जाते हैं। (स) यह निर्यात प्रतिस्पर्धा पर नई नियमावलियों को लागू करने और सब्सिडी तथा सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा को कम करने के प्रयत्नों को भी प्रेरित करता है।
- WTO का दूसरा महत्वपूर्ण समझौता बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित है। इसके अनुसार किसी भी नए आविष्कार के पंजीकृत पेटेन्ट पर 20 वर्षों के लिए सम्पूर्ण विश्व के विरुद्ध एकाधिकार प्राप्त हो जाएगा। इस अवधि में विश्व में कहीं भी किसी अन्य व्यक्ति/संस्था को उस पेटेन्ट से रक्षित उत्पाद का उत्पादन करने के लिए पेटेन्टधारी व्यक्ति/संस्था से अनुज्ञा लेनी होगी व उसे निर्धारित रॉयल्टी राशि का भुगतान करना होगा।
- विश्व व्यापार संगठन सन्धि की तीसरी महत्वपूर्ण बात व्यापार से सम्बन्धित विनियोजन उपायों की है। इसके अनुसार कोई राष्ट्र विदेशी पूँजी विनियोग का नियमन एवं नियन्त्रण नहीं कर सकेगा।
- विश्व व्यापार संगठन सन्धि के चौथे समझौते के अन्तर्गत सभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-योग्य सेवाएँ आती हैं। विदेशी सेवाएँ और सेवा प्रदाता, घरेलू सेवाओं और सेवा-प्रदाताओं के बराबर समझे जाएँगे तथापि सरकारें विशिष्ट परम-मित्र राष्ट्र (MFN) की छूट की सूचना देंगी
- WTO के स्थापना समझौते के प्रावधानों के अन्तर्गत सदस्य देशों के एकाधिकार एवं कर्तव्य से सम्बन्धित विषय पर विचार-विमर्श और विवाद के निपटान का प्रावधान विवाद-निपटान (Dispute Settlement) नियमों और प्रणालियों के समझौते में किया गया है। इसके लिए एक विवाद निर्धारण निपटान संस्था (Dispute Settlement Body-DSB) की स्थापना की गई है।
- बहुपार्श्विक व्यापार समझौते (Plurilateral Trade Agreements-PTA) में शामिल हैं—नागरिक विमानन व्यापार समझौता, सरकारी खरीद का समझौता, अन्तर्राष्ट्रीय दुग्धोत्पादन समझौता तथा अन्तर्राष्ट्रीय गोमांस समझौता।
- व्यापार में तकनीकी बाधाओं का समझौता (Agreement on Technical Barriers to Trade) टोकियो दौर में स्वीकृत व्यापार में तकनीकी बाधाओं के समझौते का विस्तारण और स्पष्टीकरण है। इस समझौते में यह सुनिश्चित किया गया है कि तकनीकी विमर्श और मानक, परीक्षण और प्रमाणन प्रणालियाँ व्यापार के मार्ग में अनावश्यक रुकावट न बनें, फिर भी यह समझौता स्वीकार करता है कि देशों को मानवीय, पशु अथवा वनस्पति स्वास्थ्य तथा पर्यावरण की रक्षा का अधिकार है।
- व्यापार-नीति पुनरावलोकन तन्त्र (Trade Policy Review Mechanism-TPRM) बहुपक्षीय व्यापार तन्त्र के सुचारु रूप से चलने के लिए बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के अन्तर्गत व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं का पुनरावलोकन करता है, इस उद्देश्य के लिए यह व्यापार-नीति पुनरावलोकन संस्था (Trade Policy Review Body-TPRB) की स्थापना का संकेत करता है।
- विश्व व्यापार संगठन के विभिन्न सम्मेलनों में बहुपक्षीय व्यापार तन्त्र द्वारा मुक्त विश्व व्यापार की उन्नति में सदस्यों द्वारा विश्वास व्यक्त किया जाता रहा है। समझौतों से सम्बन्धित कतिपय मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच गम्भीर मतभेद अभी भी बना हुआ है।

नोट

- आलोचकों की धारणा है कि विश्व व्यापार संगठन के अधिकांश समझौते धनी देशों के हितों के पोषक हैं। संगठन की बैठकों में इन्ही देशों का प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है।
- मन्त्रिस्तरीय सम्मेलनों के अतिरिक्त WTO का विवाद निपटान बोर्ड (DSB) अपना कार्य सुचारु रूप से कर रहा है। इसके समक्ष कई विवाद पेश किए गए जिनका दृढ़तापूर्वक निपटारा इस संस्था द्वारा किया गया। इसका पहला निर्णय अमेरिका के पेट्रोल टैक्स विषयक था, जिसके फलस्वरूप वाशिंगटन ने अपने कानून को सुधारने का निश्चय किया। दिसम्बर, 1996 में इसने अमेरिका के विरुद्ध भारत के पक्ष में भारत निर्मित ऊनी वस्त्रों की अमेरिकी बाजार में बिक्री के विषय में निर्णय दिया। नवम्बर, 1996 में इसी प्रकार कोस्टारिका ने अमेरिका में सूती कमीज बिक्री सम्बन्धी मुकदमा जीता।
- आलोचकों की धारणा है कि विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से कुछ हद तक स्वतन्त्र व्यापार और वैश्वीकरण को बढ़ावा तो मिल सकता है, परन्तु यह विश्व अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास करने में सक्षम है, इसमें संदेह है।
- उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में विश्व व्यापार संगठन को रोबस्ट ग्लोबल कैपिटलिज्म की न्यायोचित व्यवस्था को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है न कि 'रोबर कैपिटलिज्म' को।
- वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन में शामिल होने के उपरान्त भारत द्वारा भूमण्डलीकरण की नीतियों का अनुपालन करने के परिणामस्वरूप विश्व निर्यात व्यापार में भारत का भाग जो 1990 में 0.5% था वह बढ़कर 1965 में 0.6% तक पहुँच गया। आर्थिक सुधारों की 12 वर्षों की अवधि के दौरान 2002 तक यह भाग बढ़कर 0.8 प्रतिशत स्तर तक पहुँच गया।
- विकासशील देशों के निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के निर्माण के सन्दर्भ में विकसित देशों का तर्क है कि इस कार्य में लगे श्रमिकों का शोषण होता है। उन्हें पर्याप्त मजदूरी नहीं दी जाती, इन देशों में चलाए जा रहे श्रम कल्याण कार्यक्रम अत्यल्प हैं, यहाँ श्रमिकों का जीवन-स्तर निम्न है। कारखानों में बाल श्रम का प्रयोग होता है। मानवाधिकारों का हनन होता है। ये देश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्डों का पालन नहीं करते। इस आधार पर विकसित देश विकासशील देशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगाते हैं।
- विश्व व्यापार संगठन के एक अन्य सामाजिक कण्डिका के अधीन विकासशील देशों से किए जाने वाले आयात पर प्रतितुल्य शुल्क (Countervailing duty) लगाए जाने का प्रावधान है ताकि इन देशों में विद्यमान निम्न श्रम लागत (Low labour cost) के प्रभाव को समाप्त किया जा सके।
- इसी तरह, निर्गुट एवं अन्य विकासशील देशों के श्रम मन्त्रियों के पाँचवें सम्मेलन में जो जनवरी, 1995 में दिल्ली में हुआ 'सामाजिक कण्डिका' को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया गया।
- दिल्ली घोषणा ने इस प्रस्तावित सम्बन्ध के दबाव डालने वाले पक्ष की आलोचना की और यह उल्लेख किया—श्रम मानदण्डों के मुद्दे पर किसी प्रकार का दबाव अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के संविधान का उल्लंघन है।
- पर्यावरण संरक्षण एक अन्य कण्डिका है जिसका सहारा लेकर विकसित देश विकासशील देशों के निर्यात व्यापार को अवरुद्ध करना चाहते हैं।
- विकसित देश बहुत-सी रियासतों और शुल्कों में कटौती करने के लिए विकासशील देशों को बाध्य करते हैं तथा उन पर तरह-तरह से प्रतिबन्ध लगाकर उनके निर्यात व्यापार में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा वैश्वीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों को अपने लाभ को बढ़ने के लिए इस्तेमाल करते हैं।
- विकसित देशों ने अपने देशीय टैक्सटाइल उद्योग में कोटा कम करने के लिए 10 वर्षों की लम्बी अवधि का प्रस्ताव किया है, परन्तु विकासशील देशों को अपने टैरिफ, मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाने और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को तुरन्त लागू करने के लिए दबाव डालते रहते हैं। स्पष्टत: विकसित देश जहाँ तक टैक्सटाइल सन्धि का प्रश्न है, दोहरा मापदण्ड अपना रहे हैं।

नोट

- उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए विश्व व्यापार संगठन के मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन में विकसित देशों द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं श्रम मानकों जैसे गैर-व्यापारिक मुद्दों को जब भी शामिल करने का प्रयास किया जाता है, भारत सहित विकासशील देश इसका प्रबल विरोध करते हैं।

23.7 शब्दकोश (Keywords)

- **कण्डिका**–परिच्छेद, पैरा।
- **पुनरावलोकन**–फिर से देखना, दुबारा देखना।

23.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विश्व व्यापार संगठन के संदर्भ में बहुपक्षवाद (Multilaterlism) का विवेचन कीजिए।
2. विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना कब और क्यों हुई? इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
3. विश्व व्यापार संगठन और गैट में क्या अंतर है? WTO और गैट के कार्यों का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
4. विश्व व्यापार संगठन के समझौतों का विश्लेषण कीजिए।
5. विश्व व्यापार संगठन में भारत की भूमिका एवं महत्त्व का मूल्यांकन कीजिए।
6. अंतर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्ड और पर्यावरण संरक्षण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1.	1. भारत	2. 148	3. WTO	4. 135
2.	1. (क)	2. (ख)	3. (ग)	4. (ख)
	5. (घ)			

23.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–24: अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था (International Monetary System)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था (International Monetary System)

24.2 1976 की नई अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली (New International Monetary System—1976)

24.3 अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सुधार तथा 'बीस की समिति' (International Monetary Reform and the Committee of Twenty)

24.4 सारांश (Summary)

24.5 शब्दकोश (Keywords)

24.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

24.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली और मौद्रिक सुधार का विवेचन करने में।
- बीस की समिति की व्याख्या करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में ब्रेटनवुड्स सम्मेलन ने महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया गया जिसके आधार पर मुद्रा-कोष की स्थापना की गई। मुद्रा-कोष ने विभिन्न सदस्य देशों की मुद्राओं का समता मूल्य (par value) स्थापित किया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक देश का दायित्व था कि स्वर्ण या डालर में अपनी मुद्रा का मूल्य बनाए रखे। इस समता मूल्य में परिवर्तन करने का प्रावधान मुद्रा-कोष की अनुमति से केवल भुगतान शेष के मूलभूत असन्तुलन को दूर करने के लिए था।

24.1 अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था (International Monetary System)

समता मूल्य में अमरीका का दायित्व (Role of America in respect of Par Values)

चूंकि समता मूल्य स्वर्ण या डालर में परिभाषित था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि डालर का मूल्य स्वर्ण में परिभाषित हो। परिणामस्वरूप अमरीका पर यह दायित्व आ गया कि जब तक उसका भुगतान शेष मूलभूत रूप से असन्तुलित नहीं हो जाता, वह अपने डालर के स्वर्ण मूल्य को बनाए रखे।

नोट

रिजर्व के स्रोत (Sources of Reserve)

यद्यपि ब्रेटनवुड्स सम्मेलन में स्वर्ण को ही रिजर्व के आधार का दायित्व सौंपा गया था, किन्तु डालर की भूमिका भी एक मुख्य रिजर्व मुद्रा की रही। वास्तव में, मुद्रा-कोष में स्वर्ण की मात्रा और सदस्य देशों की मुद्राओं का संग्रह ही रिजर्व के रूप में था। अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की बढ़ती हुई आवश्यकता को देखते हुए मुद्रा-कोष में सदस्य देशों के अभ्यंशों में वृद्धि हो गई। डालर रिजर्व की काफी वृद्धि की गई तथा संयुक्त राज्य अमरीका की स्थिति विश्व मौद्रिक प्रणाली में एक विश्व बैंकर के समान हो गई।

डालर का अवमूल्यन (Devaluation of Dollar)

परन्तु, इसी विकास में अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के विनाश के बीज भी छिपे हुए थे। **प्रो. रॉबर्ट ट्रिफिन** ने 1960 में अपनी पुस्तक '*Gold and the Dollar Crists*' में भविष्यवाणी की थी कि अमरीका के मौद्रिक स्वर्ण में, उसके डालर के विदेशी दायित्वों की तुलना में कम वृद्धि होने के कारण, डालर में विश्वास का संकट पैदा हो जाएगा। सत्य ही 1960 में डालर में अविश्वास पैदा हुआ जो बढ़ता गया तथा 1968 में बाजार में स्वर्ण की कीमत को डालर में बनाए रखने के प्रयत्न समाप्त कर दिए गए। अगस्त 1971 में अमरीका को अपने इस वचन से मुकरना पड़ा कि यह विदेशों में अधिकृत डालर की मात्रा को स्वर्ण में परिवर्तित करेगा। 1971 के अन्त में डालर का प्रथम अवमूल्यन तथा फरवरी 1973 में दूसरी बार अवमूल्यन किया गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि विभिन्न देशों की मुद्राओं के समता मूल्य को समाप्त कर दिया गया और स्थिर विनिमय दरों का स्थान परिवर्तनशील विनिमय दर (Floating Exchange Rates) ने ले लिया।

क्या आप जानते हैं 1971 के अन्त में डालर का प्रथम अवमूल्यन तथा फरवरी 1973 में दूसरी बार अवमूल्यन किया गया।

डालर का बढ़ता हुआ रिजर्व (Increasing Reserve of Dollar)

उपर्युक्त स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय तरलता के एक बड़े स्रोत के रूप में डालर उसी समय प्रभावशाली सिद्ध हो सकता था जब या तो अमरीका से भुगतान शेष में भारी घाटा हो अथवा वह विदेशों में विनियोग करता अथवा दोनों ही उपायों को अपनाता। यदि अमरीका ऐसा न करता तो तरलता की कमी को दूर करने के लिए शायद अच्छा विकल्प खोज लिया जाता। किन्तु, अमरीका ने हर कीमत पर डालर को एक अन्तर्राष्ट्रीय रिजर्व के रूप में कायम रखने का प्रयत्न किया जिसका प्रभाव, प्रो. ट्रिफिन **की दृष्टि में स्थिरता प्रदान करने वाला नहीं हुआ।** दिसम्बर 1971 में **स्मिथसोनियन संस्था** वाशिंगटन में दस देशों के समूह (Group of Ten) की बैठक हुई जिसमें समझौते के अनुसार अमरीका ने स्वर्ण के अधिकृत मूल्य को 35 डालर प्रति औंस से बढ़ाकर 38 डालर कर दिया। इस प्रकार डालर के अवमूल्यन ने ब्रेटनवुड्स को ढहने से बचा लिया। विदेशी विनिमय बाजार में उच्चावचन की दृष्टि से 1972 का वर्ष अपेक्षाकृत स्थायित्व वाला वर्ष था, किन्तु 1973 के प्रारम्भ से ही अमरीका की स्थिति डावांडोल थी जिसके फलस्वरूप 1973 में फरवरी में डालर का 10 प्रतिशत अवमूल्यन करना पड़ा।

तैरती हुई विनिमय दरें (Floating Exchange Rates)

1973 का डालर अवमूल्यन ब्रेटनवुड्स प्रणाली की आखिरी सांस थी। डालर की शक्ति मार्च 1973 के आगे नहीं चल सकी। ब्रिटेन, आयरलैण्ड, इटली, जापान और स्विट्जरलैण्ड की मुद्राएँ स्थिर विनिमय दरों को त्यागकर परिवर्तनशील विनिमय दरों का रूप ग्रहण कर चुकी थीं। 11 मार्च, 1973 में जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, लक्जेमबर्ग, नीदरलैण्ड्स और डेनमार्क ने समझौता कर संयुक्त रूप से अपनी मुद्राओं को परिवर्तनशील बना दिया। जर्मनी ने SDR की तुलना में मार्क का 3 प्रतिशत अधिमूल्यन कर दिया। नार्वे एवं स्वीडन भी स्वतंत्र विनिमय दरों में शामिल हो गए। 19 मार्च, 1973 के आते-आते वास्तव में स्मिथसोनिन समझौता समाप्त हो गया।

नोट

नोट्स **विशेष आहरण अधिकार (SDR)**–विशेष आहरण अधिकारों का प्रयोग भी मौद्रिक प्रणाली की एक उल्लेखनीय घटना है जिसका समझौता 1969 में किया गया था और SDR प्रणाली को दिसम्बर 1971 में लागू कर दिया गया।

24.2 1976 की नई अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली (New International Monetary System–1976)

बीस की समिति (C 20) ने जून 1974 को अपनी छठवीं एवं अन्तिम बैठक वाशिंगटन में आयोजित की तथा अपनी रिपोर्ट '*An Outline of Monetary Reform*' प्रकाशित की। इस रिपोर्ट की जांच मुद्रा-कोष के प्रकाशक मण्डल की अन्तरिम समिति ने अपनी बैठक जो जनवरी 1976 में **किंगस्टन (जमैका)** में आयोजित की गई, में की तथा मुद्रा-कोष के नियमों में नए परिवर्तनों की घोषणा की। किंगस्टन सम्मेलन के परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर एक नई अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली का जन्म हुआ जिसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

(1) अन्तरिम समिति ने यह विश्वास व्यक्त किया कि SDRs को **मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय रिजर्व के रूप में स्वीकार किया** जाना चाहिए।

(2) समिति की सिफारिशों के अनुसार **स्वर्ण का अधिकृत मूल्य** (1 औंस स्वर्ण = SDRs 35 = U.S. $ 42.22) समाप्त कर दिया।

(3) मुद्रा-कोष का 1/6 **भाग स्वर्ण (25 मि. औंस) बाजार मूल्य पर बेच** दिया गया तथा इस विक्रय से जो लाभ प्राप्त हुआ उसका **प्रयोग ट्रस्ट कोष** बनाने के लिए किया गया ताकि इससे उन विकासशील देशों की सहायता की जा सके जो भुगतान शेष के घाटे के शिकार हैं।

(4) अन्य 1/6 **स्वर्ण का अंश सदस्य देशों को लौटा दिया गया।**

(5) **शेष स्वर्ण का क्या प्रयोग किया जाएगा,** इसका निर्धारण सदस्य देशों के 85 प्रतिशत बहुमत से किया जाएगा।

(6) SDRs को मुख्य रिजर्व के रूप में स्वीकार किया गया है तथा **सदस्य देशों की मुद्राओं का समता मूल्य** SDR **में व्यक्त** किया जाएगा। अभी यह मूल्य 5 देशों की मुद्राओं के समूह द्वारा व्यक्त किया जा रहा है।

(7) सदस्य देशों के अभ्यंश में 32.5 प्रतिशत वृद्धि कर, **कुल अभ्यंश की राशि 39 बिलियन** SDR हो गई। 1981 में इसे बढ़ाकर 60 बिलियन SDR तथा 30 जून, 1992 को सदस्य देशों के अभ्यंश की कुल राशि 91.2 बिलियन डालर थी। अभ्यंश की समीक्षा जो 5 वर्षों में की जाती थी, 3 वर्षों में की जाएगी। समिति इस पर सहमत थी कि तेल उत्पादक देशों का अभ्यंश दूना किया जाना चाहिए तथा विकासशील देशों के वर्तमान अभ्यंश में कमी नहीं होनी चाहिए।

(8) समिति ने यह भी निर्णय लिया कि **अब सदस्यों को स्वर्ण में अभ्यंश जमा नहीं** करना पड़ेगा।

(9) समिति ने निर्णय लिया कि मुद्रा-कोष का **अभ्यंश बढ़ाने का उद्देश्य कोष की तरलता में वृद्धि करना** है अतः सभी सदस्यों का यह दायित्व है कि वे ऐसी व्यवस्था करें ताकि उनकी मुद्राएं कोष के लेन-देन में प्रयुक्त की जाने योग्य बनी रहें। इस संबंध में मुद्रा-कोष ने **स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने योग्य मुद्रा की धारणा** (Concept of Freely Usable Currency) विकसित की है जिसकी दो विशेषताएं इस प्रकार हैं–**प्रथम,** ऐसी मुद्रा जिसका अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान करने के लिए विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है एवं **द्वितीय,** ऐसी मुद्रा जिसका बड़े-बड़े विनिमय बाजारों में विस्तृत लेन-देन किया जाता है। यह लक्षण कुछ ही मुद्राओं में मिल सकता है, किन्तु सब देशों का यह दायित्व होगा कि वे अपनी मुद्रा का प्रयोग-योग्य बनाने के लिए अपनी मुद्राओं का विनिमय करें।

नोट

उपर्युक्त प्रणाली के अन्तर्गत जो सुझाव अन्तरिम समिति ने दिए थे, उन्हें संचालक मण्डल ने अपनी स्वीकृति दे दी तथा उन्हें फिर सदस्य देशों की स्वीकृति के लिए भेज दिया गया जिस पर 97 देशों ने अपनी स्वीकृति दे दी। अप्रैल 1977 में संचालक मण्डल द्वारा विनिमय दरों पर निगरानी का मसौदा स्वीकृत किया गया। अभ्यंशों की सातवीं सामान्य समीक्षा के अन्तर्गत सदस्य देशों द्वारा कोटे में वृद्धि का निर्णय मार्च 1978 में स्वीकार किया गया।

प्रतिस्थापन लेखा (Substitution Account)

तरलता की मांग को पूरा करने के लिए मुद्रा-कोष की अन्तरिम समिति ने कार्यकारी संचालक मण्डल की रिपोर्ट पर विचार किया। **संचालक मण्डल ने मुद्रा-कोष में प्रतिस्थापन लेखा** (Substitution Account) की स्थापना पर बल दिया है। इस लेखा के माध्यम से कोष में राष्ट्रीय रिजर्व परिसम्पत्ति को SDR में परिवर्तित करने की सुविधा दी जाएगी जिससे राष्ट्रीय रिजर्व का विदेशी विनिमय का अनुपात घटेगा। अन्तरिम समिति ने अपने 7 मार्च, 1978 के वक्तव्य में कहा कि, ''प्रतिस्थापन लेखे का उद्देश्य SDRs का अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में एक मुख्य रिजर्व परिसम्पत्ति (Reserve asset) बनाने का होगा।'' कोष के अधिकारियों ने मई 1979 में इस लेखे की स्थापना पर विचार-विमर्श किया। उक्त लेखे के फलस्वरूप जिस SDR का उपयोग प्रारम्भ होगा, वह कोष के वर्तमान SDR विभाव से निम्न दो अर्थों में भिन्न होगा:

(*i*) प्रतिस्थापन लेखे के SDR समस्त सदस्यों में आवंटित नहीं किए जाएंगे, वरन् उन्हीं सदस्यों को प्राप्त होंगे जो उसके बदले स्वीकार्य विदेशी विनिमय की मात्रा लेखे में जमा करेंगे। (इस कठिनाई को देखते हुए इस बात में संदेह है कि विकासशील देश इस लेखे में भाग ले सकेंगे।)

(*ii*) अभी वर्तमान में सदस्यों को SDR प्राप्त करने के वास्तविक साधनों (Real Resources) का परित्याग नहीं करना पड़ता, किन्तु प्रतिस्थापन लेखे से प्राप्त SDR में साधनों के त्याग की समस्या खड़ी होगी। सदस्य देशों को लेखे से प्राप्त SDR पर ब्याज का भुगतान करना होगा।

वास्तव में, उपर्युक्त लेखे के SDR प्रणाली से विकसित एवं तेल निर्यातक देशों को अधिक SDR प्राप्त करने का अवसर मिलेगा तथा कम विकसित देश इस सुविधा से वंचित रहेंगे। इसके फलस्वरूप SDR तथा सहायता के बीच कोई संबंध भी स्थापित नहीं हो सकेगा।

नई मौद्रिक प्रणाली (1976): एक मूल्यांकन (Evaluation of New Monetary System)

इसमें कोई संदेह नहीं है कि 1976 की नई मौद्रिक प्रणाली में दूरगामी संशोधन किए गए हैं। विनिमय की एक नई प्रणाली शुरू की गई जिसमें परितर्वनशील विनिमय दरों को स्वीकार कर लिया गया एवं स्वर्ण को समाप्त कर SDR को मुख्य रिजर्व के रूप में मान लिया गया है। इसकी आलोचनाएं निम्न प्रकार हैं :

(1) उक्त संशोधन में नई और प्रभावशाली मौद्रिक प्रणाली के लिए **सभी आवश्यक पहलुओं पर विचार नहीं** किया गया है। SDRs का प्रयोग सभी वित्तीय और व्यापारिक लेन-देन के लिए किया जाना चाहिए तथा SDR का आबण्टन देश की आवश्यकतानुसार अधिक विवेकपूर्ण ढंग से होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि SDRs को विकासशील देशों की विकास सहायता से संबंधित किया जाना चाहिए।

(2) 1976 की मौद्रिक नीति में इसके संबंध में भी कोई निर्णय नहीं लिया गया कि **नई मौद्रिक व्यवस्था में विनिमय स्थिरता कैसे प्राप्त** की जायेगी तथा इस संबंध में देशों की घरेलू मौद्रिक नीति की क्या भूमिका है। मुद्रा-कोष ने जो ''स्वतंत्र प्रयोग करने योग्य मुद्रा'' की धारणा प्रस्तुत की है, इससे इस बात की संभावना है कि डालर का प्रभुत्व फिर से बढ़ जाए।

(3) आलोचकों का मत है कि वर्तमान मौद्रिक प्रणाली में ब्रेटनवुड्स प्रणाली के समान समरूप और समन्वित नियम नहीं हैं। वर्तमान प्रणाली का भवन, पुरानी प्रणाली को धराशायी कर, निर्मित किया गया है।

(4) जहां तक तरलता का प्रश्न है SDRs से यह अभी हल नहीं हुआ है जबकि किसी भी मौद्रिक प्रणाली के लिए यह आवश्यक है कि वह तरलता की समस्या को हल करे।

(5) वर्तमान मौद्रिक प्रणाली से विकासशील देशों को यह बात स्पष्ट हो गई है कि उनकी आर्थिक नीति में विनिमय दर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, किन्तु जहां तक भुगतान शेष का प्रश्न है, विनिमय दरों में अस्थिरता के कारण इनमें अनिश्चितता बनी रहती है। इस जोखिम को दूर करने के लिए विकासशील देश अपनी मुद्राओं को महत्त्वपूर्ण मुद्राओं से संबंधित किए रहते हैं, किन्तु दीर्घकालीन हितों की दृष्टि से यह अवस्था उचित नहीं है। अत: मुद्रा-कोष को विनिमय दरों में ऐसे उच्चावचनों पर कड़ा नियंत्रण लगाना चाहिए जिससे विकासशील देशों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो।

(6) यह कहा जा सकता है कि कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली उस समय तक सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती जब तक कि **विश्व के देशों में मौद्रिक अनुशासन और सहयोग का अभाव** रहता है। इसके लिए आवश्यक है कि दीर्घकालीन राष्ट्रीय हितों एवं व्यापक रूप से विश्व हितों को दृष्टि में रहते हुए अल्पकालीन राष्ट्रीय हितों का त्याग किया जाना चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. अन्तरिम समिति ने यह विश्वास व्यक्त किया कि .... को प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय रिजर्व के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।
2. समिति की सिफारिशों के अनुसार स्वर्ण का अधिकृत मूल्य .... कर दिया जाए।
3. शेष स्वर्ण का प्रयोग क्या किया जाएगा इसका निर्धारण सदस्य देशों के .... बहुमत से किया जाएगा।
4. समिति ने यह भी निर्णय लिया कि अब सदस्यों को .... अभ्यंश जमा नहीं करना पड़ेगा।
5. मुद्रा-कोष का अभ्यंश बढ़ाने का उद्देश्य कोष की .... में वृद्धि करना है।

24.3 अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सुधार तथा 'बीस की समिति' (International Monetary Reform and the Committee of Twenty)

समता दरों पर आधारित ब्रेटनवुड्स प्रणाली की समाप्ति के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार सुधार की आवश्यकता थी। अत: ऐसे सुधार के लिए उपयुक्त सुझाव देने हेतु 1972 में संचालक मण्डल की एक अस्थाई समिति (CRIMSRI, or Committee of Twenty) नियुक्त की गई। समिति ने सितम्बर 1973 में सुधारों की पहली रूपरेखा प्रस्तुत की। किन्तु इसके बाद तेल की कीमतों में वृद्धि से उपर्युक्त सुधारों पर काफी प्रभाव पड़ा। स्वर्ण का मूल्य बढ़ाकर 42.22 डालर प्रति औंस हो गया। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए 'बीस की समिति' ने जून 1974 में अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसके सुझाव के अनुसार निम्न कार्यवाही की गई :

(1) संचालक मण्डल को सलाह देने हेतु एक **अन्तरिम समिति की स्थापना** की गई।

(2) तैरती हुई विनिमय दरों की स्थाई, किन्तु समायोजन योग्य (Stable & Adjustable) बनाए रखने के लिए, कार्यकारी मण्डल ने **निर्धारक नियम** बनाए।

(3) 1 जुलाई, 1974 में SDR का मूल्य निर्धारण **मुद्राओं की पिटारी** (Basket of Currencies) द्वारा किया जाने लगा अर्थात् इस योजना के अनुसार SDR की एक इकाई 16 मुद्राओं की निश्चित मात्रा के योग के बराबर तय की गई, किन्तु 1981 में उसका मूल्य केवल पांच मुद्राओं की निश्चित मात्राओं में निर्धारित कर दिया गया।

(4) जो देश अन्य देशों की मुद्रा क्रय करने के लिए SDR का प्रयोग करते हैं उन्हें पूर्व के **15 प्रतिशत के बदले 5 प्रतिशत ब्याज** देना पड़ेगा।

(5) SDRs को विकास सहायता से संबद्ध करने के लिए समिति ने मुद्रा-कोष और विश्व बैंक की एक संयुक्त समिति **'विकास समिति'** (Development Committee) की स्थापना का सुझाव दिया, अत: 1974 की मुद्रा-कोष और विश्व बैंक की वार्षिक बैठक में **विकास समिति की स्थापना** की गई।

नोट

(6) 13 जून, 1974 को मुद्रा-कोष के कार्यकारी मण्डल ने एक **तेल सुविधा कोष** (Oil Facility Fund) स्थापित करने का निर्णय लिया ताकि तेल कीमतों में वृद्धि से प्रभावित देशों की आर्थिक सहायता दी जा सके। इस कोष में सात तेल उत्पादक देशों (आबुधाबी, ईरान, कुवैत, लीबिया, ओमान, सऊदी अरब और बेनेजुएला) तथा कनाडा ने 3 बिलियन SDR का योगदान दिया।

(7) 2 अक्टूबर, 1974 को अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सुधार के लिए **अस्थाई समिति के स्थान पर एक अन्तरिम समिति की नियुक्ति** की गई जिसका कार्य विश्व-तरलता तथा विकासशील देशों के साधनों को प्रभावशाली बनाने के संबंध में मुद्रा-कोष को सलाह देना था।

(8) 4 सितंबर, 1975 को मुद्रा-कोष ने **नई मध्य अवधि ऋण देने की सुविधा** (New Medium-term Facility) की घोषणा की जिसमें सदस्य देशों को भुगतान-शेष की कठिनाई की विशेष परिस्थितियों में ऋण की सुविधा को एक वर्ष बढ़ाकर तीन वर्ष कर दिया गया।

यह आशा की जा सकती है कि नई मौद्रिक प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य करेगी तथा इसमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Options)–

1. बीस की समिति (Committee of Twenty) नियुक्त की गई–
   (क) 1970 में (ख) 1972 में (ग) 1974 में (घ) 1975 में
2. बीस की समिति ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट किस वर्ष प्रस्तुत की–
   (क) 1972 (ख) 1975 (ग) 1974 (घ) 1971
3. SDR का मूल्य निर्धारण मुद्राओं की पिटारी (Basket of Currencies) द्वारा कब से किया जाने लगा–
   (क) 1 July, 1974 (ख) 5 July, 1974 (ग) 8 July, 1974 (घ) 10 Jyly, 1974
4. मुद्रा-कोष के कार्यकारी मंडल ने किस तिथि को एक तेल सुविधा कोष स्थापित करने का निर्णय लिया–
   (क) 5 June, 1974 (ख) 7 June, 1974
   (ग) 10 June, 1974 (घ) 13 June 1974
5. अस्थाई समिति के स्थान पर एक अन्तरिम समिति की नियुक्ति की गई–
   (क) 2 October, 1974 (ख) 4 October, 1974
   (ग) 8 October, 1974 (घ) 10 October, 1974

24.4 सारांश (Summary)

- बीस की समिति (C 20) ने जून 1974 को अपनी छठवीं एवं अन्तिम बैठक वाशिंगटन में आयोजित की तथा अपनी रिपोर्ट 'An Outline of Monetary Reform' प्रकाशित की। इस रिपोर्ट की जांच मुद्रा-कोष के प्रकाशक मण्डल की अन्तरिम समिति ने अपनी बैठक जो जनवरी 1976 में किंगस्टन (जमैका) में आयोजित की गई, में की तथा मुद्रा-कोष के नियमों में नए परिवर्तनों की घोषणा की।
- प्रणाली के अन्तर्गत जो सुझाव अन्तरिम समिति ने दिए थे, उन्हें संचालक मण्डल ने अपनी स्वीकृति दे दी तथा उन्हें फिर सदस्य देशों की स्वीकृति के लिए भेज दिया गया जिस पर 97 देशों ने अपनी स्वीकृति दे दी। अप्रैल 1977 में संचालक मण्डल द्वारा विनिमय दरों पर निगरानी का मसौदा स्वीकृत किया गया।
- यह कहा जा सकता है कि कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली उस समय तक सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती जब तक कि विश्व के देशों में मौद्रिक अनुशासन और सहयोग का अभाव रहता है। इसके लिए

आवश्यक है कि दीर्घकालीन राष्ट्रीय हितों एवं व्यापक रूप से विश्व हितों को दृष्टि में रहते हुए अल्पकालीन राष्ट्रीय हितों का त्याग किया जाना चाहिए।

- समता दरों पर आधारित ब्रेटनवुड्स प्रणाली की समाप्ति के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार सुधार की आवश्यकता थी। अत: ऐसे सुधार के लिए उपयुक्त सुझाव देने हेतु 1972 में संचालक मण्डल की एक अस्थाई समिति (CRIMSRI, or Committee of Twenty) नियुक्त की गई। समिति ने सितम्बर 1973 में सुधारों की पहली रूपरेखा प्रस्तुत की। किन्तु इसके बाद तेल की कीमतों में वृद्धि से उपर्युक्त सुधारों पर काफी प्रभाव पड़ा। स्वर्ण का मूल्य बढ़ाकर 42.22 डालर प्रति औंस हो गया। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए 'बीस की समिति' ने जून 1974 में अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की।

24.5 शब्दकोश (Keywords)

- **अवमूल्यन–** रुपये के मूल्य में कमी करना।
- **अभ्यंश–** यथांश, नियतांश।

24.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था से आप क्या समझते हैं ? विवेचन कीजिए।
2. 1976 की नई मौद्रिक प्रणाली का विश्लेषण करें।
3. बीस की समिति के सुझावों का मूल्यांकन कीजिए।
4. अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक सुधार का विवेचन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. 1. SDRs 2. समाप्त 3. 85 प्रतिशत
4. स्वर्ण में 5. तरलता

2. 1. (ख) 2. (ग) 3. (क) 4. (घ)
5. (क)

24.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

इकाई–25: विदेशी प्रत्यक्ष निवेशः प्रकार एवं मुद्दे (FDI : Types and Issues)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
25.1 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : प्रकार एवं मुद्दे (FDI: Types and Issues)
25.2 सारांश (Summary)
25.3 शब्दकोश (Keywords)
25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रकार एवं मुद्दों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रायः यह दावा किया जाता है कि वैश्वीकरण के कारण विदेशी निवेश के अधिक प्रवाह की गति होती है जिससे व्यापक अर्थव्यवस्था की उत्पादिता को बढ़ाने में सहायता मिलती है। भारत में इस संदर्भ में विचार करना उचित होगा। विदेशी निवेश दो रूप धारण करता है– विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश। इस इकाई में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का विस्तृत वर्णन किया गया है।

25.1 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश : प्रकार एवं मुद्दे (FDI : Types and Issues)

निवेश दो प्रकार का होता है–(1) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) तथा (2) विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (FPI)। एफडीआई उत्पादन या व्यापार प्रत्यक्षः इक्विटी में किया गया निवेश है जबकि एफपीआई देश के शेयर बाजार में सूचीबद्ध कम्पनियों के शेयरों में विदेशी संस्थागत निवेशकों तथा एनआरआई द्वारा किए गए निवेश को कहते हैं।

एफडीआई दो प्रकार का होता है–(1) ग्रीन फिल्ड एफडीआई (नये सिरे से जमीन खरीदकर, बिल्डिंग बनाकर नयी स्थापना तथा (2) ब्राउन फिल्ड इवेस्टमेंट (पहले से चल रहे उद्यम एवं व्यवसाय में हिस्सेदारी करना। एमएनसी ज्यादातर इसी प्रकार का निवेश करना चाहती हैं, जिसके लिए उसकी आलोचना की जाती है।

संशोधित एफडीआई परिभाषा (Revised FDI Definiation)

RBI ने 2004 में FDI की नयी परिभाषा को स्वीकार कर वर्ष 2000-01 से आगे FDI प्रवाह के संशोधित आंकड़े जारी किये हैं। **संशोधित परिभाषा में FDI:** इक्विटी पूंजी, पुनर्निवेशित अर्जनों तथा अन्य प्रत्यक्ष पूंजी के अन्तर्गत पूंजी

नोट

प्रवाह की 3 श्रेणियां शामिल हैं। इससे पूर्व भुगतान संतुलन सांख्यिकी में सूचित FDI आंकड़ों में केवल इक्विटी पूंजी को शामिल किया जाता रहा है। वैचारिक तौर पर FDI तथा पोर्ट फोलियो निवेश के मध्य मुख्य अन्तर स्थायी हित से है जिसे घरेलू अर्थव्यवस्था के स्थानिक उद्‌गम में अनिवासी प्रत्यक्ष निवेशक के रूप में व्यक्त किया गया है। इस स्थायी हित में अनिवासी के स्तर में महत्वपूर्ण प्रभाव को ग्रहण कर अनिवासी उद्‌गम की दीर्घकालीन व्यवसाय

वह गतिविधियां जिनमें स्वत: अनुमति की व्यवस्था नहीं है	*वह गतिविधियां स्वत: अनुमति की व्यवस्था है*	*वह गतिविधियां जिनमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति नहीं है (1 अप्रैल, 2011)*
1. चाय रोपण में 100% 2. रक्षा में 26% 3. परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण कंपनी 49 % 4. बैंकिंग सार्वजनिक क्षेत्र 20% (एफडीआई+एफआईआई) 5. पेट्रोलियम रिफाइनिंग 49% 6. प्रिंट मीडिया 26%	1. कृषि और पशुपालन में 100% 2. खनन में 100% 3. कोल एवं लिग्नाईट 100% 4. विद्युत 100% (उत्पादन, पारेषण व वितरण) 5. ग्रीनफिल्ड एयरपोर्ट 100% 6. वर्तमान एयरपोर्ट प्रोजेक्ट 74% स्वत: व ऊपर हाने पर सरकारी अनुमति 7. अनुसूचित हवाई सेवा और घरेलू पैसेंजन सेवा 49% एफडीआई एवं 100% प्रतिशत एनआरआई। 8. गैर अनुसूचित हवाई परिवहन सेवा 74% एफडीआई स्वत: 49% से अधिक होने पर सरकार एवं 100% एनआरआई स्वत: एवं 49% से अधिक होने पर सरकार से अनुमति। 9. हेलिकॉप्टर 100% स्वत: तथा 74% से ऊपर होने पर सरकार। 10. बैंकिंग निजी क्षेत्र में 74% एफआईआई शामिल 49% से अधिक होने पर सरकार से अनुमति। 11. टाउनशिप 100 प्रतिशत। 12. औद्योगिक पार्क 100%। 13. बीमा 26% 14. एनबीएफसी 100% 15. पेट्रोलियम एवं नैचुरल गैस 100% 16. टेलिकॉम सर्विस 49% तक स्वत: इसके ऊपर सरकार द्वारा। 17. ई. कामर्स एक्टिविटिज 100%	1. वह क्षेत्र जिनमें एफडीआई का निषेध है। (*i*) फुटकर व्यापार (सिंगल ब्रांड में 100 प्रतिशत के अलावा) (*ii*) लाटरी व्यापार (*iii*) जुआ और सट्टबाजी (*iv*) जुआ और सट्टेबाजी (*v*) चिट फंड व्यापार (*vi*) निधि कंपनी (*vii*) ट्रांसफेरेबल डेवेलपमेंट्स राइट्स व्यापार (*viii*) वे गतिविधियां/क्षेत्र जो प्राइवेट सेक्टर निवेश के लिए नहीं खुले हैं। परमाणु ऊर्जा और रेलवे परिवहन इसमें शामिल है, जबकि मास रैपिड ट्रांसपोर्ट सिस्टम इसमें शामिल नहीं है। (*ix*) सिगार, चेरूट्स, सिगारीलॉस एवं सिगरेट का तंबाकू या तंबाकू के प्रतिस्थापन। (*x*) वास्तविक संपदा व्यापार या फार्म हाऊस का निर्माण।

गतिविधियों से सम्बद्ध किया गया है। तदनुसार 3 मुख्य श्रेणियों के सम्बन्ध में जिन्हें नीचे वर्णित किया गया है, भुगतान संतुलन सांख्यिकी में FDI आंकड़ों को दर्ज करने के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रक्रिया व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित है।

1. **इक्विटी प्रवाह**–इसमें शाखाओं में इक्विटी, सहायक कंपनियों तथा अन्य पूंजी अंशदान आते हैं।
2. **पुनर्निवेशित आय**–इसमें विदेशी सहायक कंपनियों तथा उनसे सम्बन्ध कंपनियों का स्थगित अर्जन आते हैं।
3. **अन्तर कंपनी ऋण लेन-देन**–इसमें सम्बद्ध कारपोरेट ईकाइयों के मध्य अन्तर-कारपोरेट ऋण लेन-देन आते हैं।

विभिन्न देशों के मध्य पर्याप्त भिन्नता है जहां तक उनके विदेशी निवेश प्रवाह की मौजूदा व्यवस्था का सम्बन्ध है, चीन और भारत इस सम्बन्ध के अच्छे उदाहरण हैं। FDI रिपोर्ट चीनी व्यवस्था अपेक्षाकृत व्यापक आधार वाली है। इक्विटी पूंजी पुनर्निवेशित अर्जनों, अन्तर कारपोरेट ऋण, लेन-देन के अलावा चीन में अल्पावधि तथा दीर्घावधि ऋणों, बॉण्ड, अनुदान, वित्तीय पट्टादायी, विदेशी उद्यम पूंजी निधि द्वारा निवेश अप्रत्यक्ष रूप से धारित उद्यमों के अर्जन, गैर-नकदी इक्विटी अर्जन, नियंत्रण प्रीमियम तथा FDI के अन्तर्गत प्रतिस्पर्धी शुल्क को शमिल किया जाता है। इसमें FDI प्रवाह के रूप में परियोजना-आयातों को भी शामिल किया जाता है जिसे भारत में आयातों के रूप में दर्ज किया जाता है। चीन की तुलना में यह स्पष्ट है कि कुछ समय पूर्व तक भारत भुगतान संतुलन सांख्यिकी में FDI की रिपोर्टिंग जो केवल इक्विटी पूंजी तक सीमित है। FDI प्रवाहों के अपेक्षाकृत सीमित कवरेज को प्रदर्शित करती है।

भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की प्रक्रिया (The Process of FDI in India)

देश में त्वरित आर्थिक विकास के लिए FDI अतिआवश्यक है। भारत में निवेश के 2 रूप हैं–

1. **RBI आटोमेटिक मार्ग या (मुम्बई मार्ग) RBI Automatic Route (Bombay Route):** इसमें निवेश हेतु सरकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती तथा निवेश के 30 दिन के अंदर आरबीआई को सूचित किया जाता है।
2. **विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड मार्ग या (दिल्ली मार्ग) FIPB Route (Delhi Route):** विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड का 18 फरवरी, 2003 को पुनर्गठन कर वाणिज्य मंत्रालय से इसे वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग को हस्तांतरित किया गया।

आर्थिक कार्य विभाग में थ्य्च्ठ प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश के बारे में सरकार की नीति पर अमल करने के लिए सचिवालय के रूप में कार्य कर रहा है। थ्य्च्ठ सचिवालय में प्राप्त सभी प्रस्तावों पर बोर्ड द्वारा विचार किया जाता है और 30 दिन की निर्धारित समय सीमा के भीतर सरकार के निर्णय की जानकारी निवेशकों को दे दी जाती है। पारदर्शिता बनाये रखने और प्रक्रियाओं को आसान बनाने के लिए थ्य्च्ठ सचिवालय को प्राप्त प्रस्ताव की जानकारी बेवसाईट पर दी जाती है।

अन्स्र्ट ऐंड यंग के 2012 इंडिया एट्रैक्टिवनेस सर्वेक्षण

वैश्विक मंदी की आंशकाओं के बीच जहां निवेश को लेकर चिंता है वहीं भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए खुशखबरी भी है। **अनर्स्ट ऐंड यंग के 2012 इंडिया एट्रैक्टिवेनस सर्वेक्षण** के मुताबिक निवेशकों के लिए भारत एक आकर्षक स्थान है। सर्वेक्षण में निवेश के लिहाज से वैश्विक रैकिंग प्रदान की गई है। इस सूची में भारत को प्रत्यक्षे विदेशी निवेश (एफडीआई) के लिहाज से चौथे पायदान पर जगह दी गई है। भारत की अमेरिका, चीन और ब्रिटेन बाद निवेश के लिए सर्वाधिक मुफीद जगह माना गया हैं सर्वेक्षण के मुताबिक निवेशकों को आकर्षित करने के मामले में चीन भारत का सबसे बड़ा प्रतिस्पर्धी हैं।

उभरता मध्य वर्ग, लागत प्रतिस्पर्धा और उच्च गुणवत्ता वाले मानव संसाधन तक आसान पहुंच, ऐसी प्रमुख विशेषताएं हैं जिकी वजह से भारतीय बाजार निवेशकों को आकर्षित करता है। सर्वेक्षण के मुताबिक घरेलू बाजार को मजबूत देने वाले तेजी से उभरते मध्यवर्ग की संख्या वर्ष 2011 तक 16 करोड़ और 2016 तक 26-70 करोड़ तक पहुंचने का अनुमान है।

नोट

घरेलू मांग पर आधारित भारत का विकास मॉडल देश में विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के मामले में उत्प्रेरक भूमिका निभा रहा है।

भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए सही पांच प्रमुख स्थानों में बेंगलूर, मुबंई, चेन्नई, नई दिल्ली और पुणे शामिल है। ये शहर निवेश परियोजनाओं का 43 फीसदी हिस्सा अपनी तरफ खींचतें हैं और यहां पर 34 फीसदी नौकरियों सृजित हुई। भारत में होने वाले कुल एफडीआई का 26 फीसदी इन शहरों में गया।

सर्वेक्षण के मुताबिक भारत साझी सेवाओं के लिए अग्रणी भूमिका में रहा है और यह कई विदेशी निगमों के लिए तेजी से विनिर्माण केंद्र के तौर पर उभर रहा है। सर्वेक्षण में भाग लेने वाले 25 फीसदी प्रतिभागियों ने माना कि भारत वर्ष 2020 तक दुनिया के तीन बड़े विनिर्माण केंद्रों में शामिल होगा।

सरकार ने FDI सम्बन्धी प्रक्रिया को और उदार बनाया है। निवासी से अनिवासी को शेयर का हस्तांतरण, ईसीबी (External Commercial Borrowing) का इक्विटी में परिवर्तन और शयरों के नये Issue के द्वारा विदेशी इक्विटी भागीदारी में बढ़ोतरी और वरीयता शेयरों के इक्विटी में परिवर्तन को भी सरकारी रूट की बजाय स्वत: मार्ग के अन्तर्गत लाया गया है।, बशर्ते इस तरह का प्रस्ताव वित्तीय हो। निवेश स्वत: मंजूरी मार्ग के अन्तर्गत आता हो सेबी (SEBI) विनिमय 1997 लागू न होते हों, और प्रस्ताव अधिसूचित क्षेत्रफल सीमाओं के दायरे में हो। 4 अक्तूबर 2004 से विदेशी सहयोग (FC) मंजूरी की वैधता बढ़ाने की शर्त भी समाप्त कर दी गयी है।

प्रावधानों के अनुसार विदेशी निवेश/तकनीकी सहयोग के नये प्रस्तावों को अब स्वत: मंजूरी मार्ग के अन्तर्गत प्रस्तुत करने की अनुमति होगी, बशर्ते वे क्षेत्रगत नीतियों के अधीन हो और निम्न दिशा निर्देशों के अनुरूप हो:

1. सरकार की पूर्व अनुमति केवल ऐसे मामलों में आवश्यक होगी जहां विदेशी निवेशक समान क्षेत्र से सम्बद्ध किसी मौजूदा संयुक्त उद्यम में भागीदारी हो।
2. विदेशी निवेशक 'समान' क्षेत्र में संयुक्त उद्यम हिस्सेदार होने की स्थिति में भी सरकार की पूर्व अनुमति अपेक्षित नहीं होगी, बशर्ते निवेश सेबी द्वारा पंजीकृत उद्यम पूंजी कोष द्वारा किया गया हो, अथवा जहां मौजूदा संयुक्त उद्यम निवेश किसी भी पक्ष द्वारा 30 प्रतिशत से कम हो अथवा जहां मौजूदा उद्यम सहयोग निष्फल रहा हो।

विदेशी निवेश कार्यान्वयन प्राधिकरण (Foreign Investment Implementation Authority-FIIA)

FDI के अनुमोदनों पर तत्काल अमल करने, विदेशी निवेशकों की आवश्यक अनुमोदन प्राप्त करने में मदद के लिए एक ही जगह उत्तरवर्ती देखभाल सेवाएं प्रदान करने, परिचालन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने और निवेशकों की समस्याओं के हल खोजने के लिए विभिन्न सरकारी एजेंसियों से सम्पर्क करने हेतु **वाणिज्य** तथा **उद्योग मंत्रालय** के **औद्योगिक नीति** तथा **संवर्द्धन विभाग** में **विदेशी निवेश कार्यान्वयन प्राधिकरण** की स्थापना की गयी।

नोट्स औद्योगिक नीति तथा संवर्द्धन विभाग मे औद्योगिक सहायता सचिवालय प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है।

एफडीआई नीति पर मंत्रालयों का विरोध– तीन प्रमुख मंत्रालयों ने राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (एमएससी) के प्रस्ताव पर गंभीर चिंता व्यक्त की है। इस प्रस्ताव में परिषद में सुरक्षा कारणों से चुनिंदा सेक्टरों की संवेदनशील सूची बनाने को कहा है, जिन्हें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) के लिए स्वत: मंजूरी से अलग रखा जाएगा। सड़क परिवहन एवं राजमार्ग, विदेश मामले और रसायन एवं उर्वरक से संबद्ध एनएससी प्रस्ताव विदेशी निवेश के प्रवाह पर विपरीत असर डाल सकता है।

नोट

हालांकि यह चिंता इस तथ्य के बावजूद आई है जब सभी प्रमुख मंत्रालयों की भागीदारी और अंतर-मंत्रालयी परामर्श के बाद महत्वपूर्ण क्षेत्रों की सूची और नीति में बदलाव को अंतिम रूप दिया गया। इसके बाद रक्षा, उद्योग, गृह एवं कंपनी मामलों जैसे प्रमुख मंत्रालयों के सदस्य नीति में बदलाव सुझाए जाने के लिए एकजुट हुए हैं। इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए एनएससी द्वारा एक मसौदा प्रस्ताव तैयार किया गया जिसमें ये सभी सुझाव और विशेष उपाय शामिल किए गए। लेकिन अब मंत्रालयों ने इस मसौदे पर यह कहते हुए चिंता जताई है कि इससे एफडीआई का प्रवाह मंद हो सकता हैं। एनएससी ने सुझाव दिया था कि इस सूची के अंतर्गत एफडीआई प्रस्ताव विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड (एफआईपीबी) से जरूरी जांच के अधीन होंगे।

इसने एफडीआई पर सभी संवेदनशील प्रस्तावों की गहन जांच के लिए सुरक्षा एजेंसियों के प्रतिनिधित्व में एक नई संस्था कमेटी ऑफ सेक्रेटरीज ऑन फाइनैंशियल इन्वेस्टमेंट (सीएसएफआई) के निर्माण का भी सुझाव दिया था।

एनएससी ने 'संवेदनशील सूची' में रसायन एवं औद्योगिक विस्फोटों, पेट्रोलियम रिफाइनिंग, गैस पाइपलाइन, परिवहन, नई हवाई अड्डा परियोजनाओं, ड्रग एवं फार्मास्युटिकल्स जैसे लगभग 14 क्षेत्रों को शामिल किए जाने का प्रस्ताव रखा। इसके अलावा एनएससी ने एफडीआई से पैदा होने वाली राष्ट्रीय सुरक्षा समस्याओं के निपटारे के लिए एक प्रमुख एक अलग कानून बनाए जाने का भी सुझाव दिया है, ताकि सरकार द्वारा उठाए जाने वाले किसी कदम के लिए कानूनी मदद हासिल हो सके। एनएससी ने कैबिनेट के एम. चंद्रशेखर ने नेतृत्व में बनाई गई सचिवों की 20 सदस्यीय कमेटी में एफडीआई से संबंधित सुरक्षा मुद्दों पर चर्चा के लिए प्रस्ताव तैयार किया था। यह कदम सुरक्षा एजेंसियों द्वारा चिंता प्रकट किए जाने के बाद उठाया गया।

एनएससी प्रस्ताव के बारे में अपनी प्रतिक्रिया में सड़क एवं परिवहन मंत्रालय ने कहा कि हाईवे की सुरक्षा जांच की कोई प्रणाली नहीं है जो विदेशी कंपनियों को दिए जाते रहे हैं। कुछ ठेके संयुक्त उपक्रमों के जरिए दिए गए हैं। मंत्रालय का मानना है कि जम्मू-कश्मीर और उत्तराखंड एवं हिमाचल प्रदेश के सीमांत इलाकें को छोड़ कर ऐसी प्रणाली शायद अनावश्यक है। मंत्रालय का तर्क है कि सुरक्षा जांच अक्सर लंबा समय लेती है और इससे संबद्ध ठेकों और राष्ट्रीय राजमार्गो के निर्माण में विलंब हो सकता है। इस बीच रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय के तहत रसायन एवं पेट्रोकेमिकल विभाग ने केमिकल (विषाक्त रसायन भी शामिल) को एफआईपीबी के दायरे में लाए जाने के एनएससी के प्रस्ताव को ठुकरा दिया है। मौजूदा समय में इस क्षेत्र में ऑटोमेटिक रूप पर 100 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति हैं विभाग ने सीएसएफआई की स्थापना के कदम का भी विरोध किया है।

एफडीआई पर वित्त मंत्रालय की पहल– प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के बारे में पिछले साल आए प्रेस नोट पर मचे विवाद को देखते हुए वित्त मंत्रालय का नया सुझाव यह है कि जिन कंपनियों में 50 प्रतिशत से कम विदेशी हिस्सेदारी है, उनके निवेश प्रस्तावों को भी स्वतः मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए। उन निवेश प्रस्तावों की पड़ताल और मंजूरी भी विदेशी संवर्द्धन बोर्ड (एफआईपीबी) के जिम्मे होनी चाहिए।

इस प्रस्ताव से प्रेस नोट 2 को लेकर उठे विवाद में कुछ कमी आने की उम्मीद है। देश में एफडीआई पर नीति को फिर से परिभाषित करने के लिए ही ये नोट लाए गए थे। इन प्रेस नोट में कहा गया था कि यदि किसी भारतीय कंपनी में 50 प्रतिशत से कम विदेशी हिस्सेदारी है, लेकिन उसकी कमान भारतीय प्रवर्तकों के हाथों में है तो उसे भारतीय कंपनी ही माना जाएगा। इस प्रकार ऐसी कंपनियां एफआईपीबी की मंजूरी के बगैर ही निवेश कर सकती हैं, चाहे उनके क्षेत्र में निवेश पर पाबंदी ही क्यों न लगी हो। इसमें कमान यानी नियंत्रण भी किसी कंपनी में निदेशक मंडल के अधिकतर सदस्य नियुक्त करने के अधिकार को माना गया था।

लेकिन वित्त मंत्रालय ने नए प्रस्ताव में कहा है कि 50 प्रतिशत से कम विदेशी हिस्सेदारी वाली कंपनी को निवेश की स्वतः मंजूरी तभी मिलेगी, जब उसके क्षेत्र में (यानी जिस उद्योग से वह कंपनी ताल्लुक रखती है) 100 प्रतिशत एफडीआई को मंजूरी होगी। जिन क्षेत्रों में एफडीआई की सीमा तय है या जिन्हें इसके लिए आम तौर पर एफआईपीबी की मंजूरी दी दरकार होती है, उनमें 50 प्रतिशत से कम एफडीआई के लिए भी बोर्ड की हरी झंडी चाहिए होगी। इतना ही नहीं, ऐसी कंपनियों को निषिद्ध क्षेत्रों में निवेश करने से भी रोक दिया जाएगा।

नोट

विदेशी निवेश हुआ सहज– किसी भारतीय कंपनी में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के मामले में वित्त मंत्रालय का इरादा उद्योग जगत को कुछ राहत देने का नजर आ रहा है। मंत्रालय ने सलाह दी है कि किसी भी कंपनी में कुल विदेशी निवेश की गणना करते समय पोर्टफोलियो निवेश को इसके दायरे से बाहर रखा जाना चाहिए। पोर्टफोलियो निवेश में फिलहाल विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) की और से किया गया निवेश और प्रवासी भारतीय अथवा भारतीय मूल के व्यक्तियों द्वारा खरीदे गए शेयर और परिवर्तनीय डिबेंचर आते हैं।

वित्त मंत्रालय ने औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग (डीआईपीपी) से एफडीआई में कुल सीमा तय करने के लिए इसी बुनियाद पर नीति तैयार करने को कहा है। इसने उन भारतीय कंपनियों को खासी राहत मिलेगी, जो एफआईआई की वजह से विदेशी निवेश सीमा का उल्लंघन करने के मामले में फंस रही थीं। दरअसल विवादित प्रेस नोट 2, 3 व 4 के तहत भारतीय कंपनियों में विदेशी निवेश के मामले में एफडीआई, एफआईआई, प्रवासी भारतीयों का निवेश, अमेरिका डिपॉजिटरी रिसीट, ग्लोबल डिपॉजिटरी रिसीट, विदेशी मुद्रा में परिवर्तनीय बॉन्ड, परिवर्तनीय तरजीही शेयर, परिवर्तनीय मुद्रा डिबेंचर परोष विदेशी निवेश के दायरे में आते हैं। इसलिए किसी भी क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा तय करते समय इन सभी का आकलन किया जाएगा।

लेकिन प्रत्यक्ष निवेश के मामले में यह सीमा एफडीआई तक ही रहेगी। मिसाल के तौर पर निजी क्षेत्र के बैंकों में 74 प्रतिशत विदेशी निवेश की सीमा में एफडीआई और एफआईआई दोनों शामिल होंगे। प्रसारण एवं रेडियो में 20 प्रतिशत की सीमा में दोनों होंगे। लेकिन वित्त मंत्रालय के मुताबिक प्रत्यक्ष और परोक्ष विदेशी निवेश के अंतर्गत आने वाले निवेश में एकरूपता अपनाने की जरूरत है, जिसके बाद दोनों तरह के निवेश के लिए क्षेत्रवार एक सी सीमा तय कर दी जाए।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) एफआईआई के पंजीकरण के लिए संकुल संस्था का काम करता है। इन नियमों के तहत व्यक्तिगत एफआईआई के तहत निवेश कंपनी की चुकता पूंजी के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। एफआईआई के विदेश में पंजीकृत सब एकाउंट चुकता पूंजी के 5 प्रतिशत अधिक निवेश नहीं कर सकते। ये दोनों मिलकर भारतीय कंपनी की चुकता पूंजी के 24 प्रतिशत से अधिक का अधिग्रहण नहीं कर सकते। लेकिन कंपनियों निदेशक मंडल की मंजूरी से इस सीमा को क्षेत्र के लिए दी गई निवेश सीमा तक बढ़ा सकती हैं।

क्या आप जानते हैं पोर्टफोलियो निवेश के नियमों के तहत एसेट मैनेजमेंट कंपनिया, पेंशन फंड, म्युचुअल फंड आदि एफआईआई के अंतर्गत ही आते हैं।

एफडीआई के लिए कॉम्प्रिहेंसिव पॉलिसी डॉक्युमेंट जारी– विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) की प्रक्रिया को आसान करने और उसमें पारदर्शिता लाने के लिए सरकार ने एक कॉम्प्रिहेंसिव पॉलिसी डाक्युमेंट जारी किया है। इसमें पहले जारी 178 प्रेस नोट भी समाहित होंगी। यह हर छह महीने में अपडेट होगा। इसके लिए उद्योग संगठन फेडरेशन ऑफ चेम्बर्स ऑफ कामर्स एंड इंडस्ट्री (फिक्की) की मदद ली जाएगी। औद्योगिक नीति एवं प्रोत्साहन विभाग (डीआईपीपी) को निर्देश दिया गया है कि हर छह महीने में होने वाले परिवर्तनों को कार्यरूप दे। भारत में जो भी अंतर्राष्ट्रीय निवेशक निवेश को इच्छुक होंगे, उन्हें औद्योगिक संगठन भी मदद करेंगे।

वित्त मंत्री ने बजट भाषण में एफडीआई प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने के लिए पहले से जारी सभी नियमों, विनियमों और दिशानिर्देशों को सम्मिलित कर कॉम्प्रिहेंसिव पॉलिसी डॉक्युमेंट जारी करने की घोषणा की थी। एफडीआई, विदेशी मुद्रा प्रबंधन कानून के संबंध में जारी नोट, रिजर्व बैंक के सर्कुलर, विभिन्न प्रेस नोटों आदि को एक डॉक्युमेंट में शामिल किया जाएगा। यह किसी परिवर्तन का द्योतक नहीं हैं बल्कि इससे सभी निवेशकों और स्टॉकहोल्डरों को सुविधा हो जाएगी। यहीं नहीं, कार्यप्रणाली में भी पारदर्शिता आ जाएगी।

नोट

मॉरीशस और एफडीआई निवेश– इंडों-मॉरीशस दोहरा कराधान से बचाव संधि को लेकर राजस्व विभाग भले ही नाराज होता हो, भारत सरकार के लिए 2006-07 में संधि ने डॉलर की बरसात कर दी हैं। जल्दी ही पश्चिम एशिया से धन सिंगापुर के रास्ते भी भारत आएगा। वर्ष 2005-06 में 5.5 अरब डॉलर और 2004-05 में 3.7 अरब डॉलर भारत आए थे। वर्ष 2006-07 में यह आंकड़ा 15.7 अरब डॉलर हो गया। इसमें से 6.3 अरब डॉलर केवल मारीशस से आए हैं। यूपीए सरकार के तीन सालों मे आए 25 अरब डॉलर में से 10 अरब डॉलर मारीशस के रास्ते आए है। अमेरिका, ब्रिटेन, जापान और जर्मनी का नंबर इसके बाद ही आता है।

टास्क सरकार ने कॉम्प्रिहेंसिव पॉलिसी डाक्युमेंट क्यों जारी किया?

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति में परिवर्तन-2011

(*i*) दिनांक 1.4.2011 से प्रभावी–'2011 के परिपत्र 1' में बहुत से महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तन शामिल हैं, जिसमें ये भी हैं–(*i*) मूल्य की बजाय परिवर्तन सूत्र के आधार पर परिवर्तनीय लिखतों में तेजी का मूल्य निर्धरण (*ii*) नकद भिन्न मान्यताओं के स्थान पर शेयरों को जारी करने के लिए नई मदों का समावेश जिसमें पूंजीगत वस्तुओं/मशीनरी/उपस्कर का आयात और पूर्व-प्रचालन/पूर्व-समावेश व्यय शामिल हैं (*iii*) "समान क्षेत्र में" विद्यमान संयुक्त उद्यमों/तकनीकी सहयोग के मामले में पूर्व अनुमोदन की शर्त को हटाना (*iv*) डाउन स्टीम निवेशों से संबंधित मार्ग निर्देशों का सरलीकरण और यौक्तिकीकरण (*v*) 'नियंत्रित शर्तों' के अंतर्गत ऐसा करने के निर्धारण के बिना बीजों और पौधरोपण सामग्री का विकास और उत्पादन।

(*ii*) दिनांक 20 मई, 2011 से, सरकार ने विशिष्ट शर्तो के अधीन सीमित देनदारी हिस्सेदारी में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी।

(*iii*) दिनांक 1.10.2011 से प्रभावी '2011 का परिपत्र 2' विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को और अधिक सरल बनाता है और जिसमें ये भी है: (*i*) निर्माण विकास क्षेत्र में सामान्य शर्तों से, शिक्षा क्षेत्र और वृणश्रम में निर्माण-विकास गतिविधियों से छूट (*ii*) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए अनुमत कृषि संबंधी गतिविधियों के अंतर्गत, नियंत्रित शर्तों के अधीन 'मधुमक्खी पालन' का समावेश (*iii*) औद्योगिक पार्कों के अन्तर्गत 'औद्योगिक गतिविधि' के रूप में 'जैव प्रौद्योगिकी भेषजी विज्ञान/जीव विज्ञान के संबंध में मूलभूत तथा अनुप्रयुक्त आर एंड डी', का समावेश (*iv*) स्थलीय प्रसारण/एफएम रेडियों में विदेशी निवेश हेतु 26% की संशोधित सीमा की अधिसूचना (*v*) आयातित पूंजीगत वस्तुओं/मशीनरी और पूर्व-प्रचालन/पूर्व-समावेशन व्ययों का इक्विटी लिखतों में परिवर्तन का उदरीकरण (*vi*) 'शयरों की वचनबद्धता' के संबंध में प्रावधानों का प्रारंभ और विनिर्दिष्ट शर्तों के अधीन बिना ब्याज वाले विलंब विलेख खातों को खोलना।

(*iv*) दिनांक 8 नवम्बर, 2011 से प्रभावी (छः महीने बाद समीक्षा की जाएगी) सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के संबंध में विद्यमान नीति की समीक्षा की है और निर्णय लिया है कि सरकारी अनुमोदन मार्ग के जरिए भेषजी क्षेत्र में ब्राउनफील्ड निवेशों (अर्थात् विद्यमान कंपनियों में निवेश) के लिए 100% तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति प्रदान की जाएगी।

(*v*) दिनांक 10 जनवरी, 2012 से प्रभावी, सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति के संबंध में विस्तृत नीति को सिंगल ब्रांड रिटेल टेंडिंग में उदरीकृत किया है। जिसमें सरकारी मार्ग के अन्तर्गत 100% तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति देकर विनिर्दिष्ट शर्तों के अधीन 51% तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति थी, जिसमें अतिरिक्त शर्त यह भी थी कि जिन प्रस्तावों में 51% से ज्यादा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश शामिल है, उनके संदर्भ में बेचे गए उत्पादों के कम से कम 30% मूल्य की अनिवार्य सोर्सिंग भारतीय लघु उद्योगों/ग्राम एवं कुटीर उद्योगों, कारीगरों और शिल्पकारों से की जानी है।

स्रोत–डीआईपीपी

नोट

भारत में एफडीआई वाले महत्वपूर्ण 10 देश

रैंक	देश	राशि (करोड़ डॉलर)
1.	मॉरीशस	636.2
2.	ब्रिटेन	187.8
3.	अमेरिका	85.5
4.	नीदरलैंड्स	64.4
5.	सिंगापुर	57.8
6.	बरमुडा	41.3
7.	यूएई	26.0
8.	जर्मनी	12.0
9.	फ्रांस	11.7
10.	जापान	8.5

राजस्व विभाग की परेशानी– कर विभाग मारीशस की संधि को राजस्व में हानि का बड़ा कारण मानता रहा है। वहां से भारत में निवेश करने पर कैपिटल गेन टैक्स में पूरी छूट मिलती है। सरकार इस नियम को अचानक बदल भी नहीं सकती। भारत संधि की समीक्षा करना चाहता है लेकिन रिश्तों का सम्मान भी करना चाहता है। वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय मारीशस के जरिए आए एफडीआई पर खुशियां मनाने में लगा है। वाणिज्य मंत्रालय मारीशस से एफडीआई लाने को रणनीति का हिस्सा मानता है। अब उसका फायदा मिल रहा है। वाणिज्य मेंत्रालय तो मॉरीशस जैसे समझौते और करने के पक्ष में हैं। सिंगापुर के साथ भी सीईसीए पर दस्तखत हुए हैं। इससे भी भारत में ज्यादा एफडीआई आने की संभावना है। सिंगापुर से आने वाले एफडीआई का आकड़ा भी 2006–07 में बढ़ गया है। सीईसीए पर दस्तखत होने के बाद से सिंगापुर से आने वाला एफडीआई बढ़ा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... ने 2004 में FDI की नयी परिभाषा को स्वीकार कर वर्ष 2000–01 से आगे FDI प्रवाह के संशोधित आंकड़े जारी किये हैं।
2. .... रिपोर्ट चीनी व्यवस्था अपेक्षाकृत व्यापक आधार वाली है।
3. देश में त्वरित .... के लिए FDI अति आवश्यक है।
4. 4 अक्टूबर 2004 से .... (FC) मंजूरी की वैधता बढ़ाने की शर्त भी समाप्त कर दी गई है।
5. देश में FDI पर नीति को फिर से परिभाषित करने के लिए है .... लाए गये थे।
6. .... के मुताबिक प्रत्यक्ष और परोक्ष विदेशी निवेश के अंतर्गत आने वाले निवेश में एकरूपता अपनाने की जरूरत है।
7. कम्प्रिहेंसिव पॉलिसी डाक्युमेंट हर .... में अपडेट होगा।
8. भारत में जो भी अंतर्राष्ट्रीय निवेशक निवेश को इच्छुक होंगे, उन्हें .... भी मदद करेंगे।
9. .... सरकार के तीन सालों में आए 25 अरब डॉलर में से 10 अरब डॉलर मॉरीशस के रास्ते आए हैं।
10. .... मॉरीशस की संधि को राजस्व में हानि का बड़ा कारण मानता रहा है।

नोट

25.2 सारांश (Summary)

- निवेश दो प्रकार का होता है–(1) प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) तथा (2) विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (FPI)। एफडीआई उत्पादन या व्यापार प्रत्यक्षः इक्विटी में किया गया निवेश है जबकि एफपीआई देश के शेयर बाजार में सूचीबद्ध कम्पनियों के शेयरों में विदेशी संस्थागत निवेशकों तथा एनआरआई द्वारा किए गए निवेश को कहते हैं।
- एफडीआई दो प्रकार का होता है–(1) ग्रीन फिल्ड एफडीआई (नये सिरे से जमीन खरीदकर, बिल्डिंग बनाकर नयी स्थापना तथा (2) ब्राउन फिल्ड इवेस्टमेंट (पहले से चल रहे उद्यम एवं व्यवसाय में हिस्सेदारी करना। एमएनसी ज्यादातर इसी प्रकार का निवेश करना चाहती हैं, जिसके लिए उसकी आलोचना की जाती है।
- RDI ने 2004 FDI की नयी परिभाषा को स्वीकार कर वर्ष 2000-01 से आगे FDI प्रवाह के संशोधित आंकड़े जारी किये हैं। **संशोधित परिभाषा में FDI:** इक्विटी पूंजी, पुनर्निवेशित अर्जनों तथा अन्य प्रत्यक्ष पूंजी के अन्तर्गत पूंजी प्रवाह की 3 श्रेणियां शामिल हैं।
- विभिन्न देशों के मध्य पर्याप्त भिन्नता है जहां जक उनके विदेशी निवेश प्रवाह की मौजूदा व्यवस्था का सम्बन्ध है, चीन और भारत इस सम्बन्ध के अच्छे उदाहरण हैं।
- देश में त्वरित आर्थिक विकास के लिए FDI अतिआवश्यक है। भारत में निवेश के 2 रूप हैं–
  1. RBI आटोमेटिक मार्ग या (मुम्बई मार्ग)
  2. विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड मार्ग या (दिल्ली मार्ग)
- आर्थिक कार्य विभाग में FIPB प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश के बारे में सरकार की नीति पर अमल करने के लिए सचिवालय के रूप में कार्य कर रहा है। FIPB सचिवालय में प्राप्त सभी प्रस्तावों पर बोर्ड द्वारा विचार किया जाता है और 30 दिन की निर्धारित समय सीमा के भीतर सरकार के निर्णय की जानकारी निवेशकों को दे दी जाती है।
- FDI के अनुमोदनों पर तत्काल अमल करने, विदेशी निवेशकों की आवश्यक अनुमोदन प्राप्त करने में मदद के लिए एक ही जगह उत्तरवर्ती देखभाल सेवाएं प्रदान करने, परिचालन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने और निवेशकों की समस्याओं के हल खोजने के लिए विभिन्न सरकारी एजेंसियों से सम्पर्क करने हेतु **वाणिज्य** तथा **उद्योग मंत्रालय** के **औद्योगिक नीति** तथा **संवर्द्धन विभाग** में **विदेशी निवेश कार्यान्वयन प्राधिकरण** की स्थापना की गयी।
- मंत्रालय का तर्क है कि सुरक्षा जांच अक्सर लंबा समय लेती है और इससे संबद्ध ठेकों और राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण में विलंब हो सकता है।
- मौजूदा समय में इस क्षेत्र में ऑटोमेटिक रूप पर 100 प्रतिशत एफडीआई की अनुमति हैं विभाग ने सीएसएफआई की स्थापना के कदम का भी विरोध किया है।
- प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के बारे में पिछले साल आए प्रेस नोट पर मचे विवाद को देखते हुए वित्त मंत्रालय का नया सुझाव यह है कि जिन कंपनियों में 50 प्रतिशत से कम विदेशी हिस्सेदारी है, उनके निवेश प्रस्तावों को भी स्वतः मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए।
- लेकिन वित्त मंत्रालय ने नए प्रस्ताव में कहा है कि 50 प्रतिशत से कम विदेशी हिस्सेदारी वाली कंपनी को निवेश की स्वतः मंजूरी तभी मिलेगी, जब उसके क्षेत्र में (यानी जिस उद्योग से वह कंपनी ताल्लुक रखती है) 100 प्रतिशत एफडीआई को मंजूरी होगी।
- किसी भारतीय कंपनी में प्रत्यक्ष विदेशी निवेशर (एफडीआई) के मामले में वित्त मंत्रालय का इरादा उद्योग जगत को कुछ राहत देने का नजर आ रहा है। मंत्रालय ने सलाह दी है कि किसी भी कंपनी में कुल विदेशी निवेश की गणना करते समय पोर्टफोलियों निवेश को इसके दायरे से बाहर रखा जाना चाहिए।

नोट

- विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) की प्रक्रिया को आसान करने और उसमें पारदर्शिता लाने के लिए सरकार ने एक कॉम्प्रिहेंसिव पॉलिसी डाक्युमेंट जारी किया है। इसमें पहले जारी 178 प्रेस नोट भी समाहित होंगी। यह हर छह महीने में अपडेट होगा।
- इंडों-मॉरीशस दोहरा कराधान से बचाव संधि को लेकर राजस्व विभाग भले ही नाराज होता हो, भारत सरकार के लिए 2006-07 में संधि ने डॉलर की बरसात कर दी हैं। जल्दी ही पश्चिम एशिया से धन सिंगापुर के रास्ते भी भारत आएगा।
- कर विभाग मारीशस की संधि को राजस्व में हानि का बड़ा कारण मानता रहा है। वहां से भारत में निवेश करने पर कैपिटल गेन टैक्स में पूरी छूट मिलती है।
- सिंगापुर से आने वाले एफडीआई का आकड़ा भी 2006-07 में बढ़ गया है। सीईसीए पर दस्तखत होने के बाद से सिंगापुर से आने वाला एफडीआई बढ़ा है।

25.3 शब्दकोश (Keywords)

- **इक्विटी**–अंशधारा।
- **प्रीमियम**–किस्त।
- **कवरेज**–क्षेत्र-विस्तार।

25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Question)

1. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किसे कहते हैं? इसकी संशोधित एफडीआई की परिभाषा बताइयें।
2. भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की प्रक्रिया को समझाइये तथा विदेशी कार्यान्वयन प्राधिकरण पर प्रकाश डालिए।
3. एफडीआई पर वित्त मंत्रालय ने क्या पहल की। विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. RBI	4. FDI	3. आर्थिक विकास	4. विदेशी निवेश
5. प्रेस नोट	6. वित्त मंत्रालय	7. छह महीने	8. औद्योगिक संगठन
9. यूपीए	10. कर विभाग।		

25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–26: अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट (International Debt Crises)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट (International Debt Crises)

26.2 सारांश (Summary)

26.3 शब्दकोश (Keywords)

26.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

26.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

1930 के दशक की महामारी के बाद से विश्व सर्वाधिक आर्थिक संकट से उबर नहीं पाया है। वर्ष 2007 के मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका में उपमूलबंधक के आकस्मिक विनाश से विश्वव्यापी वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ और विश्व अर्थव्यवस्था पुनः मंदी में प्रवेश करने लगी। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में प्रमुख आर्थिक संस्थाएँ इस संकट से बाहर नहीं निकल सकीं तथा स्टॉक मार्केट एवं वस्तु बाजार ढह गए तथा इनमें अत्यधिक गिरावट हुई। 2008 के उत्तरार्ध में सर्वाधिक विकसित अर्थव्यवस्थाएं भी मंदी में आ गईं और आर्थिक मंदी विकासशील देशों और अंतरण से गुजरती अर्थव्यवस्थाओं में फैली।

इस इकाई के अन्तर्गत वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक संकट की उत्पत्ति, भारत जैसी विकसित अर्थव्यवस्थाओं पर संकट के प्रभाव का विश्लेषण, उन उपायों का उल्लेख, जिन्हें संकट से उभरने के लिए अपनाया गया एवं संकट का सामना करने के लिए अपेक्षित अंतर्राष्ट्रीय समन्वित कार्रवाई के तत्वों आदि की चर्चा की गई है।

26.1 अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट (International Debt Crises)

आधुनिक विश्वस्तरीय संकट का मूल संयुक्त राज्य अमेरिका में उपमुख्य बंधक बाजार को माना जा सकता है। उपमुख्य बंधक (Sub-prime Mortgages) आवासीन ऋण हैं, जो 'मुख्य' बंधकों (Prime Mortgages) के नियमों के अनुसार नहीं होते और इसलिए संपूर्ण पुनः भुगतान की कम प्रत्याशित संभावना होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में उपमुख्य ऋणदाता क्षेत्र में संकट के प्रथम संकेत 'यथासंभव भुगतान घाटे' अथवा चूकों की अधिकतर मात्रा से सम्बन्धित था, जिनमें ऋणी अपनी पहले एक-दो मासिक भुगतानों की चूक करता है। उपमुख्य ऋण में संकट में वित्त व्यवस्था के अन्य भागों के माध्यम से प्रधान तरंगें भेजीं। कई संरचित ऋण और बंधकित बाजार उत्पाद भयंकर दबाव में आए।

संरचित उत्पादों में निवेशक हैं। फंडों को भी भारी निकासी और सीमांत मांगों का मुकाबला करना पड़ा। इसके फलस्वरूप कई बैंकों को संकटकालीन संपत्ति ऋणों से भारी क्षति हुई।

संकटों का विस्तार

साल 2009 की दूसरी छमाही के दौरान शुरू हुआ यूरोपीय कर्ज संकट वास्तव में कुछ दशकों में उस क्षेत्र द्वारा कर्ज के भुगतान के संघर्ष का ही दूसरा नाम है। इस क्षेत्र के पांच देश-ग्रीस, पुर्तगाल, आयरलैंड, इटली और स्पेन पर्याप्त इकोनॉमिक ग्रोथ पाने में असफल रहे जिससे वह बांडधारकों को पैसे के भुगतान की गारंटी का वादा निभाने में सक्षम होते है।

यद्यपि, इन पांच देशों को तात्कालिक तौर पर खतरे में देखा जा रहा है लेकिन इस ऋण संकट की आहट और इसके प्रभाव विश्व भर में फैल चुकी हैं। बैंक ऑफ इग्लैंड के प्रमुख ने अक्टूबर 2011 में कहा था कि यह साल 1930 के बाद की सबसे गंभीर वित्तीय समस्या है। वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह समस्या सबसे अहम हैं, लेकिन इसे समझना उतना आसान भी नहीं हैं। आइए इसे समझने की कोशिश करते हैं।

कैसे शुरू हुआ संकट?

साल 2008-09 में अमेरिका के आर्थिक संकट के बाद अधिकतर वैश्विक अर्थव्यवस्था की ग्रौथ प्रभावित हुई थी। इससे यूरोप और विश्व भर के अर्थव्यवस्थाओं को अस्थिर आर्थिक नीतियों की पोल खुलते देर नहीं लगी।

ग्रीस जो कई वर्षो से जी खोल कर खर्च करता आ रहा था और जो आर्थिक बदलाव करने में विफल रहा वह कमजोर ग्रोथ दर्ज करने में सबसे आगे रहा। ग्रोथ में कमी आने के साथ ही कर से प्राप्त होने वाले राजस्व में भी कमी आती है जिससे ज्यादा बजटीय घाटा असहनीय हो जाता है।

परिणाम यह हुआ कि ग्रीस के नये प्रधानमंत्री जॉर्च पापेन्दू ने साल 2009 के लगभग अंत में घोषणा करने के लिए बाध्य हुए कि पिछली सरकार देश का वास्तविक घाटा बताने में विफल रही हैं। और यह देश इस समस्या को ज्यादा दिनों तक छुपा भी नहीं सकता था।

अब निवेशक ग्रीस के बांड पर अधिक ब्याज की मांग करने लगे जिससे देश के कर्ज बोझ की लागत और बढ़ने लगी। इसके बाद यूरोपियन यूनियन और यूरोपियन सेंट्रल बैंकों द्वारा राहत के इंतजामात किए जाने लगे। बाजार भी कर्ज से डूबे अन्य देशों के बांड यील्ड बढ़ाने लगे जिससे ग्रीस जैसे संकट की आहट सुनाई देने लगी।

क्या आप जानते हैं ग्रीस का कर्ज इतना बड़ा था कि वह ग्रीस की पूरी अर्थव्यवस्था से भी अधिक था।

बांड यील्ड बढ़ने का प्रभाव– बांड यील्ड के बढ़ने का कारण बड़ा सामान्य है। जब निवेशक ज्यादा जोखिम वाले किसी देश के बांडों में निवेश करने की सोचता है तो उसे जोखिम की क्षतिपूर्ति के लिए रिटर्न की अपेक्षा भी करता है। अधिक यील्ड की मांग से संकट से जूझ रहे देश के उधारी की लागत भी बढ़ जाती है इससे देश की वित्तीय समस्या और गहराती है फिर निवेशक और अधिक यील्ड की मांग करते हैं और यह सिलसिला जारी रहता है। निवेश्कों का भरोसा घटने से ने केवल उस देश के बांड की बिक्री प्रभावित होगी है तो संकट में हैं बल्कि कमजोर अर्थव्यवस्था वाले देश भी प्रभावित होते हैं। ऐसे प्रभाव को कॉन्टैनियन इफेक्ट कहते हैं।

वर्ष 2008 के उत्तरार्ध तक ज्यादातर विकसित अर्थव्यवस्थाएं विकासशील देशों तथा अंतरणाधीन अर्थव्यवस्थाओं में फैलती हुई आर्थिक मंदी से प्रभावित हुईं। इसके पश्चात ज्यादातर देश 2002–2007 की अवधि के दौरान रिकॉर्ड की गई प्रबल वृद्धि में तीव्र उत्क्रमण अनुभव कर रहे हैं। GDP की वृद्धि दर वर्ष 2007 में 106 से गिरकर 2008 में 83 हुई, जिसकी 2009 में 52 तक गिरने की संभावना थी। 107 विकासशील देशों में इसके 2007 में 70 से गिरकर 2008 में 57 और 2009 में 29 का अनुमान लगाया गया। 1980 के दशक के प्रारंभ मे विकसित और विकासशील देशों में घरेलू वित्तीय ऋण राष्ट्रीय आय के रूप मे चार से पाँच गुना बढ़ गया। इस तीव्र विस्फोटक स्थिति ने पारंपरिक 'खरीदो और रखे रहो' बैंकिंग मॉडल से गतिशील 'बचने के लिए निर्माण' व्यापारिक मॉडल में अंतरण द्वारा संभव बनाया।

नोट

वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक संकट की उत्पत्ति और विस्तार निम्नलिखित से ज्ञात किया जा सकता है–

1. वित्तीय क्षेत्र की सरकारी पर्यवेक्षण की विफलता।
2. लाभ की अंधी दौड़ मे वित्तीय प्रवाहों का अत्याधिक विस्तार।
3. दीर्घकालिक कम बचत और ज्यादा खपत द्वारा विभेदीकृत विकास का अस्थिर मॉडल।

विश्वव्यापाी आर्थिक संकट तीन संकटों का अंतर्ग्रंथित जाल है–

1. **उपभोक्ता क्रयशक्ति समाप्त होना**–अमरीकी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता 70 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं। गृह मूल्यों और स्टॉक कीमतों द्वारा आहत-जिसने लगभग 7 ट्रिलियन डॉलर मूल्य की वैयक्तिक धन की संपत्ति बचाई है, उन्होंने खर्च करना नियंत्रित कर दिया है और बचत बढ़ाई है।
2. **वित्तीय संकट**–ऋण की वापसी व्यापार और मंहगी उपभोक्ता खरीदों से वित्त व्यवस्था के लिए ऋण की अर्थव्यवस्था मे गिरावट आई है।
3. **व्यापार संकट**–विशाल व्यापार असंतुलन के परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका घाटा और एशियाई अधि शेष हुआ, जिसने एशिया को भी मंदी में डाल दिया।

संकट की जड़ें

संकट की जड़ों ने कई परिवर्धनों के पारस्परिक प्रभावों को वित्तीय पूँजीवाद को बुनियादी रूप से रूपांतरित किया है। यह 1929 की महामंदी की अवधि अथवा उससे लगभग दशकों पूर्व विद्यमान थी। पारंपरिक रूप से बैंक अपने खातों पर ऋण केवल विश्वसनीय ग्राहकों को अधिक सावधानी के साथ प्रदान करते हैं। अधिकतम कठिन कृत्रिम उत्पादन पैदा हुए हैं। विशेष रूप से उनमें सर्वाधिक प्रमुख ऋण चूक विनिमय हैं। वाणिज्यिक बैंकों की उत्तोलन शक्ति कठोर पूँजी पर्याप्तता मानदंड़ों से सीमित की जाती है। वित्तीय प्रणाली का भूमण्डलीकरण हुआ है। इसका एक मुद्दा आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के मध्य व्यापक असंतुलन है।

संकट का प्रभाव

विश्वव्यापी मंदी में विकसित अर्थव्यवस्थाएं शीर्ष पर हैं। इसी अवधि में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्तीय चैनल के माध्यम से निम्नलिखित परिणामों से अनेक कमजोरियां विकसित देशों में तीव्रता से फैली हैं–

1. रोजगार की स्थिति विश्वव्यापी तरीके से खराब हुई है। हाल के वर्षों में भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में निर्यात में वृद्धि के कारण रोजगार के ज्यादातर लाभ समाप्त होते देखे गए हैं।
2. विश्व व्यापार में ठहराव अत्याधिक चिंता का विषय है। युद्धोत्तर आर्थिक उन्नति में विश्व अर्थव्यवस्था इस आधार पर तैयार की गई है, जो राष्ट्रों के मध्य मुक्त व्यापार संपूर्ण दक्षता सुधारता है और धन-संपत्ति का विस्तार करता है। सितम्बर, 2008 से अनेक देश अपने निर्यात में तीव्रता से गिरावट सूचित कर रहे हैं। विश्व बैंक ने दशकों के पश्चात प्रथम बार 2009 के दौरान विश्व व्यापार में गिरावट आने की संभावना व्यक्त की थी।
3. वित्त बाजार वृद्धि कम होने की उनकी परेशानियों के साथ दबाव वृद्धि में बने रहेंगे, जिसे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने 'हानिकारक प्रतिपुष्टि पाश' की संज्ञा दी है। मंदी अशोध्य ऋणों में वृद्धि कर रही है और विश्वस्तरीय बैंकों के तुलनपत्र विश्व स्तर पर आर्थिक संकट दिखा रहे हैं।
4. अनिश्चितता दूर करने में नीतियां असफल रही हैं। वित्तीय संकट बने रहने के कारण उन्नत और उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में परिसम्पत्ति के मूल्य तीव्रता से घटे हैं। इसके अतिरिक्त अनिश्चितता से संबंधित उच्च स्तर ने घरेलू और व्यापार व्यय स्थगित करने के लिए मजबूर किया है, उपभोक्ता और पूँजीगत वस्तु की मांग में कमी आई।
5. विश्वव्यापी दृष्टि से यह अनुमान लगाया गया है कि उभरती हुई अर्थव्यवस्था में निवल पूँजी प्रवाह में तीव्र गिरावट आ रही हैं।
6. 1981-86 और 1996-2002 की दो विगत संकट की घटनाओं की तुलना में उभरते हुए बाजारों के लिए निवल निजी पूंजी अंतर्वाह में मांग की कमी में बाजार में आने वाली मंदी अत्यंत निम्न स्तरीय है।

नोट

7. दीर्घकालीन मंदी का तात्पर्य होगा कि ऋण चुकाने के लिए कम्पनियों की क्षमता से आय में बाधा आ सकती है। इससे निर्यातोन्मुखी क्षेत्रों में इकाइयों के साथ अशोध्य ऋण की स्थिति पैदा हो सकती है।

क्या किया जाना चाहिए?

इस संबंध में दो अनुक्रियाएं हैं—

1. अत्यधिक आर्थिक संकट रोकना और ज्यादा-से-ज्यादा उत्पाद की वास्तविक अर्थव्यवस्था तथा रोजगार मार्ग पर रखना। इससे संबंधित दो समस्याएं हैं, जैसे ही वृद्धि में गिरावट बैंक तुलन-पत्रों के आगे और क्षति करेगी, जो ऋण संकट को ज्यादा खराब करेगी और इसका नतीजा आर्थिक कार्याकलाप में तीव्रता से गिरावट होगी।
2. कई बिलियन डॉलरों में चल रहे अत्यधिक राजकोषीय प्रोत्साहनों की घोषणाएं हुई हैं। यह दीर्घकालिक शाखा विस्तार सहित अल्पविकसित निर्धारण है।

समन्वित अंतर्राष्ट्रीय कार्रवाई की आवश्यकता

वित्तीय बाजारों का स्थिरीकरण और विश्व अर्थव्यवस्था की प्रेरणा के लिए विश्व के राष्ट्रों में ज्यादा नीति समन्वय की जरूरत होगी। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के उपाय ऐसी संबंधित अंतर्राष्ट्रीय कार्रवाई के लाभों के अनुकूल नहीं हो सकते। इन लाभों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

1. समन्वित प्रयास मुद्रा और बॉण्ड बाजारों में अस्थिरता कम करने में मदद करते हैं, जो सामान्यत: असमन्वित नीतियों के नतीजे हैं।
2. समन्वय 'बैगर-दी-नेबर' नीतियों के विरुद्ध सुरक्षा है। टैरिफ की धीरे-धीरे वृद्धि हुई है।
3. अंतराष्ट्रीय सहयोग जरूरी है, क्योंकि विकासशील देशों के लिए संकट का प्रमुख प्रभाव है, हालांकि वे यह संकट पैदा नहीं करते, लेकिन इससे बुरी तरह से आहत हुए हैं।
4. संकट निम्नतर कार्बन अर्थव्यवस्था में रूपांतरण तीव्र करने तथा विश्वव्यापी उत्पादकता बढ़ाने के लिए दीर्घकालीक जरूरत सहित संवृद्धि और रोजगार वृद्धि से अल्पकालिक प्रोत्साहन की आवश्यकता को जोड़ने के अप्रत्याशित अवसर प्रस्तुत करता है।

नई अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय वास्तुकला की आवश्यकता

नई अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय वास्तुकला की आवश्यकता कम समय में समुचित प्रति चक्रीय नीतियां लागू करने के लिए और मध्यकाल में उचित नियामक सुधार के लिए विश्वव्यापी आर्थिक शासन व्यवस्था का वास्तविक समावेशी प्रणाली विकसित करने में विफलता में आधुनिक संकट का मुकाबला करने के समन्वित, व्यापक और समावेशी अंतर्राष्ट्रीय अनुक्रिया को हतोत्साहित करने के कारण कर दिया है, इसलिए बढ़ रही है।

भारत पर प्रभाव— आज के दौर में भारत जैसे देश पर अत्याधिक वैश्विक आर्थिक संकट का अनुमान लगाना जटिल कार्य है, जिसने वर्ष 2008-09 के दौरान 6 से 7 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है, जब ज्यादातर विकसित देश ऋणात्मक वृद्धि से प्रभावित हो रहे हैं। कुछ क्षेत्र; जैसे—निर्यात, भूमि, भवन, कपड़ा उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी और परिवहन उपकरण भयंकर रूप से प्रभावित हुए हैं। कुल मिलाकर भारतीय रिजर्व बैंक और सरकार द्वारा शीघ्र और टिकाऊ उपाय करने के कारण प्रभाव सीमित हुआ है। बाजार स्थिर हो गए हैं और रुपए की गिरावट रुक गई है।

नोट्स पूँजी बाजारों से संसाधन संग्रहण के रूप में वाणिज्यिक क्षेत्र को वित्तीय संसाधनों में मामूली सी गिरावट हुई है।

नोट

भविष्य के लिए नीति कार्यसूची

हालांकि अर्थव्यवस्था के भावी मार्ग से संबंधित अनेक पहलू सामने आए हैं। अपेक्षित महत्त्व के दो बिन्दुओं पर नीति-निर्माताओं द्वारा विशेष ध्यान देना जरूरी है–

1. राजकोषीय स्थिति के कारण आर्थिक संकट में समुचित रूप से मजबूती से गंभीर रूप से गिरती अवस्था में चली गई है। प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद ने अनुमान लगाया है कि 2008-09 में केन्द्र और राज्यों का प्रभावकारी संयुक्त राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 8 प्रतिशत होगा।
2. भुगतान संतुलन परिदृश्य अंतर्वाहों और बहिर्वाहों के अनेक कारकों द्वारा स्पष्ट है। अदृश्य घटनाएं, प्रेषणों और सेवा निर्यातों दोनों घटी हुई संभावनाओं का मुकाबला करते हैं, जो गिरती हुई अथवा अवरुद्ध वस्तु निर्यातों के साथ आधुनिक लेखा ज्यादा बढ़ने की चिंताएं पैदा करते हैं।

क्या किया जाना आवश्यक है?

पुनः मांग बढ़ाने और उत्तेजित करने जैसी नीतिगत जरूरतें हैं। हालांकि मुद्रा नीति को अभी भी ढीला करने की काफी गुंजाइश है। मुद्रा नीति की प्रभाविता बढ़ते हुए ऋण संकट के कारण प्रभावित होती है, जो नीति तथा ऋण के मध्य अंतर पैदा करता है, इसलिए नीति दरें घटना जरूरतें हैं, लेकिन मांग को प्रोत्साहित करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है, तब जिम्मेदारी राजकोषीय नीति पर आती है। विशेष रूप से आगामी वर्षों में अतिरिक्त प्रोत्साहन देना जरूरी है। अब प्रतिचक्रीय नीति के लिए राजकोषीय गुजांइश नहीं है, क्योंकि इससे निजी क्षेत्र में भीड़ हो सकती है तथा हमारा ऋण असहनीय हो सकता है।

टास्क वर्तमान आर्थिक संकट के मुख्य परिणामों को बताइए।

राजकोषीय विस्तार को क्या रूप लेना चाहिए?

सरकार द्वारा ज्यादा खर्च दो समस्याएं पैदा करता है–इसे नीचे आने में अधिक समय लगता है और क्रियान्वयन क्षमता में गंभीर समस्याएं आती हैं। शीघ्र, युक्तिसंगत और नकदी दबाव उपभोक्ताओं से घरेलू मांग खोलने हेतु कर कटौती उचित है। आठ प्रतिशत वृद्धि पुनः प्राप्त करने के लिए दीर्घकालिक नीति सुधार ज्यादा संरचनात्मक सुधार होने चाहिए। लेकिन अल्पकाल में जहां गिरती हुई घरेलू मांग भारत की वृद्धि प्रक्रिया प्रभावित कर सकती है मौद्रिक और राजकोषीय दोनों नीति को ढीला करते हुए अनुक्रिया शीघ्र प्रतिचक्रीय होनी चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... को संकटकालीन संपत्ति ऋणों से भारी क्षति हुई।
2. यूरोपीय कर्ज संकट साल .... की दूसरी छमाही के दौरान शुरू हुआ।
3. साल 2008-09 में .... के आर्थिक संकट के बाद अधिकतर वैश्विक अर्थव्यवस्थओं की ग्रोथ प्रभावित हुई थी।
4. जब निवेशक ज्यादा जोखिम वाले किसी बांडों निवेश करने की सोचता है तो उस जोखिम की क्षतिपूर्ति के लिए .... की अपेक्षा भी करता है।
5. विश्वव्यापी आर्थिक संकट तीन संकटों का .... जाल है।
6. विश्वव्यापी मंदी में .... अर्थव्यवस्थाएं शीर्ष पर हैं।
7. वित्तीय संकट बने रहने के कारण उन्नत और उभरती हुई .... में परिसम्पत्ति के मूल्य तीव्रता से घटे है।
8. आज के दौर में .... जैसे देश पर अत्यधिक वैश्विक आर्थिक संकट का अनुमान लगाना जटिल कार्य है।

नोट

26.2 सारांश (Summary)

- आधुनिक विश्वस्तरीय संकट का मूल संयुक्त राज्य अमेरिका में उपमुख्य बंधक बाजार को माना जा सकता है। उपमुख्य बंधक (Sub-prime Mortgages) आवासीन ऋण हैं, जो 'मुख्य' बंधकों (Prime Mortgages) के नियमों के अनुसार नहीं होते और इसलिए संपूर्ण पुनः भुगतान की कम प्रत्याशित संभावना होती है।
- साल 2009 की दूसरी छमाही के दौरान शुरू हुआ यूरोपीय कर्ज संकट वास्तव में कुछ दशकों में उस क्षेत्र द्वारा कर्ज के भुगतान के संघर्ष का ही दूसरा नाम है। इस क्षेत्र के पांच देश-ग्रीस, पुर्तगाल, आयरलैंड, इटली और स्पेन पर्याप्त इकोनॉमिक ग्रोथ पाने में असफल रहे जिससे वह बांडधारकों को पैसे के भुगतान की गारंटी का वादा निभाने में सक्षम होते है।
- साल 2008-09 में अमेरिका के आर्थिक संकट के बाद अधिकतर वैश्विक अर्थव्यवस्था की ग्रौथ प्रभावित हुई थी। इससे यूरोप और विश्व भर के अर्थव्यवस्थाओं को अस्थिर आर्थिक नीतियों की पोल खुलते देर नहीं लगी।
- बांड यील्ड के बढ़ने का कारण बड़ा सामान्य है। जब निवेशक ज्यादा जोखिम वाले किसी देश के बांडों में निवेश करने की सोचता है तो उसे जोखिम की क्षतिपूर्ति के लिए रिटर्न की अपेक्षा भी करता है।
- वर्ष 2008 के उत्तरार्ध तक ज्यादातर विकसित अर्थव्यवस्थाएं विकासशील देशों तथा अंतरणाधीन अर्थव्यवस्थाओं में फैलती हुई आर्थिक मंदी से प्रभावित हुईं। इसके पश्चात ज्यादातर देश 2002-2007 की अवधि के दौरान रिकॉर्ड की गई प्रबल वृद्धि में तीव्र उत्क्रमण अनुभव कर रहे हैं।
- संकट की जड़ों ने कई परिवर्धनों के पारस्परिक प्रभावों को वित्तीय पूँजीवाद को बुनियादी रूप से रूपांतरित किया है। यह 1929 की महामंदी की अवधि अथवा उससे लगभग दशकों पूर्व विद्यमान थी।
- आज के दौर में भारत जैसे देश पर अत्याधिक वैश्विक आर्थिक संकट का अनुमान लगाना जटिल कार्य है, जिसने वर्ष 2008-09 के दौरान 6 से 7 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है, जब ज्यादातर विकसित देश ऋणात्मक वृद्धि से प्रभावित हो रहे हैं।

26.3 शब्दकोश (Keywords)

- **अंतरणाधीन**—तबादले के अंतर्गत।
- **रिर्टन**—वापसी।

26.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतराष्ट्रीय ऋण संकट पर एक विस्तृत लेख कीजिए।
2. राजकोषीय विस्तार से आप क्या समझते हैं? विवेचन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. कई बैंकों	2. अंततर्ग्रंथित	3. 2009	4. विकसित
5. अमेरिका	6. अर्थव्यवस्थाओं	7. रिटर्न	8. भारत

26.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–27: विश्व व्यापार संगठन/गैट के कार्य (Functions of WTO/GATT)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 विश्व व्यापार संगठन/गैट के कार्य (Functions of WTO/GATT)

27.2 सारांश (Summary)

27.3 शब्दकोश (Keywords)

27.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विश्व व्यापार संगठन/गैट के कार्य की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

उरुगवे दौर के गैट विचार-विमर्श 15 अप्रैल, 1994 को माराकेश (मोरक्को) में समाप्त हो गए। यूरोपीय संघ देशों के अतिरिक्त भारत तथा 123 देशों के मंत्रियों ने अंतिम एक्ट पर हस्ताक्षर किए जिसमें बहुपक्षीय व्यापार विमर्शों का आठवां दौर शमिल था। अंतिम एक्ट में (1) WTO समझौता, जिसमें इस संस्था का जन्म और उसकी कार्य-प्रणाली के नियम, और (2) मंत्रिस्तरीय निर्णय और घोषणाएं–जिसमें महत्वपूर्ण समझौते, वस्तुओं, सेवाओं और बौद्धिक सम्पत्ति में व्यापार तथा बहुपार्श्विक (plurilateral) व्यापार सम्मिलित है। उसमें झगड़ा निपटान संबंधी नियम और व्यापारिक नीति का पुनरावलोकन तंत्र भी शामिल है। वास्तव में WTO समझौता उरुगवे समझौता ही है, जिसके द्वारा प्रारम्भिक गैट अब WTO समझौते का ही एक भाग बन गया है जो 1 जनवरी, 1995 से लागू हुआ।

27.1 विश्व व्यापार संगठन/गैट के कार्य (Functions of WTO/GATT)

(WTO) गैट का ही उत्तराधिकारी है। गैट एक मंच था जहां सदस्य देश समय-समय पर एकत्रित होते थे और विश्व व्यापार की समस्याओं पर वार्तालाप करते थे और उनको सुलझाते थे। परन्तु WTO एक सुव्यवस्थित और स्थायी विश्व व्यापार की संस्था है। इसकी एक कानूनी स्थिति है और यह विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समकक्ष ही स्थान रखता है। इसमें (1) उरुगवे दौर द्वारा संशोधित गैट, (2) गैट के अन्तर्गत स्वीकृत सब समझौते और व्यवस्थाएं, तथा (3) उरुगवे दौर के सम्पूर्ण परिणाम सम्मिलित हैं।

1 जनवरी, 1995 को WTO के सदस्य 77 देश थे, जिनकी संख्या 2004 तक बढ़कर 148 हो गई। भारत संस्थापक देशों में से एक है।

नोट

गैट तथा विश्व व्यापार संगठन में अन्तर (Difference Between GATT and WTO)

WTO गैट का विस्तार नहीं है, परन्तु उसका उत्तराधिकारी है। उसने गैट को पूर्णतः प्रतिस्थापित कर दिया है और इसका एक भिन्न स्वरूप है। दोनों में निम्न अंतर हैं–

1. गैट की कोई कानूनी स्थिति नहीं थी। WTO की कानूनी स्थिति है। इसका जनम अंतर्राष्ट्रीय संधि के अंतर्गत हुआ है, जिसकी पुष्टि सदस्य देशों की सरकारों और विधान मण्डलों ने की है। इसकी IMF तथा विश्व बैंक जैसी ही विश्व स्थिति है। परन्तु इसके विपरीत यह UN की शाखा नहीं है, यद्यपि इसका UN के साथ 'सहकारी संबंध' है।

2. गैट केवल कुछ चयनात्मक (selective) बहुपक्षीय समझौतों के बारे में नियमों और प्रणालियों का समूह था। अलग-अलग विषयों पर अलग-अलग समझौते थे जो सदस्यों पर बाध्य नहीं थे। कोई भी सदस्य किसी भी समझौते में सम्मिलित होने से इन्कार कर सकता था। केवल वे ही सदस्य जिन्होंने किसी समझौते पर हस्ताक्षर किए हों, उसका पालन न करने पर दंडित हो सकते थे। परन्तु जो समझौते WTO का अंग बन चुके हैं वह स्थायी हैं और सभी सदस्यों पर बाध्य हैं। किसी सदस्य के नियम पालन न करने पर अन्य सदस्य देश उस के विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं।

3. गैट झगड़ा निपटान प्रणाली विलम्बकारी थी और झगड़े से संबंधित सदस्यों पर बाध्य नहीं थी। WTO झगड़ा निपटान प्रणाली स्वचालित, शीघ्रगामी तथा सदस्यों पर पूर्णतः लागू है। WTO के झगड़ा निपटान बोर्ड ने अपने पहले ही फैसले के द्वारा शक्तिशाली अमेरिका को उसे स्वीकार करने पर बाध्य कर दिया। इस प्रकार, WTO शक्तिशाली है, जबकि गैट नितान्त शक्तिहीन था।

4. गैट एक ऐसा मंच था जिस पर सदस्य देश, विश्व व्यापार समस्याओं पर विचार करने और उन्हें सुलझाने के लिए दशक में केवल एक बार मिलते थे। लम्बे और दीर्घकालिक विवादों के परिणाम कई दशकों में निकलते थे। दूसरी ओर, WTO सुस्थापित, नियमबद्ध विश्व व्यापार संगठन है जहां समझौतों पर निर्णय समयबद्ध होते हैं। दिनांक अवधि केवल सदस्यों के एकमत द्वारा ही बढ़ाई जा सकती है।

5. उरुगवे दौर में सेवाओं का व्यापार भी शामिल किया गया, परन्तु उस पर कुछ समझौता नहीं हो सका। WTO के अन्तर्गत केवल वस्तुओं तथा सेवाओं का व्यापार ही नहीं आता, वरन् बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के व्यापार संबंधी विषय तथा कई और समझौते भी आते हैं।

6. गैट का एक छोटा कार्यालय था जिसे एक डाइरेक्टर जनरल देखता था। WTO का एक विशाल कार्यालय और विराट कर्मचारी तंत्र है।

> *क्या आप जानते हैं* गैट के नियम केवल वस्तुओं के व्यापार पर ही लागू होते थे।

संरचना (Structure)

WTO की संरचना अथवा संगठन एक मंत्रीय सम्मेलन (Ministerial Conference) द्वारा संचालित होता है जिसमें सब सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो कम-से-कम दो वर्ष में एक बार मिलते हैं। यह ETO की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को चलाता है और तदनुरूप आवश्यक कदम उठाता है। यह किसी भी बहुपक्षीय समझौते के अन्तर्गत सभी मामलों पर निर्णय लेता हैं। मंत्रीय सम्मेलन WTO की शीर्षस्थ अधिकारिणी समिति है।

सब सदस्यों के प्रतिनिधियों वाली सामान्य काउन्सिल (General Council) WTO की कार्यप्रणाली पर और मंत्रीय निर्णयों पर नियमित रूप से दृष्टि रखती है। यह झगड़ा निपटान संस्था (Dispute Settlement Body) और व्यापार-नीति-पुनरावलोकन संस्था (Trade Policy Review Body) के रूप में भी कार्य करती है, जिनके अलग-अलग अपने अध्यक्ष हैं। सामान्य काउन्सिल जेनेवा में औसतन प्रति मास मिलती है।

सामान्य काउन्सिल के अधीन ये संस्थाएं भी हैं—वस्तुओं के व्यापार की काउन्सिल (Council for Trade in Goods),

सेवाओं के व्यापार की काउन्सिल (Council for Trade in Services), बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के व्यापार संबंधी विषयों की काउन्सिल (Council for Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights—TRIPS)।

इन काउन्सिलों की अपनी सहायक संस्थाएं हैं। ये काउन्सिल और उनकी सहायक संस्थाएं अपने-अपने कार्य के लिए आवश्यकतानुसार अपनी बैठकें करती हैं। फिर व्यापार और विकास समिति भुगतान-शेष रुकावटों की समिति, तथा बजट, वित्त और प्रशासन समिति भी हैं जो WTO समझौते द्वारा प्रदत्त कार्य, बहुपक्षीय व्यापार समझौता, तथा सामान्य काउन्सिल के बताए हुए कार्य करती हैं।

WTO सचिवालय (Secretariat) के शीर्ष पर डाइरेक्टर जनरल होता है। मंत्रीय सम्मेलन डाइरेक्टर जनरल का चयन करता है और उसके अधिकार, कर्त्तव्य, सेवा की शर्तें और पद की शर्तें निर्धारित करता है। डाइरेक्टर जनरल का कार्यकाल 4 वर्ष का होता है। उसके विभिन्न देशों से चुने हुए 4 सहायक होते हैं।

डाइरेक्टर जनरल, कार्यालय के कर्मियों की नियुक्ति करता है और उनके कार्यों तथा सेवा के नियमों का निर्धारण करता है जो मंत्रीय सम्मेलन द्वारा निश्चित नियमनों (regulations) के अन्तर्गत ही होते हैं।

डाइरेक्टर जनरल बजट, वित्त और प्रशासन समिति को वार्षिक बजट के अनुमान और वित्तीय विवरण देता है और सामान्य काउन्सिल की अंतिम स्वीकृति के लिए सिफारिश करता है। सामान्य काउन्सिल दो-तिहाई बहुमत से, जिसमें WTO के आधे से अधिक सदस्य शामिल हो, वार्षिक बजट के अनुमान और वित्तीय विवरण को पारित करती है। अंशदान का अनुपात तथा बजट संबंधी नियमन के नियमों और परिपाटियों पर आधारित है।

WTO एकमत द्वारा निर्णय की पद्धति का अनुसरण करता है, जिसे गैट 1947 द्वारा निर्धारित किया गया है। जब एकमत द्वारा निर्णय सम्भव नहीं होता, तब विचाराधीन प्रश्न का हल "एक देश एक वोट" के आधार पर 2/3 बहुमत द्वारा किया जाता है। परन्तु समझौतों के प्रावधानों की व्याख्या में मतभेद और किसी सदस्य के दायित्वों में छूट की दशा में सदस्यों का बहुमत 3/4 का होता है। तथापि सामान्य नियमों में संशोधन जैसे MEN व्यवहार, केवल सदस्यों की सर्व-सम्मति से ही किया जा सकता है।

उद्देश्य (Objectives)

WTO के स्थापन समझौते की प्रस्तावना में निम्न उद्देश्य हैं–

1. व्यापार और वित्तीय प्रयासों के क्षेत्र में इसके संबंध इस प्रकार चलाए जाएंगे जिससे रोजगार सुनिश्चित होना और विस्तृत वास्तविक आय और प्रभावी मांग में लगातार वृद्धि द्वारा रहन-सहन के स्तर में सुधार हो तथा वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और व्यापार का प्रसार हो।
2. विश्व के साधनों का इष्टतम उपयोग सततीय (Sustainable) की दृष्टि से करना। इसका उद्देश्य (क) पर्यावरण की रक्षा और संरक्षण करना, और (ख) पर्यावरण रक्षा के साधनों का विस्तार आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों की आवश्यकताओं और समस्याओं के अनुरूप हो।
3. निश्चयात्मक प्रयत्न करना जिससे विकासशील देश, विशेषत: निम्नतम विकसित देश अपने आवश्यकताओं के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि में अपना उचित भाग पा सकें।
4. पारस्परिक और परस्पर लाभकारी व्यवस्थाएं जिनके द्वारा टैरिफ और व्यापार की रुकावटें तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधों में पक्षपातकारी व्यवहार को हटाकर इन उद्देश्यों की प्राप्ति करना।
5. गैट में सम्मिलित, भूतकालीन व्यापार उदारीकरण के परिणाम और उरुगवे दौर की सभी बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं के फलस्वरूप अधिक स्थायी और व्यवहार्य बहुपक्षीय संगठित व्यापार प्रणाली को विकसित करना।
6. व्यापारिक नीतियों, पर्यावरण संबंधी नीतियों और सततीय विकास से संबंध स्थापित करना।

कार्य (Functions)

WTO के निम्न कार्य हैं:

1. यह समझौते और बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के कार्यान्वयन, प्रबंधन और संचालन को सरल बनाता है।

नोट

2. यह नागरिक विमानन, सरकारी खरीदारी, दुग्धोत्पाद व्यापार और गोमांस संबंधी बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के कार्यान्वयन, प्रशासन और परिचालन के लिए उचित ढांचे का प्रबंध करता है।
3. यह सदस्यों के लिए मंत्रीस्तरीय कान्फेंस द्वारा स्वीकृत समझौतों संबंधी, बहुपक्षीय व्यापार संबंधी वार्ताओं तथा इनके द्वारा किए गए निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए एक मंच प्रस्तुत करता है।
4. यह समझौते के झगड़ा-निपटान नियमों तथा प्रक्रियाओं की व्याख्या का प्रबंध-संचालन करता है।
5. यह IMF, विश्व बैंक तथा इसकी सहयोगी शाखाओं के मध्य विश्व व्यापार के लिए नीति निर्धारण में अधिकतर संगति उत्पन्न करता है।

विश्व व्यापार समझौता

उरुगवे दौर की बहुपक्षीय वार्ताओं के परिणामों पर आधारित ॅज्व के मूलभूत समझौते में निम्न शामिल हैं–

1. वस्तुओं में व्यापार के बहुपक्षीय समझौते।
2. सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता (GATS)।
3. बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के व्यापार संबंधी समझौता (TRIPS)
4. झगड़ों के निपटाने से संबंधित नियमों और प्रक्रियाओं का समझौता।
5. बहुपक्षीय व्यापार समझौते।
6. व्यापार नीति पुनरावलोकन तंत्र।

इनका विवेचन नीचे किया गया है।

1. वस्तुओं में व्यापार के बहुपक्षीय समझौते (Multilateral Agreements on Trade in Goods): वस्तुओं में व्यापार का सामान्य समझौता गैट 1994 को परिभाषित करता है। इसमें वस्तुओं में व्यापार संबंधी विभिन्न पहलुओं के बारे में सब समझौते शामिल हैं।

1. **गैट 1994 (GATT 1994)**—गैट 1994 में 1 जनवरी, 1995 तक (जब WTO का जन्म हुआ) संशोधित GATT 1947 शामिल है। इसमें उल्लिखित कानूनी प्रपत्रों के प्रावधान, गैट 1994 की माराकेश विज्ञप्ति और निम्न व्याख्याएं भी शामिल हैं–

   (क) अनुच्छेद II (Article II) : गैट 1994 का 1(*b*)—कानूनी अधिकारों और अनुबन्धों में तथा किन्हीं अन्यशुल्कों और प्रभारों के प्रकार और स्तर, जो रियायतों की मदों में वर्णित बंधित टैरिफ वाली वस्तुओं पर 15 अप्रैल, 1995 से लागू है, में पारदर्शिता लाना।

   (ख) गैट का अनुच्छेद XVII—सरकारी व्यापारिक संस्थाओं की कार्य-प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सदस्यों को यह आवश्यक है कि वे ऐसी संस्थाओं की सूचना वस्तुओं के व्यापार की समिति (Council for Trade inGoods) को दें, जिसका कार्यकारी दल वर्ष में कम से कम एक बार उनके कार्यों का पुनरावलोकन करके काउन्सिल को सूचित करे।

   (ग) गैट के भुगतान-शेष के प्रावधानों पर समझौता—जो सदस्य भुगतान-शेष के लिए रुकावटें डालते हैं वे उन्हें न्यूनतम विघटनकारी ढंग से करें। वे कीमत-आधारित उपायों को ही प्राथमिकता दें जैसे, आयात अधिभार, आयात जमा या अन्य उपाय जो आयातित वस्तुओं की कीमतों को प्रभावित करते हों। वह नई परिमाणात्मक रुकावटों को लागू करने से भी दूर रहें, और "शीघ्रातिशीघ्र" सार्वजनिक रूप से सारणियों की घोषणाएं करें जिनके अनुसार वह भुगतान-शेष संबंधी आयात-विरोधी रुकावटों को दूर करने में प्रयत्नशील होंगे। भुगतान-शेष अवरोधों की समिति (Committee on Balance of Payments Restrictions) परामर्शों के द्वारा सभी आयात-अवरोधी उपायों का भुगतान-शेष के दृष्टिकोण से पुनरावलोकन करती है।

नोट

(घ) गैट 1994 का अनुच्छेद XXIV—कस्टम संघों और मुक्त व्यापार क्षेत्रों का समझौता, मापदण्ड और कार्य-विधियां निश्चित करता है जिसके द्वारा वह मुक्त व्यापार क्षेत्रों और नए अथवा संवर्धित कस्टम संघों का पुनरावलोकन करता है और उसका तीसरे सदस्यों पर पड़ने वाले प्रभावों का होती। यदि अनुबंधित सदस्य बंधित टैरिफ की वृद्धि के लिए कस्टम संघ बनाना चाहें तो ऐसा समझौता आवश्यक क्षतिपूरक समायोजन को भी स्पष्ट करता है।

(च) अनुच्छेद XXVIII की व्याख्या का समझौता—अनुच्छेद XXVIII गैट की सारणियों का संशोधन से संबंधित है। जब टैरिफ के बंधनों में परिवर्तन हो या वे हटा दिये जाएं तो क्षतिपूर्ति की वार्ताओं की प्रणाली इसके द्वारा निर्धारित की जाती है।

2. **कृषि संबंधी समझौता (Agreement on Agriculture)**—कृषि संबंधी समझौता घरेलू ब्सिडी से, निर्यात सब्सिडी (जिसमें सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा सम्मिलित है), न्यूनतम मार्केट-विश की वचनबद्धता, घरेलू प्रोत्साहन, स्वास्थ्य, वनस्पति और खाद्य सहायक कार्यों से संबद्ध है।,

प्रथम, यह समझौता गैर-टैरिफ उपायों के स्थान पर साधारण कस्टम ड्यूटी लगाकर, जो धीरे-धीरे कम हो जायेगी, राष्ट्रीय मार्केट को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए खोलता है।

दूसरे, यह सरकारी सहायता को धीरे-धीरे कम करके अति-उत्पादन को नियंत्रित करने का प्रयास करता है और परिणामस्वरूप अतिरेकों (surpluses) को भी, जो या तो निर्यात सब्सिडी के परा बेचे अथवा नष्ट किये जाते हैं।

तीसरे, यह निर्यात प्रतिस्पर्धा पर नई नियमावलियों को लागू करने, और सब्सिडी तथा सब्सिडी प्राप्त निर्यात की मात्रा को कम करने के प्रयत्नों को भी प्रेरित करता है।

(क) घरेलू सब्सिडियां (Domestic Subsidies)—घरेलू सब्सिडी के दो अंग हैं—(*i*) गैर-वस्तु विशेष सब्सिडियां जो सभी फसलों को दी जाती हैं, जो उर्वरक, पानी, बिजली, बीज और ऋण के लिए होती हैं, और (*ii*) विशेष उत्पाद संबंधी सब्सिडियां जो विशेष फसलों के लिए होती हैं, जैसे भारत में कुछ कृषि-उत्पादों के लिए न्यूनतम सहायक मूल्य।

किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी, जिसे कुल समग्र सहायता (Total AMS) भी कहते हैं, का पूर्ण मूल्यांकन करने के लिए उपरिलिखित दोनों सब्सिडियों का योग करना चाहिए। किसी वर्ष में यह योग, अर्थात् चालू कुल AMS (Current Total AMS), विकासशील देशों में उस वर्ष में कुल कृषि उत्पादन के मूल्य के 10% से अधिक नहीं होना चाहिए, जिसे सब्सिडी को कम करने की अनिवार्यता से मुक्त किया जाए। इस सब्सिडी का आगणन उस वस्तु की अंतर्राष्ट्रीय कीमत पर किया जाएगा।

(ख) निर्यात सब्सिडियां (Export Subsidies)—WTO सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के कार्यान्वयन काल में प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडियों के मूल्य को कम करके 1986-90 की आधर अवधि स्तर के नीचे 36% पर ले जाएं और सब्सिडी-प्राप्त निया।त की मात्रा को उसी अवधि के 21% के। विकासशील देशों के लिए यह कटौतियां 10 वर्ष के काल में, विकसित देशों की कटौतियो का 2/3 होंगी। न्यूनतम विकसित देशों वु लिए कमी नहीं की जायेगी।

(ग) न्यूनतम मार्केट-प्रवेश वचनबद्धता (Minimum Market Access Commitment)— न्यूनतम मार्केट-प्रवेश वचनबद्धता उन्हीं देशों पर लागू है जो कृषि संबंधी आयात में भिन्न प्रकार की रुकावटों का प्रयोग करते हैं और तदनुसार ही इन रुकावटों को टैरिफ का रूप देने, तथा इन टैरिफों को 6 वर्ष के काल में 36% कम करने को बाध्य हैं। इन देशों के लिए यह भी आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के लिए विदेशी कृषि उत्पादों की खपत की न्यूनतम 3% मार्केट प्रवेश सुविधा विदेशी कृषि उत्पादों को दें जो 6 वर्ष के बाद बढ़कर 5% हो जाएगी। ये शर्तें उन्हीं देशों पर लागू होंगी जो आयात को अनिवार्यत: टैरिफ के द्वारा ही नियंत्रित करते हैं। विकासशील देशों में कृषि उत्पादों का टैरिफ 10 वर्ष के काल में 24% कम किया जाएगा। न्यूनतम-विकसित देशों में टैरिफ में कोई कमी नहीं की जाएगी।

नोट

(घ) घरेलू सहायता (Domestic Support)—उन घरेलू सहायता के उपायों में, जिनके द्वारा व्यापार पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता है, जिन्हें हरित बकस (Gren Box) नीतियां कहते हैं, यह कटौती लागू नहीं होती। इन नीतियों में सामान्य सरकारी सेवाएं सम्मिलित हैं, जैसे अनुसंधान, रोग नियंत्रण, बुनियादी ढांचा और खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र। इसमें उत्पादकों को आय सहायता, संरचनात्मक समायोजन सहायता, पर्यावरणीय और क्षेत्रीय सहायता प्रोग्रामों के अंतर्गत सहायता के रूप में सीधे भुगतान भी शामिल हैं।

इनके अलावा कुछ दूसरी नीतियां भी हैं जो सहायता के कुल औसत मापक (total average measurement of support) कटौती वचनबद्धता में सम्मिलित नहीं हैं। वे विकासशील देशों में उत्पादन सीमित प्रोग्रामों के अन्तर्गत सीधे भुगतान, कृषि और ग्रामीण विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ सरकारी सहायता उपाय तथा कुछ अन्य सहायता उपाय हैं। यह किसी एक वस्तु के उत्पादन मूल्य या विकासशील देशों के कुल कृषि उत्पादन का 10% होगा और विकसित देशों का 5%।

(च) स्वास्थ्य और पशु-स्वास्थ्य के उपाय (Sanitary and Phytosanitary Measures)— स्वास्थ्य और पशु-स्वास्थ्य के उपायों में खाद्य-सुरक्षा तथा पशु और वनस्पति स्वास्थ्य के उपाय सम्मिलित हैं। समझौता स्वीकृत करता है कि विभिन्न देशों की सरकारों को पूर्णाधिकार है कि वे मनुष्य, पशु और वनस्पति के जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उचित उपाय करें। परन्तु यह भी आवश्यक है कि वे मनमाने ढंग से अथवा अनुचित रूप से अन्य सदस्यों के बीच, जहां स्थिति समरूप अथवा एक जेसी हो, भेदभाव न करें। समझौता यह भी सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि पशु और वनस्पति स्वास्थ्य के उपाय व्यापार में अनुचित बाधा न डालें। समझौता मनुष्य और पशु स्वास्थ्य की सुरक्षा के उचित स्तरों के निर्धारण और जोखिमों के मूल्यांकन की प्रक्रियाओं और मापदण्डों का वर्णन करता है।

(छ) खाद्य भंडारण और खाद्य सहायता (Food Stocking and Food Aid)—समझौते में मान्य है कि अंतरिम काल में न्यूनतम विकसित और खाद्य-आयाती विकासशील देश खाद्य आयात में ऋणात्मक प्रभावों का अनुभव कर सकते हैं। अतएव, इसने कृषि विकास के लिए खाद्य सहायता और मूल खाद्यान्नों में पूर्ण अनुदान और सहायता के लक्ष्य रखे हैं। यह IMF और विश्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक खाद्य आयात के लिए अल्पकालीन वित्तीय सहायता की संभावना को मानता है।

कृषि समझौते के प्रावधानों के कार्यान्वयन के पुनरावलोकन के लिए एक कृषि समिति भी बनाई गई है।

3. **कपड़ा और वस्त्रों का समझौता (Agreement on Textiles and Clothing)**—इस समझौते का उद्देश्य कपड़ा और वस्त्र क्षेत्र का गैट 1994 में एकीकरण है। यह एकीकरण 4 चरणों में होगा—

प्रथम चरण में 1 जनवरी, 1995 को प्रत्येक सदस्य इस समझौते की विशेष सूची में सम्मिलित गैट उत्पादों में शामिल किया गया जो 1990 में उसके आयात की कुल मात्रा का कम से कम 16% था।

द्वितीय, चरण में 1 जनवरी, 1998 से वे उत्पाद शामिल हुए जो 1990 के आयात से 17% से कम न थे।

तृतीय, चरण में 1 जनवरी, 2002 से वे उत्पाद शामिल होंगे जो 1990 के आयात से 18% से कम न थे।

चतुर्थ चरण में 1 जनवरी, 2005 को संक्रमणकाल की समाप्ति पर शेष सब उत्पाद इस में शामिल होंगे। शामिल का अर्थ है कि अधोवस्त्र (tops), सूत, कपड़ा, और सिले हुए वस्त्र गैट के साधारण नियमों द्वारा संचालित होंगे। सब बहुतंत्री समझौते (Multi-Fibre Agreements-MFA) की 31 दिसम्बर, 1994 को स्वीकृत रुकावटें नए समझौते में शामिल कर ली गई हैं और उस समय तक रहेंगी जब तक या तो रुकावटें हटा ली जाएं अथवा गैट में शामिल कर ली जाएं। कुछ सदस्यों द्वारा लगाई गई गैर-बहुतंत्रीय रुकावटें भी समझौते के लागू होने के एक वर्ष के भीतर गैट 1994 में शामिल कर ली गई या 2005 तक धीरे-धीरे समाप्त कर दी जाएंगी।

जो उत्पाद गैट 1994 में किसी रूप में शामिल नहीं हुए हैं, उनके लिए एक विशेष संक्रमणिक सुरक्षा तंत्र (transitional safeguard mechanism) का प्रावधान है। यदि आयातकर्ता देश को ज्ञात हो जाय कि देश

नोट

में कोई उत्पाद इतनी मात्रा में आयात हुआ है जिससे उसके घरेलू उद्योग को गंभीर क्षति पहुंची है, तो वस्तु के निर्यातकर्त्ता पर कार्यवाही की जा सकती है। सुरक्षातन्त्र के अंतर्गत या तो विचार-विमर्श द्वारा या पारस्परिक समझौते द्वारा, कार्यवाही हो सकती है या एक-पक्षीय ही, परन्तु यह कपड़ा मानीटरिंग संस्था (Textile Monitoring Body) द्वारा पुनरावलोकित होगी। सुरक्षा बंधन तीन वर्ष तक बिना विस्तार के प्रभावी रहेंगे अथवा जबतक कि वस्तु गैट में शामिल नहीं की जाती है। एकीकरण प्रक्रिया के भाग के रूप में अंगस्वरूप, सब सदस्य कपड़ा और वस्त्र के क्षेत्र में गैट नियमों के अनुरूप कार्य करेंगे जिससे मार्केट प्रवेश में सुधार हो तथा न्यायोचित तथा उचित व्यापार नीतियों का पालन हो और आयात-विरोधी विभेद उत्पन्न न हों।

4. **व्यापार में तकनीकी बाधाओं का समझौता (Agreement on Technical Barriers to Trade)**—यह समझौता टोकिया दौर में स्वीकृत व्यापार में तकनीकी बाधाओं के समझौते का विस्तारण और स्पष्टीकरण ही है। यह सुनिश्चित करने की चेष्टा करता है कि तकनीकी विमर्श और मानक (standard), परीक्षण और प्रमाणन (certification) प्रणालियां व्यापार के मार्ग में अनावश्यक रुकावट न बनें। तथापि यह स्वीकार करता है कि देशों को मानवीय, पशु या वनस्पतीय स्वास्थ्य तथा पर्यावरण की रक्षा का अधिकार है। समझौते मे मानकीकरण संस्थाओं द्वारा मानकों की संरचना, स्वीकृति और उपयोग की संहिता (code) सम्मिलित है।

5. **व्यापार संबंधी निवेश उपायों के पहलुओं का समझौता (TRIMs)**—यह 5 वर्ष में सभी व्यवहार तक ही सीमित हैं। वस्तुतः यह जिन उपायों पर लागू होता है वे हैं—चुने हुए क्षेत्रों में निवेश, विदेशी कंपनियों को राष्ट्रीय कंपनियों के बराबर रखने के लिए विदेशी निवेश का स्तर निर्यात दायित्व (obligations) और घरेलू कच्चे माल का उपयोग। यह विदेशी विनिमयके अर्जनों, विदेशी ईक्विटी हिस्सेदारी और तकनीकी हस्तान्तरण से संबंद्ध विदेशी निवेशकों का कोई पालन शर्त लगाने का निषेध करता है। यह आदेश देता है कि विदेशी निवेश कंपनियों को घरेलू कंपनियों के बराबर ही रखा जाए। यह निवेश के क्षेत्र में रुकावटें लगाने को रोकता है। यह कच्चे माल, कल पुर्जों और मध्यवर्तियों के मुक्त आयात की अपेक्षा रखता है।

   यह समझौता स्वीकार करता है कि कुछ निवेश उपाय व्यापार में रुकावट डालते हैं और उसे विकृत कर देते हैं। इसलिए यह अपेक्षा रखता है कि विकसित देश 2 वर्ष में, विकासशील देश 5 वर्ष में और न्यूनतम विकसित देश 7 वर्ष में सब गैर-अनुरूप TRIMs को अनिवार्य रूप से सूचित करेंगे और उन्हें समाप्त कर देंगे। इसने TRIMs पर एक समिति का गठन किया है जो इन वचनबद्धताओं के पालन को मानीटर करेगी और इसकी रिपोर्ट वस्तुओं में व्यापार की काउन्सिल को प्रतिवर्ष देगी।

6. **प्रति-राशिपातन पर समझौता (Agreement on Anti-Dumping)**—गैट के अनुच्छेद VI के अनुसार, यदि राशिपातन आयात, आयातकर्ता देश के घरेलू उद्योग को हानि पहुंचाता है तो अनुबंधित सदस्य को अधिकार है कि वे राशिपातन-विरोधी उपायों को अपनाएं। संशोधित समझौता टोकिया दौर के समझौत का परिवर्धित रूप है। यह राशिपातित आयात से घरेलू उद्योग की क्षति का मूल्यांकन, राशिपातन विरोधी छानबीन प्रारम्भ करने और उसे कार्यरूप देने, घरेलू अिकारियों द्वारा की गई राशिपातन के झगड़े निपटान की कार्यवाही करने की प्रक्रिया में अधिक स्पष्टता, अधिक विस्तृत नियम और मापदण्ड निर्धारित करता है। नए नियमों के अन्तर्गत राशिपातन विरोधी छानबीन तुरन्त बन्द कर दी जाएगी यदि "डम्पिंग की सीमा" निर्यात कीमत के 2% से कम है, या किसी विशेष देश से डम्प किए आयात की मात्रा उस उत्पाद के कुल आयात से 3% से कम है बशर्ते कि यह ऐसे कुल उम्प किए आयात की 7% की सीमा के अन्तर्गत हो।

   वस्तुओं में व्यापार के बहुपक्षीय समझौते के अन्तर्गत कस्टम मूल्यांकन, लदान-पूर्व निरीक्षण, स्रोत के नियम, आयात लाइसेंस प्रक्रिया और सुरक्षाएं भी आती हैं।

2. सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता (GATS)

इस समझौते के अन्तर्गत सब अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-योग्य सेवाएं आती हैं। विदेशी सेवाएं और सेवा प्रदाता, घरेलू सेवाओं और सेवा-प्रदाताओं के बराबर समझे जाएगें तथापि सरकारें विशिष्ट परम-मित्र राष्ट्र (MFN) की छूट की सूचना देंगी,

नोट

जिसका 5 वर्ष के पश्चात् पुनरावलोकन किया जाएगा। इसकी सीमा साधारणत: 10 वर्ष की होगी। यह पारदर्शिता पर बल देता है, जिसमें सेवाओं के व्यापार संबंधी कानून नियमनों का प्रकाशन सम्मिलित है। सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय भुगतान और हस्तांतरण में रुकावट नहीं डाली जायगी, सिवाय भुगतान शेष की कठिनाइयों के जहां ऐसी रुकावटें अस्थायी, सीमित और कुछ शर्तों के अन्तर्गत होंगी। सेवाओं में व्यापार का उदारीकरण उत्तरोत्तर (progressive) होगा। सेवाओं के व्यापार में प्रतिकूल प्रभावों की कटौती अथवा नितान्त समाप्ति तथा सरकारों द्वारा विशिष्ट वचनबद्धताओं के सामान्य स्तर को ऊंचा करना, ये सब प्रति 5 वर्ष के अंतराल में वार्ताओं के द्वारा किया जाएगा।

इस समझौते में खास क्षेत्रों से संबंधित विशेष शर्तें भी दी गई हैं। जहां तक देशी (natural) मनुष्यों के आवागमन का संबंध है, इसके अनुसार देशों की सरकारों को अनुमति है कि अपनी सेवाएं देने के लिए उनकी अस्थायी निवास संबंधी विशेष वचनबद्धताओं के लिए परस्पर बातचीत करें। यह उन मनुष्यों पर लागू नहीं होगा जो स्थायी निवास अथवा नौकरी के इच्छुक हों।

वित्तीय सेवाओं के संबंध में यह देशों की सरकारों को अधिकार देता है कि निवेशकों, जमाकर्ताओं और पालिसी—धारकों के लिए उचित उपाय करें और आर्थिक प्रणाली की अखण्डता और स्थिरता को सुनिश्चित करें। ये WTO के प्रभावी होने के 6 मास पश्चात् लागू हुए।

दूर*संचार* के क्षेत्र में यह देशों को निर्देश देता है कि वे दूर-संचार वहन तंत्रों का स्थापन, निर्माण, अधिग्रहण, पट्टे पर देना, संचालन या पूर्ति सुनिश्चित करें और जनता को उपलब्ध कराएं। तथापि एक विकासशील देश अपने घरेलू दूरसंचार ढांचे और सेवाओं की और सेवा-सीमाओं की पुष्टता, तथा अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (International Tele-communication Union) और अंतर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन (International Organisation for Standardisation) के सहयोग से दूरसंचार सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सहयोग की वृद्धि के लिए उपाय करे।

गैट्स *विमानों* की मरम्मत और रख-रखाव सेवाओं, वायु यातायात सेवाओं का विपणन और कम्प्यूटर आरक्षण सेवाओं पर भी लागू होता है।

व्यावसायिक सेवाओं के क्षेत्र में देशों की सरकारें संचालन-दलों की नियुक्ति के लिए भी तत्पर हो गई हैं जो ये कार्य करेंगे—(1) सेवाओं में व्यापार और पर्यावरण के बीच संबंधों का परीक्षण, रिपोर्ट और संस्तुतियां (recommendations) जिनमें दीर्घकालीन विकास की समस्या भी शामिल है। (2) व्यावसायिक सेवाओं पर आवश्यक शिक्षा की शाखाओं पर संस्तुतियों के साथ परीक्षण और रिपोद्व करना। ऐसा सुनिश्चित करने के लिए कि व्यावसायिक सेवाओं के क्षेत्र में योग्यताएं आवश्यकताएं और प्रक्रियाएं तथा तकनीकी मानक और लाइसेंसिस आवश्यकताएं इनके व्यापार में अनावश्यक बाधाएं नहीं होती हैं।

गैट्स में मंत्रणाएं, झगड़ा निपटान और एक सेवाओं की काउन्सिल की स्थापना का भी प्रावधान है।

3. बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के व्यापार संबंधी पक्ष का समझौता (Agreement on Trade Related Aspects of Intellectual Property Rights-TRIS)

TRIPs समझौते के अन्तर्गत 7 प्रकार की बौद्धिक सम्पत्ति आती है—(1) कॉपीराइट तथा तत्सम्बन्धी अधिकार, (2) टेडमार्क, (3) भौगोलिक संकेत, (4) औद्योगिक डिजाइन, (5) पेटेंट, जिनमें सम्मिलित हैं सूक्ष्म जीवाणु और पौधों की विभिन्न जातियां, (6) संघटित सर्किट और (7) व्यापारिक रहस्य। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

1. **कॉपीराइट और तत्सम्बन्धी अधिकार (Copyright and Related Rights)**—सदस्यों को आवश्यक है कि वे साहित्यिक और कलात्मक रचनाओं के संरक्षण के लिए बर्न (*Bern*) समझौते का पालन करें। साहित्यिक रचनाओं में कम्प्यूटर प्रोग्राम भी सम्मिलित है। कम्प्यूटर-प्रोग्रामों के रचयिताओं, फोनोग्राम, ध्वनि रिकार्डिंग और प्रसारण संस्थाओं को अपनी रचनाओं को जनता को वाणिज्यिक किराए पर देने अथवा न देने का अधिकार दिया जाए। ऐसा ही एकमात्र अधिकार फिल्मों पर भी लागू होता है। यह संरक्षण ध्वनि रिकार्डिंग के निर्माताओं और अभिनयकर्ताओं के लिए कम से कम 50 वर्ष और प्रसारण संस्थाओं वु लिए कम से कम 20 वर्ष के समय के लिए होगा।

नोट

2. **ट्रेडमार्क (Trademarks)**–कोई चिह्न या चिह्नों का समूह, जो किसी संस्थान के पदार्थों अथवा सेवाओं में दूसरे संस्थाओं के पदार्थों अथवा सेवाओं से भिन्नता दर्शाता है, ट्रेडमार्क के अन्तर्गत आता है। ऐसे सूचना चिह्न विशेषतया शब्द, जिनमें वैयक्तिक अक्षर, संख्या, व्याख्यात्मक विवरण और रंगों का संयोजन तथा ऐसे चिह्नों का समूह ट्रेडमार्क रजिस्ट्रेशन की परिधि में आते हैं। किसी रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क के स्वामी को अन्य सब पार्टियों को ऐसे ही अथवा इसी प्रकार के पदार्थों अथवा सेवाओं के चिह्नों का दुरुपयोग करने से रोकने का एकमात्र अधिकार है। किसी ट्रेडमार्क के प्राथमिक रजिस्ट्रेशन और प्रत्येक नवीनीकरण की अवधि 7 वर्ष से कम की नहीं होगी। ट्रेडमार्क का रजिस्ट्रेशन अनिश्चितकाल तक बढ़ाया जा सकता है।
3. **भौगोलिक संकेत (Gographical Indications)**–किसी सदस्य के क्षेत्र में उत्पदित वस्तु की पहचान अथवा, उस क्षेत्र, प्रदेश या स्थान, जिसमें, उसके भौगोलिक उत्पादन की गुणवत्ता या प्रसिद्धि है, अथवा ख्याति है, उसका भौगोलिक संकेत देता है। सदस्यों को यह आवश्यक है कि वे रुचि रखने वाले लोगों को ऐसे कानूनी साधन प्राप्त कराएं, जिनके द्वारा ऐसा कोई संकेत न मिल जिससे ग्राहकों को पदार्थों के उत्पत्ति-स्थल के बारे में गलतफहमी हो अथवा जिससे अनुचित प्रतियोगिता संभव हो। शराब और स्पिरिट की भौगोलिक पहचान का विशेष संरक्षण आवश्यक है।
4. **औद्योगिक डिजाइन (Industrial Designs)**–औद्योगिक डिजाइनों का संरक्षण 10 वर्षें की अवधि के लिए होता है। सुरक्षित डिजाइनों के स्वामियों को, ऐसी वस्तुओं के उत्पान, बिक्री अथवा आयात को रोकने की समर्थ होगी जो ऐसे डिजाइनों पर आधारित हों जो वाणिज्यिक कार्यों के लिए संरक्षित डिजाइनों की नकल हों। ऐसे संरक्षण कम से कम 10 वर्ष के लिए होंगे।
5. **पेटेंट (Patents)**–पेंटेंट, प्रौद्योगिकी के सब क्षेत्रों में किसी भी आविष्कार पर हो सकता है, चाहे वह वस्तु का हो या प्रक्रियाओं का, बशर्ते कि वह नवीन हो, आविष्कार-परक हो और जिसको औद्योगिक क्षेत्र में लागू किया जा सके। पेटेंट-धारियों को उन्हें देने, उत्तराधिकार द्वारा हस्तांतरण अथवा लाइसेंसिंग समझौता करने का अधिकार होगा। समझौते के अनुसार पेटेंट संरक्षण 20 वर्ष के लिए आवश्यक होगा।

   यदि जनहित अथवा नैतिक कारणों से किसी आविष्कार का उपयोग नहीं किया जा सकता तो उसका पेटेंट नहीं किया जाएगा। मनुष्यों या पशुओं, पौधों और सूक्ष्मजीवों को छोड़कर अन्य प्राणियों, विशेषत: अजीव विज्ञानीय और सूक्ष्म जीव-विज्ञानीय प्रक्रियाओं के अलावा पौधों और पशुओं के उत्पादन की रोग-निदानीय, चिकित्सकीय और शल्य-चिकित्सकीय प्रक्रियाओं को पेंटेंट प्रणाली से वंचित रखा गया है, तथापि सदस्यगण पेटेटों के द्वारा Suigeneris प्रणाली (पशु-प्रजनिकों के अधिकार) द्वारा अथवा इनकी किसी मिश्रित प्रणाली द्वारा पौधों की जातियों के संरक्षण के उपाय करेंगे। ये प्रावधान 1 जनवरी, 1995 से 4 वर्ष के उपरांत पुनरावलोकित किए जाने थे।
6. **संघटित सर्किट (Integrated Circuits)**–TRIPs समझौते में संघटित सर्किटों के खाका डिजाइनों का 10 वर्ष की अवधि के लिए संरक्षण का प्रावधान है। परन्तु यह खाका डिजाइन बनाने के समय से 15 वर्ष के पश्चात संरक्षण समाप्त हो जायेगा।
7. **व्यापारिक रहस्य (Trade Secrets)**–वाणिज्यिक मूल्य वाले व्यापारिक रहस्य तथा जानकारियों का विश्वासघातकता तथा अन्य कुकार्यों से संरक्षण किया जाएगा। औषधियों तथा कृषि रसायनों की व्यापारिक स्वीकृति के लिए भेजे गए परीक्षण-फलों को अनैतिक प्रयोग से संरक्षित किया जाएगा।

   अंतत: बौद्धिक सम्पत्ति के अधिकारों से संबंधित संविदात्मक लाइसेन्सों के अप्रतियोगी कार्यों के रोकने का भी इस समझौते में प्रावधान है। यह बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से विभिन्न देशों की सरकारों के मध्य विचार-विमर्श को भी प्रेरित करता है।

   यह समझौता TRIPs के कार्यान्वयन के लिए उचित विधि निर्माण और अन्य उपायों के लिए विकसित देशों के 1 वर्ष का संक्रमणकाल स्वीकृत करता है। विकासशील देशों, पूर्व-यूरोपीय देशों और रूस को 5 वर्ष का

नोट

और न्यूनतम-विकसित देशों को 11 वर्ष का संक्रमणकाल देता है। जिन विकासशील देशों में वस्तु पेटेंट संरक्षण नहीं है उन्हें 10 वर्ष दिए गए हैं।

समझौते का यह भी निर्देश है कि एक "बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलुओं की काउन्सिल" (Council for Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights) की स्थापना की जाएगी जो इस समझौते के कार्यान्वयन का तथा देशों की सरकारों द्वारा इसके पालन को मानिटर करेगी।

4. झगड़ा निपटान प्रणाली (Dispute Settlement System)

WTO के स्थापन समझौते के प्रावधानों के अन्तर्गत सदस्य देशों के अधिकार और कर्त्तव्य संबंधित अधिकारों के लिए विचार विमर्श और झगड़े के निपटान का प्रावधान झगड़ा निपटान निर्धारण नियमों और प्रणालियों के समझौते में किया गया है। इसके लिए एक झगड़ा निपटान संस्था (Dispute Settlement Body—DSB) स्थापित की गई है। झगड़ा निपटान का पहला चरण संबंधित सदस्यों के मध्य विचार-विमर्श हैं। यदि यह वार्ता सफल न हो तो WTO का डाइरेक्टर जनरल मध्यस्थता और समाधान के लिए अपनी सेवाएं अर्पित करता है। शिकायती सदस्य DSB से 30 दिन के भीतर 3 विशेषज्ञों की नाम सूची के लिए प्रार्थना कर सकता है। यह भी विधान है कि DSB द्वारा मनोनीत एक 7 सदस्यों की अपील समिति उसका पुनरावलोकन करके DSB को 60 से 90 दिन के भीतर अपनी रिपोर्ट समर्पित करेगी। DSB इस रिपोर्ट को 30 दिन के भीतर अनुमोदित करेगी और यह बिना शर्त दोनों पक्षों को मान्य होगी।

5. बहुपार्श्विक व्यापार समझौते (Plurilateral Trade Agreements—PTA)

बहुपार्श्विक व्यापार समझौतों में शामिल हैं—नागरिक विमानन व्यापार समझौता, सरकारी खरीद का समझौता, अन्तर्राष्ट्रीय दुग्धोत्पादन समझौता तथा अंतर्राष्ट्रीय गोमांस समझौता। इनमें पहला समझौता जेनेवा में अप्रैल, 1979 में हुआ जो बाद में संशोधित, परिवर्द्धित और ठीक किया गया। अंतिम तीन समझौते माराकेश में 15 अप्रैल, 1994 को हुए थे।

6. व्यापार-नीति पुनरावलोकन तंत्र (Trade Policy Review Mechanism—TPRM)

यह बहुपक्षीय व्यापार तंत्र के सुचारू रूप से चलने के लिए बहुपक्षीय और अनेक पक्षीय व्यापार समझौतों के अंतर्गत व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं का पुनरावलोकन करता है। इस उद्देश्य के लिए यह व्यापार नीति पुनरावलोकन संस्था (Trade Policy Review Body—TPRB) के स्थापन का संकेत देता है। पूर्ण पारदर्शिता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक सदस्य TPRM को निरंतर अपने द्वारा जारी व्यापार नीतियों और प्रक्रियाओं की रिपोर्ट देता रहेगा। TPRB बहुपक्षीय व्यापार तंत्र पर प्रभावशील अंतर्राष्ट्रीय व्यापारीय वातावरण में वर्तमान प्रवृत्तियों का वार्षिक अति-निरीक्षण करेगा।

डाइरेक्टर जनरल द्वारा समर्पित वार्षिक रिपोर्ट इस अति-निरीक्षण में सहायक होगी, जो WTO के मुख्य कार्यों की व्याख्या करेगी और बहुपक्षीय व्यापार तंत्र पर प्रभाव डालने वाले नीति विषयों पर विशेष प्रकाश डालेगी।

उरुगवे दौर और विश्व व्यापार समझौते का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of Uruguay Round and WTO Agreement)

उरुगवे दौर अनुबंधित देशों द्वारा 8 लम्बे वर्षों की वार्ताओं का परिणाम था। इन वार्ताओं के फलस्वरूप अंतिम एक्स के वैधानिक प्रलेखों में 28 समझौतों का समावेश है।

पहले दौरों की अपेक्षा उरुगवे दौर का क्षेत्र और विस्तार अधिक बड़ा था। इसमें सेवाएं, कृषि और बौद्धिक अधिकार और निवेशों को प्रथम बार शामिल किया गया। इसमें WTO द्वारा व्यापार नीतियों, पर्यावरण नीतियों और सततीय (Sustainable) विकास में संबंध पर भी बल दिया गया। उरुगवे दौर की एक चमत्कारिक उपलब्धि थी—गैट के विचार-विमर्श मंच के स्थान पर WTO का एक स्थायी विश्व-व्यापार संगठन के रूप में स्थापन। उरुगवे दौर में केवल इस दौर द्वारा संशोधित मूल गैट ही नहीं था, वरन् उपरवर्णित कई नए समझौते भी थे। यह समझौते संभवत: विकासशील देशों तथा अल्प विकसित देशों को दीर्घकालीन लाभ देंगे, बशर्ते कि उन्हें विकसित देशों से उनके विश्वव्यापीकरण में

नोट

पूर्ण सहयोग मिले। तथापि, इन समझौतों में कई कमियां हैं जो इन विकासशील देशों को हानिकारक हो सकती हैं। हम प्रत्येक समझौते का नीचे एक संक्षिप्त विवेचन करते हैं।

1. कृषि (Agriculture)

कृषि समझौता विकासशील देशों के किसानों के लिए हानिप्रद होगा। यह खाद्य सुरक्षा की उन्नति और आत्मनिर्भरता के लिए दी हुई सब्सिडियों तथा कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि के लिए सब्सिडी में कोई भेद नहीं करता, क्योंकि यह विकासशील देशों के उत्पाद के मूल्य के 10% तक की ही सब्सिडी को स्वीकृत देता है। अतएव उन देशों की सरकारों के लिए विशेष कृषि वस्तुओं में कीमत-सहायता देना लगभग असम्भव हो जाएगा। यही बात निवेश-सब्सिडियों की भी है जो केवल अल्प आय वाले किसानों तक ही सीमित हैं। इस प्रकार किसानों के कुल आगतों जैसे ईंधन, बिजली, खाद, माल की ढुलाई, बीज आदि पर तथा उपभोक्ता के जनवितरण इत्यादि के रूप में सब्सिडियां समाप्त ही करनी पड़ेगी। सब्सिडियों में कटौती और बिल्कुल हटाने के साथ-साथ यदि विवेकी कीमत नीति नहीं अपनाई गई तो विकासशील देशों में किसाना की अपार क्षति होगी।

फिर, मुक्त मार्केट प्रवेश और आयात की समस्त रुकावटों को हटाने से भी कृषक वर्ग को हानि पहुंचेगी। कृषि उत्पादों के सस्ते निर्यात से किसानों का उत्पादन ठप्प पड़ जाएगा। कृषि उत्पादों का अंतर्राष्ट्रीय मार्केट कीमत निर्धारण प्रतियोगियों द्वारा नहीं किया जाता, वरन् उन्नत देशों के उन नियमों द्वारा किया जाता हैं जो उन वस्तुओं को खरीदते और बेचते हैं। इसके फलस्वरूप विदेशी ऋण में वृद्धि होगी और भुगतान-शेष की स्थिति और भी बिगड़ जाएगी।

इस समझौते में विकासशील देशों के कृषि उत्पादों पर स्वास्थ्य और वनस्पति स्वास्थ्य क्रियाओं के प्रयोग का भी प्रावधान है। ये Codus Alimentarious अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा स्थापित नियमों पर आधारित होंगे जो (संगठन) किसी प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के अधीन नहीं होते हैं। ऐसा संगठन विकसित देशों के उत्पादों को 'असुरक्षित' घोषित कर सकता है।

इनके बावजूद इस समझौते से विकासशील देशों में अपनी बढ़ती हुई घरेलू मांग की पूर्ति के पश्चात् भी निर्यात अतिरेक भी वृद्धि द्वारा अधिक लाभ होने की संभावना है। इसको अनाज, रुई आदि की ऊंची कीमतों के द्वारा तथा उद्यान-कृषि, पुष्प-कृषि, डेरी उत्पादन और अन्य कार्यों के विविधीकरण द्वारा, जो कृषि-उत्पादों की टैरिफ-सीमा वृद्धि 100% तक होने से सम्भव होगा, को भी लाभ होने की सम्भावना है। फिर, विकसित देशों में कृषि के ऊपर उन सब्सिडियों की कटौती के कारण विकासशील देशों का निर्यात अधिक लाभकारी हो सकता है।

2. कपड़ा और वस्त्र (Textiles and Clothing)

संक्रमणकाल में इस समझौते से अधिकतर विकासशील देशों को लाभ होगा। परन्तु इन लाभों में विलम्ब होने की सम्भावना है क्योंकि MFA की विलीनीकरण प्रक्रिया में दो कारणों से देर हो सकती है–

प्रथम, जब कोई विकसित देश कुछ प्रकार का कपड़ा और वस्त्र MFA से अलग करता है, यह अभेदात्मक MEN के आधार पर सभी निर्यातक देशों पर लागू हो जाएगा।

द्वितीय, 10 वर्ष में संक्रमणकाल के अंतिम दिन सब उत्पादों का केवल 40% ही गैट में सम्मिलित होगा। यह समाप्तिकाल बहुत लम्बा है और WTO पर इस संक्रमणकाल को बढ़ाने का दबाव डाला जा सकता है। फिर, 'उत्पाद-आवरण' (product coverage) के लिए विलीनीकरण (phasing out) इतना विस्तृत हैं कि वह सब "कपड़ा और वस्त्र" के पदार्थ जो कोटा-प्रणाली के अन्तर्गत नहीं हैं, इसमें आ जाते हैं। इस प्रकार कोटा पदार्थों का 10 वर्ष के विलीनीकरण के काल के अन्त तक नाम-मात्र का विलीनीकरण होगा।

यह समझौता छोटे वितरकों और रुई-उत्पादक निर्यातकारी विकासशील देशों को लाभकारी होगा।

3. TRIMs

TRIMs का समझौता शक्तिहीन है। समझौते के अनुच्छेद IV के अनुसार उन्नतिशील देश इन प्रावधानों से अस्थायी रूप से हट सकते हैं। इस विचलन (deviation) की मात्रा और प्रणाली अनुबंधित देशों की इसकी व्याख्या पर निर्भर है। इस पलायन धारा (escape clause) के अन्तर्गत विदेशी कंपनियों के नियंत्रण और उनके व्यापार-संतुलन उपायों

के नियमन के अधिकार किसी प्रकार से कम नहीं किए गए हैं, यदि प्रतिकूल भुगतान-शेष ठोस कारण हों।

इन सुरक्षाओं के अतिरिक्त TRIMs समझौता विदेशी निवेश का नियंत्रण भी हटाएगा। यद्यपि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का काम नहीं लिया गया है, तथापि आशंका है कि MNCs विकासशील देशों में उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर नियंत्रण करने की चेष्टा करेंगे। आगे वर्णित TRIMs वह हैं जो विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमों पर पक्षपाती ढंग से लगाए जाते हैं, जबकि वही शर्तें घरेलू उद्यमों पर लागू नहीं हैं। समझौता पक्षपातपूर्ण आयात रुकावटों का भी वर्णन करता है।

कुल मिलाकर TRIMs समझौते से राष्ट्रीय सरकारों की निर्णयात्मक शक्ति कम हो गई है। उदाहरणस्वरूप, वे घरेलू विनिर्माण में देशी (local) अंशों का विवरण नहीं बता सकतीं और न ही अपनी निर्यातित वस्तुओं में आगतों की प्रतिशतता सीमित कर सकती हैं, या किसी विशेष वस्तु के निर्यात।

4. गैट नियमावली (GATT Rules)

मात्रात्मक रुकावटों (QRs) के विलीनीकरण और अधिमान संबंधी गैट नियम 1994 अस्पष्ट हैं। अपनी भुगतान-शेष संबंधी कठिनाइयों को दूर करने के लिए (QRs) का प्रयोग विकासशील देशों के लिए अप्रभावकारी बना दिया गया है क्योंकि इसे केवल न्यूनतम विकसित देशों तक सीमित कर दिया गया है। ORs को समाप्त कर दिया जायगा और इसके स्थान पर कीमत आधारित उपाय लागू किए जाएंगे। केवल अविकसित देश ही QRs को लागू कर सकेंगे, परन्तु इसका यह रूप अस्थायी ही रहेगा। जो देश QRs लगाएंगे, वह शीघ्रातिशीघ्र सार्वजनिक रूप से इन्हें हटाने की समय-तालिका घोषित करेंगे। परन्तु विकासशील देशों को भिन्न वस्तुओं पर भिन्न ड्यूटी-दरें लगाने का अधिकार होगा जिससे वे अनावश्यक वस्तुओं के बहुत अधिक आयात को निरुत्साहित कर सकें। इससे उन्नतिशील देशों के लिए सम्भव होगा कि वे आवश्यक वस्तुओं और पूंजीगत माल के आयात को प्रोत्साहित और अनावश्यक वस्तुओं के आयात को निरुत्साहित कर सकें।

टैरिफ अधिमान विश्व प्रणाली (Global System of Tarrif Preferences—GSTP) के अन्तर्गत एक विकसित देश दूसरे देशों को टैरिफ अधिमान दे सकता है। इसी प्रकार सामान्यीकृत अधिमान प्रणाली (Generalised System of Preferences-CSP) के अन्तर्गत एक विकसित देश किसी विकासशील देश को टैरिफ अधिमान दे सकता है। यह टैरिफ कटौतियां उन टैरिफ अधिमानों के अतिरिक्त होंगी जो WTO के अन्तर्गत MFN देशों को दी गई हैं। फलस्वरूप, विकासशील देशों में साधारणतः कुछ क्षेत्रों में अधिमान सीमाएं पूर्णरूपेण समाप्त हो जाएंगी OECD का अनुमान है कि 2002 तक अफ्रीका को अपने अधिमानों में कटौती के कारण औसतन 30% की हानि होगी। अफ्रीका, कैरीबियन और प्रशांत सागर देशों के कटिबंधीय उत्पादों के निर्यात में 51% तक की कमी होगी।

उरुगवे दौर में विकासशील देशों ने स्वयं को वचनबद्ध कर लिया है कि वे अपने औद्योगिक टैरिफ को 72% तक "बंधित" कर लेंगे तथा कृषि उत्पादों को 100% तक। सब्सिडी समझौते द्वारा विकासशील देश वचनबद्ध हैं कि वे उन सब्सिडियों को समाप्त कर देंगे जो निर्यात कीमतों पर प्रभावी हैं। परिणामस्वरूप, वे निर्यात-द्वारा वृद्ध की नीति का परित्याग कर देंगे।

प्रति-राशिपातन के गैट नियम राष्ट्रीय सरकारों के विवेक को इतना स्वच्छन्द बनाते हैं कि बहुत ही कम कार्य उनको वास्तव में इन नियमों के उल्लंघन का दोषी ठहरा सकेंगे। इस प्रकार कुछ तो गैट नियमों के, और कुछ आर्थिक परिस्थितियों के कारण प्रति-राशिपातन ड्यूटियों का प्रयोग संभवतः अमेरिका और यूरोपीय संघ देशों के व्यापार को सीमित करने में ही प्रयुक्त होगा।

फिर, विकासशील देशों के लिए व्यापार में गैट तकनीकी रुकावटें, जैसे पर्यावरण, स्वास्थ्य, सफाई आदि गैट-टैरिफ रुकावटों के रूप में कार्य करते हैं।

5. गैट्स (GATS)

गैट्स विकासशील देशों के हितों के विरुद्ध जाता है। यह उन्हीं सेवाओं के उदारीकरण पर जोर देता है जिनमें विकसित देशों को निश्चित लाभ है, जैसे आर्थिक, जलपोत संबंधी, परिवहन और संचार सेवाएं, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय और मीडिया सेवाएं। सेवाओं के व्यापार में उदारीकरण द्वारा विकसित देशों का मुख्य ध्येय विकासशील देशों के उत्पादन और सेवाओं के प्रयोग पर नियन्त्रण की चेष्टा करना ही है।

नोट

विकासशील देशों के सेवा-क्षेत्र को विकसित देशों की फर्मों के विशाल संसाधनों की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा। कुछ विकासशील देशों के पास कुशल और अकुशल कर्मियों का तुलनात्मक अधिक लाभ है, परन्तु उनके स्वतन्त्र आगमन के विरुद्ध विकसित देशों ने कठोर आप्रवासिक कानून बना रखे हैं। सेवा क्षेत्र के इस पहलू पर कोई सुझाव नहीं दिया गया क्योंकि चयनात्मक बुद्धिजीवी पलायन से विकसित देशों को ही लाभ होता है।

6. ट्रिप्स (TRIPs)

ट्रिप्स समझौता विशेषत: पक्षपातपूर्ण है। यह निम्न कारणों से विकसित देशों के हित में होगा और विकासशील देशों को अहितकर। यह औषधियों, कृषि पौध और पशु आदि सम्बंधी पेटेंट प्रणाली के अंतर्गत प्रभावी क्षेत्र का विस्तार करेगा। क्योंकि विकसित देशों और उनकी बहुदेशीय कंपनियों के पास अनुसंधान और विकास के असीम साधन और सुविधाएं हैं, इसलिए उन्हें निवेश करने और प्रक्रियाओं तथा वस्तुओं को पेटेंट करवाने की सुविधा होगी। ऐसी सब स्थितियों में विकासशील देशों को रॉयल्टी देनी पड़ेगी। ऐसे सब पदार्थों, विशेषतया, औषधियों तथा मशीनों की कीमतें बढ़ जाएंगी और उपभोक्ता पर अधिक भार पड़ेगा। विकासशील देशों में पेटेंट किए हुए कच्चे माल और पदार्थों का और अधिक आयात होगा, और निर्यात को आघात पहुंचेगा। परिणामस्वरूप, भुगतान-शेष और अधिक बिगड़ेगा।

विकसित देश भी ट्रिप्स से प्रभावित होंगे। एक अनुमान के अनुसार, यदि ट्रिप्स समझौते का पूर्णतया पालन किया गया तो औषधियों की कीमतों में आकाशभेदी वृद्धि होगी और विश्व की 90% आबादी पर इसका कुप्रभाव पड़ेगा।

भारत की भांति बहुत-से विकासशील देश औषधि, कृषि-उत्पाद रसायन आदि क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास कार्यों में संलग्न हैं। यह सब मृतप्राय हो जाएगा क्योंकि 10 वर्ष के संक्रमणकाल के पश्चात पेटेंट कानूनों में परिवर्तन होगा।

ट्रिप्स समझौते की स्वीकृति से विकासशील देशों के पेटेंट कानूनों में दूरगामी परिवर्तन आवश्यक हो जाएंगे।

ट्रिप्स समझौते के अनुसार विकासशील देशों के पेटेंट कानूनों में परिवर्तन से बुद्धिजीवी पलायन में भारी वृद्धि होगी जो इन देशों के लिए बहुत हानिकारक होगा।

पेटेंट अधिकारों की अवधि का 20 वर्ष के लिए बढ़ाना विकासशील देशों के लिए और भी हानिकारक होगा। केवल विकसित देशों में ही पेटेंट अधिकारों की अवधि 20 वर्ष है। बेशक, विकासशील देशों को अपने मौजूदा कानूनों को बदलने के लिए 10 वर्ष का समय दिया जाएगा, लेकिन ट्रिप्स समझौता इस रियायत को भी क्लासिकी पाइप लाइन सुरक्षा धारा द्वारा छीन लेता है। इस धारा के अनुसार सम्बद्ध अधिकारी औषधियों तथा कृषि पदार्थों के पेटेंट प्रार्थना-पत्र, 1 जनवरी, 1995 को समझौते के प्रभावी होने के पश्चात् भी स्वीकार करेंगे, चाहे राष्ट्रीय कानूनों में वस्तु पेटेंटों की स्वीकृति का प्रावधान हो या नहीं। उदाहरणार्थ, औषधियों के संबंध में पेटेंट प्रार्थना-पत्र देने से उसके मार्केट प्रवेश तक साधारणत: 10 वर्ष का समय लगता है। अत: ऐसी वस्तुओं पर पेटेंट सुरक्षा की आवश्यकता केवल 2005 के आगे से ही होगी। यद्यपि पेटेंट की अवधि केवल 20 वर्ष की ही होगी, परन्तु कोई भी नई वस्तुओं पर निवेश नहीं करेगा।

फिर समझौते का प्रावधान है कि प्रार्थी को किसी दूसरे देश में एकमात्र मार्केटिंग अधिकार अधिकाधिक 5 वर्ष के लिए होगा। पेटेंट स्वीकृत के बिना भी ऐसे नव-प्रवर्तन (innovation) संबंधी सूचना गोपनीय रखी जाएगी। यह प्रावधान विकासशील देशों के हितों के विरुद्ध है, क्योंकि यह पेटेंटधारी को अधिकार देता है कि वह इस पेटेंट वस्तु अथवा प्रक्रिया का निर्यात मार्केट में उपयोग पर रोक लगाके इस प्रकार पेटेंट की हुई प्रौद्योगिकी एक MNC द्वारा किसी विकासशील देश के घरेलू मार्केट के शोषण के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

पेटेंट के कार्यान्वयन के लिए पेटेंटधारी को स्वतन्त्रता होगी कि वह वस्तु को निर्यात करे, न कि उसकी उत्पादन-इकाई को दूसरे देशों में लगाए। विकसित देशों और उनके MNC पर कोई बन्धन नहीं होगा कि वे विकासशील देशों को अपनी प्रौद्योगिकियों को उनकी कार्य-संचालन की आवश्यकतापूर्ति के लिए स्थानान्तरित करें। बल्कि उन देशों का उपयोग उनकी वस्तुओं के मार्केट के रूप में किया जाएगा।

"प्रमाण के दायित्व का व्युत्क्रम" (reversal of the burden of proof) वाली धारा तो न्याय के कानूनों के सर्वथा विरुद्ध है। इसके अनुसार नई वस्तुओं और प्रक्रियाओं के उत्पादकों का उत्तरदायित्व होगा कि वे अपने पेटेंट अधिकारों के अनतिक्रमण (non-infringement) को सिद्ध करें। अतएव यह पेटेंटधारी को अपनी प्रक्रिया और वस्तु पेंटेंट के

नोट

अतिक्रमण को सिद्ध करने से मुक्ति देता है। यह स्वेच्छाचारितापूर्ण है।

ट्रिप्स नियम स्व-विरोधाभासी भी हैं। वे किसी विशिष्ट प्रणाली का प्रावधान नहीं करते जिसके द्वारा सततीय (Sustainable) विकास और पर्यावरण रक्षण के ध्येयों को प्राप्त किया जा सके। बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों और पर्यावरण में संबंध का प्रश्न इसलिए उठाता है क्योंकि कुछ सुरक्षित प्रौद्योगिकियों का पर्यावरण पर भले या बुरे रूप में, सीधा प्रभाव पड़ता है। यथार्थ में पर्यावरण को प्रभावित करने वाली प्रौद्योगिकियों का पेटेंट प्रणाली से अलग रखना या उनके प्रयोग पर, वाणिज्यिक शोषण पर, प्रतिबन्ध प्रत्यक्षत: आवश्यक प्रतीत होगा। ट्रिप्स समझौता स्पष्ट नहीं करता कि सदस्य पेटेंट सुरक्षा स्वीकृत करते समय पर्यावरणीय-हानिकर तकनीकों के वाणिज्यिक प्रतिबन्ध लगा सकते हैं या क्या यह अनतिक्रमण (non-violation) रूपी शिकायतों को जन्म देगा।

डॉ. दीपक नय्यर के अनुसार, "यदि नव-प्रवर्तन को छोड़ भी दें, तो भी विकासशील देशों के लिए ट्रिप्स समझौते के प्रौद्योगिकियों के समावेशन (absorption), प्रसारण (diffusion) और अनुकूलन (adaptation) के आशय दूरगामी है। अतिआवश्यक तकनीकें अब सुलभ लागतों पर उपलब्ध नहीं हो सकेगी। घरेलू तकनीक का उद्भव शायद पहले से ही प्राप्त हो जाए। तकनीकों का स्थानांतरण धीमा पड़ जाए। MNC द्वारा प्रतिबंधित व्यावसायिक पद्धतियों के प्रभावों में वृद्धि हो। ट्रिप्स समझौते के आशय और निष्कर्षों से अनुमान लगता है कि बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के संरक्षण की उमड़ रही अंतर्राष्ट्रीय विकासशील देशों के लिए अन्यायसंगत और प्रतिकूल होगी।"

7. झगड़ा-निपटान (Dispute Settlement)

WTO की झगड़ा निपटान प्रणाली के द्वारा सदस्य देशों की आन्तरिक नीतियों से संबंधित समस्याओं पर निर्णय लिया जाता है। परन्तु इससे देशों की प्रभुसत्ता पर धमकी का भय उत्पन्न होता है। उदाहरणस्वरूप, झगड़े की दशा में यदि WTO मंत्रालय ने एक नामावली मनोनीत करने की प्रार्थना की जाती है तो WTO मंत्रालय को नामावली मनोनीत करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। सम्बद्ध सदस्य इस मनोनयन को अस्वीकार नहीं कर सकता। अतएव इसके निर्णय पर झगड़े से संबंधित सदस्य कोई आपत्ति नहीं उठा सकता। इसका अर्थ है उसके प्रभुत्वाधिकारों में हस्तक्षेप।

फिर शक्तिशाली विकसित देश झगड़ा-निपटान-प्रक्रिया के ढोंग से उल्टा प्रतिशोधात्मक उपाय अपना सकते हैं जो विकासशील देशों के लिए अहितकर हो सकते हैं।

नोट्स WTO और GATT नियमों की रचना से विकासशील देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधों से अधिक पारदर्शिता, भविष्य-सूचकता और सुरक्षा की भावना का निर्माण हुआ है।

विश्व व्यापार संगठन का कार्यकरण (Working of WTO)

WTO का प्रथम द्विवार्षिक अधिवेशन सिंगापुर के सन्टैक नगर में 9 से 13 दिसम्बर, 1996 तक हुआ। सदस्य देशों ने एक सर्वसम्मत घोषणा की जिसमें बहुपक्षीय व्यापार-तंत्र द्वारा मुक्त विश्व व्यापार की उन्नति में अपने विश्वास का पुन: समर्थन किया। इस घोषणा में उन्होंने अपनी वचनबद्धता इन संदर्भों में दुहराई—(1) एक उचित, न्यायसंगत और अधिक खुली नियम आधारित प्रणाली; (2) वस्तुओं के व्यापार पर टैरिफ और गैर-टैरिफ रुकावटों का धीरे-धीरे उदारीकरण और अंतत: समाप्ति; (3) सेवाओं के व्यापार में निरंतर उदारीकरण, (4) सब प्रकार के संरक्षणों का अस्वीकार, (5) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधों में पक्षपातपूर्ण व्यवहार का निष्कासन; (6) विकासशील और अल्पविकासशील देशों और संक्रमण में अर्थव्यवस्थाओं का बहुपक्षीय प्रणाली में एकीकरण, और (7) अधिकतम संभव पारदर्शिता।

मंत्रियों ने व्यापार की कुछ नई समस्याओं पर भी विचार किया जैसे प्रतिस्पर्धा-नीति, श्रम संबंधी मानक बहुपक्षीय निवेश समझौता और सरकारी खरीद। अपनी घोषणा में उन्होंने श्रम संबंधी मानकों का संरक्षण के लिए प्रयोग वर्जित कर दिया। व्यापार और निवेश के बीच संबंधों की समस्याओं के निरीक्षण के लिए, व्यापार और प्रतियोगिता में पारस्परिक प्रभाव

नोट

संबंधी समस्याओं का अध्ययन जिसमें अप्रतियोगितात्मक कार्य भी सम्मिलित हैं, और सरकारी खरीद प्रक्रिया में पारदर्शिता का अध्ययन करने के लिए अलग-अलग कार्यकारी ग्रुपों की स्थापना पर सहमत हुए। उन्होंने स्वीकार किया कि वित्तीय सेवाओं, समुद्रीय सेवाओं, और आधारभूत दूरसंचार संबंधी विश्व-मार्किट के उदारीकरण पर वार्ताओं में प्रगति असंतोषजनक रही है। यह 1997 के अन्त तक पूर्ण हो जाएगी।

इस अधिवेशन का एक ही रचनात्मक पक्ष था–28 देशों द्वारा स्वीकृत सूचना तकनीक समझौते का प्रारंभ, जिसका उद्देश्य है, सूचना तकनीक पर टैरिफों का सन् 2000 तक नितान्त उन्मूलन। यह सहमति हुई कि इस पर वार्ता जेनेवा में 1 जनवरी, 1997 में प्रारम्भ होगी और समझौता जुलाई, 1997 तक लागू हो जाएगा। टैरिफ कटौतियों का दूसरा चरण जनवरी, 1998 में शुरु होगा, तीसरा जनवरी, 1999 में, और शून्य तक अंतिम कटौती 2000 के आरम्भ में। इस समझौते के अन्तर्गत बहुत-सी वस्तुएं आएंगी जैसे कम्प्यूटर और सॉफ्टवेयर, सेमीकंडक्टर, फाइवर औप्टिक केबल, फोटो-प्रतिलिपिक और कैपैसिटर।

टास्क GATT और W.T.O. में अंतर स्पष्ट करें।

जिस प्रकार पहली मंत्रीय मीटिंग ने निर्णय लिए, उसकी तीव्र आलोचना की गई, क्योंकि अधिकतर विकासशील देशों को निर्णयकारी प्रक्रिया से दूर रखा गया था। निर्णय प्रक्रिया दिखावट-मात्र थी। अधिकतर देशों को अनौपचारिक विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए भी नियंत्रित नहीं किया गया जैसाकि सूचना तकनीक समझौते के लिए किया गया था। यह समझौता, जो विकसित देशों के लिए अत्यधिक लाभकारी है, जबरदस्ती गठित किया गया है, जबकि उरुगवे दौर के समझौते के उन भागों पर, जो विकासशील देशों के लिए विशेषत: लाभप्रद थे, जैसे कपड़ा और कृषि के समझौते, जिन पर इस अधिवेशन में विचार-विमर्श ही नहीं हुआ।

आलोचक कहते हैं कि सिंगापुर अधिवेशन के निर्णयों ने स्पष्ट कर दिया कि WTO केवल एक "धनपतियों का क्लब" ही है, जहां दो वर्ष पुराना WTO विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों तथा न्यूनतम विकसित देशों पर प्रभुत्व का साधन-मात्र था, जैसा कि गैट था।

मंत्रीय मीटिंग के अतिरिक्त WTO का झगड़ा निपटान बोर्ड (DSB) अपना कार्य सुचारू रूप से कर रहा है। अभी तक इसके सम्मुख 100 झगड़े लाए गए हैं। इसका पहला निर्णय अमेरिका के पैट्रोल टैक्स विषयक था, जिसके फलस्वरूप वाशिंगटन ने अपने कानून को सुधारने का निश्चय किया। दिसम्बर 1996 में इसने अमेरिका के विरुद्ध भारत के पक्ष में भारत-निर्मित ऊनी वस्त्रों की अमेरिकी मार्केट में बिक्री के विषय में निर्णय दिया। नवम्बर 1996 में कोस्टारिका ने इसी प्रकार अमेरिका से सूती कमीज की बिक्री संबंधी मुकदमा जीता। अमेरिका ने, एक-पक्षीय दण्ड देने की बजाय, जापानी फिल्म मार्केट के विषय में जापान को DSB में घसीटा है। अमेरिका के विरुद्ध तीन निर्णयों ने WTO सदस्यों में, विशेषकर विकासशील देशों में, विश्वास जागृत किया है कि DSB ऐसे झगड़ों में उचित और न्यायसंगत निर्णय लेने में सक्षम है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. .... एक सुव्यवस्थित एवं स्थायी व्यापार की संस्था है।
2. .... एक ऐसा मंच था जिस पर सदस्य देश विश्व व्यापार समस्याओं पर विचार करने और उन्हें सुलझाने के लिए दशक में केवल एक बार मिलते थे।
3. .... सम्मेलन WTO की शीर्षस्थ अधिकारिणी समिति है।
4. WTO .... के शीर्ष पर डाइरेक्टर जनरल होता है।
5. वस्तुओं में व्यापार का सामान्य समझौता गैट .... को परिभाषित करता है।

नोट

6. .... समझौते के अन्तर्गत 7 प्रकार की बौद्धिक सम्पत्ति आती है।
7. .... अनुबंधित देशों द्वारा 8 लम्बे वर्षों की वार्ताओं का परिणाम था।
8. WTO का प्रथम द्विवार्षिक अधिवेशन .... के सन्टैक नगर में 9 से 13 दिसम्बर 1996 तक हुआ।

27.2 सारांश (Summary)

- (WTO) गैट का ही उत्तराधिकारी है। गैट एक मंच था जहां सदस्य देश समय-समय पर एकत्रित होते थे और विश्व व्यापार की समस्याओं पर वार्तालाप करते थे और उनको सुलझाते थे। परन्तु WTO एक सुव्यवस्थित और स्थायी विश्व व्यापार की संस्था है। इसकी एक कानूनी स्थिति है और यह विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समकक्ष ही स्थान रखता है।
- 1 जनवरी, 1995 को WTO के सदस्य 77 देश थे, जिनकी संख्या 2004 तक बढ़कर 148 हो गई। भारत संस्थापक देशों में से एक है।
- गैट केवल कुछ चयनात्मक (selective) बहुपक्षीय समझौतों के बारे में नियमों और प्रणालियों का समूह था। अलग-अलग विषयों पर अलग-अलग समझौते थे जो सदस्यों पर बाध्य नहीं थे। कोई भी सदस्य किसी भी समझौते में सम्मिलित होने से इन्कार कर सकता था। केवल वे ही सदस्य जिन्होंने किसी समझौते पर हस्ताक्षर किए हों, उसका पालन न करने पर दंडित हो सकते थे। परन्तु जो समझौते WTO का अंग बन चुके हैं वह स्थायी हैं और सभी सदस्यों पर बाध्य हैं।
- WTO की संरचना अथवा संगठन एक मंत्रीय सम्मेलन (Ministerial Conference) द्वारा संचालित होता है जिसमें सब सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो कम-से-कम दो वर्ष में एक बार मिलते हैं। यह ETO की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को चलाता है और तदनुरूप आवश्यक कदम उठाता है।
- WTO एकमत द्वारा निर्णय की पद्धति का अनुसरण करता है, जिसे गैट 1947 द्वारा निर्धारित किया गया है। जब एकमत द्वारा निर्णय सम्भव नहीं होता, तब विचाराधीन प्रश्न का हल "एक देश एक वोट" के आधार पर 2/3 बहुमत द्वारा किया जाता है।
- व्यापार और वित्तीय प्रयासों के क्षेत्र में इसके संबंध इस प्रकार चलाए जाएंगे जिससे रोजगार सुनिश्चित होना और विस्तृत वास्तविक आय और प्रभावी मांग में लगातार वृद्धि द्वारा रहन-सहन के स्तर में सुधार हो तथा वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और व्यापार का प्रसार हो।
- वस्तुओं में व्यापार का सामान्य समझौता गैट 1994 को परिभाषित करता है। इसमें वस्तुओं में व्यापार संबंधी विभिन्न पहलुओं के बारे में सब समझौते शामिल हैं।
- न्यूनतम मार्केट-प्रवेश वचनबद्धता उन्हीं देशों पर लागू है जो कृषि संबंधी आयात में भिन्न प्रकार की रुकावटों का प्रयोग करते हैं और तदनुसार ही इन रुकावटों को टैरिफ का रूप देने, तथा इन टैरिफों को 6 वर्ष के काल में 36% कम करने को बाध्य हैं। इन देशों के लिए यह भी आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के लिए विदेशी कृषि उत्पादों की खपत की न्यूनतम 3% मार्केट प्रवेश सुविधा विदेशी कृषि उत्पादों को दें जो 6 वर्ष के बाद बढ़कर 5% हो जाएगी।
- *दूरसंचार* के क्षेत्र में यह देशों को निर्देश देता है कि वे दूर-संचार वहन तंत्रों का स्थापन, निर्माण, अधिग्रहण, पट्टे पर देना, संचालन या पूर्ति सुनिश्चित करें और जनता को उपलब्ध कराएं। तथापि एक विकासशील देश अपने घरेलू दूरसंचार ढांचे और सेवाओं की और सेवा-सीमाओं की पुष्टता, तथा अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (International Tele-communication Union) और अंतर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन (International Organisation for Standardisation) के सहयोग से दूरसंचार सेवाओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सहयोग की वृद्धि के लिए उपाय करे।

नोट

- WTO के स्थापन समझौते के प्रावधानों के अन्तर्गत सदस्य देशों के अधिकार और कर्त्तव्य संबंधित अधिकारों के लिए विचार विमर्श और झगड़े के निपटान का प्रावधान झगड़ा निपटान निर्धारण नियमों और प्रणालियों के समझौते में किया गया है।
- उरुगवे दौर अनुबंधित देशों द्वारा 8 लम्बे वर्षों की वार्ताओं का परिणाम था। इन वार्ताओं के फलस्वरूप अंतिम एक्स के वैधानिक प्रलेखों में 28 समझौतों का समावेश है।
- कृषि समझौता विकासशील देशों के किसानों के लिए हानिप्रद होगा। यह खाद्य सुरक्षा की उन्नति और आत्मनिर्भरता के लिए दी हुई सब्सिडियों तथा कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि के लिए सब्सिडी में कोई भेद नहीं करता, क्योंकि यह विकासशील देशों के उत्पाद के मूल्य के 10% तक की ही सब्सिडी को स्वीकृत देता है।
- कमात्रात्मक रुकावटों (QRs) के विलीनीकरण और अधिमान संबंधी गैट नियम 1994 अस्पष्ट हैं। अपनी भुगतान-शेष संबंधी कठिनाइयों को दूर करने के लिए (QRs) का प्रयोग विकासशील देशों के लिए अप्रभावकारी बना दिया गया है क्योंकि इसे केवल न्यूनतम विकसित देशों तक सीमित कर दिया गया है।
- ट्रिप्स समझौता विशेषतः पक्षपातपूर्ण है। यह निम्न कारणों से विकसित देशों के हित में होगा और विकासशील देशों को अहितकर। यह औषधियों, कृषि पौध और पशु आदि सम्बंधी पेटेंट प्रणाली के अंतर्गत प्रभावी क्षेत्र का विस्तार करेगा।
- ट्रिप्स नियम स्व-विरोधाभासी भी हैं। वे किसी विशिष्ट प्रणाली का प्रावधान नहीं करते जिसके द्वारा सततीय (Sustainable) विकास और पर्यावरण रक्षण के ध्येयों को प्राप्त किया जा सके। बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों और पर्यावरण में संबंध का प्रश्न इसलिए उठाता है क्योंकि कुछ सुरक्षित प्रौद्योगिकियों का पर्यावरण पर भले या बुरे रूप में, सीधा प्रभाव पड़ता है।
- WTO का प्रथम द्विवार्षिक अधिवेशन सिंगापुर के सन्टैक नगर में 9 से 13 दिसम्बर, 1996 तक हुआ। सदस्य देशों ने एक सर्वसम्मत घोषणा की जिसमें बहुपक्षीय व्यापार-तंत्र द्वारा मुक्त विश्व व्यापार की उन्नति में अपने विश्वास का पुनः समर्थन किया।
- आलोचक कहते हैं कि सिंगापुर अधिवेशन के निर्णयों ने स्पष्ट कर दिया कि WTO केवल एक "धनपतियों का क्लब" ही है, जहां दो वर्ष पुराना WTO विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों तथा न्यूनतम विकसित देशों पर प्रभुत्व का साधन-मात्र था, जैसा कि गैट था।

27.3 शब्दकोश (Keywords)

- **नितान्त**—अत्यंत आवश्यक।
- **पुनरावलोकन**—पुनः परिक्षण करना।
- **अधिमान**—स्टॉक।

27.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विश्व व्यापार संगठन क्या है? इसके उद्देश्यों एवं कार्यों का वर्णन करें।
2. गैट किस प्रकार विश्व व्यापार संगठन से भिन्न है। इसका विस्तृत विवेचन करें।
3. गैट के उरुरवे दौर के परिणामों सहित WTO समझौते का वर्णन करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. WTO	2. गैट	3. मंत्रीय	4. सचिवालय
5. 1994	6. TRIPs	7. उरुरवे दौर	8. सिंगापुर।

27.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई–28: अंकटाड, आई.एम.एफ. विश्व बैंक तथा एशियाई विकास बैंक (UNCTAD, I.M.F. World Bank and Asian Development Bank)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
28.1 अंकटाड, आई.एम.एफ., विश्व बैंक तथा एशियाई विकास बैंक (UNCTAD, I.M.F., World Bank and Asian Development Bank)
28.2 सारांश (Summary)
28.3 शब्दकोश (Keywords)
28.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
28.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अंकटाड आई.एम.एफ., विश्व बैंक तथा एशियाई विकास बैंक की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

गैट से विकसित देश अधिक लाभान्वित हुए तथा अर्द्ध-विकसित देशों को उससे निराशा हुई अत: यह अनुभव किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और सहयोग के लिए ऐसी किसी संस्था की स्थापना की जानी चाहिए जो अर्द्ध-विकसित देशों से व्यापार घाटे को दूर कर सके। इसी के फलस्वरूप अंकटाड का जन्म हुआ। अंकटाड विश्व व्यापार के विस्तार और विशेष रूप से अर्द्ध-विकसित देशों में जीवन-स्तर में वृद्धि करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 1961 की दशाब्दी को 'संयुक्त राष्ट्र विकास दशाब्दी' की संज्ञा दी तथा महासचिव से ऐसी सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए कहा गया जिससे व्यापार और विकास से सम्बन्धित समस्याओं पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जा सके। जुलाई 1962 में काहिरा (Cairo) में जो व्यापार मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ, उसमें भी व्यापार और विकास पर विश्व सम्मेलन आयोजित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस समर्थन के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् ने मार्च-जून 1964 में संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया और इस प्रथम सम्मेलन के साथ ही अंकटाड का जन्म हुआ। **अंकटाड को स्थापित करने का श्रेय डॉ. राउल प्रेबिश को है।** प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत स्वर्णमान टूटने के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं भुगतान के क्षेत्रमें काफी कठिनाइयाँ होने लगीं। फलस्वरूप, 27 दिसंबर 1945 को वाशिंगटन में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना हुई।

अल्पविकसित देशों को विकास करने हेतु विश्व बैंक का निर्माण हुआ। जून 1946 से कार्य करना आरंभ कर दिया। 26 नवंबर, 1966 की एशियाई विकास बैंक की स्थापना की गई।

नोट

28.1 अंकटाड, आई.एम.एफ., विश्व बैंक तथा एशियाई विकास बैंक (UNCTAD, I.M.F., World Bank and Asian Development Bank)

अंकटाड संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा का एक स्थायी अंग है, किन्तु उसकी स्वयं की सहायक संस्थाएँ हैं तथा स्वतन्त्र सचिवालय है। इसकी एक स्थायी कार्यकारिणी है जिसे व्यापार एवं विकास मण्डल (Trade and Development Board) कहते हैं। अंकटाड सम्मेलनों की अवधि के बीच में मण्डल कार्यशील रहता है तथा इसकी साल में दो बैठकें होती हैं। इसके 55 सदस्य होते हैं जिनका चुनाव सम्मेलन में समान भौगोलिक वितरण के आधार पर किया जाता है। इस मण्डल की चार सहायक संस्थाएँ हैं जो इस प्रकार हैं—

(*i*) वस्तुओं की कमेटी, (*ii*) निर्माण उद्योगों की कमेटी, (*iii*) नौ-परिवहन कमेटी, एवं (*iv*) अदृश्य वस्तुओं एवं व्यापार से सम्बन्धित वित्तीय व्यवस्था की कमेटी।

अंकटाड का मुख्यालय जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में स्थित है। चार वर्ष के अन्तराल पर सामान्यत: अंकटाड की बैठक आयोजित होती है। अंकटाड की सभी सभाओं में IMF को स्थायी प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसी कारण UNCTAD द्वारा पारित प्रस्तावों को IMF अपनी नीति निर्माण में स्थान देता है।

अंकटाड के सुझाव रचनात्मक मात्र होते हैं जिन्हें अपनाने के लिए किसी भी राष्ट्र को बाध्य नहीं किया जा सकता।

अंकटाड के प्रमुख उद्देश्य एवं कार्य (Main Objectives and Functions of UNCTAD)

अंकटाड की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है कि अर्द्ध-विकसित देशों के व्यापार सम्बन्धी मामलों में उनकी सहायता कर, इन देशों में आर्थिक विकास को गतिशील बनाया जा सके। अंकटाड के मुख्य कार्य निम्न प्रकार हैं—

(1) पूरे विश्व में विकसित एवं अर्द्ध-विकसित देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना और आर्थिक विकास को गतिशील बनाना।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उससे सम्बन्धित मामलों तथा आर्थिक विकास से सम्बन्धित समस्याओं के लिए सिद्धान्त एवं नीतियों का निर्धारण करना।

(3) उपर्युक्त सिद्धान्त एवं नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए प्रस्ताव तैयार करना।

(4) संयुक्त राष्ट्र संघ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित जो अन्य संस्थाएँ हैं, उनका अंकटाड से समन्वय स्थापित करना एवं उनकी प्रगति की समीक्षा करना।

(5) विश्व के देशों के बीच सुखद व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु एक केन्द्र के रूप में कार्य करना।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष की स्थापना (Establishment of I.M.F.)

प्रथम विश्व युद्ध के बाद, स्वर्णमान टूटने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं भुगतान के क्षेत्र में काफी कठिनाइयाँ होने लगीं। द्वितीय विश्व युद्ध ने भी विदेशी विनिमय और व्यापार के क्षेत्र में अव्यवस्था की स्थिति पैदा कर दी। संसार के देशों के सामने गम्भीर प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन की समस्या विद्यमान थी। अत: सब देशों ने यह अनुभव किया कि इस समस्या के दीर्घकालीन एवं स्थायी हल के लिए पारस्परिक समझौतों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की स्थापना की जाय। फलस्वरूप 1944 में अमेरिका के **ब्रेटनवुड्स** नामक स्थान में एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें 44 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद एक ऐसे माध्यम की खोज की जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और भुगतान में सरलता हो सके। इस प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 को **वाशिंगटन** में हुई, किन्तु वास्तविक रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने अपना कार्य 1 मार्च, 1947 से आरम्भ किया।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के उद्देश्य (Aims of International Monetary Fund)

मुद्रा-कोष के समझौता-पत्र के अनुसार इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

नोट

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की स्थापना** (Creation of International Monetary Co-operation)—मुद्रा-कोष का प्रथम उद्देश्य सदस्य देशों में मुद्रा नीति सम्बन्धी सहयोग स्थापित करना है। इसके लिए कोष द्वारा विशेषज्ञों का एक दल रखा जाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं के समाधान के लिए समय-समय पर सुझाव देता है।

(2) **सन्तुलित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा** (Promotion of Balanced Growth of International Trade)—द्वितीय युद्धकाल में सब देशों द्वारा आयात-निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए थे। अनेक आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा में बहुत कमी हो गई। कोष के अनुसार **मुद्रा-कोष का कोई भी सदस्य कोष की अनुमति लिए बिना अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन अथवा भुगतानों पर कोई बन्धन नहीं लगा सकता।** इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सन्तुलित विकास करना है।

(3) **विनिमय स्थायित्व** (Exchange Stability)—मुद्रा-कोष का तीसरा उद्देश्य **विनिमय दरों में स्थायित्व लाना है।** सदस्य बनने के समय ही प्रत्येक देश की विनिमय दर SDR में निर्धारित कर दी जाती है। (15 अगस्त, 1971 से पूर्व प्रत्येक सदस्य देश की मुद्रा की विनिमय-दर स्वर्ण और डालर में निर्धारित की जाती थी) और प्रत्येक सदस्य उस दर को बनाए रखने की चेष्टा करता है। यदि किसी देश की विनिमय-दर गिरने की आशंका उत्पन्न हो जाती है तो मुद्रा-कोष न केवल उसे उचित सलाह द्वारा स्थिति को संभालने में मदद करता है बल्कि उसे आवश्यक मुद्रा उधार भी देता है।

(4) **बहुमुखी भुगतान** (Multilateral Payments)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लेन-देन में सबसे बड़ी बाधा यह है कि विभिन्न देशों की मुद्राएँ आपस में परिवर्तनशील नहीं हैं। मुद्रा-कोष की स्थापना के लगभग 60 वर्ष पश्चात् भी अनेक देशों ने विदेशी विनिमय के लेन-देन पर नियन्त्रण लगा रखे हैं। इसका कारण यह है कि बहुत-से देशों में आधारभूत (Fundamental) आर्थिक कठिनाइयाँ हैं।

दूसरी ओर, कुछ देश ऐसे हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है और उनकी आर्थिक व्यवस्था में कोई आधारभूत कमी नहीं है। स्वभावतः ऐसे देशों द्वारा विदेशी विनिमय के लेन-देन पर नियन्त्रण रखना अनुचित है।

मुद्रा-कोष ने उपर्युक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही अपना चतुर्थ उद्देश्य यह रखा है कि वह **विनिमय नियन्त्रणों को धीरे-धीरे हटवाकर ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करेगा जिसमें प्रत्येक देश अल्पकाल एक-दूसरे की मुद्रा में भुगतान स्वीकार करने को तैयार हो जाएँ।** इस प्रकार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य **बहुपक्षीय भुगतानों** (Multilateral Payments) की व्यवस्था स्थापित करके विनिमय प्रतिबन्धों को समाप्त करना अथवा कम करना है।

(5) **आर्थिक सहायता** (Financial Assistance)—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए आर्थिक सहयोग प्रदान करता है। यह सहयोग अल्पकालीन ऋण देकर (जो किसी भी मुद्रा में प्राप्त किए जा सकते हैं) किया जाता है जिससे सम्बन्धित देशों को न केवल आर्थिक सहायता ही मिलती है बल्कि **आर्थिक व्यवस्था ठीक करने के लिए परामर्श एवं तकनीकी सहायता भी मिलती है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना है।**

(6) **असन्तुलन की अवधि तथा मात्रा** (Duration and Degree of Disequilibrium)—कुछ देशों की आधारभूत अर्थव्यवस्था तो दृढ़ होती है, परन्तु विशेष कारणों से उनका भुगतान सन्तुलन बिगड़ जाता है। यह सन्तुलन न तो तत्काल ठीक करना उचित ही है न सम्भव ही। अतः मुद्रा-कोष समुचित सहायता द्वारा इसे शीघ्रातिशीघ्र ठीक करने का प्रयत्न करना है। उसके प्रयत्नों से सन्तुलन की अवधि और मात्रा में कमी हो जाती है जिससे उस देश की आर्थिक स्थिति पर बहुत भार नहीं पड़ने पाता। इस प्रकार **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उद्देश्य सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन की अवधि एवं सम्बद्ध घाटे के परिणाम को न्यूनतम करने का प्रयास करना है।**

नोट

मुद्रा-कोष की सदस्यता (Membership of the I.M.F.)

मुद्रा–कोष की सदस्यता कोई भी देश प्राप्त कर सकता है, परन्तु सदस्य देश को इसके समझौता–पत्र की सब धाराओं का पालन करने का वचन देना पड़ता है। जो देश कोष का सदस्य न रहना चाहे वह सूचना मात्र से ऐसा कर सकता है। यदि कोई सदस्य मुद्रा–कोष के समझौता–पत्र की किसी धारा की अवहेलना करता है तो उसे सदस्यता से पृथक् किया जा सकता है। 1 मार्च, 1947 को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के केवल 40 सदस्य थे जिनकी संख्या वर्तमान में बढ़कर 184 हो गई है।

मुद्रा-कोष का ढाँचा एवं प्रबन्ध व्यवस्था (Structure and Management of I.M.F.)

कोष के समझौता–पत्र की धारा XII में कोष के ढाँचे का उल्लेख है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कोष में प्रशासक मण्डल (Board of Governors), एक कार्यकारी मण्डल, एक प्रबन्ध संचालक तथा स्टाफ होगा। इसका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. **प्रशासक मण्डल** (Board of Governors)–यह कोष की सर्वोच्च अधिकार प्राप्त इकाई है। इसमें कोष के सदस्य देशों में से प्रत्येक सदस्य देश का एक प्रशासक (गवर्नर) तथा एक वैकल्पिक प्रशासक होता है। प्रशासक मण्डल का मुख्य कार्य कोष की नीतियाँ निर्धारित करना, सदस्य देशों के अभ्यंश में संशोधन करना, नए सदस्य देशों को प्रवेश देना, सदस्य देशों की मुद्रा की समता दरें निर्धारित करना, इत्यादि है। प्रशासक मण्डल की वर्ष में एक बार बैठक होती है। इस मण्डल ने अपनी बहुत–सी शक्तियाँ कार्यकारी निदेशक मण्डल (Board of Execute Directors) को सौंप दी हैं।
2. **कार्यकारी अथवा अधिशासी निदेशक मण्डल** (Board of Executive Directors)–यह निर्णय लेने वाली एक स्थाई संस्था है तथा कोष के सभी कार्य इसके द्वारा संपादित किए जाते हैं। निदेशक मण्डल प्रशासनिक एवं नीति सम्बन्धी मामलों में निर्णय लेता है, कोष की वार्षिक रिपोर्ट जारी करता है, सदस्य देशों के साथ महत्वपूर्ण मुद्दों पर वार्ता करता है तथा सदस्य देशों की अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय क्षेत्र में विस्तृत रिपोर्टों का प्रकाशन करता है। वर्तमान में इसमें 22 कार्यकारी निदेशक हैं जिसमें से 6 की नियुक्ति की जाती है (5 निदेशक सबसे अधिक कोटा वाले देशों–अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस एवं जापान द्वारा नियुक्त किए जाते हैं) तथा 1 की नियुक्ति सऊदी अरब देश द्वारा (सबसे अधिक साख वाले दो देशों में से एक होने के कारण) की जाती है। शेष 16 कार्यकारी निदेशक, अन्य देशों द्वारा चुने जाते हैं तथा इनकी अवधि दो वर्ष की होती है। निदेशक मण्डल एक प्रबन्ध निदेशक का चुनाव करता है जो निदेशक मण्डल का अध्यक्ष होता है। इसके साथ ही वह कोष–कार्यालय का प्रमुख भी होता है तथा निदेशक मण्डल के निर्देशानुसार कोष का सामान्य कार्य संपादित करता है। एक सहायक प्रबन्ध निदेशक की भी नियुक्ति की जाती है। वर्तमान में निदेशक मण्डल के अध्यक्ष **माइकेल केमडेसस्** (Michel Camdesus) हैं। यह निदेशक मण्डल सप्ताह में कई दिन बैठकें करता है तथा कोष प्रबन्ध एवं स्टाफ द्वारा तैयार किए गए प्रस्तावों पर पूर्ण विचार–विमर्श कर निर्णय लेता है।
3. **अंतरिम समिति** (Interim Committee)–यह एक सलाहकारी संस्था है जिसमें प्रशासक मण्डल के 22 सदस्य होते हैं। ये गवर्नर/मंत्री या समकक्ष श्रेणी के हो सकते हैं तथा उन्हीं क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो निदेशक मण्डल के होते हैं। इसकी वर्ष में दो बैठकें होती हैं। अंतरिम समिति, प्रशासक मण्डल को अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली, सदस्य देशों के अभ्यंश, समझौता–धारा में संशोधन, इत्यादि मामलों में सलाह देती है। अंतरिम समिति निदेशक मण्डल को भी इन मुद्दों पर सलाह देती है।
4. **विकास समिति** (Development Committee)–यह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष एवं विश्व बैंक की संयुक्त समिति है जो विकासशील देशों को वास्तविक संसाधनों के हस्तान्तरण पर विचार करती है। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं जो कोष एवं बैंक के प्रशासक होते हैं तथा इसकी बैठक अंतरिम समिति के साथ ही साथ होती है तथा यह समिति कोष एवं बैंक को, विकासशील देशों को दी जाने वाली सहायता के मुद्दे पर सलाह देती है।

नोट

मुद्रा-कोष के कार्य (Functions of I.M.F.)

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुद्रा-कोष निम्नांकित कार्य सम्पादित करता है–

(1) आर्थिक सहायता प्रदान करना (Giving of Economic Aid)

मुद्रा-कोष का मुख्य उद्देश्य समस्त देशों के भुगतान असन्तुलन को सन्तुलित करने में सहायता करना है। जब किसी देश का व्यापार अथवा भुगतान सन्तुलन विपक्ष में होता है तो मुद्रा-कोष द्वारा कुछ समय के लिए आवश्यक मुद्रा की व्यवस्था कर दी जाती है।

मुद्रा-कोष की तुलना दमकल से (I.M.F. like a Fire Brigade)–मुद्रा-कोष केवल अस्थाई असन्तुलन को ठीक करने के लिए रकम देता है, अत: सहायता की अवधि अधिक से अधिक 3 से 5 वर्ष तक होती है। मुद्रा-कोष के भूतपूर्व प्रबन्ध निदेशक **पेर जेकोबसन** के शब्दों में, **"मुद्रा-कोष आग बुझाने वाले इंजन की तरह है जिसका प्रयोग केवल संकट-काल में किया जाना चाहिए।"** वास्तव में जब किसी देश के विनिमय-कोष समाप्त हो जाएँ या किसी अस्थाई कठिनाई के कारण वह विदेशी भुगतान करने में असमर्थ हो तब उसे मुद्रा-कोष से सहायता माँगनी चाहिए, क्योंकि **मुद्रा-कोष एक गतिशील कोष है** (The I.M.F. is a revolving fund) और इसकी पूँजी एक जगह अटका कर नहीं रखी जा सकती। मुद्रा-कोष की सहायता वास्तव में अवसर प्रदान करने के लिए है जिसके सहारे से देशों को अपनी व्यापारिक स्थिति सुधारने का समय मिल जाता है।

मुद्रा-कोष निम्न रूपों में आर्थिक सहायता देता है–

(*i*) **संकटकालीन सहायता** (Emergency Help)–जिस देश में राजनीतिक अथवा आर्थिक संकट के कारण स्थिति बिगड़ जाती है उसे सुधारने के लिए मुद्रा-कोष अल्पकालीन सहायता दे देता है। उदाहरण के लिए, भारत को 1983 में 5.6 अरब SDR की संकटकालीन सहायता दी गई।

(*ii*) **सामयिक विनिमय कठिनाई** (Seasonal Exchange Difficulty)–जिन देशों की अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार पर ही निर्भर है और उनके निर्यात, वर्ष के कुछ महीनों में ही होते हैं, उन्हें भी मुद्रा-कोष आर्थिक सहायता देता है।

(*iii*) **चालू भुगतान का सन्तुलन** (Balancing Payment on Current Account)–कुछ देशों में आर्थिक नियोजन के कारण भुगतान में प्रतिकूलता रहती है, उसे ठीक करने के लिए भी मुद्रा-कोष से सहायता मिल जाती है।

(*iv*) **स्थायित्व ऋण** (Stabilisation Loans)–जो देश आर्थिक स्थिति की दुर्बलता के कारण अपनी विनिमय दर स्थिर रखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं उन देशों को भी मुद्रा-कोष आर्थिक एवं तकनीकी सहायता देता है।

सहायता शुल्क (Charges)–अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष जिस देश को ऋण देता है उस देश की मुद्रा के भण्डार मुद्रा-कोष के पास बढ़ जाते हैं। उदाहरणत:, भारत यदि मुद्रा-कोष से 1 करोड़ रुपए के मूल्य के डालर उधार लेता है, तो मुद्रा-कोष के पास डालर भण्डार कम हो जाएँगे और रुपए के भण्डार बढ़ जाएँगे। इससे स्पष्ट है कि मुद्रा-कोष के पास (उसके खाते में) **जिस देश की मुद्रा उसके अभ्यंश से अधिक हो जाती है, वह देश मुद्रा-कोष का ऋणी हो जाता है।** कोष उस देश के अभ्यंश से अधिक मुद्रा की मात्रा पर शुल्क लेता है। मुद्रा-कोष 3 मास तक की सहायता पर कोई शुल्क नहीं लेता, परन्तु उससे अधिक अवधि पर एक वर्ष तक के लिए 0.5 प्रतिशत शुल्क वसूल करता है।

(2) ऋण तथा ऋण वचन (Loans and Stand-by Agreement)

ऋण तथा ऋण वचन की क्रियाएँ अल्पकालीन अन्तर्राष्ट्रीय साख के अन्तर्गत आती हैं। सदस्य देशों की भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता ठीक करने के लिए मुद्रा कोष दो प्रकार से अल्पकालीन अन्तर्राष्ट्रीय साख की व्यवस्था करता है। मुद्रा-कोष एक तो अपने सदस्यों को प्रत्यक्ष रूप में विदेशी मुद्रा बेचता है, दूसरे उनको आवश्यकता पड़ने पर विदेशी मुद्रा बेचने का वचन देता है। मुद्रा बेचने के वचन की अवधि प्राय: एक वर्ष की होती है, परन्तु उसमें पारस्परिक समझौते द्वारा वृद्धि की जा सकती है। यह सहायता सम्बन्धित देश के केन्द्रीय बैंक के माध्यम से दी जाती है। इस व्यवस्था के

नोट

अन्तर्गत सदस्य देश को वह अधिकार देता है कि वह निश्चित अवधि के भीतर आवश्यकता बतलाकर कोष से विदेशी विनिमय प्राप्त कर सकता है।

(3) प्राविधिक सहायता (Technical Assistance)

कोष द्वारा वाशिंगटन स्थित प्रधान कार्यालय तथा अन्य देशों में अपने प्रतिनिधि भेजकर आर्थिक नीतियों के सम्बन्ध में सहायता देने की व्यवस्था की जाती है। यह सहायता सामान्य भुगतान सन्तुलन की समस्या से लेकर आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्र की किसी भी विशेष समस्या के बारे में हो सकती है। कोष के विशेषज्ञों द्वारा कई देशों को मुद्रा, कर, विनिमय तथा विकास नीतियों के सम्बन्ध में सहायता दी गई है। कुछ देशों के केन्द्रीय बैंकों की स्थापना तथा उनके विभिन्न विभागों की व्यवस्था मुद्रा-कोष के सहयोग से की जा सकी है। इन कार्यों के लिए मुद्रा-कोष के विशेषज्ञों को एक सप्ताह से लेकर एक वर्ष तक सम्बन्धित देशों में रहना पड़ा है। अफ्रीका के कुछ ऐसे देशों में भी, जो मुद्रा-कोष के सदस्य नहीं हैं, केन्द्रीय बैंकों को मुद्रा तथा बैंक नीति निर्माण करने में सहयोग दिया गया है।

(4) प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training Programmes)

सन् 1951 से मुद्रा-कोष सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था कर रहा है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में **अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान, आर्थिक विकास और वित्तीय व्यवस्था** तथा **अंक-संकलन** और **विश्लेषण** से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण अवधि प्राय: 6 से 12 मास तक होती है। प्रशिक्षण प्राय: केन्द्रीय बैंकों तथा सरकार के वित्त विभाग के उच्च पदाधिकारियों के लिए होते हैं और उनमें मौखिक भाषणों तथा वाद-विवादों के अतिरिक्त समुचित मात्रा में व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

कोष प्रशिक्षणालय (I.M.F. Training Institute)—कोष की प्रशिक्षण क्रियाओं का विस्तार एवं विकास करने के लिए मई 1963 में एक प्रशिक्षणालय स्थापित किया गया। यह विभिन्न भाषाओं में वित्तीय नीति विश्लेषण सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है।

(5) पर्यावरण के प्रति जागरूकता (The Fund and the Environment)

यह मुद्रा-कोष का नवीनतम कार्य है कि उसने आर्थिक नीतियों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव पर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। इसे दृष्टि में रखकर कोष ने 1991 में महत्वपूर्ण निर्देश जारी किए एवं ऐसे कार्यों के लिए ऋण देने से इन्कार किया जाने लगा जिनका पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में कोष ने अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से भी सम्पर्क स्थापित किया है जो पर्यावरण के क्षेत्र में शोध कर रही हैं।

(6) विश्व बैंक से सहयोग स्थापित करना (Fund-Bank Collaboration)

मुद्रा-कोष एवं विश्व बैंक दोनों ही आर्थिक विकास एवं स्थिरता (stability) बढ़ाने हेतु प्रयास करते हैं। यद्यपि दोनों के चार्टर के अनुसार उनकी स्थिति भिन्न है, किन्तु दोनों एक-दूसरे के सहयोग से कार्य करते हैं। मुद्रा-कोष ऐसे कार्यों के दुहराव से बचने का प्रयास करता है जो विश्व बैंक द्वारा किए जाते हैं। इस सम्बन्ध में दोनों संस्थाओं ने 1986 से निदेशक सिद्धान्त बनाए हैं जिसकी समय-समय पर समीक्षा की जाती है।

मुद्रा-कोष अन्य सभी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सहयोग रखता है और इसके प्रतिनिधि उनकी वार्षिक सभाओं में भाग लेते रहते हैं जिससे कोष संसार में होने वाले सब आर्थिक परिवर्तनों के सम्पर्क में रहता है।

(7) विदेशी विनिमय नियन्त्रण सम्बन्धी सलाह (Advice on Exchange Controls)

मुद्रा-कोष अधिकारियों द्वारा विकासशील देशों को विदेशी विनिमय सम्बन्धी उचित सलाह देने की व्यवस्था है। विदेशी विनिमय सम्बन्धी सलाह देते समय प्राय: मुद्रा तथा वित्त नीतियों सम्बन्धी विचार-विमर्श होता है और उनमें सुधार करने का अवसर मिलता है।

(8) संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Structural Adjustment Facility)

अल्प आय वाले सदस्य देशों को रियायती दर पर अतिरिक्त भुगतान सन्तुलन सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से मुद्रा-कोष ने मार्च 1986 में संरचनात्मक समायोजन सुविधा स्थापित की। दिसम्बर 1987 में इस सुविधा का विस्तार किया गया और गरीब देशों को 6 बिलियन SDR के तुल्य रियायती सहायता प्रदान करने का प्रावधान रखा गया। इस सहायता का

नोट

उद्देश्य इन देशों की भुगतान सन्तुलन की स्थिति में सुधार कर उनमें विकास की गति तेज करना है। भारत सहित 62 देश वर्तमान में यह सहायता पाने के पात्र हैं।

(9) मुद्रा-कोष की रिपोर्ट का प्रकाशन (The Publications of I.M.F. Report)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष द्वारा अपनी वार्षिक रिपोर्ट, विदेशी विनिमय नियन्त्रण सम्बन्धी वार्षिक रिपोर्ट, भुगतान सन्तुलन (वार्षिक), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त सम्पर्क (मासिक), व्यापार की दिशा (मासिक), वित्त एवं विकास (त्रैमासिक) तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय समाचार सर्वेक्षण (साप्ताहिक) प्रकाशित किए जाते हैं जिनमें विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा शोधकर्ताओं एवं सरकारी कार्यालयों के लिए अत्यन्त मूल्यवान सामग्री मिलती है। मुद्रा-कोष के स्टाफ पेपर्स में अत्यन्त उच्चस्तरीय लेख प्रकाशित होते हैं।

विश्व बैंक की स्थापना (Stablishment of World Bank)

1944 में आयोजित **ब्रेटनवुड्स अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सम्मेलन** में जिन दो संस्थाओं की स्थापना का निश्चय किया गया था उनमें **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** (IMF) तो सदस्य देशों के अस्थाई भुगतान असन्तुलन को ठीक करने के लिए बनाया गया था, परन्तु युद्धजनित अव्यवस्था को दूर करने तथा अविकसित और अल्प-विकसित देशों को विकास करने हेतु दीर्घकालीन पूँजी की पूर्ति के लिए **अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक** (IBRD) **अथवा विश्व बैंक** की स्थापना की गई। विश्व बैंक ने जून 1946 से कार्य करना आरंभ कर दिया था।

विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक-दूसरे की पूरक संस्थाएँ हैं।

विश्व बैंक समूह (World Bank Group)

विश्व बैंक समूह में विश्व बैंक तथा उसकी सहयोगी संस्था **अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ** (IDA) के साथ ही दो संस्थाओं का समावेश होता है **: अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम** (IFC) एवं **बहुपक्षीय विनियोग गारण्टी अभिकरण** (Multilateral Investment Guarantee Agency-MIGA)|

इस प्रकार **'विश्व बैंक समूह'** (World Band Group) में निम्नलिखित संस्थाओं का समावेश है **:**

(*i*) अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (स्थापना वर्ष 1945)

(*ii*) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (स्थापना वर्ष 1956)

(*iii*) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (स्थापना वर्ष 1960)

(*iv*) बहुपक्षीय विनियोग गारण्टी अभिकरण—MIGA (स्थापना वर्ष 1988)

टास्क विश्व बैंक समूह से आप क्या समझते हैं?

विश्व बैंक के उद्देश्य (Aims of World Bank)

विश्व बैंक की **स्थापना** 1945 **में,** विश्व के विकासशील देशों में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने के उद्देश्य से की गई थी। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार है **:**

(1) पुनर्निर्माण और विकास (Reconstruction and Development)—विश्व बैंक का प्रथम उद्देश्य युद्ध-पीड़ित देशों के पुनर्निर्माण (Reconstruction) तथा पिछड़े हुए देशों के आर्थिक विकास में सहायता देना था। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसने सदस्य देशों को उत्पादक कार्यों के लिए पूँजी लगाने में प्रोत्साहन दिया।

(2) पूँजी विनियोग (Capital Investment)—उत्पादन तथा विकास के लिए जिन क्षेत्रों में पूँजी की आवश्यकता होती है विश्व बैंक उनमें निजी उद्योगपतियों (private enterprise) को पूँजी लगाने की सलाह देता है और आवश्यकता होने पर स्वयं भी उनके साझे में पूँजी विनियोग करता है। यदि किसी क्षेत्र में पूँजी उचित शर्तों पर उपलब्ध न हो तो विश्व बैंक स्वयं उस क्षेत्र में पूँजी लगाता है ताकि धन की कमी के कारण आवश्यक विकास कार्यों में बाधा उत्पन्न न हो।

(3) भुगतान सन्तुलन (Balance of Payments)–अन्तर्राष्ट्रीय बैंक विकसित देशों को अल्प-विकसित देशों में पूँजी लगाने के लिए प्रोत्साहित करता है ताकि उन देशों में उत्पादन में वृद्धि हो, श्रमिकों का रहन-सहन और जीवन स्तर सुधर सके तथा सम्बन्धित देशों का भुगतान सन्तुलन भी व्यवस्थित होता रहे। इन सब कार्यों का उद्देश्य दीर्घकाल में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को साम्य एवं सन्तुलित अवस्था में रखना है।

(4) पूँजी की व्यवस्था (Arrangement of Capital)–अन्तर्राष्ट्रीय बैंक सदस्य देशों में स्वयं पूँजी लगाता है तथा दूसरे देशों के पूँजीपतियों से पूँजी लगवाता है। इन दोनों वर्गों की पूँजी का इस ढंग से सामंजस्य (Co-ordination) होना आवश्यक है कि आवश्यक क्षेत्रों में पूँजी पहले नियोजित की जाये और विदेशों से प्राप्त मशीनें अथवा अन्य प्राविधिक सामान का श्रेष्ठतम प्रयोग हो सके, विश्व बैंक विकास कार्य में पूँजी की प्राथमिकता के सम्बन्ध में मार्गदर्शक का कार्य करता है।

(5) शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था (Peace-time Change-over)–विश्व बैंक का यह दायित्व है कि वह सदस्य देशों में लेन-देन अथवा ऋण सम्बन्धी जो भी कार्य करे उससे किसी देश की व्यापारिक व्यवस्था को हानि पहुँचने की आशंका नहीं होनी चाहिए। युद्ध-पीड़ित देशों की अर्थव्यवस्था को शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने में विश्व बैंक को अत्यन्त गम्भीर एवं महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि **विश्व बैंक का मुख्य उद्देश्य वे सब कार्य करना है जो सदस्य देशों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।**

विश्व बैंक का संगठन एवं प्रबन्ध (Organisation and Mangement of The World Bank)

विश्व बैंक की सदस्यता– संसार का कोई भी देश विश्व बैंक का सदस्य हो सकता है, किन्तु विश्व बैंक की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पहले अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) का सदस्य बनना अनिवार्य है। मुद्रा-कोष की सदस्यता छोड़ते ही उस देश की विश्व बैंक की सदस्यता अपने आप समाप्त हो जाती है। यदि बैंक की कुल मत शक्ति के 75 प्रतिशत मत से उस देश को सदस्य बनाए रखने का प्रस्ताव पास कर दिया जाये तो वह देश मुद्रा-कोष का सदस्य न रहते हुए भी विश्व बैंक का सदस्य बना रह सकता है। जब कोई देश विश्व बैंक की सदस्यता त्याग देता है तो वहाँ की सरकार तब तक बैंक की किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होती है जब तक कि उस देश में दिया गया ऋण चुकता नहीं हो जाता। वर्तमान में विश्व बैंक के सदस्यों की संख्या 184 है।

विश्व बैंक की पूँजी– स्थापना के समय विश्व बैंक की अधिकृत पूंजी 10 अरब डालर रखी गई थी जो 1 लाख डालर के 1 लाख अंशों में विभाजित थी। बैंक की पूँजी में तीन-चौथाई बहुमत से वृद्धि की जा सकती है। अप्रैल 1988 में बैंक प्रशासन मण्डल ने बैंक की अधिकृत पूँजी में 6.2 लाख शेयरों की वृद्धि की जिससे अधिकृत पूँजी 30 जून, 1988 को बढ़कर 91,436 मि. डालर हो गई। 30 जून, 1989 को यह अधिकृत पूँजी बढ़कर 1,15,668 मिलियन डालर (115.7 बिलियन अमरीकन डालर) तथा जून 1992 में बैंक की अधिकृत पूँजी बढ़कर 152.24 बिलियन अमरीकन डालर हो गई। 30 जून, 1996 को विश्व बैंक की अधिकृत पूँजी 188 बिलियन अमरीकी डालर थी जिसमें से 180.6 बिलियन डालर की पूँजी (अधिकृत पूँजी का 96%) सदस्य देशों को अंशों के रूप में जारी की गई।

विश्व बैंक समझौता-पत्र के अनुसार सदस्य देशों द्वारा खरीदे जाने वाले अंशों की संख्या प्रत्येक सदस्य की सहमति से निश्चित की जाती है। विश्व बैंक के अंशों की राशि का भुगतान सदस्य राष्ट्रों द्वारा निम्नांकित प्रकार किया जाता है–

(1) अंशदान का 2% भुगतान स्वर्ण, अमरीकी डालर था या SDR में करने की अनिवार्यता,

(2) प्रत्येक सदस्य देश अपनी अंश पूँजी का 18% भुगतान अपने देश की ही मुद्रा में करने के लिए स्वतन्त्र,

(3) शेष 80% भुगतान विश्व बैंक द्वारा माँगे जाने पर ही सदस्य देश द्वारा बैंक में जमा करने की बाध्यता।

विश्व बैंक का संगठन– विश्व बैंक का प्रबन्ध करने के लिए प्रशासक मण्डल, प्रशासकीय संचालक मण्डल, एक अध्यक्ष तथा अन्य अधिकारी होते हैं।

(1) प्रशासक मण्डल (Board of Governors)–बैंक के प्रशासक मण्डल में प्रत्येक सदस्य देश द्वारा एक गवर्नर तथा एक स्थानापन्न गवर्नर नियुक्त किया जाता है। **इनकी अवधि 5 वर्ष होती है, किन्तु इसके पूर्व भी इन्हें बदला**

नोट

जा सकता है। गवर्नर मण्डल की प्रतिवर्ष एक साधारण सभा होती है जो मुद्रा-कोष की सभा के साथ ही होती है। स्थानापन्न **गवर्नर** (Alternate governor) बैंक की सभाओं में भाग ले सकता है, परन्तु केवल गवर्नर की अनुपस्थिति में ही मत देने का अधिकारी होता है। प्रशासक मण्डल अपने सदस्यों में से एक को अध्यक्ष चुन लेता है जो वार्षिक सभा में अध्यक्षता करता है।

(2) प्रशासकीय संचालक मण्डल (Board of Executive Directors)—विश्व बैंक के दैनिक कार्यों का संचालन करने के लिए एक कार्यकारी संचालक मण्डल होता है जिसमें 22 सदस्य होते हैं। इनमें 5 सदस्य सबसे बड़े अभ्यंश वाले देशों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। शेष 17 संचालक अन्य सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्येक संचालक का कार्यकाल 2 वर्ष का होता है। संचालक मण्डल द्वारा एक अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है जो संचालक मण्डल के निर्देशन में कार्य करता है, प्रशासकीय संचालक मण्डल का अध्यक्ष ही विश्व बैंक का अध्यक्ष (President) होता है। यह अध्यक्ष बैंक के कार्यकारी स्टाफ (Operating Staff) का प्रमुख होता है तथा संचालक मण्डल के निर्देशन में बैंक के सामान्य कार्यों का संपादन करता है।

वर्तमान में सबसे बड़े अभ्यंश वाले 5 देश अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन हैं। शेष देश 17 निर्वाचन क्षेत्रों में बंटे हैं तथा प्रत्येक से एक कार्यकारी संचालक का चुनाव होता है। सदस्य देश स्वयं यह निर्णय करते हैं कि वे किस समूह में रहेंगे। कार्यकारी संचालक साप्ताहिक बैठकों में ऋण प्रस्ताव, बजट एवं नीतिगत मामलों पर विचार करते हैं। अध्यक्ष द्वारा बैंक के अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है और वह उसके कार्य का निर्देशन एवं निरीक्षण करता है।

(3) सलाहकार परिषद् (Advisory Council)—बैंक द्वारा कम से कम सात सदस्यों की एक सलाहकार परिषद् की नियुक्ति की जाती है जिसमें बैंकिंग, व्यापार, उद्योग, श्रम तथा कृषि क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। इस परिषद् में बैंक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विशेषज्ञों का सहयोग भी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परिषद् की साधारणतया वर्ष में एक बैठक होती है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर अधिक बैठकें बुलाई जा सकती हैं। इसकी बैठक बुलाने सम्बन्धी सारा खर्च (सदस्यों का यात्रा-व्यय, भत्ता, आदि सहित) बैंक उठाता है।

(4) ऋण समितियाँ (Loan Committees)—सदस्यों द्वारा माँगे गए ऋणों की उपयुक्तता की जाँच करने के लिए समय-समय पर विश्व बैंक ऋण समितियाँ नियुक्त करता रहता है। इन समितियों में विश्व बैंक के एक या दो सदस्य होते हैं जो सम्बन्धित उद्योग अथवा योजना (जिसके लिए ऋण की माँग की गई है) के विशेषज्ञ होते हैं। एक विशेषज्ञ की नियुक्ति उस देश का प्रतिनिधि गवर्नर करता है जिसने ऋण की माँग की है। यह समितियाँ यथासमय अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती हैं जिनके आधार पर बैंक ऋण देने सम्बन्धी निश्चय करता है।

(5) विशिष्ट उद्देश्यों के लिए निर्मित विभिन्न समितियाँ (Various Committees)—प्रशासकीय मण्डल द्वारा, विभिन्न कार्यों को संपादित करने के लिए, अन्य समितियाँ भी गठित की गई हैं जिनमें प्रमुख हैं–

विकास समिति (Development Committee), **संयुक्त अंकेक्षण समिति** (Joint Audit Committee), **लागत और बजट समिति** (Committee on Cost and Budget), **कार्मिक नीति समिति** (Committee on Personnel Policy Issue), **संचालकों की प्रशासकीय मामलों की समिति** (Committee on Directors' Administrative Matters) तथा **मण्डल कार्यनीति की तदर्थ समिति** (Adhoc Committee on Board Procedures), इत्यादि।

विश्व बैंक के कार्य (Functions Of World Bank)

(I) ऋण देना (Giving of Loans)

बैंक के समझौता पत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि बैंक को केवल उत्पादक कार्यों के लिए ऋण देना चाहिए तथा इस ऋण के फलस्वरूप विकासशील देशों में आर्थिक विकास प्रोत्साहित होना चाहिए, प्रत्येक ऋण या तो देश की सरकार को दिया जाता है अथवा सम्बन्धित देश की सरकार द्वारा ऋण की गारण्टी दी जानी चाहिए। ऋण की विस्तृत कार्यप्रणाली इस प्रकार है :

विश्व बैंक की ऋण देने की कार्यप्रणाली–सामान्य रूप से बैंक दीर्घकालीन और मध्यकालीन अवधि की परियोजनाओं एवं विनियोग के लिए ऋण देता है। बैंक निम्न तीन प्रकार से ऋण देने की व्यवस्था करता है :

(*i*) अपने स्वयं के कोषों से ऋण देता है,

(*ii*) मुद्रा बाजार से ऋण लेकर सदस्य देशों को ऋण देता है,

(*iii*) बैंक उन ऋणों की पूर्ण अथवा आंशिक रूप से गारण्टी देता है जो विनियोग एजेन्सियों अथवा निजी विनियोजकों द्वारा दिए जाते हैं।

ऋण देने की विधि

ऋण देते समय विश्व बैंक निम्न चार अवस्थाओं से क्रमशः गुजरता है :

प्रथम अवस्था में ऋण माँग करने वाले देश की भुगतान क्षमता की जांच की जाती है। विशेष रूप से यह देखा जाता है कि आवेदक देश में ऋण के उचित प्रयोग की क्षमता है तथा ऋण की वापसी एवं ब्याज के भुगतान में कोई कठिनाई नहीं होगी।

द्वितीय अवस्था में विश्व बैंक के विशेषज्ञ उस देश में जाकर उस परियोजना की जांच करते हैं जिसके लिए ऋण माँगा जा रहा है।

तीसरी अवस्था में ऋण की शर्तों को तय किया जाता है अर्थात् विश्व बैंक कुल विनियोग का कितना प्रतिशत ऋण देगा, ऋण की अवधि तथा ब्याज की दर क्या होगी।

चौथी तथा अन्तिम अवस्था में बैंक ऋणों के प्रयोग पर दृष्टि रखता है तथा आवश्यकतानुसार निर्देश भी देता है।

ऋण देने सम्बन्धी शर्तें अथवा महत्त्वपूर्ण बातें

ऋण देते समय अथवा ऋण की गारण्टी देते समय विश्व बैंक निम्न शर्तों का ध्यान रखता है :

(1) यह देखा जाता है कि ऋण लेने वाला देश किस सीमा तक अपने दायित्वों को पूरा करेगा। भुगतान क्षमता की जांच की जाती है।

(2) ऋण की गारण्टी देते समय विश्व बैंक अपने जोखिम के लिए उचित क्षतिपूर्ति ऋणी देश से लेता है।

(3) बैंक द्वारा ऋण उसी समय स्वीकृत किया जाता है जब बैंक इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि ऋण की माँग करने वाले देश को उचित शर्तों पर अन्य स्रोतों से ऋण नहीं मिल सकता है।

(4) विश्व बैंक किसी परियोजना के विदेशी विनियोग भाग की पूर्ति के लिए ही ऋण देता है।

(5) कुछ अपवादों को छोड़कर विश्व बैंक पुनर्निर्माण और विकास की विशेष परियोजना के लिए ही ऋण देता है।

(6) विश्व बैंक ऋणों का भुगतान एकमुश्त न करके ऋणी देश के **नाम** बैंक से खाता खोल देता है जिसमें से ऋणी देश आवश्यकतानुसार राशि निकाल सकता है।

(7) बैंक द्वारा ऋण बुनियादी उद्योगों और सार्वजनिक उपयोगिताओं सम्बन्धी परियोजनाओं के लिए दिए जाते हैं।

ब्याज की दर–विश्व बैंक द्वारा जो ऋण दिए जाते हैं उस पर ब्याज की दर प्रति 6 माह के लिए निर्धारित की जाती है। जिस ब्याज की दर पर विश्व बैंक ऋण लेता है, उसकी तुलना में वह ऋण लेने वाले देशों से 0.5 प्रतिशत ब्याज की दर अधिक लेता है।

ऋण की सीमा–बैंक किसी भी परियोजना में होने वाले पूरे व्यय की राशि ऋण के रूप में नहीं देता वरन् बैंक द्वारा स्वीकृत योजना के सम्पूर्ण व्यय का वह भाग ऋण के रूप में दिया जाता है जो विदेशों से माल खरीदने के लिए व्यय किया जाता है, किन्तु यह भाग कुल लागत के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। ऋणी देश को ऋण का भुगतान उस मुद्रा में करना होता है जिसमें वह ऋण लिया गया था।

(II) गारण्टी देना (Giving of Guarantee)

विश्व बैंक का दूसरा कार्य है गारण्टी देना। बैंक सदस्य देशों के लिए अन्य वित्तीय संस्थाओं (बैंकों, आदि) से ऋण की व्यवस्था करवा सकता है और उनके द्वारा दिए जाने वाले ऋणों के समय पर भुगतान की गारण्टी करता है। बैंक

नोट

प्रत्येक गारण्टी पर कमीशन लेता है। बैंक के समझौता-पत्र के अनुसार अपने कार्यकाल के पहले दस वर्षों में उसके लिए **प्रत्येक गारण्टी के लिए कम से कम 1 प्रतिशत और अधिक से अधिक 1.5 प्रतिशत गारण्टी कमीशन लेना आवश्यक था।** यह कमीशन बिना चुकाई हुई ऋण राशि पर लिए जाने की व्यवस्था है। दस वर्ष की अवधि के बाद बैंक को इस कमीशन की राशि में परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया था। विश्व बैंक ने आरम्भ से ही इस कमीशन की दर 1 प्रतिशत रखी और उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

बैंक 1949 से ही ऋणों तथा ऋणपत्रों की गारण्टी करता रहा। गारण्टी कार्य पिछले कुछ वर्षों में सर्वथा समाप्त हो गया है क्योंकि 1986 **के पश्चात् एक भी ऋण की गारण्टी नहीं दी गई।** इसके दो कारण हैं—एक तो विश्व बैंक के दो सहयोगी, **अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ ने अविकसित देशों के उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में दीर्घकालीन ऋण पूँजी देनी आरम्भ कर दी है, दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग बढ़ जाने से बड़े देश विश्व बैंक की गारण्टी के बिना ही विदेशों में ऋण देने लगे हैं।**

(III) प्राविधिक सहायता (Technical Assistance)

बैंक का तीसरा कार्य है प्राविधिक सहायता की व्यवस्था करना। इस कार्य की पूर्ति के लिए बैंक ने यह निश्चित किया है कि अविकसित सदस्य देशों के विस्तृत आर्थिक सर्वेक्षण किए जाएं जिससे उन देशों के प्राकृतिक साधन, आर्थिक एवं औद्योगिक सम्भावनाएं, परिवहन के साधन, आदि की एक साथ ही पूर्ण जानकारी हो जाये। सम्पूर्ण आर्थिक सर्वेक्षण के अतिरिक्त बैंक अपने विशेषज्ञों को विभिन्न नियोजन कार्यों में सहायता देने के लिए सदस्य देशों में भेजता रहता है। यह विशेषज्ञ आर्थिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक अथवा अन्य कार्यों में सहायता देते हैं। बैंक द्वारा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले आर्थिक सर्वेक्षणों तथा अनुसन्धानों में सहयोग प्रदान किया जाता है। अनेक अफ्रीकी एवं अन्य देशों के आर्थिक सर्वेक्षण प्रकाशित किए जा चुके हैं।

(IV) प्रशिक्षण व्यवस्था (Training)

नियोजित आर्थिक विकास आज का युगधर्म बन गया है और प्रत्येक देश के विभिन्न क्षेत्रों में योजनाओं का संचालन करने के लिए प्रशिक्षित अधिकारियों की आवश्यकता है। विश्व बैंक ने इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर 1 जनवरी, 1949 को सदस्य देशों के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए एक-वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ किया। 1950 से कनिष्ठ कर्मचारियों के लिए भी लोक वित्त तथा हिसाब-किताब ठीक ढंग से रखने के लिए प्रशिक्षण कार्य आरम्भ किए गए।

आर्थिक विकास विद्यालय—उपर्युक्त दो प्रशिक्षण योजनाओं के अतिरिक्त विश्व बैंक ने 1955 में एक आर्थिक विकास संस्थान (The Economic Development Institute) की स्थापना की जिससे सदस्य देशों के वरिष्ठ कर्मचारियों को नियमित रूप से विकास कार्यों से सम्बन्धित क्षेत्रों में गहन प्रशिक्षित किया जा सके।

(V) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा (Settlement of International Disputes)

एक अन्तर्राष्ट्रीय निष्पक्ष संगठन होने के नाते विश्व बैंक एक ऐसी संस्था बन गई है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याएं सुलझाने के लिए मध्यस्थ बनाया जा सकता है। इस दिशा में बैंक के दो कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :

(1) **भारत-पाक नहरी पानी विवाद** (Indo-Pak River Water Dispute)—भारत का विभाजन होने से भारत और पाकिस्तान में पंजाब की नदियों के जल-विभाजन सम्बन्धी विवाद उत्पन्न हो गया था जो क्रमश: गम्भीर रूप धारण कर गया। अन्तत: विश्व बैंक की इस विवाद में मध्यस्थता से 1951 में दोनों देशों के अधिकारियों के बीच वार्ता आरम्भ हुई और 1954 में बैंक ने दोनों देशों के सामने सिन्धु घाटी के जल-विभाजन सम्बन्धी योजना प्रस्तुत की। विचार करते-करते अन्त में 19 जनवरी, 1960 को इस विवाद का निपटारा हो गया और दोनों के बीच एक महत्वपूर्ण समस्या का अन्त हो गया।

(2) **स्वेज नहर विवाद** (Swez Canal Dispute)—विश्व बैंक द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग अथवा शान्ति की दिशा में किया गया दूसरा कार्य स्वेज नहर विवाद से सम्बन्धित है। 1956 के अन्तिम दिनों में जब मिस्त्र द्वारा स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा कर दी गई तो राजनीतिक निपटारा तो हो गया, परन्तु स्वेज नहर कम्पनी में ब्रिटेन के अंशों का हर्जाना देने के प्रश्न पर विवाद उत्पन्न हो गया। लगातार छ: माह तक विचार-विमर्श के पश्चात् बैंक दोनों

देशों में समझौता कराने में सफल हो गया। बैंक ने मिस्त्र (अब संयुक्त अरब गणराज्य) द्वारा क्षतिपूर्ति की किस्तें प्राप्त कर ब्रिटेन को हस्तान्तरित करने का भार लेकर समस्या को अन्तिम रूप से समाप्त कर दिया। संसार के आर्थिक कल्याण का बीड़ा उठाने वाली एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा इस प्रकार के राजनीतिक उलझनों भरे विवादों का निपटारा शान्तिपूर्ण बातचीत द्वारा करने का यह विश्व इतिहास में अनोखा उदाहरण है।

एशियाई विकास बैंक की स्थापना (Establishment of Asian Development Bank)

एशिया विश्व में सबसे बड़ा महाद्वीप है जिसमें विश्व की कुल विकासशील देशों की जनसंख्या का 65 प्रतिशत भाग निवास करता है किन्तु उन्हें 37 प्रतिशत ही ऋण प्राप्त हो पाता है। इस महाद्वीप की तीन-चौथाई जनसंख्या अभाव और निर्धनता से पीड़ित है। राजनीतिक दृष्टि से भी इस महाद्वीप के अनेक देश सदियों तक पराधीन रहे और उनका काफी दमन और शोषण हुआ। एशिया के विभिन्न देशों द्वारा चलाए गए आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों के लिए दीर्घकालीन विकास वित्त की आवश्यकता थी। यद्यपि इस उद्देश्य के लिए विश्व बैंक तथा उसकी सम्बद्ध इकाइयों द्वारा वित्तीय सुविधाएँ दी गईं, परन्तु ये अपर्याप्त थीं। अत: यह अनुभव किया गया कि एशियाई देशों की वित्तीय सहायता के लिए अलग से एक संस्था स्थापित की जाए। सितम्बर 1963 में एशिया एवं सुदूर-पूर्व के लिए आर्थिक आयोग (Economic Commission for Asia and Far-East—ECAFE) जो वर्तमान में एशिया एवं प्रशान्त क्षेत्र आर्थिक एवं सामाजिक आयोग (Economic & Social Commission for Asia & Pacific)—ESCAP के नाम से जाना जाता है, द्वारा एक विशेष समिति का गठन किया गया। समिति ने एक बैंक की स्थापना का सुझाव दिया। इस सुझाव को आयोग ने दिसम्बर 1963 में मनीला में आयोजित अपनी मन्त्रीस्तरीय बैठक में अनुमोदित कर दिया। आयोग में प्रस्तावित बैंक की रूपरेखा तैयार करने के लिए अक्टूबर 1964 में एक अध्ययन दल का गठन किया गया। **अप्रैल 1965 में आयोग की बैठकों में एशियाई विकास बैंक की स्थापना का निर्णय लिया गया। तदनुसार बैंक की स्थापना 26 नवम्बर, 1966 को हुई तथा 19 दिसम्बर, 1966 से इसने कार्य प्रारम्भ किया। इसका मुख्यालय मनीला में है।**

क्या आप जानते हैं एशिया विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है, जिसमें विकासशील देशों की 65: जनसंख्या निवास करती है। इस महाद्वीप की तीन-चौथाई जनसंख्या अभाव और निर्धनता से पीड़ित है।

एशियाई विकास बैंक के उद्देश्य (Objectives of the ADB)

विकास बैंक का मुख्य उद्देश्य एशिया एवं सुदूर-पूर्व के देशों में आर्थिक सहयोग और विकास को प्रोत्साहित करना है। इसके साथ ही एशिया के विकासशील देशों में व्यक्तिगत व संयुक्त रूप से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाना है। एशियाई विकास बैंक के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(1) एशिया एवं सुदूर-पूर्व के देशों में आर्थिक विकास के लिए **सार्वजनिक तथा निजी पूँजी के विनिमय को प्रोत्साहित करना।**

(2) उपलब्ध साधनों को सदस्य देशों के विकास के लिए उनके राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व उपक्षेत्रीय **विकास कार्यक्रमों** को ध्यान में रखते हुए, प्रयोग में लाना।

(3) सदस्य देशों की विकास नीतियों एवं योजनाओं में **समन्वय स्थापित करने** में सहायता देना जिससे देश अपने साधनों का अधिक अच्छी तरह से प्रयोग कर सकें और विदेशी व्यापार का सन्तुलित विकास किया जा सके।

(4) सदस्य देशों की विकास परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों का निर्माण, वित्त प्रबन्ध एवं उनके क्रियान्वयन में **तकनीकी सहायता** देना।

(5) संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उससे सम्बद्ध संस्थाओं एवं अन्य राष्ट्रीय, निजी तथा सार्वजनिक संस्थाओं के साथ **सहयोग करना,** जो इस क्षेत्र में विकास सम्बन्धी विनियोग से सम्बन्धित हैं।

(6) ऐसे सभी कार्यों को करना तथा ऐसी सेवाएं प्रदान करना जो उसके **उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक** हों।

नोट

उपर्युक्त उद्देश्यों से स्पष्ट है कि एशियाई विकास बैंक की स्थापना एशियाई देशों के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए की गई है। बैंक के चार्टर में स्पष्ट उल्लेख है कि **"यह बैंक एशिया एवं सुदूर-पूर्व देशों में परस्पर सहयोग और विकास को मूर्त रूप देगा एवं विकासोन्मुख सदस्य देशों की सामूहिक एवं वैयक्तिक आर्थिक विकास प्रक्रिया को गतिशील बनाने में योग देगा।"** इस बैंक के उद्घाटन के अवसर पर जापान के तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने ठीक ही कहा था कि "यह बैंक इस क्षेत्र के राष्ट्रों की लम्बे समय से चली आ रही आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने का प्रतीक है। इससे एशिया में स्वावलम्बन तथा सहयोग की भावना आएगी।"

सदस्यता—बैंक के केवल वे ही देश सदस्य हो सकते हैं जो (*i*) ECAFE के सदस्य तथा सहायक सदस्य, तथा (*ii*) अन्य क्षेत्रीय देश या गैर-क्षेत्रीय विकसित देश जो कि संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसकी विशिष्ट एजेन्सियों के सदस्य हैं। बैंक की सदस्यता केवल एशिया महाद्वीप के देशों के लिए ही सीमित नहीं है, वरन् एशिया महाद्वीप के बाहर के देशों को भी सदस्य बनाया गया है ताकि अधिक साधन प्राप्त किए जा सकें एवं विकसित देशों से सम्पर्क बना रह सके। इस उद्देश्य से अमरीका, ब्रिटेन, आस्ट्रिया, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, जर्मनी, इटली, स्वीडन, नार्वे, आदि देशों को भी बैंक का सदस्य बनाया गया। प्रारम्भ में बैंक के सदस्य देशों की संख्या 32 थी जो वर्तमान में बढ़कर 61 हो गई है। इनमें 16 देश इस क्षेत्र से बाहर के विकसित देश हैं, शेष एशिया महाद्वीप के देश हैं। किसी भी देश को उसी समय बैंक का सदस्य बनाया जाता है जबकि प्रशासकों की दो-तिहाई संख्या जो तीन-चौथाई मतों का प्रतिनिधित्व करते हैं, उस देश को सदस्य बनाने का समर्थन करें।

बैंक का प्रबन्ध (Management of Bank)

बैंक के प्रबन्ध का दायित्व प्रशासक मण्डल (Board of Governors) पर रहता है। प्रत्येक सदस्य देश द्वारा बैंक में दो प्रतिनिधि भेजे जाते हैं जिनमें से एक को प्रशासक तथा दूसरे को वैकल्पिक गवर्नर कहा जाता है। इस तरह से भेजे गए सभी प्रतिनिधि प्रशासक मण्डल का गठन करते हैं। इस प्रशासक मण्डल द्वारा 12 संचालकों का चुनाव किया जाता है जिन्हें मिलाकर संचालक मण्डल (Board of Directors) बनता है। प्रशासक मण्डल द्वारा ही बैंक का अध्यक्ष (12 के अलावा) चुना जाता है। अध्यक्ष, एशियाई राष्ट्रों का ही व्यक्ति हो सकता है। कुल 12 संचालकों में से 8 संचालक इकाफे क्षेत्र के होते हैं। इनमें से प्रत्येक का कार्यकाल दो वर्ष का होता है, जबकि अध्यक्ष की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष कार्य संभालता है।

कुछ मामलों को छोड़कर जिनका प्रावधान चार्टर में है अन्य सभी बातों पर बहुमत द्वारा निर्णय लिए जाते हैं। जहां तक मताधिकार का प्रश्न है, कुल मतों के 20 प्रतिशत मत सदस्य देशों में समान रूप से बंटे हुए हैं और शेष 80 प्रतिशत मत सदस्य देशों के अंशों के आधार पर बंटे हुए हैं।

वर्तमान समय में बैंक के वित्तीय स्रोतों में दो प्रकार के संसाधन सम्मिलित हैं—

(*i*) **साधारण पूँजी संसाधन** (Ordinary Capital Resources-OCR)—इसमें सदस्यों से प्राप्त अभिदत्त पूँजी, बैंक को ऋण से प्राप्त राशि, कर्ज की अदायगी और उससे प्राप्त आय की राशि तथा अन्य प्राप्तियां शामिल रहती हैं जो विशेष कोष में शामिल नहीं होतीं।

(*ii*) **विशेष कोष संसाधन** (Special Fund Resources-SFR)—इनमें तुलनात्मक रूप से विकसित देशों का योगदान शामिल होता है। इसमें विशेष कोष विनियोग से प्राप्त आय तथा OCR से विशेष रूप से प्राप्त कोष भी शामिल रहते हैं। इन कोषों का प्रयोग रियायती ऋण (Concessional Loan) देने हेतु किया जाता है। वर्तमान में दो विशेष कोष हैं—**एशियाई विकास कोष** (Asian Development Fund-ADF) एवं **तकनीकी सहायता विशेष कोष** (Technical Assistance Special Fund-TASF)।

बैंक की कार्य प्रणाली (Working System of Bank)

1. ऋण प्रदान करना—एशियाई विकास बैंक की कार्यप्रणाली का प्रमुख अंग ऋण सुविधा प्रदान करना है। बैंक ऋण प्रक्रिया के दो भाग हैं—साधारण प्रक्रिया एवं विशेष प्रक्रिया। साधारण प्रक्रिया के अन्तर्गत ऋण बैंक के साधारण पूँजीगत

नोट

साधनों से दिया जाता है। यह ऋण विशेष परियोजनाओं की लागत में शामिल विदेशी मुद्रा अथवा स्थानीय मुद्रा की मांग की पूर्ति के लिए दिए जाते हैं। बैंक ऐसी संस्थाओं के भी ऋण दे सकता है जो उपयुक्त परियोजनाओं के लिए धन उधार देती हैं। बहुत छोटी योजनाओं के लिए बैंक प्रत्यक्ष ऋण नहीं देता, वरन् देश के विकास-बैंक अथवा अन्य संस्थाओं के माध्यम से देता है जो ऐसी परियोजनाओं का निरीक्षण करती हैं।

नोट्स विशेष ऋण प्रक्रिया के अन्तर्गत ऋणों की पूर्ति विशेष कोषों से की जाती है। ऐसे ऋण बैंक चार्टर के अनुसार ऊँची विकास की प्राथमिकताओं वाली परियोजनाओं के लिए दीर्घकाल के लिए दिए जाते हैं। इस सहायता पर ब्याज साधारण ऋण प्रक्रियाओं की तुलना में कम होता है तथा इन ऋणों का पुनर्भुगतान अधिक समय बाद शुरू होता है।

बैंक अपनी प्रदत्त पूँजी का 10 प्रतिशत विशेष कोष में रख सकता है जिसे सुलभ ऋणों के लिए दे सकता है। इन विशेष कोषों में धन कोषों में धन प्रशासक-मण्डल के दो-तिहाई मतों से ही जमा हो सकता है।

2. तकनीकी सहायता—बैंक सदस्य देशों की सरकारों, उनकी एजेन्सियों एवं उन क्षेत्रों की निजी फर्मों एवं संस्थाओं को तकनीकी सहायता भी देता है जो निम्न प्रकार की होती हैं—

(*i*) राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय विकास परियोजनाओं के लिए प्रस्ताव तैयार करना, वित्त का अनुमान लगाना और इन परियोजनाओं को कार्यरूप देना।

(*ii*) कृषि, उद्योग एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में नई इकाइयों के निर्माण में सहायता देना एवं विद्यमान इकाइयों को तकनीकी सहायता देना।

तकनीकी सहायता के लिए बैंक सम्बन्धित देशों की स्वीकृति पर विशेषज्ञों के दल भेजता है। तकनीकी सहायता ऋण अथवा अनुदान के रूप में भेज दी जाती है। अनुदान के रूप में दी गई सहायता का पुनर्भुगतान नहीं होता।

3. बैंक के कार्यों के सामान्य सिद्धान्त—बैंक का कार्य निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार चलाया जाता है—

(*i*) बैंक उन निश्चित परियोजनाओं के लिए ही वित्त की व्यवस्था करता है जो राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अर्द्ध-क्षेत्रीय विकास योजना के अन्तर्गत आती हैं।

(*ii*) परियोजना का भुगतान करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि परियोजना सन्तुलित विकास तथा छोटे देशों की आवश्यकता को पूरा करने में सहायक हो।

(*iii*) बैंक ऐसे देशों में स्थित एवं परियोजना के लिए वित्त प्रदान नहीं करता जिसके लिए वित्त व्यवस्था करने पर उस देश की सरकार को आपत्ति हो।

(*iv*) बैंक इस बात पर भी ध्यान देता है कि ऋण लेने वाला देश अपने ऋण सम्बन्धी दायित्व को पूरा करने में सक्षम है या नहीं।

(*v*) बैंक इस बात को भी दृष्टि में रखता है कि सम्बन्धित देश और कौन-से स्रोतों से वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकता है? यदि उचित शर्तों पर उस देश को अन्य स्रोतों से ऋण मिल सकता है तो बैंक, ऐसे देश को सहायता नहीं देता।

(*vi*) सार्वजनिक अथवा निजी क्षेत्र के लिए वित्त की व्यवस्था करते समय, विकास बैंक पिछड़े और अल्प-विकसित देशों को प्राथमिकता देता है।

एशियाई विकास बैंक के प्रमुख क्रिया-कलाप (Main Features of Asian Development Bank)

यह देखना महत्वपूर्ण है कि अपनी स्थापना से लेकर बैंक विगत वर्षों में अपने उद्देश्यों को पूरा करने में कहां तक सफल हुआ है इसका अध्ययन हम निम्न शीर्षकों में करेंगे—

नोट

1. **विकासशील देशों को ऋण**—एशियाई विकास बैंक ने अपनी स्थापना के वर्ष से ही विकासशील देशों को विभिन्न परियोजनाओं के लिए ऋण आबंटित किये हैं। बैंक द्वारा ऋण प्रायः सरकार को ही दिए गए हैं। एशियाई विकास बैंक द्वारा प्रमुख रूप से ऋण परिवहन, संचार, ऊर्जा, कृषि, कृषि परिवहन उद्योग को प्रदान किए गए।
2. **तकनीकी सहायता**—एशियाई विकास बैंक अपने सदस्य देशों के लिए दीर्घकालीन विकास ऋण के अतिरिक्त तकनीकी सहायता भी उपलब्ध कराता है। यह अपने सदस्य देशों की प्रार्थना पर विशिष्ट प्रकार की परियोजनाओं के लिए विशेषज्ञों की परामर्श सेवाएं जुटाता है। इसके लिए बैंक का अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बन्ध रहता है।
3. **गारण्टी की सुविधा**—एशियाई विकास बैंक सदस्य देशों द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के लिए अन्य स्रोतों से लिए जाने वाले ऋणों तथा इन देशों द्वारा बेचे जाने वाले बाण्डों के सन्दर्भ में गारण्टी भी प्रदान करता है। इसके फलस्वरूप सदस्य देशों के लिए न केवल ऋण प्राप्त करना आसान होता है बल्कि ऋण की लागत भी कम हो जाती है।
4. **निजी उद्यम को ऋण**—1986 से बैंक ने बिना सरकारी गारण्टी के निजी उद्यमियों तथा वित्तीय संस्थाओं को ऋण देना प्रारम्भ कर दिया है। विकासशील देशों में निजी क्षेत्र की विभिन्न परियोजनाओं के लिए विगत वर्षों में बैंक द्वारा बड़े ऋण प्रदान किए गए हैं।
5. **बैंक द्वारा ऋण लेना एवं ब्याज की दर**—बैंक ऋण लेकर साधारण पूँजी संसाधन की वृद्धि करता है तथा इन अतिरिक्त पूँजी संसाधनों से गरीब सदस्य देशों की सहायता करता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन : सुझाव एवं समस्याएँ

इसमें कोई संदेह नहीं कि एशियाई विकास बैंक ने निर्बल तथा दरिद्रता से ग्रस्त एशिया महाद्वीप के विकासोन्मुख देशों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप ऋण की सुविधा प्रदान कर आर्थिक उत्थान की दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है।

एशियाई विकास बैंक के उपर्युक्त प्रयत्नों के बावजूद भी कुछ आलोचकों ने इस बैंक की आवश्यकता पर प्रश्न-चिह्न लगाया है। उनका कहना है कि विश्व बैंक की एशियाई शाखा को मजबूत कर ही एशियाई बैंक के उद्देश्य पूर्ण किए जा सकते हैं, किन्तु आलोचकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि एशियाई देशों की विकास आवश्यकताएँ इतनी प्रबल हैं कि विश्व बैंक एवं एशियाई देशों के लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र है और फिर क्षेत्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति एशियन बैंक सरीखे क्षेत्रीय बैंक से अच्छी तरह से की जा सकती है।

कुछ आलोचकों ने यह भी व्यक्त किया है कि कुछ गैर-क्षेत्रीय देशों जैसे अमरीका की पूँजी एवं मताधिकार अधिक होने से बैंक की 'एशियाई प्रवृत्ति' (Asian Character) समाप्त हो सकती है, किन्तु यह आलोचना निराधार है, क्योंकि इसके लिए बैंक के नियम अनुकूल बना लिए गए हैं।

विश्व के विकास कोषों में कमी और उपलब्ध कोषों के लिए तीव्र प्रतियोगिता का यह परिणाम होगा कि बैंक के पास साधनों का अभाव हो जाएगा, इसके लिए यह आवश्यक है कि बैंक को क्षेत्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे कोषों के लिए बैंक की विदेशों पर निर्भरता कम हो जाएगी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एशियाई विकास बैंक की स्थापना से, इस क्षेत्र के आर्थिक विकास की लम्बे समय से चली आ रही आवश्यकता की पूर्ति हुई है, किन्तु क्षेत्र के पिछड़े देशों की मांग को देखते हुए, बैंक के साधन अपर्याप्त हैं अतः यह आवश्यक है कि विकसित देशों द्वारा, बैंक को अधिक सहायता दी जानी चाहिए ताकि बैंक द्वारा रियायती दर पर सदस्य देशों को अधिक आर्थिक सहायता दी जा सके।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Options)—

1. अंकटाड का मुख्यालय कहां स्थित है—

   (क) जेनेवा में (ख) वाशिंगटन में (ग) काहिरा में (घ) इनमें से कोई नहीं।

नोट

2. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपना कार्य कब आरम्भ किया–
   (क) 1 मार्च, 1942 से (ख) 1 मार्च 1945 से (ग) 1 मार्च 1947 से (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. विश्व बैंक की स्थापना कब हुई–
   (क) 1944 (ख) 1945 (ग) 1947 (घ) 1950।
4. विश्व बैंक की सदस्यता प्राप्त करने के लिए किस संगठन की सदस्यता अनिवार्य है–
   (क) WTO (ख) ADB (ग) IMF (घ) UNCTAD।
5. मुद्रा-कोष का सदस्य न होते हुए भी कुल मत शक्ति के कितने प्रतिशत की आवश्यकता विश्व बैंक की सदस्यता बनाए रखने के लिए जरूरी है–
   (क) 75% (ख) 70% (ग) 65% (घ) 78%।
6. वर्तमान में विश्व बैंक की सदस्य संख्या कितनी है–
   (क) 180 (ख) 182 (ग) 183 (घ) 184।
7. विश्व बैंक में प्रत्येक सदस्य देश अपनी अंश पूँजी का कितने प्रतिशत भुगतान अपने देश की ही मुद्रा में करने के लिए स्वतंत्र है–
   (क) 18% (ख) 20% (ग) 24% (घ) 25%।
8. विश्व बैंक के कार्य हैं–
   (क) ऋण देना (ख) गारंटी देना (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।
9. एशियाई विकास बैंक का मुख्यालय कहां है–
   (क) मनीला में (ख) जेनेवा में (ग) काहिरा में (घ) इनमें से कोई नहीं।
10. एशियाई विकास बैंक के मुख्य क्रिया-कलाप हैं–
   (क) तकनीकी सहायता (ख) गारंटी की सुविधा (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं।

28.2 सारांश (Summary)

- संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 1961 की दशाब्दी को 'संयुक्त राष्ट्र विकास दशाब्दी' की संज्ञा दी तथा महासचिव से ऐसी सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए कहा गया जिससे व्यापार और विकास से सम्बन्धित समस्याओं पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जा सके। जुलाई 1962 में काहिरा (Cairo) में जो व्यापार मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ, उसमें भी व्यापार और विकास पर विश्व सम्मेलन आयोजित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस समर्थन के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् ने मार्च-जून 1964 में संयुक्त राष्ट्र व्यापार और विकास सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया और इस प्रथम सम्मेलन के साथ ही अंकटाड का जन्म हुआ।
- अंकटाड संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा का एक स्थायी अंग है, किन्तु उसकी स्वयं की सहायक संस्थाएँ हैं तथा स्वतन्त्र सचिवालय है। इसकी एक स्थायी कार्यकारिणी है जिसे व्यापार एवं विकास मण्डल (Trade and Development Board) कहते हैं। अंकटाड सम्मेलनों की अवधि के बीच में मण्डल कार्यशील रहता है तथा इसकी साल में दो बैठकें होती हैं। इसके 55 सदस्य होते हैं जिनका चुनाव सम्मेलन में समान भौगोलिक वितरण के आधार पर किया जाता है।
- अंकटाड का मुख्यालय जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में स्थित है। चार वर्ष के अन्तराल पर सामान्यत: अंकटाड की बैठक आयोजित होती है।
- मौद्रिक संगठन के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 को **वाशिंगटन** में हुई, किन्तु वास्तविक रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने अपना कार्य 1 मार्च, 1947 से आरम्भ किया।
- 1 मार्च, 1947 को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के केवल 40 सदस्य थे जिनकी संख्या वर्तमान में बढ़कर 184 हो गई है।

नोट

- वर्तमान में इसमें 22 कार्यकारी निदेशक हैं जिसमें से 6 की नियुक्ति की जाती है (5 निदेशक सबसे अधिक कोटा वाले देशों–अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस एवं जापान द्वारा नियुक्त किए जाते हैं) तथा 1 की नियुक्ति सऊदी अरब देश द्वारा (सबसे अधिक साख वाले दो देशों में से एक होने के कारण) की जाती है। शेष 16 कार्यकारी निदेशक, अन्य देशों द्वारा चुने जाते हैं तथा इनकी अवधि दो वर्ष की होती है। निदेशक मण्डल एक प्रबन्ध निदेशक का चुनाव करता है जो निदेशक मण्डल का अध्यक्ष होता है। इसके साथ ही वह कोष-कार्यालय का प्रमुख भी होता है तथा निदेशक मण्डल के निर्देशानुसार कोष का सामान्य कार्य संपादित करता है।
- मुद्रा-कोष के भूतपूर्व प्रबन्ध निदेशक पेर जेकोबसन के शब्दों में, "मुद्रा-कोष आग बुझाने वाले इंजन की तरह है जिसका प्रयोग केवल संकट-काल में किया जाना चाहिए।"
- बैंक के प्रशासक मण्डल में प्रत्येक सदस्य देश द्वारा एक गवर्नर तथा एक स्थानापन्न गवर्नर नियुक्त किया जाता है। इनकी अवधि 5 वर्ष होती है, किन्तु इसके पूर्व भी इन्हें बदला जा सकता है।
- वर्तमान में सबसे बड़े अभ्यंश वाले 5 देश अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन हैं। शेष देश 17 निर्वाचन क्षेत्रों में बंटे हैं तथा प्रत्येक से एक कार्यकारी संचालक का चुनाव होता है। सदस्य देश स्वयं यह निर्णय करते हैं कि वे किस समूह में रहेंगे। कार्यकारी संचालक साप्ताहिक बैठकों में ऋण प्रस्ताव, बजट एवं नीतिगत मामलों पर विचार करते हैं।
- बैंक द्वारा कम से कम सात सदस्यों की एक सलाहकार परिषद् की नियुक्ति की जाती है जिसमें बैंकिंग, व्यापार, उद्योग, श्रम तथा कृषि क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। इस परिषद् में बैंक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विशेषज्ञों का सहयोग भी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

28.3 शब्दकोश (Keyword)

- **अभ्यंश–** नियतांश (नियत अंश)

28.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंकटाड संगठन के क्या कार्य हैं ? इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष की स्थापना कब और कहाँ हुई ? इसकी सदस्यता के लिए आवश्यक शर्तों का उल्लेख कीजिए।
3. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
4. विश्व बैंक के सांगठनिक ढाँचे एवं प्रबंधन की व्याख्या करते हुए इसके कार्यों का विवेचन कीजिए।
5. एशियाई विकास बैंक की स्थापना कब हुई ? इसके उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए इसकी कार्यप्रणाली का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. (क)	2. (ख)	3. (ग)	4. (क)
5. (घ)	6. (क)	7. (क)	8. (ग)
9. (क)	10. (ग)		

28.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।

नोट

इकाई—29: भारत की व्यापार नीति : तात्कालिक विकास (India's Trade Policy : Recent Development)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 भारत की व्यापार नीति: तात्कालिक विकास (India's Trade Policy: Recent Development)

29.2 सारांश (Summary)

29.3 शब्दकोश (Keywords)

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भारत की व्यापार नीति का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

स्वतन्त्रता के बाद प्राय: भारत का व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल रहा है और इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारा भुगतान-शेष भी प्रतिकूल हो गया। इसे ठीक करने के लिए यद्यपि और भी उपाय आवश्यक हैं पर व्यापार-शेष में सुधार करना भी बहुत जरूरी है। इसके लिए आवश्यक है कि देश की एक उचित व्यापार नीति हो जिसका उद्देश्य आयातों और निर्यातों में इस प्रकार समन्वय करना होना चाहिए कि देश का आर्थिक विकास हो और आत्म-निर्भर बन सके। इसमें दो मत नहीं है कि किसी भी देश की आर्थिक प्रगति प्रत्यक्ष रूप से अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति पर निर्भर रहती है। जहाँ तक औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति का सम्बन्ध है, वह काफी हद तक देश में उत्पादित और आयातित आवश्यक उपकरणों तथा अन्य चीजों की सामाजिक प्राप्ति पर ही निर्भर रहती है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि देश के निर्यात में वृद्धि की जाये।

29.1 भारत की व्यापार नीति: तात्कालिक विकास (India's Trade Policy: Recent Development)

उद्देश्य—प्रारम्भ से ही हमारी व्यापार नीति के निम्न उद्देश्य रहे हैं—

(*i*) केवल आवश्यक वस्तुओं का ही आयात करना।

(*ii*) आयात-प्रतिस्थापित वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना करना एवं उनके लिए आवश्यक कच्चे माल की देश में व्यवस्था करना।

(*iii*) निर्यात प्रोत्साहित करने वाले उद्योगों को बढ़ावा देना।

नोट

(*iv*) निर्यात क्षेत्र में अतिरेक का सृजन कर निर्यातों की वृद्धि करना। एवं

(*v*) घरेलू बाजार में उचित कीमतों पर वस्तुओं का समान एवं न्यायपूर्ण वितरण करना।

संक्षेप में, व्यापार-नीति का उद्देश्य आयातों को सीमित करना एवं निर्यातों को प्रोत्साहित करना रहा है।

विभिन्न अवस्थाएँ (Different Conditions)–भारत की व्यापार नीति को हम अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न प्रमुख भागों में बांट सकते हैं–

(1) 1947-48 से 1951-52 तक की व्यापार नीति। (2) 1952-53 से 1956-57 तक की व्यापार नीति। (3) 1956-57 से लेकर जून 1966 तक की व्यापार नीति। (4) अवमूल्यन के बाद (जून 1966) से 1975-76 तक की व्यापार नीति। (5) 1985-88 से 1988-91 तक की व्यापार नीति। (6) आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) की व्यापार नीति। (7) नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) की व्यापार नीति। (8) दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) की व्यापार नीति तथा (9) विदेश व्यापार नीति (2004-09)।

(1) 1947-48 से 1951-52 तक की व्यापार नीति–इस काल में भारत आयातों के सम्बन्ध में उदार नीति बना सकता था पर ब्रिटेन ने स्टर्लिंग-शेष के प्रयोग पर कई प्रकार के कठोर नियन्त्रण लगा दिये थे अत: भारत को युद्धकालीन नियन्त्रण जारी रखना पड़ा। डालर-क्षेत्र के साथ हमारा भुगतान-शेष काफी प्रतिकूल था अत: इस क्षेत्र में आयातों को प्रतिबन्धित किया गया एवं निर्यातों में वृद्धि की गयी। इसी कारण भारत को 1949 में रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। कुल मिलाकर इस काल में भारत को विदेशी व्यापार नीति के क्षेत्र में कठोर आयात नियन्त्रण नीति का सहारा लेना पड़ा। साथ ही देश में वस्तुओं की कमी को देखते हुए कुछ अंशों में निर्यातों को भी नियन्त्रित करना पड़ा।

(2) 1952-53 से 1956-57 तक की व्यापार नीति–इस अवधि में विदेशी व्यापार नीति को उदार बनाया गया। द्विपक्षीय और क्षेत्रीय समझौते बनाये रखने के अतिरिक्त इस काल में आयातों व निर्यातों का सतर्क नियमन आवश्यक समझा गया। फिर भी आयात लाइसेन्स उदारतापूर्वक दिये गये तथा निर्यात बढ़ाने के लिए कई प्रकार की रियायतें दी गयीं जैसे निर्यात नियन्त्रणों में ढील, निर्यात कर में छूट, निर्यात-अभ्यंशों की समाप्ति तथा निर्यात के लिए प्रोत्साहन।

आयातों को उदार बनाने के फलस्वरूप आयातों में तो वृद्धि हुई पर निर्यातों में वृद्धि नहीं हो सकी। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे विदेशी विनिमय रिजर्व में कमी आयी जो 1955-56 में 828 करोड़ ₹ से घटकर 1957-58 में 457 करोड़ ₹ रह गया। अत: व्यापार नीति में पुन: परिवर्तन करना पड़ा।

(3) 1956-57 से जून 1966 तक की व्यापार नीति–इस अवधि में द्वितीय और तृतीय योजना काल का समावेश होता है। इस काल में नियोजित आर्थिक विकास के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए व्यापार नीति का पुनर्निर्धारण करना पड़ा।

द्वितीय योजनाकाल (1956-61) में विदेशी विनिमय संकट को दृष्टि में रखते हुए आयातों पर कठोर नियन्त्रण लगाये गये। उदार लाइसेन्सिंग नीति के स्थान पर वास्तविक प्रयोगकर्ताओं की प्राथमिकता की प्रणाली अपनायी गयी। अनावश्यक वस्तुओं के आयात को पूर्ण रूप से निषिद्ध कर दिया गया। आयात नीति की यह विशेषता थी कि आयातों को घरेलू उत्पादन के साथ सम्बन्धित किया गया।

इस योजना में विशाल पैमाने पर निर्यातों को बढ़ाने के उपाय किये गये तथा इसके लिए राजकीय व्यापार निगम, निर्यात प्रोत्साहन समिति, वस्तु बोर्ड एवं निर्यात जोखिम बीमा निगम, आदि की स्थापना की गयी। किस्म नियन्त्रण की प्रणाली भी आरम्भ की गयी। परिवहन के क्षेत्र में भी प्राथमिकता दी गयी। सरकार ने लगभग 200 वस्तुओं के निर्यात पर से नियन्त्रण हटा लिये। भारतीय वस्तुओं के विदेशी बाजार के विस्तार के लिए कई प्रकार की प्रशुल्क रियायतें भी दी गयीं।

तीसरी योजना अवधि में आयातों को और अधिक नियन्त्रित कर दिया गया पर देश में युद्ध की स्थिति होने के कारण रक्षा सामग्री के आयातों को प्राथमिकता दी गयी। मशीनों और महत्वपूर्ण उपकरणों को आयात करने के सम्बन्ध में सरकार ने चयनात्मक आयात नियन्त्रण नीति का सहारा लिया।

निर्यातों को बढ़ाने के लिए सरकार की ओर से और भी सुविधाएँ दी गयीं तथा इस सम्बन्ध में संस्थागत सुविधाएँ प्रदान

नोट

की गयीं एवं कुछ संस्थाओं की स्थापना की गयी; जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संस्थान, आयात-प्रतिस्थापन समिति, निर्यात निरीक्षण परामर्शदाता समिति एवं खनिज तथा धातु व्यापार निगम, इत्यादि। इस बात पर भी बल दिया गया कि परम्परागत वस्तुओं के साथ ही साथ नयी वस्तुओं के निर्यातों को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(4) जून 1966 से 1975-76 तक की व्यापार नीति—1975-76 में सरकार ने पुन:निर्यात उत्पादन में वृद्धि करने के लिए आयातों को विशेष रूप से अनुरक्षण आयातों को उदार बनाने की नीति अपनायी है।

(5) 1985-88 तथा 1988-91 की व्यापार नीति—1985-88 अवधि के दौरान लागू की गई व्यापार नीति में आयात प्रतिस्थापन द्वारा आयातों में कमी करने के उद्देश्य को प्राथमिकता दी गई। इसके अतिरिक्त निर्यात प्रोत्साहन, निर्यात प्रक्रिया का सरलीकरण तथा निर्यात वस्तुओं की उत्पादन तकनीक के आधुनिकीकरण को वरीयता दी गई।

1988-91 की नई व्यापार नीति में आयातों को इस प्रकार नियमित करने का उद्देश्य अपनाया गया जिससे अर्थव्यवस्था की आवश्यक जरूरतें पूरी हो सकें, विकास प्रोत्साहित हो सके और निर्यात में वृद्धि हो सके। 1988-91 के दौरान क्रमबद्ध ढंग से निर्यात प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से गुणात्मक सुधारात्मक निर्यात सम्वर्द्धन नीति अपनाई गई। निर्यात लाइसेन्सिंग नीति को सरल बनाया गया। इस नीति में अप्रत्यक्ष निर्यातकों की भूमिका को स्वीकार किया गया अर्थात् निर्यात हेतु कच्चे माल तथा साधनों की पूर्ति करने वालों को अनुमानित निर्यातक (Deemed Exporters) का दर्जा दिया गया।

(6) आठवीं योजना (1992-97) की व्यापार नीति—अप्रैल 1992 में एक पंचवर्षीय आयात-निर्यात नीति की घोषणा की गई जिसका मुख्य उद्देश्य आयात-निर्यात की स्वतन्त्रता है। नई नीति में लाइसेंस प्रणाली को लगभग समाप्त कर दिये जाने से पूंजीगत साधनों और कच्चे माल के आयात पर लाइसेंस की छूट दी गई। नई नीति में आठ वस्तुओं का आयात सरकारी एजेंसी के माध्यम से करने का प्रावधान किया गया जिनमें पेट्रोलियम, उर्वरक, खाद्य तेल, अनाज, आदि शामिल हैं। साथ ही अनेक वस्तुओं; जैसे अखबारी कागज, अलौह धातुएं, उर्वरक, निर्माण हेतु मध्यवर्ती वस्तुएं व डीजल को सरणीकृत सूची (Canalised List) से हटा दिया गया।

नई नीति में होटल, पर्यटन उद्योग तथा खेल संस्थाओं के लिए आयात की विशेष व्यवस्था की गई थी। पूंजीगत माल की किसी भी वस्तु को प्रतिबन्धित सूची में नहीं रखा गया। अग्रिम लाइसेंस योजना को उदार बना दिया गया तथा शुल्क-मुक्त योजना का विस्तार किया गया। शत-प्रतिशत निर्यात उद्योगों व निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र योजना को अधिक उदार बनाया गया। प्रतिबन्धित निर्यातों की सूची को छोटा किया गया। दस वस्तुओं को सारणीकृत सूची में रखा गया अर्थात् उनका निर्यात सरकारी एजेन्सी के माध्यम से किये जाने का प्रावधान किया गया। नई आयात-निर्यात नीति में निर्यात सदनों तथा निर्यात संवर्द्धन परिषदों के महत्व को स्वीकार किया गया। नई नीति में पूंजीगत साधन, कच्चा माल, उपकरणों तथा पुर्जों पर मुक्त आयात की नीति लागू होगी तथा इनके आयात-निर्यात से सभी प्रतिबन्ध हटा लिए गए। अनेक द्वितीय पूंजीगत साधनों पर लाइसेंस की पूरी छूट प्रदान की गई जिनमें गारमेंट, होजियरी, चमड़े का सामान, रबर, कैनवास एवं जूते, इत्यादि शामिल हैं।

क्या आप जानते हैं निर्यातों को बढ़ाने के लिए 1954 में 'निर्यात सम्वर्द्धन परिषद' की स्थापना की गयी।

निर्यात-आयात नीति 1992-97 : नये संशोधन (EXIM Policy 1992-97 : New Changes)

नई नीति लागू होने के एक वर्ष बाद नये आर्थिक सुधारों को दृष्टि में रखते हुए, आयात-निर्यात नीति में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये तथा 1 अप्रैल, 1993 से नीति को अधिक निर्यातोन्मुखी बना दिया गया। मुख्य परिवर्तन इस प्रकार थे—

(1) निर्यात को निषिद्ध सूची में से 144 मदों को हटा दिया गया और इनके लिए निर्यात हेतु लाइसेंस की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया।

नोट

(2) कृषि, पशु पालन, मछली पालन, मुर्गी पालन, उद्यान एवं रेशम क्षेत्र की इकाइयों को निर्यातोन्मुखी इकाइयों एवं निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र विशेष योजना के अन्तर्गत निःशुल्क आयात की अनुमति दी गई बशर्ते कि वे अपने उत्पादन का 50 प्रतिशत निर्यात करें। शेष 50% उत्पादन घरेलू बाजार में बेचने की अनुमति इस आयात-निर्यात नीति में दे दी गई।

(3) नई नीति में पूंजीगत सामानों की परिभाषा को इस तरह विस्तृत किया गया है कि उसमें कृषि तथा उससे सम्बद्ध क्षेत्र के पूंजीगत सामान का समावेश हो सके तथा ये इकाइयाँ उपकरणों को रियायती दर पर आयात करने हेतु 'निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत सामान' (EPCG) का लाभ प्राप्त कर सकें।

(4) रियायती दर पर पूंजीगत उपकरणों का आयात करने हेतु EPCG योजना को सेवा-क्षेत्र पर भी लागू किया गया।

(5) 1993-94 के बजट में प्रशुल्क दर में काफी कमी किये जाने से 25% की रियायती दर पर आयात योजना बन्द कर दी गई तथा 15% की रियायती दर EPCG योजना के अन्तर्गत अन्य क्षेत्रों को उपलब्ध करवाने का प्रावधान किया गया।

(6) निर्यात गृह, व्यापार गृह एवं स्टार व्यापार गृह में शामिल करने हेतु वास्तविक विदेशी विनिमय के आधार को समाप्त करके भौतिक निर्यात मूल्य को आधार बनाया गया।

(7) निर्यातोन्मुखी इकाइयों तथा निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र इकाइयों के मूल्य निर्धारण के आधार को संशोधित कर इसमें से घरेलू आगतों के मूल्य को अलग कर दिया गया।

(8) राज्यों को औद्योगिक पार्कों की स्थापना में सहायता करने हेतु केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना बनाने की घोषणा की गई।

उपरोक्त संशोधनों से आठवीं योजना की आयात-निर्यात नीति को अधिक निर्यातोन्मुखी बनाया गया। इस नीति में कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्रों को अधिक महत्व दिया गया। उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र में इन संशोधनों का स्वागत किया गया।

नोट्स जून 1966 में भारतीय रुपये का अवमूल्यन किया गया जिससे विदेशी व्यापार नीति में एक नयी दिशा का सूत्रपात हुआ। अवमूल्यन के साथ ही सरकार ने देश के 59 उद्योगों के लिए आयात नीति को उदार बना दिया।

आयात-निर्यात नीति का पुनः उदारीकरण (Re-Liberalisation of Import-Export Policy)

30 मार्च, 1994 को आठवीं योजना (1992-97) की आयात-निर्यात नीति को और अधिक उदार बनाने की घोषणा की गई जिसे तत्काल प्रभाव से लागू किया गया। इस नीति में निर्यातों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निर्यातकों की एक नई श्रेणी **'सुपर स्टार ट्रेडिंग हाउस'** की रचना की गई। सुपर स्टार ट्रेडिंग हाउस की मान्यता उन्हीं निर्यात गृहों को देने का प्रावधान किया गया जिनका विगत तीन वर्षों में औसत निर्यात 750 करोड़ रुपये का रहा हो अथवा विगत वर्ष में निर्यात एक हजार करोड़ रुपये का रहा हो।

मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेंस योजना (Value Based Advance Licensing Scheme—VABAL) जिसे दुरुपयोग के कारण बन्द कर दिया गया था, को निरीक्षण के साथ इस संशोधन में जारी रखने की घोषणा की गई।

निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत सामान (EPCG) योजना को सरल बनाकर इसके अन्तर्गत निर्यात दायित्वों को पूरा करने के उद्देश्य से तृतीय पक्ष निर्यात की अनुमति प्रदान की गई। इसी योजना के तहत लाइसेंस प्रदान करने की व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण किया गया। अभी तक ये लाइसेंस विदेशी व्यापार के महानिदेशक द्वारा जारी किये जाते थे। इस संशोधन में 25 लाख रुपये तक के आयात लाइसेंस क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा जारी करने का प्रावधान किया गया।

नये संशोधनों के अनुसार आयातों की ऋणात्मक सूची में और कटौती की गई तथा इलेक्ट्रॉनिक उद्योग के विनिर्माण में प्रयोग की जाने वाली कुछ वस्तुओं को इसमें से हटा दिया गया। विशेष आयात लाइसेंस के अन्तर्गत आयात की

नोट

जाने वाली वस्तुओं की सूची को व्यापार करने के साथ ही स्वर्ण व चांदी को भी रियायती आयात शुल्क भुगतान करके आयात करने की छूट दी गई। इनके आयात पर उसी दर से विदेशी मुद्रा में आयात शुल्क का भुगतान करने का प्रावधान किया गया जो दर यात्रियों द्वारा इनके आयात के लिए प्रभावी है। इन आयात लाइसेंसों के अन्तर्गत स्वास्थ्य, खेलकूद, संचार व कार्यालय उपकरण तथा कुछ उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं (जो लघु उद्योगों के लिए आरक्षित नहीं हैं) के आयात की अनुमति दी गई।

संशोधित नीति के अनुसार शुल्क छूट योजना को सरलीकृत किया गया तथा निर्यात की जाने वाली 3,383 वस्तुओं के लिए इनपुट-आउटपुट मानक तैयार किये गये जबकि मार्च 1993 में ये 2,200 वस्तुओं के लिए ही थे।

नये आर्थिक सुधारों को प्रभावशील बनाने के उद्देश्य से आयात-निर्यात नीति को अधिक उदार बनाया गया और निर्यातों को प्रोत्साहित करके भुगतान सन्तुलन को अनुकूल बनाने के प्रयास किये गये।

नवीं पंचवर्षीय योजना के लिए भारत की नई आयात-निर्यात नीति (1997&2002) [India's Import-Export Policy (1997-2002) for Ninth fifth Year Planning]

आठवीं योजना में उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के दौर में घोषित निर्यात-आयात नीति के मौलिक उद्देश्यों को जारी रखते हुए नवीं पंचवर्षीय योजना अवधि 1997-2002 के लिए नई आयात-निर्यात नीति (EXIM Policy) की घोषणा 31 मार्च, 1997 को की गई तथा इस नीति को 1 अप्रैल, 1997 से आगामी 5 वर्षों के लिए लागू किया गया।

इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ थीं—

(i) निर्यात की प्रक्रियागत जटिलताओं को कम करते हुए नीति को निर्यातकों के हितों का संरक्षक बनाया गया।

(ii) अभी तक प्रतिबन्धित सूची में शामिल 542 वस्तुओं के आयात को अधिक उदार बनाया गया। इन वस्तुओं में अधिकांश उपभोक्ता वस्तुएँ हैं।

(iii) प्रतिबन्धित सूची में सम्मिलित कार्नफ्लैक्स, जूस, लाइटर्स, कलैण्डर, पोस्टर्स, वैक्यूम फ्लास्क, आदि अनेक उपभोक्ता वस्तुओं को OGL (खुले सामान्य लाइसेंस) श्रेणी में लाया गया। साथ ही अनेक उपभोक्ता वस्तुओं साबुन, शहद, अचार, वाटर कूलर, गुड़ियों (Dolls), खेल के सामान, आदि को **विशेष आयात लाइसेंस** (SIL) की श्रेणी में में लाया गया।

(iv) मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेंस प्रणाली (Vabal) को समाप्त कर दिया गया जबकि मात्रा आधारित अग्रिम लाइसेंस योजना (QBAL) को जारी रखा गया।

(v) पास-बुक योजना में संशोधन करके Duty Entitlement Passbook Scheme (DEPS) लागू की गई जिसके अन्तर्गत निर्यात वस्तुओं के उत्पादन में आवश्यक कच्चे माल/वस्तुओं पर निर्यातकों को अग्रिम कर देने से छूट प्रदान कर दी गई।

(vi) EPCG योजना के अन्तर्गत पूंजीगत वस्तुओं पर आयात शुल्क 15% से घटाकर 10% किया गया।

(vii) कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्रों के लिए शून्य आयात शुल्क वाली EPCG योजना के अन्तर्गत थ्रैसहोल्ड सीमा (Threshold Limit) 20 करोड़ रुपये से घटाकर 5 करोड़ रुपये कर दी गई।

(viii) शून्य आयात शुल्क वाली EPCG योजना का लाभ सेवा क्षेत्र तक भी विस्तृत किया गया।

(ix) कृषि क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के लिए ट्रेडिंग हाउस एवं निर्यात घरानों आदि की पात्रता निर्धारित करते समय कृषि निर्यात को दो गुना भार (Double Weightage) देने की घोषणा की गई।

(x) शुल्क रहित लाइसेंस की वैधता अवधि को 12 मास से बढ़ाकर 18 मास किया गया।

(xi) पांच वस्तुओं के आयात पर पर्यावरणीय सुरक्षा, सामरिक महत्व, सार्वजनिक स्वास्थ्य, तथा सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से प्रतिबन्ध लगाया गया।

(xii) आभूषणों के निर्यात हेतु स्वर्ण का स्टॉक रखने वाली नामांकित इकाइयों की संख्या में वृद्धि कर दी गई।

नोट

(*xiii*) खनिज तेल एवं गैस क्षेत्रों को भी विद्युत क्षेत्र की भांति आभासित निर्यात (Deemed Export) का लाभ प्रदान कर दिया गया।

(*xiv*) सॉफ्टवेयर उद्योग निर्यात हेतु डेटा कम्यूनिकेशन नेटवर्क के प्रयोग की अनुमति दे दी गई।

1997-2002 आयात-निर्यात नीति में संशोधन (Amendment in Import-Export Policy 1997-2002)

नवीं योजनावधि के लिए घोषित आयात-निर्यात नीति में वर्ष 1998-99, 1999-2000, 2000-2001 तथा 2001-2002 के लिए संशोधन प्रस्तुत किये जा चुके हैं–

(A) 13 अप्रैल, 1998 को प्रस्तुत संशोधन (आयात-निर्यात नीति 1998-99)

वाणिज्यमन्त्री ने संशोधित आयात-निर्यात नीति की घोषणा 13 अप्रैल, 1998 को की। इस संशोधित नीति ने पूर्व घोषित 1997-2002 की नीति का स्थान तात्कालिक प्रभाव से ले लिया।

इस संशोधित नीति की प्रमुख विशेषताएँ थीं–

1. 340 अन्य वस्तुओं को प्रतिबन्धित सूची से हटाकर खुले सामान्य लाइसेंस (OGL) श्रेणी के अन्तर्गत लाया गया।
2. निर्यात संवर्द्धन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अन्य प्रतिबन्धों में ढील दी गई है, प्रक्रियागत जटिलताएँ कम की गई हैं, हस्तान्तरण लागत को कम किया गया है और अनेक योजनाओं द्वारा निर्यात क्षेत्र को आकर्षक बनाया गया।
3. EPCG (Export Promotion Capital Goods) के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों की थ्रेसहोल्ड सीमाएँ (Threshold Limits) कम कर दी गई : (*i*) कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र रु. 5 करोड़ से 1 करोड़, (*ii*) इलेक्ट्रॉनिक्स, टेक्सटाइल्स, चमड़ा, रत्न एवं आभूषण, खेल सामान, खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र रु. 20 करोड़ से 1 करोड़, (*iii*) सॉफ्टवेयर क्षेत्र रु. 10 लाख रुपये।
4. निर्यातों में वृद्धि के लिए 500 शीर्ष कम्पनियों से सीधी बातचीत करने का सरकार ने निर्णय लिया गया।
5. उपभोग हेतु किये गये तिलहनों के सभी निर्यातों को मात्रात्मक रूप से एवं लाइसेंसिंग अनिवार्यता से मुक्त कर दिया गया।
6. वर्ष 1998-99 में निर्यातों में 15% वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

(B) 31 मार्च, 1999 को घोषित संशोधन (आयात निर्यात नीति 1999-2000)

1. भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को यथावत् रखते हुए विश्व व्यापार से जुड़ने की प्रतिबद्धता की पुनः घोषणा।
2. आयात से मात्रात्मक प्रतिबन्धों को समाप्त करने की घोषणा।
3. 894 वस्तुओं को प्रतिबन्धित सूची से निकालकर खुली सामान्य लाइसेन्स (O.G.L.) सूची में स्थानान्तरित करने की घोषणा।
4. 414 वस्तुओं को विशेष आयात लाइसेन्स सूची में डालने की घोषणा (प्रतिबन्धित सूची में अब केवल 667 वस्तुएँ शेष)।
5. निर्यात बढ़ाने के लिए अग्रिम लाइसेन्स जारी करने की घोषणा।
6. कृषि वस्तुओं और संशोधित माल के निर्यात से प्रतिबन्धों को हटाने की घोषणा।
7. निर्यातकों की सुविधा के लिए आवेदनों को कम्प्यूटरीकृत करना एवं इलेक्ट्रानिक पत्र-व्यवहार लागू करने की घोषणा।
8. श्रम सम्बन्धी कानूनों को व्यवहारपूर्ण बनाने की घोषणा।
9. बुनियादी सुविधाओं में सुधार लाने की घोषणा।
10. निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए मुक्त व्यापार प्रणाली आरम्भ करने की घोषणा।
11. निर्यात सम्वर्द्धन में राज्यों की भागीदारी सुनिश्चित करने की घोषणा।

नोट

12. निर्यातकों की कठिनाई को दूर करने के लिए मध्यस्थ के रूप में 'ओम्बड्समैन' (लोकपाल) की नियुक्ति की घोषणा।
13. लेनदेन लागत कम करने पर जोर।
14. जुलाई 1999 से देश के सभी निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों (EPZ) को मुक्त व्यापार क्षेत्र (FTZ) में बदलने की घोषणा।
15. शुल्क मुक्त EPCG स्कीम में कई और क्षेत्र सम्मिलित करने की घोषणा।
16. उत्पादन का 50 प्रतिशत निर्यात करने वालों को **ग्रीन कार्ड** देने की घोषणा।
17. निर्यात पूर्व DEPB क्रेडिट एनटाइटलमेन्ट 10 प्रतिशत घोषित।
18. निर्यात गृह, व्यापार गृह, स्टार व्यापार गृह एवं सुपर स्टार व्यापार गृहों के लिए **गोल्डेन स्टेटस** प्रमाण-पत्र जारी करने की घोषणा।
19. EPZ/EOU के लिए 20 प्रतिशत विदेशी मुद्रा अर्जन की शर्त घोषित।
20. केमिकल, प्लास्टिक के लिए EPCG के तहत न्यूनतम सीमा को 20 करोड़ रुपए से घटाकर 1 करोड़ रुपए करने की घोषणा।
21. सेवा क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष पैकेज की घोषणा।
22. पर्यटन, विधि एवं मेडिकल सेवाओं को एक्सपोर्ट हाउस का दर्जा देने की घोषणा।

(C) 31 मार्च, 2000 को घोषित संशोधन (आयात निर्यात नीति 2000-2001)

1. निर्यात में 20% वृद्धि का लक्ष्य।
2. चीन की तर्ज पर विशेष आर्थिक क्षेत्रों (Special Economic Zones—SEZ) की स्थापना।
3. ड्यूटी एनटाइटलमेण्ट पासबुक योजना सन् 2002 तक बनाये रखने की घोषणा।
4. WTO के साथ वचनबद्धता का पालन करते हुए 714 वस्तुओं को मात्रात्मक प्रतिबन्धित सूची से हटाने की घोषणा।
5. घरेलू उद्योग को शुल्क संरक्षण और (Anti-Dumping) तथा सब्सिडी विरोध प्रणाली के तहत सुरक्षा जारी रखने की घोषणा।
6. गुजरात के पीयापख और तमिलनाडु के तूतीकोरिन में विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) स्थापित करने की घोषणा।
7. मुम्बई, कांडला, विशाखापत्तनम् और कोच्चि स्थित वर्तमान निर्यात प्रसंस्करण जोन को विशेष आर्थिक जोन में बदलने की घोषणा।
8. विशेष आयात लाइसेंस को 1 अप्रैल 2001 तक समाप्त करने की घोषणा।
9. राज्य सरकारों द्वारा किये जाने वाले निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए 250 करोड़ रुपए की राशि का कोष स्थापित करने की घोषणा।
10. सरकार ने प्राथमिकता वाले उद्योगों में विदेशी इक्विटी की अधिकतम सीमा 40% से बढ़ाकर 51% करने की घोषणा।

आयात-निर्यात नीति 2002-07 (Import-Export Policy-2002-07)

भारत सरकार ने 31 मार्च, 2002 को दसवीं पंचवर्षीय योजना काल (2002-2007) के लिए आयात-निर्यात नीति घोषित की है। इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **निर्यात पर लगे मात्रात्मक प्रतिबन्धों में ढील**—कुछ वस्तुओं को छोड़ कर निर्यात पर लगे सभी मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिए गए हैं।
2. **कृषि निर्यात पर जोर**—इस नीति के विभिन्न कार्य उत्पादों के निर्यात पर परिवहन सहायता देने के अतिरिक्त,

नोट

उस पर लगे विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध उठा लिए गए हैं। जैसे रूस को निर्यात किए जाने वाले मक्खन, गेहूँ व गेहूँ से बने पदार्थ, मोटे अनाज, मूँगफली का तेल तथा काजू पर पंजीकरण और पैकिंग का प्रतिबन्ध उठा लिया गया है।

3. **कुटीर एवं हस्तशिल्प को प्रोत्साहन**–कुटीर एवं हस्तशिल्प को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कुछ स्थानों पर स्थापित उद्योगों को विशेष रियायतें दी गई हैं; जैसे तिरुपुर से हौजरी, पानीपत से ऊनी कम्बल और लुधियाना से बने हुए ऊनी कपड़ों के निर्यात को काफी प्रोत्साहन दिया गया है।
4. **इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर उद्योग**–इस उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए इस नीति में प्रौद्योगिकी पार्क स्कीम को संशोधित किया गया है।
5. **भारतीय दूतावासों में व्यावसायिक केन्द्रों की स्थापना**–इस नीति में कहा गया है कि सभी महत्वपूर्ण दूतावासों में व्यावसायिक केन्द्रों की स्थापना की जायेगी जिससे कि वे उस देश से विदेशी व्यापार बढ़ा सकें।
6. **विशेष आर्थिक क्षेत्रों (S.E.Z.) की स्थापना**–विभिन्न राज्यों में विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित किए जायेंगे। जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी और इनसे निर्यात किए गए मालों पर कोई शुल्क नहीं लिया जायेगा। इस क्षेत्र में किसी वस्तु के आयात के लिए कोई लाइसेन्स लेना आवश्यक नहीं होगा। ऐसे कच्चे माल, पूंजीगत माल, स्पेयर पार्ट्स जो देश के भीतर से ही क्रय किए जायेंगे उन पर केन्द्रीय उत्पादन शुल्क नहीं लगेगा।
7. **अफ्रीकी क्षेत्रों पर जोर**–इस नीति में अफ्रीकी क्षेत्रों को निर्यात बढ़ाने पर जोर दिया गया है। इसके लिए बनाए गए कार्यक्रम के प्रथम चरण में नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, केन्या, इथोपिया, तंजानिया और घाना सहित देशों में निर्यात बढ़ाने पर जोर दिया गया है। इन देशों में पांच करोड़ रुपए तक का निर्यात करने वालों को एक्सपोर्ट हाउस का दर्जा दिया गया है।
8. **आभूषण उद्योग को प्रोत्साहन**–आभूषण उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए गैर तराशे गए हीरों पर सीमा शुल्क घटाकर शून्य कर दिया गया है तथा इनके लिए लाइसेन्स प्रणाली भी समाप्त कर दी गई है।
9. **अन्य प्रमुख विशेषताएं**–(*i*) बैंकों को विदेशी कारोबार शाखाएँ खोलने की अनुमति दी गई है। (*ii*) हस्तशिल्प क्षेत्र के निर्यात पर शुल्क समाप्त कर दिया गया है। (*iii*) जूट और प्याज को छोड़कर सभी कृषि योग्य बीजों के निर्यात पर लगी रोक समाप्त कर दी गई है। (*iv*) नए कारोबारियों को बिना जांच व बैंक गारन्टी के लाइसेन्स प्रदान करने की व्यवस्था है।

टास्क अनुमानित निर्यातक (Deemed Exporters) से आप क्या समझते हैं?

भारत की नवीन विदेश व्यापार नीति (2004-09) [India's New Foreign Trade Policy (2004-09)]

भारत सरकार ने 31 अगस्त, 2004 को वर्ष 2002-07 की विदेशी व्यापार नीति के स्थान पर वर्ष 2004-09 के लिए नवीन विदेश व्यापार नीति घोषित की है। इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

कृषि

निर्यात को बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र के लिए एक विशेष कृषि उपज योजना बनाई गई है। फल-सब्जी, फूल, लघु वन उत्पादों व इनके मूल्य सम्वर्द्धित उत्पादों के निर्यात के लिए विशेष कृषि उपज योजना का प्रावधान किया गया है। इसमें निर्यात सम्वर्द्धन के लिए पूंजीगत वस्तु के आयात में छूट की ईपीसीजी योजना के तहत मशीनों के शुल्क मुक्त आयात की सुविधा दी गई है। कृषि निर्यात क्षेत्र की इकाइयों के लिए ईपीसीजी योजना के आयातित मशीनों को कहीं भी लगाने की छूट दी गई है। राज्यों को निर्यात उद्योगों के लिए बुनियादी सुविधाओं के विकास के लिए एएसआईडीई योजना के धनराशि को एईजेड में लगाने की अनुमति दी गई है। निर्यात के लिए गुणवत्ता के उत्पाद

नोट

पैदा करने के उद्देश्य से बीज, कन्द और रोपाई की सामग्री की आयात व्यवस्था उदार बनाई गई है। जड़ी, बूटियों और औषधिक उत्पादों का निर्यात बढ़ाने के लिए पौधों के अंशों उसके व्युत्पादों, सत के आयात में ढील दी गई है।

शिल्पकारी

सरकार द्वारा **हस्तशिल्प** इकाइयों के लिए किए गए प्रयासों में एक विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना का प्रस्ताव है। उत्पादन में लगने वाली छोटी-मोटी चीजों का आयात सस्ता करने के लिए निर्यात माल के कुल मूल्य के पाँच प्रतिशत के बराबर सामान के शुल्क पर मुक्त आयात करने की छूट। ऐसी वस्तुओं पर काउण्टर वेलिंग शुल्क सीवीडी नहीं लगेगा। छोटे निर्यातकों के लिए इन छोटी-मोटी वस्तुओं का आयात हस्तशिल्प निर्यात संवर्द्धन परिषद कर सकेगी।

चमड़ा उत्पाद

चमड़ा और जूते चप्पल के निर्यात माल के एफओबी मूल्य के 3 प्रतिशत के बराबर कतरन और अन्य छोटे-मोटे सामान का शुल्क आयात मुक्त कर दिया गया है। कुछ चिन्हित वस्तुओं के मामले में आयात-निर्यात मूल्य को 5 प्रतिशत तक किया जा सकता है। चमड़ा उद्योग के लिए कचरा शोधन संयन्त्रों की मशीनों पर शुल्क माफ कर दिया गया है।

रत्न व आभूषण

रत्न आभूषण निर्यातकों के लिए निर्यात मूल्य के 2 प्रतिशत के बराबर उत्पादन में सहायक धातुओं पर कर मुक्त आयात की छूट दी गई है। सोना या प्लेटिनम पर यह छूट नहीं है। निर्यात मूल्य के 2 प्रतिशत के बराबर के आभूषणों को लौटाए गए आभूषण की मद के अन्तर्गत शुल्क मुक्त आयात की छूट दी गई है। एक लाख रुपए तक के नमूने के आभूषणों का आयात शुल्क मुक्त कर दिया गया है। रीप्लेनिश योजना के अन्तर्गत 18 कैरेट या उससे ऊपर की शुद्धता का सोना आयात करने की छूट।

सुविधाएँ

निर्यातित सामान और सेवाओं को सेवा कर से मुक्त करने की घोषणा की गई है। इसमें घरेलू शुल्क क्षेत्र डीटीए से निर्यात होने वाले सामान और सेवाओं को भी छूट मिलेगी। इसके अलावा निर्यात कारोबार का अच्छा रिकार्ड रखने वाले निर्यातकों जिनमें कम से कम 5 करोड़ रुपए का निर्यात करने वाले निर्यातक शामिल होंगे को बैंक गारन्टी की अनिवार्यता से भी छूट दी जाएगी ताकि उनके कारोबार लागत में कमी आए। ऐसे निर्यातकों को बैंक गारन्टी की छूट सभी निर्यात प्रोत्साहन योजनाओं के तहत उपलब्ध होगी।

अन्य विशेषताएँ

(*i*) विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी को अगले पाँच वर्षों में दो गुना करने अर्थात् विश्व व्यापार का 1.5 प्रतिशत हिस्सा पाने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए निर्यात व्यापार में प्रतिवर्ष 20-21 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी।

(*ii*) कृषि और सेवा क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया है।

(*iii*) विशेष आर्थिक क्षेत्र, बायो-टेक्नोलॉजी पार्कों और सेवा क्षेत्र को विशेष बढ़ावा देने के लिए सेवा निर्यात संवर्द्धन परिषद की स्थापना की जाएगी।

(*iv*) निर्यातकों के साथ विचार-विमर्श करने के बाद दी ड्यूटी एनटाइटेलमेंट पास बुक स्कीम की जगह नई स्कीम लाई जाएगी, तब तक यह योजना जारी रहेगा।

(*v*) ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी इलाकों में ऐसे विशेष क्षेत्रों की पहचान की गई है जिनसे निर्यात में वृद्धि होने के साथ ही लोगों को रोजगार भी मिल सकेंगे। इसके लिए रणनीतिक योजना भी तैयार की गई है।

(*vi*) निर्यात वृद्धि की न्यूनतम सीमा 250 करोड़ रुपए वाले नए कस्बों को अधिसूचित किया जाएगा।

नोट

विदेश व्यापार (2004-09) की वार्षिक पूरक नीति 2005-06 (Anual Complimentary Policy 2005-06 of Foreign Trade (2004-09)]

(*i*) केन्द्र सरकार द्वारा 8 अप्रैल, 2005 को विदेश व्यापार (2004-09) की वार्षिक पूरक नीति 2005-06 जारी की गई, जिसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(*ii*) वर्ष 2005-06 के निर्यात लक्ष्य को बढ़ाकर 92 करोड़ रुपए कर दिया गया है। वर्ष 2004-05 में भारत का निर्यात बढ़कर 80 अरब डॉलर तथा आयात बढ़कर 105 अरब डॉलर हो गया।

(*iii*) वर्ष 2004-05 में निर्यात के कारण दस लाख लोगों को रोजगार मिले। इसके अतिरिक्त 14 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिले।

(*iv*) कृषि निर्यात को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सभी कृषि व पौध जिंसों के निर्यात पर अधिभार को समाप्त करना प्रस्तावित है।

(*v*) भारतीय चाय की ब्राण्ड इक्विटी को कायम रखने के लिए क्वालिटी के निर्धारित नियमों का पालन करना अनिवार्य होगा।

(*vi*) विशेष कृषि उपज योजना के अन्तर्गत डेयरी उत्पादों और उनके मूल्य वर्द्धित उत्पादों के लिए भी खास सुविधाएँ दी गई हैं।

(*vii*) सुनामी के कारण समुद्री उत्पाद क्षेत्र के आधुनिकीकरण के लिए एक नया पैकेज बनाया गया है। इससे टुना फिशिंग को बढ़ावा मिलेगा। टुना फिशिंग के लिए मोनी फिलामेन्ट लांग लाइन प्रणाली का आयात किया जा सकेगा।

(*viii*) शीघ्र ही नष्ट होने वाले सामानों के कूड़े को हटाने की प्रक्रिया को सरल बना दिया गया है।

(*ix*) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में राज्यों की भागीदारी बढ़ाने के लिए अन्तर्राज्यीय व्यापार परिषद बनाने की योजना तैयार की गई है।

(*x*) ड्यूटी एन्टायटिलमेन्ट पासबुक स्कीम फिलहाल जारी रहेगी।

(*xi*) विनिर्माण क्षेत्र में स्पर्धात्मकता बढ़ाने के उपाय किए गए हैं। इससे भारतीय कम्पनियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्पधर्त्मिक बन सकेंगी और साथ ही भारतीय उपभोक्ताओं को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उत्पाद और सेवाएँ दे सकेंगी। इससे रोजगार के अवसर भी पैदा होंगे।

(*xii*) वूलमार्क और सिल्कमार्क की तर्ज पर हैण्डलूम के लिए भी एक ट्रेडमार्क बनाने का निर्णय किया है।

(*xiii*) निर्यात में युवाओं और महिला उद्यमियों की भागीदारी बढ़ाने के लिए सभी निर्यात संवर्द्धन परिषदों में एक अलग विभाग बनाने का निर्णय किया गया है।

(*xiv*) रत्न और आभूषण क्षेत्र के लिए ड्यूटी फ्री नमूने को बढ़ाकर अब 3 लाख रुपया कर दिया गया है।

(*xv*) आयात-निर्यात नामक एक सरल फार्म शुरू किया गया है जिससे कागजी कार्रवाई का बोझ 60 प्रतिशत घट जाएगा।

(*xvi*) तीन लाइसेन्सों के स्थान पर अब एक वार्षिक एडवांस लाइसेन्स शुरू किया जा रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)—

1. किस पंचवर्षीय योजना में निर्यातकों की एक नई श्रेणी 'सुपर स्टार ट्रेडिंग हाऊस' की स्थापना की गई—
   (क) दूसरी योजना (ख) चौथी योजना (ग) सातवीं योजना (घ) आठवीं योजना।
2. सुपर स्टार ट्रेडिंग हाऊस की मान्यता हासिल करने के लिए निर्यात गृहों का औसत निर्यात लक्ष्य कितने करोड़ रुपये रखा गया—
   (क) 730 करोड़ (ख) 740 करोड़ (ग) 750 करोड़ (घ) 765 करोड़।

3. नवीं पंचवर्षीय योजना में निर्यात संवर्द्धन पूँजीगत सामान (EPCG) योजना के अंतर्गत पूँजीगत वस्तुओं पर आयात शुल्क 15% से घटाकर कितने प्रतिशत कर दिया गया—

   (क) 5% (ख) 7% (ग) 8% (घ) 10%

4. नवीं पंचवर्षीय योजना में शुल्क रहित लाइसेंस की वैधता अवधि को 12 महीने से बढ़ाकर कर दिया गया—

   (क) 14 महीने (ख) 16 महीने (ग) 18 महीने (घ) 20 महीने।

5. खनिज तेल एवं गैस क्षेत्र को भी विद्युत क्षेत्र की भांति आभासित नियति (Deemed Export) का लाभ किस पंचवर्षीय योजना में दिया गया—

   (क) पाँचवीं (ख) सातवीं (ग) नौवीं (घ) दसवीं।

29.2 सारांश (Summary)

- **उद्देश्य—**प्रारम्भ से ही हमारी व्यापार नीति के निम्न उद्देश्य रहे हैं—

  (*i*) केवल आवश्यक वस्तुओं का ही आयात करना।

  (*ii*) आयात-प्रतिस्थापित वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना करना एवं उनके लिए आवश्यक कच्चे माल की देश में व्यवस्था करना।

  (*iii*) निर्यात प्रोत्साहित करने वाले उद्योगों को बढ़ावा देना।

  (*iv*) निर्यात क्षेत्र में अतिरेक का सृजन कर निर्यातों की वृद्धि करना। एवं

  (*v*) घरेलू बाजार में उचित कीमतों पर वस्तुओं का समान एवं न्यायपूर्ण वितरण करना।

  संक्षेप में, व्यापार-नीति का उद्देश्य आयातों को सीमित करना एवं निर्यातों को प्रोत्साहित करना रहा है।

- द्वितीय योजनाकाल (1956-61) में विदेशी विनिमय संकट को दृष्टि में रखते हुए आयातों पर कठोर नियन्त्रण लगाये गये। उदार लाइसेन्सिंग नीति के स्थान पर वास्तविक प्रयोगकर्ताओं की प्राथमिकता की प्रणाली अपनायी गयी। अनावश्यक वस्तुओं के आयात को पूर्ण रूप से निषिद्ध कर दिया गया। आयात नीति की यह विशेषता थी कि आयातों को घरेलू उत्पादन के साथ सम्बन्धित किया गया।

- तीसरी योजना अवधि में आयातों को और अधिक नियन्त्रित कर दिया गया पर देश में युद्ध की स्थिति होने के कारण रक्षा सामग्री के आयातों को प्राथमिकता दी गयी। मशीनों और महत्वपूर्ण उपकरणों को आयात करने के सम्बन्ध में सरकार ने चयनात्मक आयात नियन्त्रण नीति का सहारा लिया।

- अप्रैल 1992 में एक पंचवर्षीय आयात-निर्यात नीति की घोषणा की गई जिसका मुख्य उद्देश्य आयात-निर्यात की स्वतन्त्रता है। नई नीति में लाइसेंस प्रणाली को लगभग समाप्त कर दिये जाने से पूंजीगत साधनों और कच्चे माल के आयात पर लाइसेंस की छूट दी गई। नई नीति में आठ वस्तुओं का आयात सरकारी एजेंसी के माध्यम से करने का प्रावधान किया गया जिनमें पेट्रोलियम, उर्वरक, खाद्य तेल, अनाज, आदि शामिल हैं।

- 30 मार्च, 1994 को आठवीं योजना (1992-97) की आयात-निर्यात नीति को और अधिक उदार बनाने की घोषणा की गई जिसे तत्काल प्रभाव से लागू किया गया। इस नीति में निर्यातों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निर्यातकों की एक नई श्रेणी **'सुपर स्टार ट्रेडिंग हाउस'** की रचना की गई। सुपर स्टार ट्रेडिंग हाउस की मान्यता उन्हीं निर्यात गृहों को देने का प्रावधान किया गया जिनका विगत तीन वर्षों में औसत निर्यात 750 करोड़ रुपये का रहा हो अथवा विगत वर्ष में निर्यात एक हजार करोड़ रुपये का रहा हो।

- आठवीं योजना में उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के दौर में घोषित निर्यात-आयात नीति के मौलिक उद्देश्यों को जारी रखते हुए नवीं पंचवर्षीय योजना अवधि 1997-2002 के लिए नई आयात-निर्यात नीति (EXIM Policy) की घोषणा 31 मार्च, 1997 को की गई तथा इस नीति को 1 अप्रैल, 1997 से आगामी 5 वर्षों के लिए लागू किया गया।

नोट

- भारत सरकार ने 31 अगस्त, 2004 को वर्ष 2002-07 की विदेशी व्यापार नीति के स्थान पर वर्ष 2004-09 के लिए नवीन विदेश व्यापार नीति घोषित की है।
- निर्यात को बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र के लिए एक विशेष कृषि उपज योजना बनाई गई है। फल-सब्जी, फूल, लघु वन उत्पादों व इनके मूल्य सम्वर्द्धित उत्पादों के निर्यात के लिए विशेष कृषि उपज योजना का प्रावधान किया गया है। इसमें निर्यात सम्वर्द्धन के लिए पूंजीगत वस्तु के आयात में छूट की ईपीसीजी योजना के तहत मशीनों के शुल्क मुक्त आयात की सुविधा दी गई है। कृषि निर्यात क्षेत्र की इकाइयों के लिए ईपीसीजी योजना के आयातित मशीनों को कहीं भी लगाने की छूट दी गई है।
- सरकार द्वारा **हस्तशिल्प** इकाइयों के लिए किए गए प्रयासों में एक विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना का प्रस्ताव है।
- निर्यातित सामान और सेवाओं को सेवा कर से मुक्त करने की घोषणा की गई है। इसमें घरेलू शुल्क क्षेत्र डीटीए से निर्यात होने वाले सामान और सेवाओं को भी छूट मिलेगी। इसके अलावा निर्यात कारोबार का अच्छा रिकार्ड रखने वाले निर्यातकों जिनमें कम से कम 5 करोड़ रुपए का निर्यात करने वाले निर्यातक शामिल होंगे को बैंक गारन्टी की अनिवार्यता से भी छूट दी जाएगी ताकि उनके कारोबार लागत में कमी आए। ऐसे निर्यातकों को बैंक गारन्टी की छूट सभी निर्यात प्रोत्साहन योजनाओं के तहत उपलब्ध होगी।

29.3 शब्दकोश (Keywords)

- **सब्सिडी**—सरकार द्वारा किसी भी सेवा पर दी जाने वाली छूट।
- **निर्यात**—व्यापार के लिए दूसरे देश को बेची जाने वाली वस्तु।
- **आयात**—विदेश से मँगाई जाने वाली वस्तु।

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार द्वारा अपनायी गयी विदेश व्यापार नीति की विवेचना कीजिए।
2. क्या भारत सरकार अपनी विदेश व्यापार नीति से निर्यात संवर्द्धन में सफल हो पायी है? वर्णन कीजिए।
3. भारत की नवीन विदेश व्यापार नीति क्या है? विश्लेशणात्मक विवेचन करें।
4. वर्तमान संदर्भ में आयात-निर्यात नीति का समीक्षात्मक वर्णन करें।
5. सेज (SEZ) क्या है? संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. (घ)	2. (ग)	3. (घ)	4. (ग)
5. (ग)			

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

नोट

इकाई—30: भारत का भुगतान-सन्तुलन (India's Balance of Payment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 भारत का भुगतान-संतुलन (India's Balance of Payment)

30.2 सारांश (Summary)

30.3 शब्दकोश (Keywords)

30.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

30.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भारत के भुगतान-संतुलन का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भुगतान शेष एक विवरण है जिसमें कि एक निश्चित समयावधि (प्राय: एक वर्ष) में दूसरे देश के साथ किए गए सभी लेन-देनों का विवरण, अदृश्य मदों से प्राप्त एवं उनके लिए किए गए भुगतान तथा एक पक्षीय प्राप्तियां जैसे दान आदि शामिल होते हैं। इस प्रकार भुगतान में व्यापार शेष भी शामिल है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत का भुगतान शेष सदैव उसके पक्ष में ही रहता था लेकिन 1948 में पहली बार भारत का भुगतान 100 करोड़ रुपये से उसके प्रतिकूल था तथा 1949 में यह 149 करोड़ रुपये प्रतिकूल था। इसका मुख्य कारण भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात, कच्चे माल, मशीनें व अन्य भारी पूंजीगत माल का आयात था। 1949 में भारतीय रुपये का अवमूल्यन करने के पश्चात् स्थिति में सुधार हुआ। भारत के निर्यात बढ़े व आयात कम हुए। इसका कारण कोरिया युद्ध के कारण भारतीय माल की विदेशों में मांग करने के कारण निर्यातों में वृद्धि हुई जिसके कारण 1950-51 में भारत का भुगतान शेष 38.9 करोड़ रुपये उसके पक्ष में था।

30.1 भारत का भुगतान-सन्तुलन (India's Balance of Payment)

भुगतान-सन्तुलन से अर्थ देश के समस्त आयातों एवं निर्यातों तथा अन्य सेवाओं के मूल्यों के सम्पूर्ण विवरण से है जो एक निश्चित अवधि के लिए बनाया जाता है। इसमें देश की विदेशी मुद्रा की लेनदारियों का ब्यौरा होता है।

भुगतान-सन्तुलन की अनेक परिभाषाएँ हैं जिनमें से प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) **प्रो. बेनहम** (Benham) के मत में, **''किसी देश का भुगतान-सन्तुलन उसका शेष विश्व के साथ एक समय की अवधि में किये जाने वाले मौद्रिक लेन-देन का विवरण है, जबकि एक देश का व्यापार-सन्तुलन एक निश्चित अवधि में इसके आयातों एवं निर्यातों के बीच संबंध है।''**

नोट

(2) **प्रो. क्रॉसे** (Krause) के शब्दों में, **''किसी देश का भुगतान-सन्तुलन उनके निवासियों तथा शेष विश्व के निवासियों के बीच दी हुई साधारण रूप से एक वर्ष की अवधि में पूर्ण किये गये समस्त आर्थिक लेन-देन का एक व्यवस्थित विवरण या लेखा है।''**

(3) **प्रो. हैबरलर** (Heberler) के अनुसार, ''भुगतान-सन्तुलन से अर्थ किसी दी हुई अवधि में विदेशी मुद्रा की खरीदी व बेची गयी मात्रा से है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि **भुगतान-सन्तुलन से अर्थ एक देश के निवासियों का अन्य देश के निवासियों से हुए उस मौद्रिक लेन-देन से है जो कि एक निश्चित अवधि में हुए हैं।**

भुगतान-सन्तुलन एवं व्यापार-सन्तुलन में अन्तर (Difference Between Balance of Payment & Balance of Trade)

भुगतान-सन्तुलन व व्यापार-सन्तुलन में निम्न अन्तर पाया जाता है :

(1) भुगतान-सन्तुलन व व्यापार-सन्तुलन में अन्तर है। व्यापार-सन्तुलन में आयात-निर्यात का विवरण रहता है, जबकि भुगतान-सन्तुलन में आयात-निर्यात के विवरण के साथ-साथ सेवाओं, पूँजी व स्वर्ण, आदि के आयात व निर्यात को भी शामिल किया जाता है। आयात-निर्यात दृश्य (Visible) व अदृश्य (Invisible) दो प्रकार का होता है। दृश्य में केवल माल व वस्तुओं के आयात-निर्यात को रखा जाता है, जबकि अदृश्य में उन सेवाओं, स्वर्ण, पूंजी, आदि का आयात-निर्यात रखा जाता है जिसका यद्यपि भुगतान तो होता है, लेकिन उसका कोई लेखा बन्दरगाहों पर नहीं होता है। इस प्रकार **व्यापार-सन्तुलन में दृश्य मदों को रखा जाता है, जबकि भुगतान-सन्तुलन में दृश्य व अदृश्य दोनों को।**

(2) व्यापार-सन्तुलन की तुलना में भुगतान-सन्तुलन शब्द अधिक व्यापक है। व्यापार-सन्तुलन भुगतान-सन्तुलन का एक अंग है।

(3) किसी देश का व्यापार-सन्तुलन पक्ष में न होना कोई अधिक चिंता का विषय नहीं है, लेकिन यदि भुगतान-सन्तुलन देश के पक्ष में नहीं है तो यह चिन्ता का विषय है, क्योंकि इसके परिणाम द्रुतगामी होते हैं।

(4) सामान्यतया व्यापार-सन्तुलन अनुकूल या प्रतिकूल हो सकता है, लेकिन भुगतान-सन्तुलन सदा ही सन्तुलित रहता है।

क्या आप जानते हैं व्यापार-सन्तुलन में दृश्य मदों को रखा जाता है, जबकि भुगतान-सन्तुलन में दृश्य व अदृश्य दोनों को।

भुगतान-सन्तुलन की मदें (Items of Balance of Payment)

भुगतान-सन्तुलन एक प्रकार का विवरण या खाता है जिसके दो भाग होते हैं। एक भाग में निर्यात से प्राप्त आय व अन्य प्राप्त आय लिखी जाती है, जबकि दूसरे भाग में आयात के भुगतान तथा अन्य सेवाओं, आदि के आयात के भुगतान को लिखा जाता है। इस प्राप्तियों व भुगतानों को दो भागों में बाँटा जाता है–

(1) चालू खाता (Current Account) व (2) पूंजीगत खाता (Capital Account)।

(1) **चालू खाते** में, (*i*) व्यापार-सन्तुलन (Trade Balance); (*ii*) अदृश्य मदें (Invisible) जैसे सेवाओं का आयात-निर्यात, विदेशी यात्रा, परिवहन, बीमा व विनियोगों, आदि से आय व (*iii*) गैर-मौद्रिक स्वर्ण की गतिशीलता (Non-monetary Gold Movement) शामिल की जाती है।

नोट

भुगतान-सन्तुलन का विवरण

लेनदारी या समाकलन (Receipts or Credits) (दृश्य एवं अदृश्य मदें)	देनदारी या विकलन (Payments or Debits) (दृश्य एवं अदृश्य मदें)
1. वस्तुओं के निर्यात का मूल्य	1. वस्तुओं के आयात का मूल्य
2. सेवाओं के निर्यात से प्राप्त आय	2. सेवाओं के आयात के लिए किया गया भुगतान
3. विदेशी ऋणों पर प्राप्त आय व मूलधन की वापसी	3. विदेशों से प्राप्त धन पर ब्याज का भुगतान व मूलधन की वापसी
4. विदेशी विनियोगों की वापसी तथा उन पर प्राप्त लाभांश	4. विदेशियों द्वारा किये गये विनियोगों की वापसी तथा उन पर लाभांश की वापसी
5. विदेशी सरकारों द्वारा व्यय	5. देश की सरकार द्वारा विदेशों में व्यय
6. विदेशी पर्यटकों एवं छात्रों द्वारा व्यय	6. देश के पर्यटकों एवं छात्रों द्वारा विदेशों में व्यय
7. जनसंख्या के आवास से प्राप्त होने वाला धन	7. जनसंख्या के प्रवास से विदेशियों को किये जाने वाले भुगतान
8. विदेशों से प्राप्त दंड, मुआवजा, उपहार, दान व युद्ध संबंधी व्यय	8. विदेशों को दिया जाने वाला दंड, मुआवजा, उपहार, दान व युद्ध संबंधी व्यय

(2) **पूंजीगत खाते** में *(i)* निजी प्राप्तियाँ व निजी भुगतान, *(ii)* सरकारी प्राप्तियाँ व सरकारी भुगतान, *(iii)* विदेशी ऋणों के ब्याज व मूलधन का भुगतान, *(iv)* अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I.M.F.) से रुपयों की खरीद व *(v)* बैंकिंग पूंजी की शुद्ध राशियाँ शामिल की जाती हैं।

टास्क भुगतान संतुलन के संबंध में चालू खाते एवं पूँजीगत खाते से आप क्या समझते हैं?

भुगतान-शेष में घाटा व अतिरेक (Deficit and Surplus in Balance of Payments)

साधारण भुगतान-शेष सन्तुलित रहता है, लेकिन जब चालू खाते की बाकी व पूंजीगत सौदों की शुद्ध राशियों की बाकी को जोड़कर जो राशि आती है वह भुगतान-सन्तुलन खाते के कुल घाटे या बचत को दर्शाती है। जब कुल प्राप्तियाँ कम व कुल भुगतान अधिक हों तो इसे घाटा कहते हैं जिसकी पूर्ति कई साधनों से की जाती है जिसका विवरण नीचे दिया गया है। इसके विपरीत, यदि कुल प्राप्तियाँ अधिक व भुगतान कम हैं तो इसे बचत या अतिरेक (Surplus) कहते हैं।

भारत को अर्थिक नियोजन के प्रारम्भ से ही भुगतान-सन्तुलन के घाटे से जूझना पड़ा है। ये घाटे एक योजना से दूसरी योजना में बढ़ते ही चले गये हैं।

भारत के भुगतान संतुलन की दशा—योजनाकाल में भारत के भुगतान संतुलन की दशा को निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रथम योजनावधि (1951-56)—इस योजना में भुगतान शेष की स्थिति संतोषजनक थी। विदेशी व्यापार घाटा यद्यपि 542 करोड़ रुपये का था, किन्तु अदृश्य मदें धनात्मक रहने के कारण चालू खाते के भुगतान शेष में यह घाटा मात्र 42 करोड़ रुपये का था।

द्वितीय योजनावधि (1956-61)—इस योजनावधि में निर्यातों में वांछनीय वृद्धि न होने के कारण व्यापार का कुल घाटा 2,338 करोड़ रुपये था, किन्तु अदृश्य मदों से 614 करोड़ रुपये की आय होने से भुगतान शेष का घाटा 1.725 करोड़ रुपये था।

तीसरी योजनावधि (1961-66)–इस योजनावधि में भारी मात्रा में आयात किये जाने के कारण कुल घाटा 2,384 करोड़ रुपये था। इसी अवधि में शुद्ध अदृश्य मदों से 432 करोड़ रुपये की आय होने के कारण भुगतान शेष का कुल घाटा 1,952 करोड़ रुपये था।

वार्षिक योजनावधि (1966-69)–इस अवधि में भुगतान शेष की प्रतिकूलता जारी रही और व्यापार का कुल घाटा 2,067 करोड़ रुपये था। इस अवधि में अदृश्य मदों से 52 करोड़ रुपये का अतिरेक प्राप्त हुआ जिसके कारण भुगतान शेष का कुल घाटा 2,015 करोड़ रुपये रह गया।

चौथी योजनावधि (1869-74)–इस योजनावधि के वर्ष 1972-73 में भारत का व्यापार शेष अनुकूल (अर्थात् धनात्मक) था। इस अवधि में सरकार ने आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यात संवर्द्धन के लिए अनेक कदम उठाए।

पाँचवीं योजनावधि (1974-79)–इस योजनावधि के वर्ष 1976-77 में पुनः देश का व्यापार शेष अनुकूल रहा। इस योजना के आरम्भिक दो वर्षों में निर्यात में काफी वृद्धि हुई और 1974-75 में निर्यात 3,329 करोड़ रुपये था जो 1975-76 में बढ़कर 4,036 करोड़ रुपये हो गया। वर्ष 1977-78 में देश का कुल निर्यात 5,408 करोड़ रुपये था। इस अवधि में प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रेषित धनराशि से भारत के भुगतान शेष को काफी सहारा मिला जिससे भारत ने योजनाकाल के अन्तिम दो वर्षों में IMF को 551 करोड़ रुपये का भुगतान कर दिया।

छठी योजनावधि (1980-85)–इस अवधि में बड़ी मात्रा में खनिज तेल, लोहा, इस्पात, मशीन आदि का आयात किये जाने के कारण भारत का आयात बिल 12,549 करोड़ रुपये से बढ़कर 1984-85 में 17,134 करोड़ रुपये हो गया। पूरी योजनावधि में व्यापार का कुल घाटा 28,580 करोड़ रुपये था, किन्तु इसी अवधि में अदृश्य मदों (अनुदान छोड़कर) से वास्तविक प्राप्ति 16,500 करोड़ रुपये रही जिससे भुगतान शेष में शुद्ध घाटा 11,667 करोड़ रुपये रहा।

सातवीं योजनावधि (1985-90)–इस योजनावधि में आयातों में भारी वृद्धि हुई। वर्ष 1985-86 का आयात बिल जो 19,658 करोड़ रुपये था, 1989-90 में बढ़कर 35,328 करोड़ रुपये हो गया। इस अवधि में यद्यपि निर्यातों में भी सुधार हुआ लेकिन भुगतान शेष की स्थिति में वांछनीय सुधार नहीं किया जा सका।

आठवीं योजनावधि (1992-97)–इस योजनावधि में भुगतान शेष के चालू खाते का घाटा 1992-93 के स्तर 12,763 करोड़ रुपये से बढ़कर 1996-97 में 15,839 करोड़ रुपये हो गया। इस अवधि में देश में आर्थिक सुधार कार्यक्रम शृंखला लागू की गई और 1993-94 के बजट प्रस्ताव में भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता की समस्या के समाधान के लिए दोहरी विनिमय दर प्रणाली (Double Exchange Rate System) को समाप्त करके उसके स्थान पर एकल विनिमय दर लागू करके रुपये को चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया।

सरकार भारतीय रुपये की पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता के लिए भी प्रयासरत है। इस दिशा में उपाय सुझाने के लिए RBI ने 28 फरवरी, 1997 को **एस.एस. तारापोर** की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने अपनी रिपोर्ट **मई** 1997 में प्रस्तुत कर दी। समिति ने 1999-2000 तक तीन चरणों में रुपये को पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय करने की सिफारिश की थी।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान इस योजना में भुगतान शेष का घाटा क्रमशः बढ़ता गया। 1997-98 में यह घाटा 24,078 करोड़ रुपये का था जो 1999-2000 में बढ़कर 55,675 करोड़ रुपये हो गया। वर्ष 2000-01 में यह कुछ सुधर कर 27.302 करोड़ रुपये हो गया। लेकिन 2001-02 में यह फिर बढ़कर 36,182 करोड़ रुपये हो गया। नौवीं योजना के अन्तिम वर्ष में विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) बनाकर निर्यातों को बढ़ाकर भुगतान शेष को अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) के दूसरे वर्ष 2003-04 में भारत का विदेशी व्यापार 6,52,475 करोड़ रु. तक पहुँच गया। (निर्यात मूल्य 2,93,367 करोड़ रुपये + आयात मूल्य 3,59,108 करोड़ रुपये रुपए) इस प्रकार इस वर्ष भारत का व्यापार घाटा 37,173 करोड़ रुपये रहा।

भुगतान-असन्तुलन के कारण (Causes of Unfavourable Payment)

भारत के भुगतान असन्तुलन के अनेक कारण हैं, जिनमें प्रमुख कारण निम्न हैं–

(1) **पेट्रोलियम पदार्थों के आयात में वृद्धि**–तेल उत्पादक देश अपने पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्य पिछले कुछ वर्षों से प्रतिवर्ष बढ़ाते रहे हैं। साथ ही देश में पेट्रोलियम पदार्थों की खपत भी बढ़ी है जिससे भारी मात्रा में इनका आयात किया गया है।

(2) **मशीनों के आयात में वृद्धि**–आर्थिक योजना के कारण देश में औद्योगीकरण व कृषि विकास की गति तेज हो गयी जिसके फलस्वरूप मशीनों को भारी मात्रा में आयात करना पड़ा।

(3) **आशा के अनुरूप निर्यातों में वृद्धि न होना**–भारत के भुगतान-सन्तुलन का एक कारण निर्यातों का आशा के अनुरूप न बढ़ना है। 1950-51 में भारत के निर्यात 606 करोड़ रुपये के थे जो 2003-04 में बढ़कर 2,93,367 करोड़ रुपये के हो गये हैं, जबकि आयात इसी काल में 608 करोड़ रुपये से बढ़कर 3,59,108 करोड़ रुपये के हो गये हैं।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय ऋण एवं विनियोग**–भारत ने विकास कार्य के लिए भारी मात्रा में ऋण लिये हैं जिसके ब्याज व मूलधन वापसी के लिए भी विदेशी विनिमय व्यय करना पड़ता है। इससे भी भुगतान सन्तुलन संकट पैदा हो गया है।

(5) **बढ़ती हुई जनसंख्या**–भारत की जनसंख्या बराबर बढ़ रही है जिससे आयातों में वृद्धि हो रही है तथा घरेलू उपभोग बढ़ने से निर्यात क्षमता में कमी आयी है। इससे भी भुगतान सन्तुलन संकट की स्थिति बन गयी है।

(6) **सरकारी व्यय**–देश का अपने विदेशी दूतावासों, यात्रियों, विद्यार्थियों, आदि पर व्यय बराबर बढ़ रहा है, इससे भी भुगतान सन्तुलन संकट बढ़ा है।

भुगतान असन्तुलन को दूर करने के उपाय (Measures to remove the Unfavourable Payment)

भारत के भुगतान असन्तुलन को दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिये गये हैं–

(1) **निर्यात को प्रोत्साहन**–सरकार को निर्यात को प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे निर्यात बढ़ सकें। इसके लिए (*i*) निर्यात करों में कमी की जानी चाहिए या निर्यात की छूट दी जानी चाहिए; (*ii*) देश के उद्योगों को आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए; विदेशों में वस्तुओं के लिए प्रचार व विज्ञापन किया जाना चाहिए।

(2) **आयात में कमी**–भारत को अपने आयातों में कमी करनी चाहिए। इसके लिए (*i*) आयात करों में वृद्धि की जानी चाहिए जिससे आयातित वस्तुएँ महँगी पड़ें और उनकी माँग कम हो; (*ii*) साथ ही लाइसेंस व कोटा-प्रणाली का भरपूर सहयोग लिया जाना चाहिए।

(3) **आयात प्रतिस्थापन**–जिन वस्तुओं को देश में आयात किया जाता है उनके प्रतिस्थापन की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके लिए घरेलू उत्पादन को बढ़ाया जाना चाहिए तथा नये-नये उद्योग स्थापित कर आयात पर आधारित वस्तुएँ कम-से-कम आयात की जानी चाहिए। इससे आयात कम होंगे और भुगतान-सन्तुलन पर दबाव कम होगा।

(4) **विदेशी ऋण**–भुगतान असन्तुलन की समस्या को दूर करने के लिए विदेशी ऋणों का भी प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन यह विषय विवादग्रस्त है। कुछ लोग इसको अच्छा बताते हैं तो कुछ नहीं। वास्तव में यह कुछ समय के लिए समस्या का समाधान तो कर देता है, लेकिन बाद में भुगतानों को करते समय कठिनाई होती है।

(5) **विनिमय नियन्त्रण**–भुगतान असन्तुलन को ठीक करने के लिए विनिमय नियन्त्रण भी एक रास्ता है जिससे आयात घटते हैं व निर्यात बढ़ते हैं।

नोट

> नोट्स यदि किसी देश के आयातों का मूल्य कम और निर्यातों का अधिक होता है तो ऐसा अन्तर अनुकूल व्यापार-सन्तुलन (Favourable Balance of Trade) कहलाता है, लेकिन जब आयातों का मूल्य अधिक और निर्यातों का कम होता है तो ऐसा अन्तर प्रतिकूल व्यापार-सन्तुलन (Unfavourable Balance of Trade) कहलाता है।

भुगतान सन्तुलन समस्या के समाधान हेतु सरकार द्वारा उठाये गये कदम (Steps taken by the government to solve the problem of balance of payment)

नब्बे के दशक में भारत सरकार ने भुगतान सन्तुलन की समस्या के समाधान के लिए अनेक विशिष्ट उपाय अपनाए हैं–

1. **उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्ध प्रणाली** (Liberalised Exchange Rate Management System–LERMS)–वर्ष 1992-93 के बजट प्रस्ताव में सरकार ने उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्ध प्रणाली (LERMS) की घोषणा की जिसके मुख्य पहलू थे–(*i*) निर्यात एवं आवक प्रेषण (Inward Remittances) से प्राप्त विदेशी मुद्रा का 40% भाग RBI द्वारा घोषित सरकारी दर पर तथा शेष 60% भाग खुले बाजार में निर्धारित विनिमय दर पर परिवर्तन करने की छूट दे दी गई। (*ii*) पूंजी खाते पर विनिमय नियन्त्रण यथावत् जारी रखा गया। (*iii*) डालर और पौण्ड का अग्रिम विक्रय समाप्त कर दिया गया तथा RBI को मुक्त बाजार में हस्तक्षेप का अधिकार दिया गया। (*iv*) निर्यातकों एवं आवक प्रेषण प्राप्तकर्ताओं को कुल प्राप्ति का 15% विदेशी करेंसी खाते में रखने की अनुमति दी गई। (*v*) निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र, शत-प्रतिशत निर्यातोन्मुखी इकाइयाँ, इलेक्ट्रॉनिकी सॉफ्टवेयर एवं हार्डवेयर प्रौद्योगिकी पार्कों की इकाइयों को बाजार दर पर शत-प्रतिशत परिवर्तनीयता की अनुमति दी गई।
2. **रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता** (Full Convertibility of Rupee)–LERMS की सफलता से उत्साहित होकर भारत सरकार ने 1993-94 के बजट प्रस्तावों में एकल विनिमय दर लागू कर दी और चालू खाते पर रुपये को पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया। मुद्रा की परिवर्तनीयता का अर्थ ऐसी व्यवस्था से लगाया जाता है जिसमें देश की मुद्रा मुक्त रूप से प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्राएँ मुक्त रूप से स्थानीय मुद्रा में परिवर्तनशील होती हैं। रुपये को पूर्ण परिवर्तनीय बनाकर भारत सरकार ने चालू खाते में सम्पूर्ण विदेशी मुद्रा प्राप्तियों को बाजार दर पर रुपये में परिवर्तित करने की सुविधा प्रदान कर दी। RBI ने 19 अगस्त, 1994 को रुपये को चालू खाते में पूर्ण परिवर्तनीय घोषित करते हुए वर्ष 1996-97 से सम्पूर्ण अर्जित आय का प्रत्यावर्तन की छूट प्रदान करने की घोषणा की।
3. **आयात लाइसेंस प्रणाली का उदारीकरण** (Liberalisation of Import Licensing)–सरकार ने नब्बे के दशक में अपनाई गई उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत आयात लाइसेंस व्यवस्था को और उदार बना दिया और खुले सामान्य लाइसेंस (OGL) के अन्तर्गत अधिकांश वस्तुओं के आयात के लिए छूट प्रदान कर दी।
4. **अग्रिम लाइसेंसिंग में सुधार** (Improvements in Advanced Licensing)–भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए मूल्य आधारित एक अग्रिम लाइसेंसिंग प्रणाली लागू की गई जिसमें निर्दिष्ट निर्यातों के मूल्य के एक निश्चित प्रतिशत तक कच्चे माल तथा संघटकों के कर मुक्त आयात की अनुमति प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। अग्रिम लाइसेंसिंग प्रणाली की यह सुविधा निर्यात गृहों, व्यापारिक गृहों, स्टार ट्रेडिंग गृहों तथा सुपर स्टार ट्रेडिंग गृहों को भी प्रदान की गई है।
5. **निर्यातोन्मुख इकाइयों को सुविधा** (Facilities to Export oriented units)–सरकार ने निर्यातोन्मुख इकाइयों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए वर्ष 1981 से शत-प्रतिशत निर्यात करने वाली इकाइयों के लिए

नोट

प्रोत्साहन मूलक अनेक योजनाएँ/सुविधाएँ आरम्भ की हैं। विदेशी बाजारों में इन इकाइयों को अधिक प्रतियोगी बनाने के लिए सरकार ने मशीन, उपकरण, कच्चा माल आदि के शुल्क मुक्त आयात की अनुमति प्रदान की है।

6. **निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत सामान योजना** (Export Promotion Capital Goods Scheme-EPCGS)– सरकार ने निर्यातकों को रियायती आयात शुल्क पर पूँजीगत सामान आयात करने की सुविधा के रूप में निर्यात संवर्द्धन पूँजीगत सामान योजना (EPCG योजना) आरम्भ की है जिसके अन्तर्गत निर्यातक EPCG लाइसेंस के साथ केवल 15 प्रतिशत आयात शुल्क चुकाकर पूँजीगत सामान का आयात कर सकते हैं, किन्तु इस योजना में यह प्रावधान है कि ऐसे निर्यातकों को अपने आयातों के CIF मूल्य का चार गुना निर्यात अगले 5 वर्षों में करना अनिवार्य है।
7. निर्यातकों की निर्यात क्षमता में वृद्धि के उद्देश्य से सरकार ने **निर्यात गृहों, निर्यात व्यापार गृह** तथा **स्टार ट्रेडिंग गृह** की योजनाएँ लागू की हैं। इसी शृंखला में 1 अप्रैल, 1994 में एक नई श्रेणी **'सुपर स्टार ट्रेडिंग गृह'** आरम्भ की है।
8. निर्यात संवर्द्धन में राज्यों की भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से वाणिज्य मन्त्रालय ने राज्यों में 11 **निर्यात संवर्द्धन औद्योगिक पार्क** (Export Promotion Industrial Parks-EPIPs) स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option)–

1. किस योजनावधि के दौरान सरकार ने आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यात संवर्द्धन के लिए अनेक कदम उठाए।
   (घ) दूसरी (ख) चौथी (ग) सातवीं (घ) दसवीं।
2. पाँचवीं योजनावधि में भुगतान-शेष की स्थिति अच्छी होने के कारण भारत ने IMF को कितने करोड़ रुपये का भुगतान किया–
   (क) 550 करोड़ रुपये (ख) 551 करोड़ रुपये (ग) 552 करोड़ रुपये (घ) 555 करोड़ रुपये।
3. किस योजनावधि में सरकार ने चालू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय विनिमय दर प्रणाली लागू की-
   (क) चौथी (ख) छठवीं (ग) आठवीं (घ) दसवीं।
4. पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता पर विचार करने के लिए किसकी अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई–
   (क) सी. रंगराजन (ख) पी. चिदम्बरम
   (ग) एस. एस. तारापोर (घ) डॉ. मनमोहन सिंह।
5. पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता पर गठित एस. एस. तारापोर समिति ने अपनी रिपोर्ट कब प्रस्तुत की–
   (क) फरवरी 1997 (ख) मार्च 1997
   (ग) अप्रैल 1997 (घ) मई 1997
6. भुगतान असन्तुलन के कारण हैं–
   (क) बढ़ती हुई जनससंख्या (ख) सरकारी व्यय
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
7. नब्बे के दशक में भारत सरकार ने भुगतान-संतुलन की समस्या के समाधान के लिए कदम उठाये हैं –
   (क) उदारीकृत विनिमय दर प्रबंध प्रणाली (ख) अग्रिम लाइसेंसिंग में सुधार
   (ग) क और ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

नोट

30.2 सारांश (Summary)

- भुगतान-सन्तुलन से अर्थ देश के समस्त आयातों एवं निर्यातों तथा अन्य सेवाओं के मूल्यों के सम्पूर्ण विवरण से है जो एक निश्चित अवधि के लिए बनाया जाता है। इसमें देश की विदेशी मुद्रा की लेनदारियों का ब्यौरा होता है।
- व्यापार-सन्तुलन में आयात-निर्यात का विवरण रहता है, जबकि भुगतान-सन्तुलन में आयात-निर्यात के विवरण के साथ-साथ सेवाओं, पूँजी व स्वर्ण, आदि के आयात व निर्यात को भी शामिल किया जाता है। आयात-निर्यात दृश्य (Visible) व अदृश्य (Invisible) दो प्रकार का होता है। दृश्य में केवल माल व वस्तुओं के आयात-निर्यात को रखा जाता है, जबकि अदृश्य में उन सेवाओं, स्वर्ण, पूंजी, आदि का आयात-निर्यात रखा जाता है जिसका यद्यपि भुगतान तो होता है, लेकिन उसका कोई लेखा बन्दरगाहों पर नहीं होता है।
- व्यापार-सन्तुलन की तुलना में भुगतान-सन्तुलन शब्द अधिक व्यापक है। व्यापार-सन्तुलन भुगतान-सन्तुलन का एक अंग है।
- किसी देश का व्यापार-सन्तुलन पक्ष में न होना कोई अधिक चिंता का विषय नहीं है, लेकिन यदि भुगतान-सन्तुलन देश के पक्ष में नहीं है तो यह चिन्ता का विषय है, क्योंकि इसके परिणाम द्रुतगामी होते हैं।
- भुगतान-सन्तुलन एक प्रकार का विवरण या खाता है जिसके दो भाग होते हैं। एक भाग में निर्यात से प्राप्त आय व अन्य प्राप्त आय लिखी जाती है, जबकि दूसरे भाग में आयात के भुगतान तथा अन्य सेवाओं, आदि के आयात के भुगतान को लिखा जाता है।
- साधारण भुगतान-शेष सन्तुलित रहता है, लेकिन जब चालू खाते की बाकी व पूंजीगत सौदों की शुद्ध राशियों की बाकी को जोड़कर जो राशि आती है वह भुगतान-सन्तुलन खाते के कुल घाटे या बचत को दर्शाती है। जब कुल प्राप्तियाँ कम व कुल भुगतान अधिक हों तो इसे घाटा कहते हैं जिसकी पूर्ति कई साधनों से की जाती है जिसका विवरण नीचे दिया गया है। इसके विपरीत, यदि कुल प्राप्तियाँ अधिक व भुगतान कम हैं तो इसे बचत या अतिरेक (Surplus) कहते हैं।
- सरकार भारतीय रुपये की पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता के लिए भी प्रयासरत है। इस दिशा में उपाय सुझाने के लिए RBI ने 28 फरवरी, 1997 को **एस.एस. तारापोर** की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसने अपनी रिपोर्ट **मई** 1997 में प्रस्तुत कर दी। समिति ने 1999-2000 तक तीन चरणों में रुपये को पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय करने की सिफारिश की थी।
- निर्यातकों की निर्यात क्षमता में वृद्धि के उद्देश्य से सरकार ने **निर्यात गृहों, निर्यात व्यापार गृह** तथा **स्टार ट्रेडिंग गृह** की योजनाएँ लागू की हैं। इसी शृंखला में 1 अप्रैल, 1994 में एक नई श्रेणी **'सुपर स्टार ट्रेडिंग गृह'** आरम्भ की है।

30.3 शब्दकोश (Keywords)

- **अतियोग**–अतिशयता
- **विनियोग**–प्रयोग, नियुक्ति, कार्यभार।

30.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भुगतान संतुलन से आप क्या समझते हैं? विवेचन कीजिए।
2. भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिए।
3. भारत में भुगतान असंतुलन के क्या कारण हैं? असंतुलन को दूर करने के उपायों का वर्णन कीजिए।

नोट

4. रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता (चालू एवं पूँजी खाते) से आप क्या समझते हैं और यह कब से लागू हुआ? व्याख्या कीजिए।
5. भुगतान-शेष असंतुलन को ठीक करने के लिए सरकार द्वारा क्या उपाय अपनाये जा रहे हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. (ख)	2. (ख)	3. (ग)	4. (ग)
5. (क)	4. (ग)	7. (ग)	

30.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त*: डॉ. जे.पी. मिश्रा; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
2. *मौद्रिक अर्थशास्त्र*: डॉ. जी. सी. सिंघई; साहित्य भवन पब्लिकेशन्स; आगरा।
3. *लोकवित्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार*: डॉ. एम.एल. झिंगन; वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि.; दिल्ली।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in